ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नियम का सार

(भाग 5)

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम
के परम समाधि अधिकार तथा परम भक्ति अधिकार पर
अध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईसवी सन् 1971 के वर्ष के धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिग बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मु बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2079	2549	2023

—: प्रकाशन :—

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन की 110 वीं जन्मजयन्ती,
भाद्र कृष्ण 2, दिनांक 01 सितम्बर 2023
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250   फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

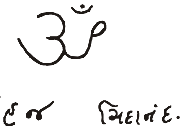

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात्, सदेह विदेहक्षेत्र जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों के आधार देते हैं, इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

वे निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धरभगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के पश्चात् पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इनके उपरान्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

'श्री समयसार' इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नवतत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। 'श्री प्रवचनसार' में नाम के अनुसार जिन प्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। 'श्री नियमसार' में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। 'श्री पंचास्तिकायसंग्रह' में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा 'श्री अष्टपाहुड़' एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, इसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

श्री नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है। 'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो, वह अर्थात् रत्नत्रय। 'नियमसार' अर्थात् नियम का सार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय। इस शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—शुभ, अशुभ और शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्धद्रव्य सामान्य, वह परमात्मतत्त्व है। वही शुद्ध अन्तःतत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दुःख को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इससे सुख के लिये उसके सर्व प्रयत्न (द्रव्यलिंगी मुनि के व्यवहाररत्नत्रय तक) सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं पर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखनेवाले मुनिवरश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गम्भीर आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तर्वेदन के साथ मिलानकर इस टीका में स्पष्ट रीति से अभिव्यक्त किया है। इस टीका में आनेवाले कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्यरूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानो कि परमपारिणामिकभाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्षु हृदय को मुदित करता है। संसार दावानल समान है और सिद्धदशा तथा मुनिदशा परम सहजानन्दमय है—ऐसे भाव का एकधारा वातावरण पूरी टीका में ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर ने अलौकिक रीति से सृजित किया है और स्पष्टरूप से दर्शाया है कि मुनियों की व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परीषहजय इत्यादिरूप से कोई भी परिणति हठपूर्वक, खेदयुक्त, कष्टजनक और नरकादि के भयमूलक नहीं होती परन्तु अन्तरंग आत्मिक वेदन से होनेवाली परम परितृप्ति के कारण सहजानन्दमय होती है।

श्री नियमसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 187 गाथायें प्राकृत में रची हैं। उन पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखी है। ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजी ने मूल गाथाओं का तथा टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा इस नियमसार की मूल गाथायें, उनका गुजराती पद्यानुवाद, संस्कृत टीका और उस गाथा-टीका का अक्षरशः गुजराती-हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। इस शास्त्रजी में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्नानुसार बारह अधिकारों में प्रस्तुत किया गया है।

(1) जीव अधिकार, (2) अजीव अधिकार, (3) शुद्धभाव अधिकार, (4) व्यवहार चारित्र अधिकार, (5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, (6) निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार, (7) परम आलोचना अधिकार, (8) शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार, (9) परम समाधि अधिकार, (10) परम भक्ति अधिकार, (11) निश्चय परमआवश्यक अधिकार, (12) शुद्धोपयोग अधिकार।

यह नियमसार ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को अत्यन्त प्रिय था। आचार्यदेव ने निज भावना के निमित्त रचना की होने से कारणपरमात्मा को बहुत ही घोंटा है, जो गुरुदेवश्री को अपने आचार्य गुरुवर की उत्कृष्ट साधना स्मरण कराता था। उन्होंने इस पर बहुत ही गहराई से स्वाध्याय किया था और प्रसिद्ध में बहुत बार इस ग्रन्थ पर प्रवचन भी किये थे। इन प्रवचनों में से अपने पास छह बार के प्रवचन पूरे उपलब्ध हैं। यहाँ प्रस्तुत प्रवचन उनमें से एक बार के प्रवचन हैं, जो वीर संवत् 2497 (ई.स. 1971) वर्ष के दौरान नियमसार शास्त्र पर 202 प्रवचन हैं। पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि मुमुक्षु नितरते सत्धर्म का श्रवण करके निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसे गहन शास्त्र कि जो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने निज भावना के लिये रचा है, उसे पूज्यश्री ने छह-छह बार प्रसिद्ध सभा में लिया था। ये गहन प्रवचन यहाँ अक्षरश: शास्त्ररूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावना का ही फल है। अध्यात्म का गहरा रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की उपलब्धि सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट (www.vitragvani.com) तथा ऐप (Vitragvani App) तथा सोशल मीडिया (www.youtube.com/c/vitragvani) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकतम लाभ सामान्यजन प्राप्त करें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप नियमसार शास्त्र पर 1971 में हुए 202 प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। उसमें से नियम का सार, भाग-5 में यहाँ (9) परम समाधि अधिकार और (10) परम-भक्ति अधिकार पर हुए धारावाही 27 प्रवचन प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य श्री निजेश जैन, सोनगढ़ द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला; श्री दिनेशभाई शाह, विलेपार्ला; श्री अतुलभाई जैन, मलाड और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां, जिला-भीलवाड़ा (राज) द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा उत्तरदायित्व पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश अथवा अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमायाचना करते हैं। सभी मुमुक्षुओं से निवेदन है कि अशुद्धियों की नोंध ट्रस्ट को प्रेषित करें जिससे आगामी आवृत्ति में सुधार किया जा सके। यह प्रवचन vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री के करकमल में सादर समर्पित करते हैं। पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे ऐसी भावना से विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

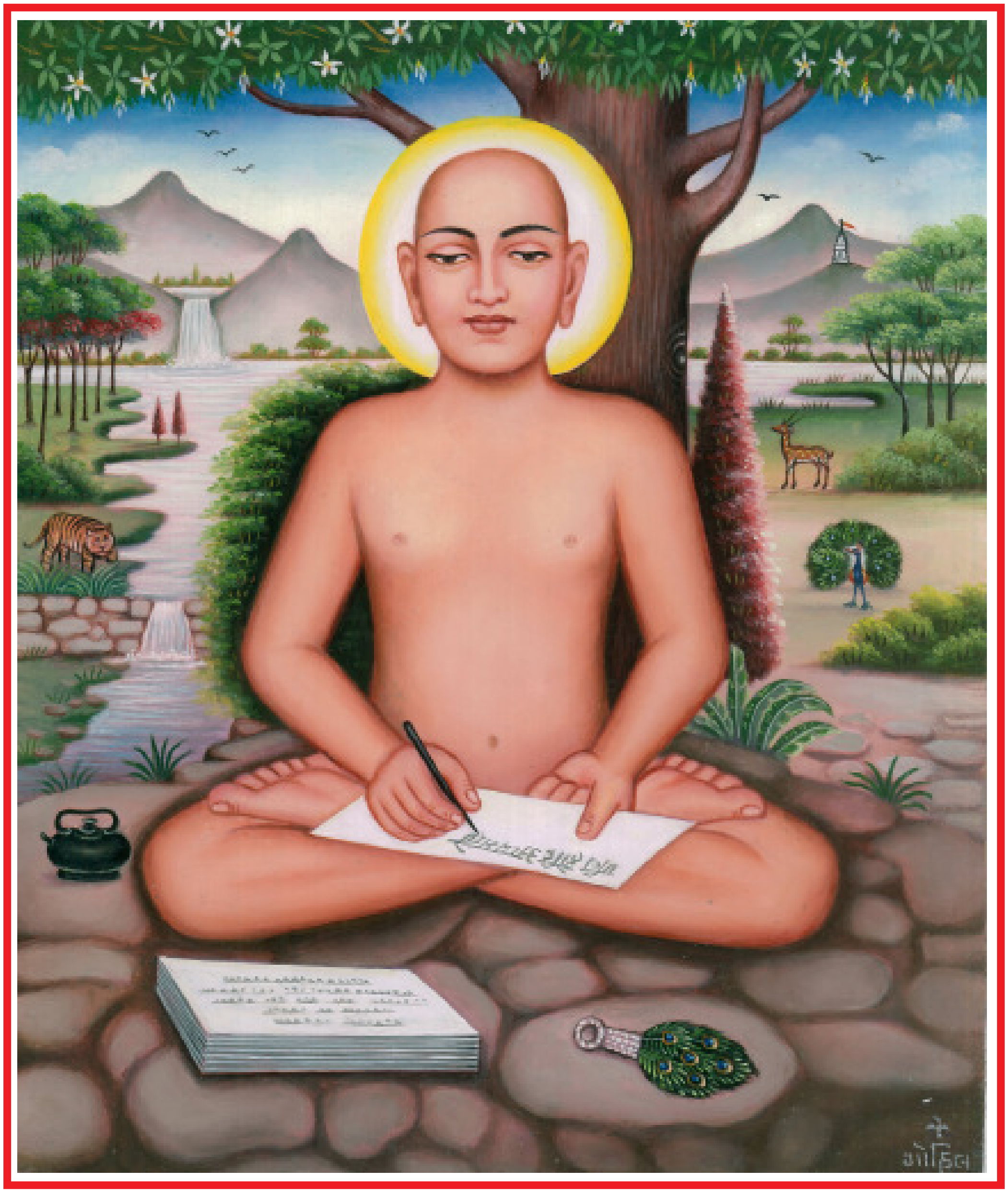

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
परम समाधि अधिकार			
१३२	२२-०९-१९७१	१२२	१
१३३	२३-०९-१९७१	१२३, २००	१७
१३४	२४-०९-१९७१	१२४, २०१	३३
१३५	२५-०९-१९७१	१२४-१२५, २०२	५०
१३६	२६-०९-१९७१	१२५-१२६, २०३	६५
१३७	२७-०९-१९७१	२०४-२०८	८०
१३८	२८-०९-१९७१	१२७, २०९-२११	९६
१३९	२९-०९-१९७१	१२७	११०
१४०	३०-०९-१९७१	१२८, २१२-२१३	१२४
१४१	०१-१०-१९७१	१२९-१३०, २१३-२१४	१३८
१४२	०२-१०-१९७१	१३०, २१५	१५१
१४३	०३-१०-१९७१	२१६-२१७	१६६
१४४	०४-१०-१९७१	२१७	१८१
१४५	०५-१०-१९७१	१३१-१३२, २१८	१९६
१४६	०६-१०-१९७१	१३३	२११
परम भक्ति अधिकार			
१४७	१०-१०-१९७१	१३४, २१९	२२७
१४८	११-१०-१९७१	१३४	२४३

१४९	१२-१०-१९७१	१३५, २२०	२५७
१५०	१५-१०-१९७१	२२१-२२६	२७१
१५१	१६-१०-१९७१	१३६	२८७
१५२	१७-१०-१९७१	१३७, २२७	३०१
१५३	१८-१०-१९७१	१३७, २२८	३१६
१५४	१९-१०-१९७१	१३८	३३१
१५५	२०-१०-१९७१	१३९, २२९	३४५
१५६	२१-१०-१९७१	१३९-१४०, २३०	३६०
१५७	२२-१०-१९७१	१४०, २३१-२३४	३७४
१५८	२५-१०-१९७१	२३४-२३७	३८८
१५९	२६-१०-१९७१	१४१, २३७	४००

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

नियम का सार

(भाग - ५)

श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री निमयसार परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ई.स. १९७१ वर्ष के अक्षरशः प्रवचन

— ९ —

परम समाधि अधिकार

आसोज शुक्ल ३, बुधवार, दिनांक - २२-९-१९७१
गाथा-१२२, प्रवचन-१३२

नियमसार सिद्धान्त शास्त्र है। जिसमें, अनादि बन्धन से छूटने का उपाय क्या है, वह चलता है, अनादि से अपना स्वभाव परम पवित्र और आनन्द होने पर भी, उसने अनादि से पुण्य-पाप और उसके फलरूप से (प्राप्त) चीज़ को अपना माना है। वह भाव अज्ञानरूप अन्धकार है। उसमें अनादि से भटकता है। उसे टालने का उपाय क्या, यह (बात) चलती है। समाधि अधिकार। परम-समाधि अधिकार। समाधि अर्थात् कल कहा था। शुरुआत हुई है न वहाँ से।

आत्मा में वीतरागभाव—स्वभावभाव पड़ा है आत्मा में। वीतरागभाव की पर्याय द्वारा उसका—द्रव्य का आश्रय करना, ऐसी वीतरागीदशा, वह समाधि, वह सम्यग्दर्शन-

ज्ञान और चारित्र। गजब! और वह मोक्ष का मार्ग। संसार के दुःख से मुक्त होने का यह एक मार्ग है। 'समाहिवरमुत्तम् दिंतु' आता है लोगस्स में। जिसे लोगस्स मुखाग्र—कण्ठस्थ हो न (उसे खबर होती है)। यह स्थानकवासी-मन्दिरमार्गी को बहुत। दिगम्बर में यह नहीं। पाठ है, वह लोगस्स का सामायिक में। उसमें आता है 'समाहिवरमुत्तम् दिंतु' लोगस्स में। हे परमात्मा! मेरी वीतरागी शान्ति (रूपी) मुझे वर अर्थात् फल मुझे दो। यह भगवान से माँगे। भगवान कहीं देते नहीं। भगवान तो तीर्थंकर केवली हैं। परन्तु अपने में वह प्रार्थना है।

अरे! रुलता-भटकता दुःखी प्राणी चौरासी के अवतार के अन्धकार में भटका है। समझ में आया? उसे अज्ञान और मिथ्यात्वभाव से छूटने का उपाय समाधि है। समाधि अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप को लक्ष्य में लेकर उसमें स्थिर होना, उसका नाम समाधि है। लोग कहे, यह बाबा-बाबा समाधि साधते हैं—वह नहीं। वह तो सब कृत्रिम, अज्ञानदशा है। वह तो आधि-व्याधि-उपाधिरहित, वह समाधि। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के विकल्प या हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना के विकल्प, वे विकल्प अर्थात् राग, उसे आधि कहते हैं। शरीर के रोग को व्याधि कहते हैं और बाहर के संयोग यह सब धमाल, धन्धा और व्यापार, उन सबको उपाधि कहते हैं। शिवलालभाई! समझ में आया?

आधि, व्याधि और उपाधि—तीन से रहित है। समझ में आया? यह शरीर, वाणी, स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार-धन्धा आदि, यह सब उपाधि है। और इसके लक्ष्य से होनेवाले पुण्य और पाप के भाव—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के अथवा हिंसा, झूठ, आदि के दोनों भाव आधि अर्थात् कि राग है—विकल्प है। और शरीर में रोग, वह व्याधि है। अर्थात् उपाधि, व्याधि और आधि—उनसे रहित आत्मा की शान्ति प्रगट करना, इसका नाम समाधि है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। अनन्त काल में अभ्यास किया नहीं। समझ में आया?

अथवा धर्म के नाम से आया हो तो भी यह व्रत, नियम और अपवास और यह करे। वह सब विकल्प की—राग की वृत्ति है। वह धर्म नहीं, वह पुण्य है। समझ में

आया? पुण्य के कारण से यह दुनिया कहे, वे अनुकूल संयोग मिले, उपाधि के। भगवान आत्मा वह उपाधि, व्याधि और आधि—तीन से अन्तर में चिदानन्दस्वरूप भगवान तीर्थंकरदेव परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव अरिहन्त ने जो आत्मा अन्दर देखा, वह आत्मा आनन्द और ज्ञान और वीतराग की मूर्ति आत्मा है। आहाहा! उसका आश्रय करने से, उसका अवलम्बन लेकर, जो वीतरागी निर्दोषदशा प्रगट हो, उसे यहाँ समाधि कहते हैं, उसे संसार के अज्ञान और मिथ्यात्व के नाश का उपाय कहते हैं। आहाहा! कहो, पाटनीजी! ऐसी सूक्ष्म बात है, भगवान! तेरी चीज़ को तूने कभी पहिचाना नहीं। यह गाथा। १२२ गाथा है।

वयणोच्चारणकिरियं परिचत्ता वीयरायभावेण।
जो झायदि अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स॥१२२॥

नीचे हरिगीत है। यह मूल श्लोक है, (इसका) नीचे हरिगीत है।

रे त्याग वचनोच्चार किरिया वीतरागी भाव से।
ध्यावे निजात्मा जो, समाधि परम होती है उसे॥१२२॥

देखो! ओहोहो! लो, समाधि, वास्तु यह कहलाये। यह मकान का वास्तु, ऐसे तो अनन्त बार किये। ऐ भीमजीभाई! पाँच-पाँच करोड़ के मकान, उसमें अनन्त बार रहा और अनन्त बार ऐसा मनुष्यपना पाया। धूल थी सब अन्धकार। आहाहा! दुःख के समुद्र में डुबकी मारता था अनादि से। भगवान आत्मा आनन्द का सागर, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल—लबालब भरा हुआ है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में अन्तर में डुबकी मारना, ऐसे अतीन्द्रिय भगवान आत्मा का त्रिकाली स्वभाव, उसमें एकाकार होना, उसे परमात्मा धर्म कहते हैं। आहाहा! उस धर्म को समाधि कहते हैं, उस समाधि को मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया?

टीका : यह, परम समाधि के स्वरूप का कथन है। टीका है न! अब, **कभी...** धर्मी जीव को **अशुभवंचनार्थ**—पाप से बचने के लिये **वचनविस्तार से शोभित परमवीतराग सर्वज्ञ का स्तवनादि...** सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव या पंच परमेष्ठी, वीतरागी सन्त और वीतरागी अरिहन्त और सिद्ध का स्तवन, प्रशंसा आदि का

भाव धर्मी को भी अशुभभाव से बचने के लिये आता है। समझ में आया? भाषा ऐसी है, देखो! **अशुभवंचनार्थ...** पाप के भाव से बचने के लिये भगवान पंचपरमेष्ठी—सच्चे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, जो पाँचों वीतरागी मूर्ति है, उनका स्तवन, वन्दन, गुणग्राम, श्रवण उनका करना इत्यादि भाव, पाप से बचने को शुभभाव होता है। परन्तु वह समाधि नहीं है, वह धर्म नहीं है। समझ में आया?

शोभित... वचनविस्तार से ऐसा। परमात्मा त्रिलोकनाथ... लोगस्स में आता है न उसमें। 'एवं मये अभिथुआ विहुयरयमला' अभि (अर्थात्) स्तवन किया, ऐसा आता है। स्तुति करूँगा। परन्तु उस स्तुति की यह भाषा बोले उसमें पहाड़े की खबर भी नहीं होती। किसकी स्तुति करता हूँ और भाव क्या है?

मुमुक्षु : सबको आगे बैठना रुचे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आगे आता नहीं, ... अनादि से धर्म के आगे आता नहीं।

कहते हैं, भगवान वीतराग परम सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान है, जिन्हें एक समय में अनन्त आनन्द का वैभव उत्पन्न हुआ है, जिन्हें अनन्त ज्ञान (है कि जो) एक समय में तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसा ज्ञानवैभव अरिहन्त परमात्मा को पर्याय में उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? ऐसे **वचनविस्तार से शोभित परमवीतराग सर्वज्ञ का...** देखो! भाषा। मुनि, वे वीतराग ही होते हैं। जिन्हें सच्चे वीतरागी मुनि कहें, वे तो अन्दर आनन्दमूर्ति और आनन्द को अनुभव करते हैं। वे वीतरागी ही हैं, परन्तु अरिहन्त और सिद्धादि जो है, वे तो परम वीतराग हैं। समझ में आया?

ऐसे परमवीतराग सर्वज्ञदेव, उनका स्तवन, वन्दन इत्यादि **परम जिनयोगीश्वर को...** परम जिन सन्तों ने... जिसे आत्मा का अनुभव है, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु है, ऐसे आत्मा का जिन्हें अनुभव आनन्द का है और प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द जिन्हें प्रगट हुआ है, उन्हें यहाँ मुनि कहा जाता है। ऐसे परमजिनयोगीश्वर को **भी करनेयोग्य है।** ऐसा कहते हैं। लो, व्यवहार आया। ऐई भीखाभाई! आहाहा! जिन्हें भगवान आत्मा में जुड़ान—अन्दर एकाग्र होकर जिसे बहुत ही शान्ति और वीतरागता प्रगट हुई है, ऐसे

को जिनयोगीश्वर, जिनसन्त-मुनि, उन्हें कहा जाता है। आहाहा! ऐसे सन्तों को भी सर्वज्ञ वीतराग के वचन के विस्तार से शोभित स्तवन, गुणग्राम भी करने का (भाव) आता है। करनेयोग्य है, ऐसा कहा है शुभभाव। आहाहा!

परमार्थ से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है। वाणी, वह भगवान का स्तवन, वह प्रशस्त है। वह भी पुण्यबन्ध का कारण है। परमार्थ से तो वह भी करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कहो, मूलचन्दभाई! ऐसा कहते हैं, वह करनेयोग्य नहीं। एक ओर कहे कि करनेयोग्य है और वापस कहे कि करनेयोग्य नहीं। वह तो अशुभ को टालने के लिये वह भाव होता है, इतनी बात की है। धर्म-बर्म का प्रश्न यहाँ है ही नहीं। वह धर्म है ही नहीं। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा आदि भाव, वह धर्म नहीं, वह तो राग का अंश है, परन्तु पाप के अंश से बचने के लिये, ऐसा पुण्य का अंश मुनियों को भी आता है, इतनी बात है। समझ में आया? परमार्थ से तो शुभ और अशुभ **समस्त वचन-सम्बन्धी व्यापार करनेयोग्य नहीं है।** आहाहा!

ऐसा होने से... **ऐसा होने से ही, वचनरचना परित्याग कर...** वचन-रचना परित्यागकर... वाणी का बोलना छोड़कर और वाणी की ओर के राग को भी छोड़कर, **जो समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है...** कौन? आत्मा। **और जिसमें से भावकर्म नष्ट हुए हैं, ऐसे भाव से—परम वीतरागभाव से—**अब यह पर्याय में लेते हैं। जिसमें कर्मकलंक कादव से मुक्त परिणाम हैं। समाधि और मोक्षमार्ग उसे कहते हैं कि समस्त कर्म कादव से विमुक्त है। पुण्यपरिणाम भी कादव है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? यह भगवान की स्तुति, वन्दन ऐसा जो भाव...

लोगस्स में आया न 'एवं मअे अभिथुआ...' उसकी अर्थ की खबर नहीं होती। 'अभिथुआ' अर्थात् क्या होगा? कहा नहीं था एक बार? 'विहुयरयमला...' उसमें आता है न दूसरा पद। 'विहुयरयमला' उसके भी अर्थ की खबर नहीं होती। 'विहुयरयमला' अर्थात् क्या होगा? पहाड़ा बोले जाये, (पाठ) पूरा करके, ४८ मिनिट हुए (तो) आसन समेटकर भागे। हो गयी सामायिक। धूल भी नहीं सामायिक, सुन न! समझ में आया?

सामायिक में तो आत्मा की वीतरागदशा की प्रगटता का अनुभव होता है, उसे सामायिक कहते हैं, जो यहाँ वीतरागभाव कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जरा मुनिराज तो ऐसा कहना चाहते हैं कि आत्मा तो त्रिकाल कर्मकलंक रहित ही है, परन्तु उसके जो परिणाम—आत्मा के धर्म के परिणाम, वे भी कर्म कादव से विमुक्त हैं। आहाहा! वह शुभभाव और अशुभभाव, वे दोनों कर्म कादव हैं। समझ में आया? कादव में जैसे फँस जाये, वैसे यह फँस जाता है उसमें, कहते हैं। **और जिसमें से भावकर्म...** पुण्य और पाप के विकल्प की शुभ-अशुभ वृत्ति छूट गयी है। **नष्ट हुए हैं, ऐसे भाव से**—ऐसी पर्याय से... राग और द्वेष के विकल्प से रहित। आहाहा! **परम वीतरागभाव से**—परम निर्दोषदशा, जिसमें यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का भी अभाव है, ऐसे आत्मा के स्वभाव की सन्मुखता... अखण्डानन्द प्रभु आत्मा... आहाहा! सच्चिदानन्द आत्मा है। (सच्चिदानन्द) = सत् अर्थात् शाश्वत्, और ज्ञान और आनन्द की मूर्ति अविनाशी प्रभु आत्मा है। त्रिकाल ऐसा आत्मा अन्दर है। आहाहा! ऐसे आत्मा को **परम वीतरागभाव से**—अरे... अरे! भाषा भी सुनी न हो।

कहते हैं कि भगवान आत्मा कैसा है? कि **त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्धकारणपरमात्मा...** यह आत्मा। समझ में आया? यह भगवान आत्मा विराजता है अन्दर। वह आत्मा उसे कहते हैं केवली। तीर्थंकरदेव आत्मा उसे कहते हैं। किसे? कि जो त्रिकाल निरावरण अन्दर वस्तु है और नित्य-शुद्ध है। त्रिकाल शुद्ध का कन्द प्रभु है। आहाहा! वस्तु स्वयं आत्मा पदार्थ जिसे कहते हैं... यह शरीर-वाणी-मन, वह तो जड़ अजीव है और पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं, वे कहीं आत्मतत्त्व नहीं और आत्मतत्त्व, वह आस्रवतत्त्व नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर जिसे आत्मतत्त्व कहते हैं, वह तो शरीर, कर्म अजीवतत्त्व से भिन्न चीज़ है। और अन्दर में पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं, कादव हैं, मलिनभाव हैं। आहाहा! उस आस्रवतत्त्व से भगवान आत्मा अन्दर भिन्न तत्त्व है। कौन जाने क्या होगा? आहाहा!

त्रिकाल-निरावरण... परमात्मा स्वयं है। यह आत्मा, हों! यह आत्मा। और **नित्य-शुद्ध...** है। त्रिकाल शुद्ध पवित्रधाम आत्मा है। आहाहा! कैसे जँचे? जो विषय

के रस में फँस गया, कमाने के राग में रस पड़ गया। शिवलालभाई! कमाने के राग में रस, हों! जो इज्जत और कीर्ति प्राप्त करने के प्रेम में पड़े हैं, उन्हें ऐसा आत्मा कैसे बैठे? समझ में आया? त्रिकाल निरावरण परमात्मा... कर्म का सम्बन्ध तो उसकी राग की पर्याय के साथ सम्बन्ध है, परन्तु राग और (जड़) वस्तु ही जिसमें नहीं। आहाहा! कर्म जिसे कहें न आठ कर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि (आठ कर्म) आते हैं न! वह जड़वस्तु—मिट्टी है। जैसे यह मिट्टी स्थूल है, वैसे वह सूक्ष्म मिट्टी है अन्दर। 'विहुयरयमला' नहीं कहा? विहुय अर्थात् वि—विशेष टाले हैं। हे नाथ! रय अर्थात् रजकण—सूक्ष्म रज है कर्म की, उसे रय कहते हैं और मल, रयमला... मल अर्थात् पुण्य और पाप के विकल्प, उन्हें मल कहते हैं। आहाहा!

यह सब, आत्मा उसके बिना का है, ऐसा जानने के लिये है। भीमजीभाई! लोगस्स किया है? नहीं किया, ठीक। व्यापार किया है। लोगस्स आता है सामायिक में। पहला णमो अरिहंताणं, पश्चात् तिक्खुत्तो, पश्चात् इच्छामि पडिक्कमणुं, तस्सउत्तरि, पश्चात् लोगस्स, पश्चात् .... पश्चात् नमोत्थुणं। पहाड़े बोलते जाये। पूरा करना शब्दों का। वस्तु क्या है अन्दर आत्मा और आत्मा की किस दशा द्वारा उसे धर्म होता है, किस दशा द्वारा उसे शान्ति मिलती है, उसे मुक्ति का मार्ग होता है? कि इस दशा द्वारा। पुण्य-पाप के विकल्प... है न? **त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्धकारणपरमात्मा...** आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाल निरावरण अन्दर वस्तु पड़ी है, वह नित्य—त्रिकाल—सदा शुद्ध है। सदा शुद्ध वस्तु है, पवित्र है। आस्रव और कर्मरहित, वह पवित्र चीज़ है अन्दर। आहाहा!

ऐसा **त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्धकारणपरमात्मा...** भगवान त्रिकालीस्वरूप अपना, उसे कारणपरमात्मा कहते हैं, कारण कि उसमें से धर्मपर्याय और केवलज्ञानपर्याय (रूपी) कार्य प्रगट होता है। आहाहा! उसे व्यवहार दया, दान और व्रत के विकल्प में से केवलज्ञान नहीं होता। उसे केवलज्ञान होता है, वह त्रिकाली भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान और आनन्द के रस का कस पड़ा हुआ है, उसमें एकाग्र होने से (होता है)। है न? **स्वात्माश्रित...** देखो! यह शब्द बीच में विशेष पड़ा है। धर्मध्यान उसे कहते हैं कि **त्रिकाल-निरावरण नित्य-शुद्ध...** नित्य-शुद्ध कारणपरमात्मा अपना शाश्वत् असली

स्वरूप ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप, शुद्ध पवित्रस्वरूप—ऐसा जो कारणपरमात्मा, उसे **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से...** आहाहा! ध्याते हैं, ऐसा कहना है। आहाहा! वीतराग का—सर्वज्ञदेव का मार्ग अपूर्व अलौकिक है। लोगों को सुनने को मिला नहीं। समझ में आया?

ऐसा जो भगवान अपना त्रिकाली कारणप्रभु, उसे स्वात्माश्रित—उसके आश्रित जो निश्चय धर्मध्यान होता है, समझ में आया? वह धर्मध्यान, वह परमवीतरागभाव है। भाई! यह लोग कहते हैं न कि धर्मध्यान तो, शुभभाव, वह धर्मध्यान और शुद्धभाव, वह शुक्लध्यान। भाई! तुझे खबर नहीं। देखो न! यहाँ क्या कहा है? ऐसे भाव से, जिसमें से भावकर्म नष्ट हुए हैं, विकल्प शुभराग जिसमें से नष्ट हुए हैं और आत्मा स्वात्माश्रित जिसने परम वीतरागदशा प्रगट की है। चौथे गुणस्थान में भी समकित हुआ, वह वीतरागदशासहित है। आहाहा! पाँचवें गुणस्थान में भी वीतराग की शुद्धि की वृद्धि हुई है और सच्चे मुनि हों उन्हें तो वीतराग की शुद्धि विशेष बढ़ गयी है।

ऐसा जो परमवीतरागभाव, वह **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** देखो! धर्मध्यान की व्याख्या करते हैं, वे रतनचन्दजी। धर्मध्यान तो शुभभाववाले को होता है। यहाँ कहते हैं कि स्व-आत्मा त्रिकाली, उसके आश्रय से प्रगट हुई जो निश्चय एकाग्रता, उसे परम वीतरागभाव, उसे समाधि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा धर्मध्यान। धर्मध्यान करते हो न? उसको पूछे। हाँ। क्या? यह सामायिक करते हैं, चोविहार (रात्रि को चारों आहार का त्याग) करते हैं, वह धर्मध्यान। सुन न अब! ऐसा क्रियाकाण्ड अनन्त बार अभव्य ने भी किया। वह तो राग की क्रिया है। वह धर्मध्यान कैसा? वह तो आर्तध्यान है। पण्डितजी! ऐसा समझा जाता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिस भाव में से पुण्य-पाप के विकल्प नाश हुए हैं और ऐसा परम वीतरागभाव कि जो त्रिकाल निरावरण और निज शुद्ध एक कारण—आत्मा, उसके आश्रित हुई दशा है, उसे परम वीतरागभाव कहा जाता है, उसे समाधि कहा जाता है। वे बाबा समाधि लगावे ओम आदि—वह समाधि नहीं है। समझ में आया? समाधि लगायी है, ओम... ओम हुआ। धूल भी नहीं वहाँ। आत्मा कौन है, वीतराग सर्वज्ञदेव

किसे आत्मा कहते हैं ? उसकी अभी वीतराग परमेश्वर की श्रद्धा का अभी ठिकाना नहीं होता, वीतराग ने कही हुई सामायिक और वह सामायिक किसके आश्रय से प्रगट होती है, ऐसे आत्मा की भी जिसे खबर नहीं होती, उसे समाधि कहाँ से आयी ? समझ में आया ? कठिन काम, भाई ! ऐसा मार्ग !

कहते हैं, एक तो जिस परिणाम में से—भाव में से पुण्य-पाप के भाव का नाश होता है। एक बात। और जो भाव त्रिकाल निरावरण नित्य-शुद्ध कारणपरमात्मा के आश्रय से प्रगट होता है, ऐसा स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान, उसे यहाँ समाधि, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे परम वीतरागभाव, उसे मोक्ष का मार्ग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर फरमाते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! निश्चय-धर्मध्यान से... **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से...** भाई ! आया यह। वह (कहे), धर्मध्यान शुभभाव के आश्रित होता है। ऐसे के ऐसे।

मुमुक्षु : शुभ का अर्थ मन्दकषाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दकषाय, वह शुभ कहाँ था ? शुभ तो यह है। राग की मन्दता, वह तो अशुभ है—अशुद्ध है। आहाहा ! अरे प्रभु ! विकल्प उठे कि यह करूँ और यह करूँ—वह सब विकल्प अशुद्धभाव है। समझ में आया ? यहाँ तो परमात्मा निजस्वरूप शुद्ध चैतन्य भगवान, आहाहा ! त्रिकाली परमेश्वर का तेज जो अन्दर आनन्द का है, उसके आश्रित जो एकाग्रता होकर धर्मध्यान होता है, उस धर्मध्यान को यहाँ समाधि अथवा परम वीतरागभाव (कहते हैं)। इस समाधि से अज्ञान और मिथ्यात्व का नाश होता है। कहो, समझ में आया ?

व्यवहार करने से व्यवहार का नाश होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा ! कठिन बातें, भाई ! भगवान परिपूर्ण प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है। उसका स्वादिया जीव धर्मध्यानवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? त्रिकाल चेतनतत्त्व भगवान अविनाशी अनादि-अनन्त तत्त्व है। ऐसा उसका ज्ञान और आनन्द भी अविनाशी शक्तिरूप त्रिकाल है। वह शक्ति और शक्तिवान का जिसने आश्रय लिया (और) परद्रव्य का आश्रय छोड़ दिया। यह तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हों तो उनका आश्रय करना, वह राग है।

मुमुक्षु : तीर्थंकर का भी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर (कहाँ), सिद्ध का। तीर्थंकर सिद्ध होते हैं न? तीर्थंकर तो अभी अरिहन्त हों और वे सिद्ध हों 'णमो सिद्धाणं', परन्तु वे परद्रव्य है। वे कहाँ स्वद्रव्य हैं? आहाहा! कठिन काम, भाई! वीतरागमार्ग को समझना। अभी तो समझ का ठिकाना नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह सिद्ध का लक्ष्य करे और आश्रय करने जाये तो शुभ विकल्प उठता है। कहो, वजुभाई! क्या है यह? यह भक्ति करने बैठे तीन-तीन घण्टे, टोकरियाँ बजाये—यह सब शुभभाव है, ऐसा कहते हैं, पुण्य है, राग है, बन्धन का भाव है, मैल है, पवित्रता को रोकनेवाला है।

मुमुक्षु : पुण्य कहे तो शक्ति आवे सुनने में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अधिक स्पष्टीकरण हो, तब उसे समझ में आये न। वरना... समझे नहीं। बनिया पकड़कर बैठे हों न दूसरा। ऊँचा होता नहीं...। कहते हैं, यह पुण्य (को) परमात्मा आत्मा की पवित्रता को रोकनेवाला कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा **स्वात्माश्रित...** 'स्वात्माश्रित' में स्व-आत्मा किसे कहा? 'आश्रित' भाव है, परन्तु स्व-आत्मा किसे कहा? कि त्रिकाल निरावरण शुद्ध कारणपरमात्मा को आत्मा कहा। ऐसा स्व-आत्मा, उसके 'आश्रित' वह पर्याय हुई। समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो स्व-भगवान आत्मा, पूर्णानन्द का कन्द प्रभु, अविनाशी भगवान आत्मा, उसका जो आश्रय करना, वह समाधि, उसका नाम वीतरागभाव, उसका नाम मोक्षमार्ग, उसका नाम समकित, ज्ञान और चारित्र। स्व-आत्मा का आश्रय करके जो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट हो, उसे समकित (कहते हैं)। समकित भी स्व-आत्मा के आश्रित प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन पहला चौथे गुणस्थान में अविरति सम्यग्दृष्टि, वह सम्यग्दर्शन भी स्व-आत्मा जो त्रिकाली, उसके आश्रित प्रगट होता है, वह सम्यग्दर्शन भी समाधि है। आहाहा! यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से प्रगट नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सच्चा होगा यह दिलीप? सौ टंच का सोना। तेरा दादा कहता था न दूसरा सवेरे...? वह शुभभाव था, धर्म नहीं, पुण्य था।

मुमुक्षु : शुभभाव होवे तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, आवे, यह कहा, परन्तु धर्म नहीं, ऐसा कहा। वहाँ तो

धर्म मानते थे कि यह धर्म है। यह तो पहले आज आया। यह तो पहली बात आ गयी। शुभभाव स्तुति आदि का होता है, परन्तु है वह बन्ध का कारण। परमार्थ से तो शुभ और अशुभ दोनों वचन की रचनारहित होकर, पुण्य-पाप के परिणाम से रहित होकर जो परिणाम प्रगट हुए कि जो परिणाम त्रिकाल-निरावरण आत्मा के आश्रय से प्रगट हुए, उस आश्रय से प्रगट हुई वह वीतरागता, वह सम्यग्दर्शन। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : वह भी स्वतन्त्ररूप से होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र कहा न। स्वात्माश्रित होता है न? देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से नहीं होता। देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है। परद्रव्य का लक्ष्य करने से श्रद्धा हो वह राग की होती है। आहाहा! गजब मार्ग! यह वीतरागमार्ग है। कितना स्पष्ट किया है!

उसे निश्चय-धर्मध्यान कहा, उसे परम वीतरागभाव कहा, उसे समाधि कही और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा। किसे? कि जो त्रिकाल निरावरण नित्य-शुद्ध आत्मा, उसके आश्रित जो पर्याय प्रगट होती है, उसे मोक्ष का कारण कहा जाता है। आहाहा! पुस्तक-बुस्तक वाँचते हो या नहीं? रखी है भीमजीभाई! उसे दिया नहीं। यहाँ तो दो। वह वहाँ बहियों को फिराता है। दिया। परन्तु अभी तक यह समय तो गया। परन्तु किस शब्द का क्या अर्थ होता है, यह ख्याल आवे न। बहियों में सुनने में करते होंगे। तुझे वहाँ इतना लेना पाँच हजार और पैंतीस। वह कहे, नहीं, पाँच हजार है। तब निकाल, देखो! पाँच हजार पैंतीस है। बहियों में देखा या नहीं? भीमजीभाई! ऐसे नरम व्यक्ति है, हों! वहाँ बोटाद में शब्द बहुत बोले थे। भूल गये, बहुत मीठा था। नरमाई का शब्द था, नहीं? आहाहा! लड़के क्यों आते नहीं? ऐई! उनका पिता नहीं आता... ऐसे नरम व्यक्ति है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... यह एक कलश में, गाथा में तो बहुत भरा है! समझ में आया? क्या कहा? देखो! पहले ऐसा कहा कि पाप के भाव से बचने को शुभभाव आते हैं। परन्तु वह शुभ और अशुभ दोनों कर्मकलंक है। वह आत्मा का स्वभाव और धर्म नहीं है। आहाहा! और जिसमें से भावकर्म नष्ट हुए हैं। देखो न! उस परिणाम को समाधि

और धर्म कहते हैं कि जिससे पुण्य-पाप के भाव की उत्पत्ति नष्ट हो गयी है। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता है, यह बात इसमें रहती नहीं। क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय शुभराग विकल्प है। उसका जिस भाव में नाश हुआ है... जो भाव शुभ है, उससे शुद्ध होता है, ऐसा इसमें नहीं आया। परन्तु शुभ के नाश से आत्मा के आश्रय से जो शुद्धभाव प्रगट हुआ, वह निश्चय धर्मध्यान—सच्चा धर्मध्यान है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे समाधि में आना, वह निजघर का वास्तु कहने में आता है। परघर में बसा कब? तीन काल में बसा नहीं। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! इसका नाम वास्तु है। वस्तु आत्मा, उसमें अनन्त गुण बसे हुए हैं, इसलिए वस्तु। उसमें पर्याय से बसना, उसका नाम वास्तु। समझ में आया? आहाहा! वस्तु... गोम्मटसार में पाठ है। वस्तु अर्थात् आत्मा। अर्थात्? कि जिसमें अनन्त गुण बसे हैं। भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि शक्तियाँ—गुण बसे हुए हैं। ऐसी वस्तु में, उस वस्तु का आश्रय लेना, उस वस्तु में रहना, उसका आश्रय, एकाग्रता करना, उसका नाम धर्मध्यान और आत्मा में बसा हुआ भाव, उसे समाधि और मोक्षमार्ग कहते हैं। आहाहा!

ऐसी स्पष्ट वस्तु! जिन्दगी व्यर्थ गँवावे। वापस हुए ५०-५०, ६०-६० वर्ष। धर्म किसे कहना, यह सुना भी न हो। जिन्दगी जैसे पशु की भाँति है। पशु और उसमें—दोनों में धर्म के भान बिना कोई अन्तर नहीं। आया था न कल, नहीं? मूर्ख। उस सुल्टे को भी मूर्ख कहा। आहाहा! कल दोपहर में आया था। धर्म सुने, हृदय में दुष्टता न हो और उसे इस बात की समझण न हो, भान न हो, उसे भी मूर्ख कहा जाता है। आहाहा! कषाय की मन्दता शुभभाव हो, मूर्ख है। आहाहा! शुभभाव राग है और राग से रहित मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा जिसे भान नहीं, उसे तो मन्दराग शुभराग होने पर भी उसे तो मूर्ख में डाला है।

'मूरख के सिर सींग नहीं निशानी होय' आता है न कुछ? मूरख के सिर पर कहीं सींग नहीं उगे होते कि इस मूरख को सींग होते हैं सिर पर। बबूल नहीं उगा होता सिर पर काँटे का। बावळिया समझते हैं? बबूल। मूरख के सिर पर बबूल उगा हो तो ही मूर्ख कहलाये, ऐसा नहीं है। 'मूरख के सिर सींग...' ऐसा आता है, 'नहीं निशानी होय।' उसके कुछ निशानी नहीं। मूर्ख की निशानी यह है कि जो कुछ शुभराग को

अपना मानकर धर्म माने, वह मूर्ख का सरदार है। आहाहा! समझ में आया? और जिसे पाप के परिणाम का रस—पावर चढ़ गया है, उसे भी यहाँ मूर्ख कहा जाता है। आहाहा!

कहते हैं, ऐसा कारणप्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द की पर्यायों का अन्दर में वास है, ऐसा जो यह भगवान, उसके आश्रित... उसके आश्रित, उसके अवलम्बन से, उसके ध्येय से प्रगट हुई वीतरागीदशा, निर्दोष—पवित्र दशा, नित्य शुद्धात्मा के आश्रय से शुद्ध प्रगट हुई दशा, वह धर्मध्यान। आहाहा! यहाँ तो धर्मध्यान (अर्थात्) पाँच सामायिक की, पंचरंगी की, ढींकणा किया, आठ अपवास किये, हो गया धर्म। लंघन है सब। समझ में आया? त्रागा नहीं करते त्रागा? त्रागा समझ में आता है?

वह बाबा आवे न बाबा। माँगने आवे और फिर पैसा न दे तो छुरी द्वारा ऐसा करे, त्रागु करे, खून निकाले। दुकान के ऊपर आवे। फिर वह उसे पैसा दे सही। उसके ऊपर डाल दे। उसके ऊपर डाले, द्वेष हो गया उसे। नळिया में डाल दे। हमारे यहाँ पालेज में चद्दर होते हैं। ऐसे भी बाबा आते थे वहाँ दुकान पर। एक तो ऐसा फकीर आया था महा... हमारे शिवलालभाई जरा चढ़े वह (जिद्द में)। अब दो न भाई! दे दो। नहीं। अन्त में वस्त्र जलाया। पुराना था। एक पैसे के आठ आने दिये तब उठा। यह तो संवत् १९६४-६५ की बात है। दूसरे भिखारी आवे, यदि तुरन्त न दो तो त्रागा करे। परन्तु भाई! यहाँ ग्राहक है, बाद में देंगे। नहीं, लाओ। पहला मैं... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ओहोहो! कितना समाहित किया है अन्दर! भाई! जिसमें से तुझे पवित्रता प्रगट करनी है, धर्म अर्थात् पवित्रता, धर्म अर्थात् वीतरागीदशा, धर्म अर्थात् निर्दोष दशा। वह जिसमें से प्रगट करनी है, वह आत्मा कौन है? वह नित्य निरावरण शुद्ध प्रभु है। उसमें एकाग्र होने पर, वह निर्दोषता और वीतरागता प्रगट होती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी स्व-आत्मा के आश्रय से प्रगट होता है। देव-गुरु-शास्त्र और पृष्ठ और पुस्तक के ज्ञान के लक्ष्य से भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र ने समझाया, ऐसा जो ज्ञान, उस ज्ञान के लक्ष्य से भी समकित नहीं होता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अमरचन्दभाई! वह तो परलक्ष्यी है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से तो समकित नहीं होता, परन्तु उन्होंने कहा कि देखो, भाई! आत्मा ऐसा...

आत्मा ऐसा... ऐसा ज्ञान हुआ लक्ष्य। परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है, उसके आश्रय से भी समकित नहीं होता। आहाहा! ऐसा कोई क्षयोपशम—ज्ञान का विकास विशेष उघड़ा हुआ हो पर्याय में, उसके आश्रय से भी समकित नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : एक त्रिकाल के आश्रित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही बात है। आहाहा!

कितना क्षयोपशम शास्त्र पढ़-पढ़कर किया हो... समझ में आया? निगोद में से निकला हो जीव। आलू और शकरकन्द में से, शकरकन्द में से मनुष्य हो। एकेन्द्रिय में से मनुष्य हो। वहाँ तो कुछ नहीं था, यहाँ फिर पढ़कर ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा। अरे! उसे पढ़ा, परन्तु तेरे आत्मा को तूने नहीं पढ़ा। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, ऐसा **स्वात्माश्रित...** एक ही सिद्धान्त। आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' भगवान अन्तर परमात्मा की दृष्टि कहाँ लगाने से... उसकी दृष्टि पर्याय और राग और निमित्त के ऊपर है। उसे दृष्टि के आधाररूप का भगवान, उसका आश्रय लेने से सच्चा समकित—मोक्ष के मार्ग का अवयव (प्रगट होता है)।

मोक्ष का मार्ग समकित, ज्ञान और चारित्र तीन है। तीनों में एक अवयव सम्यग्दर्शन, वह भी स्व-आत्मा के आश्रय से होता है। दूसरा ज्ञान। मोक्ष के मार्ग का ज्ञान अथवा मोक्ष के मार्ग में आनेवाला ज्ञान, वह ज्ञान भी स्व-आत्मा के आश्रय से होता है। शास्त्र के आधार से भी वह ज्ञान नहीं होता। आहाहा! और चारित्र। वह चारित्र भी आत्मा त्रिकाली कारणपरमात्मा नित्य-शुद्ध निरावरण कारणपरमात्मा के आश्रय से चारित्र होता है। अन्दर में द्रव्य में लीनता हो, उसे चारित्र होता है। यह पंच महाव्रत के परिणाम और वस्त्र छोड़कर साधु हुए, यह चारित्र-फारित्र नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा परम निश्चय-धर्मध्यान अथवा... अब शुक्लध्यान लेंगे। अब आगे बढ़ते हैं। **तथा टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन...** गजब भाषा प्रयोग की है! एकरूप भगवान आत्मा ज्ञायक एकस्वरूप त्रिकाली अघढ़ित चैतन्यमूर्ति, अघढ़ित ज्ञान ज्ञायकघाट... आहाहा! **एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान...** लो, यह शुक्लध्यान। दोनों स्वात्माश्रित होते हैं, ऐसा सिद्ध किया है। धर्मध्यान शुभभाव से होता है और शुक्लध्यान आत्मा के

आश्रित शुद्ध से होता है—(ऐसा नहीं है)। आहाहा! अरेरे! ऐसा मनुष्यदेह अनन्त काल में मिले। कठिनतो से निगोद में से निकलकर आया। वापस वह का वह मिथ्यात्व का सेवन, वह वापस निगोद में जाने का पंथ है सब। आहाहा!

त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा का फरमान है। एकेन्द्रिय में से निकला और त्रस में आया, तो मुश्किल-मुश्किल से उसमें हजार सागर (अथवा) दो हजार सागर रहे। त्रस में (अधिक से अधिक) दो हजार सागर रहे। उसकी स्थिति पूरी हुई, वहाँ निगोद में जानेवाला है। आहाहा! परन्तु वह स्थिति पूरी होने से पहले जिसने आत्मा का आश्रय लेकर अनुभव और समकित प्रगट किया, उसे भव का अन्त आ गया। मोक्ष के पाटन के ऊपर पैर रखा। उसने आँगन में पैर रखा। आहाहा! अरे! उसके आँगन में आया नहीं पर्याय में। पर्याय उसका आँगन है। अन्दर एकाग्र होता है न, वह आँगन। वस्तु तो त्रिकाल है, उसमें प्रवेश करना है। आहाहा!

अरे! ऐसी धर्म की बात कैसी? ऐसा सब सुना नहीं था। हम तो ऐसा करते हैं कि रात्रिभोजन नहीं करना, हरितकाय नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रि में चारों प्रकार का आहार छोड़ना, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, कायोत्सर्ग करना 'ताव कायं ठाणेणं माणेणं...' आहाहा! अरे, भगवान! तुझे कायोत्सर्ग की खबर नहीं, तुझे सामायिक की खबर नहीं, तुझे प्रौषध कैसे होता है, उसकी खबर नहीं। भगवान त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु निरावरण के आश्रय से शुद्धि प्रगट हो, उसे सामायिक कहते हैं, उसे प्रौषध कहते हैं। वह आत्मा शुद्ध से पोषित हुआ, इसलिए प्रौषध। क्रियाकाण्ड के विकल्प में प्रौषध और सामायिक नहीं है। समझ में आया?

ऐसा **जो परमवीतराग... शुक्लध्यान से जो परमवीतराग तपश्चरण में....** तप अर्थात् मुनिपना, संयम, आहाहा! अपना भगवान... परन्तु वह माहात्म्य तो कहाँ माहात्म्य? भाई! जिसे राग का, पुण्य का और एक समय की विकासदशा का माहात्म्य वर्ते, उसे यह माहात्म्य कहाँ से आवे? आहाहा! समझ में आया? अन्दर का माहात्म्य आये बिना वह अन्दर में एकाग्र नहीं हो सकता। एकाग्र हुए बिना उसे समकित नहीं होता। समझ में आया? ऐसा **परमवीतराग तपश्चरण...** तपश्चरण अर्थात् मुनिपना, संयम, परमवीतरागी

संयमदशा। **निरुपराग...** ऐसा **निर्विकारी संयमी...** आहाहा! वह ऐसे आत्मा को ध्यावे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

राग के विकल्प की उपाधिरहित जो परिणाम... उसमें ऐसा कहा था न, भावकर्म नष्ट हुए, ऐसे भाव से... उसमें भी, राग का जिसमें अभाव है, ऐसा निर्विकारी संयमी ऐसे निज परमात्मा को अन्दर ध्याता है, ध्याता है—ध्यान करता है। आहाहा! ऐसे आत्मा को जिसने ज्ञान और श्रद्धा में विषय किया है, अपने ज्ञान और श्रद्धा में जिसने ध्येय बनाया भगवान को। आहाहा! उसे ऐसा कि भगवान आत्मा ऐसा? हम तो रंक हैं न! रंक, वह पर्याय में हीनपना माना है, भगवान! यह भगवान है, वह कहाँ से आये? कहीं अध्धर से आते हैं? केवली हुए, तीर्थंकर हुए, सर्वज्ञ हुए, वह दशायें कहाँ से आवे? कहीं बाहर में लटकती है, वह आवे? निमित्त में है वह दशा? दया के विकल्प में है? उसकी वर्तमान पर्याय में वह दशा है कि उसमें से आवे? त्रिकाली भगवान आत्मा में वह शक्ति पड़ी है, उसके आश्रय से (आवे)। आहाहा!

उस द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले... आहाहा! असंख्य प्रकार के शुभभाव और असंख्य प्रकार के अशुभभाव—बड़ी सेना है। आहाहा! **द्रव्यकर्म-भावकर्म की सेना को लूटनेवाले संयमी को...** ऐसे संयमी को **वास्तव में परम समाधि है।** उसे समाधि कही जाती है। बाबा और योगी ऐसे समाधि ले, वह समाधि नहीं। समझ में आया? लोगस्स में यह माँगते हैं 'समाहिवरमुत्तम् दिंतु...' मुझे समाधि चाहिए। धर्मी (माँगता है कि) मेरा आश्रय होकर (मुझे) मेरी समाधि, मुझे पूर्ण शान्ति चाहिए। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। समझ में आया? ऐसे जीव को समाधि होती है। आहाहा! 'समाहिवरमुत्तम् दिंतु...' आया न? 'एवंमये अभिथुआ...' इसका अर्थ यह है कि एवंमये... माता! मैं अभिथुय—खड़ा होता हूँ, अब उसमें एकरस हुआ हूँ। अर्थ न आवे, क्या करे तब? एवं मये... माता! अभिथुआ—लो, खड़ा होता हूँ। ऐसा (अर्थ) नहीं। वहाँ तो अपना भगवान आत्मा उसके अभि (अर्थात्) सन्मुख होकर अन्दर एकाग्रता की स्तुति, उसका नाम अभिथुआ है। आहाहा! उसे परम समाधि और शान्ति कही जाती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ४, गुरुवार, दिनांक - २३-९-१९७१
श्लोक-२००, गाथा-१२३, प्रवचन-१३३

यह नियमसार (अर्थात्) मोक्ष का मार्ग, दु:ख से मुक्त होने का उपाय। २०० कलश है।

समाधिना केनचि-दुत्तमात्मनां,
हृदि स्फुरन्तीं समतानुयायिनीम्।
यावन्न विद्मः सहजात्म-सम्पदं,
न मादृशां या विषया विदामहि ॥२०० ॥

कहते हैं कि... **श्लोकार्थः—किसी ऐसी (-अवर्णनीय, परम) समाधि द्वारा...** आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय रस का कन्द है। उसके सन्मुख में—अन्तर्मुख होकर जिसने वीतरागी परिणति अर्थात् समाधि प्रगट की है, उसके द्वारा **उत्तम आत्माओं के हृदय में स्फुरित होनेवाली, समता की...** फिर यह समता आती है न। क्या डालते हैं? समता है न, आ गया था न। सम.. समाधि.. समता आती है न आगे? १२४ में आता है, इसलिए यहाँ से शुरु किया है। १२४ में समता... समता की व्याख्या? कहते हैं कि जो यह आत्मा अतीन्द्रिय आननद की समाधिस्वभावमय है। अतीन्द्रिय आनन्द का शान्तस्वरूप ऐसा समाधि अर्थात् सुखरूप आत्मा का स्वरूप है, उसके अन्तर में होकर—अन्तर्मुख होकर अर्थात् पुण्य-पाप और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, अन्तर्मुख भगवान आत्मा को वर्तमान शुद्ध शान्ति और वीतरागी परिणतिरूप समाधि, उसके द्वारा **उत्तम आत्माओं के हृदय में...** (अर्थात्) धर्मात्मा के हृदय में **स्फुरित होनेवाली, समता की अनुयायिनी = अनुगामिनी; साथ-साथ रहनेवाली; पीछे-पीछे आनेवाली।**

(सहज आत्मसम्पदा समाधि की अनुयायिनी है।) क्या कहते हैं? सूक्ष्म तत्त्व है। अनन्त काल से इसका अभ्यास नहीं, सुनने में मिला नहीं। कहते हैं कि यह भगवान आत्मा नित्य जो ध्रुवस्वरूप है, उसमें अनन्त आनन्दरूपी समाधि पड़ी है अन्दर। उसे

जो कोई अन्तर्मुख होकर समता के साथ स्वाभाविक आत्मसम्पदा का अनुभव करता है, उसे समाधि है। उसे **हम अनुभव नहीं करते, तब तक हमारे हमारे जैसों का जो विषय है, उसका हम अनुभवन नहीं करते।** गजब अध्यात्म बात है। समाधि द्वारा अन्तर की शान्ति... पुण्य-पाप के विकल्प—रागरहित आत्मा की निर्विकारी शुद्ध उपयोगरूपी समाधि के द्वारा अन्तर में स्फुरित समता की अनुयायनी—वीतरागपर्याय के साथ रहनेवाली आत्मसम्पदा प्रगटरूप.. आहाहा! यह धर्म का ऐसा स्वरूप है। आहाहा! सुखी होने का यह रास्ता है, बाकी सब दुःखी होने के रास्ते हैं। आहाहा!

सहज आत्मसम्पदा... स्वाभाविक आनन्दरूपी दशा, उसके द्वारा **जब तक हम अनुभव नहीं करते,...** आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। समता के साथ रहनेवाली, वीतरागी परिणति के शुद्ध-उपयोग के साथ होनेवाली—रहनेवाली आत्मसम्पदा; शुद्धता की परिणति को यहाँ आत्मसम्पदा कहते हैं। आहाहा! भाषा समझना कठिन। समझ में आया? जब तक सहज आत्मसम्पदा को... यह प्रगट दशा की बात है। पूर्ण नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा ध्रुव है। उस ध्रुव का आश्रय लेनेवाली समाधि अर्थात् वीतरागी परिणति है। वीतरागीदशा उसका आश्रय लेकर और अन्तर में सम्पदा प्रगट करते है। आहाहा!

ऐसा जो हमारा विषय... आहाहा! **हमारे हमारे जैसों का जो विषय...** ऐसा कहा, देखा! मुनि तो उसे कहते हैं, धर्मात्मा उसे कहते हैं कि जिसकी वीतरागी परिणति का विषय, वह त्रिकाल ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया? **उसका हम अनुभवन नहीं करते।** तब तक उसने विषय को पकड़ा नहीं। आहाहा! पुण्य और दया, दान, व्रत और महाव्रत के विकल्प में पड़ा हुआ है, ऐसा कहते हैं। उसे छोड़कर हमारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान का विषय, ध्येय ध्रुव भगवान आत्मा को अनुभव नहीं करते, तब तक हम राग में और असमाधि में हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह २०० (कलश)। अवर्णनीय समाधि। आहाहा! यह बाबा-बाबा समाधि करे, वह यहाँ नहीं। यह तो वीतरागमार्ग की समाधि है। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा आनन्द का नाथ (कहा), जिसके एक अंश के आनन्द के स्वाद के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन सड़ा हुआ तिनका और सड़ा हुआ कचरा लगे।

ऐसी जो आत्मधर्म की सम्पदा... आहाहा! समझ में आया? लो, यह सम्पदा। यह पैसा और लड़के, वह सब आपदा। समझ में आया?

विपत्ति और आपत्ति। आपत्ति और विपत्ति रहित हो जाये, उसका ऐसा है। कहीं है भाई! वहाँ कोई होगा मुम्बई में टैक्सीवाला। यहाँ का नाम सुना होगा। वहाँ बहुत बार हम गये हैं न! नागरभाई का जीतु है न अपना? गया न कल। कहाँ गये नागरभाई? तुम्हारा जीतु कहता था कि मैं टैक्सी में बैठने गया... यहाँ आया और कल गया न। उसने ऐसा कहा कि कहाँ जाते हो? कि सोनगढ़। उसने इससे पूछा। अरे! वह तो कानजीस्वामी! जहाँ जाने पर जिसे आपदा और विपदा न रहे वह। ऐसा भाई बोला। टैक्सीवाला बोला। होगा कोई परिचित। जीतु कहता था। वहाँ वह टैक्सी में बैठने गया न! टैक्सीवाले ने पूछा, कहाँ जाते हो? सोनगढ़। अरे! वे कानजीस्वामी, वह? उनके पास जाये और उनका संग करे, उसे तो आपदा और विपदा रहती नहीं। वह तो बाहर का मानता होगा।

मुमुक्षु : उसकी श्रद्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्तर की विपरीत आपदा न रहे, उसकी बात है यहाँ तो। वह बाहर की। हाँ, ऐसा कि करोड़पति हो। उनके भक्त गृहस्थ बड़े हैं, ऐसा है और वैसा है। वह कहता था जीतु। आहाहा! यह आत्मा के अन्दर समीप में जाये, उसे आपदा और विपदा रहती नहीं। उसे आत्मा की सम्पदा प्रगट होती है। समझ में आया? अरे! ऐसा वस्तु का स्वभाव। स्वयं आनन्दमय प्रभु है, उसके समीप में जाने से... वह समीप में कौन जाये? कि जो राग बिना की निर्दोष अवस्था परिणति प्रगट करे, वह उसके समीप में जाये। आहाहा! यह सब बात तो मोक्ष के मार्ग की सब अलग-अलग शैली की बात की है। समझाने का ढंग है, क्या हो?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा के समीप में गया, तब यह हुआ है, ऐसा कहते हैं। यह मोक्षमार्ग है न यहाँ। नियमसार है न! आहाहा! यह समाधि कहो, मोक्षमार्ग कहो, आत्मसम्पदा प्रगट हुई कहो। गिरधरभाई! ऐसा मोक्षमार्ग। वाडा में (सम्प्रदाय में) तो सुनने को मिलता नहीं। बस! आहाहा! 'वाडा बाँधकर बैठे रे, अपना

पंथ करने को' अखो भगत कहता है। 'वाडा बाँधकर बैठे रे, अपना पंथ करने को।' वाडा चलाने को। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु के समीप में जाना, वह तो वीतराग निर्दोष दशा करे, वह समीप में जा सकता है। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह भी वीतरागी निर्दोष पर्याय है। वह निर्दोष पर्याय, वह द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया?

चौरासी लाख के अवतार की आपदायें विपत्ति, दु:ख है। भाई! तुझे खबर नहीं। कहते हैं, ओहोहो! **समता की अनुयायिनी...** समाधि की सहज आत्मसम्पदा... प्रगट हुई की यह बात है, हों! सहज आत्मसम्पदा मुनियों का विषय है, समकिती का विषय है। यहाँ तो उत्कृष्ट मुनिपना लेना है न। उसे मुनि कहते हैं कि जिसे अपनी वीतरागपरिणति में आत्मा विषयरूप से—ध्येयरूप से वर्तता है। आहाहा! ऐसा मुनिपना सुना नहीं इसने। यह वस्त्र बदले और कुछ नग्न हुए और हो गये साधु। आहाहा! भाई! तुझे साधु की खबर नहीं। साधु तो अन्तर आनन्द की सम्पदा को साधे और पूर्ण सम्पदा की प्राप्ति—सिद्ध(दशा) के लिये प्रयत्न करे, उसे साधु कहते हैं, भाई! समझ में आया? यह कहेंगे बाद में। आहाहा!

यहाँ मुनि क्या कहते हैं? कि जब तक अन्दर पंच महाव्रतादि के विकल्प के ऊपर लक्ष्य है, तब तक अन्तर के विषय में जाया नहीं जाता। समझ में आया? सम्यग्दर्शन अर्थात् त्रिकाली आनन्द का नाथ भगवान पूर्णानन्द का सरोवर, उसमें डुबकी मारना और प्रतीति करना, उसका नाम समकित है। आहाहा! अभी तो श्रावक होने से पहले समकित की ऐसी व्याख्या है। समझ में आया? यह तो समझे बिना के हो गये श्रावक और हो गये साधु। बिना एक के शून्य है सब। समझ में आया? अब १२३। बहुत सरस गाथा है। १२३।

संजमणियमतवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं परम-समाही हवे तस्स॥१२३॥

संयम नियम तप से तथा रे धर्म-शुक्ल सुध्यान से-
ध्यावे निजात्मा जो परम होती समाधि है उसे॥१२३॥

उसे धर्म होता है, ऐसा जानना, ऐसा कहते हैं।

टीका:—इस गाथा में समाधि का लक्षण कहा है। टीका-टीका। अकेला अमृत का समुद्र उछालता है। आहाहा! कहते हैं कि संयम... संयम की सामग्रीवाला आत्मा की समाधि द्वारा अन्दर में ध्यान कर सकता है। आहाहा! **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग, सो संयम है।** यह संयम की व्याख्या। पाँचों इन्द्रियों का व्यापार... देखा! भगवान की वाणी सुनना या उसके ऊपर विकल्प, वह सब छोड़कर... समस्त इन्द्रियाँ... कान, आँख, यह भगवान की मूर्ति ऐसे देखना—वह भी इन्द्रिय का विषय है। देव-गुरु के दर्शन करना, वह भी इन्द्रिय का विषय है, सर्वज्ञदेव साक्षात् परमात्मा के दर्शन करना, इन्द्रिय का विषय है; वह आत्मा का विषय नहीं। आहाहा! अन्दर जाया जाये तो (दर्शन करना) नहीं आना। अन्दर न जा सके, तब शुभभावरूप से आता है। यह तो पहली बात हो गयी है 'अशुभवंचनार्थं।' अन्दर में जाकर स्थिर हो सके, तब तो कहीं जाना-आना नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसकी व्याख्या यह है।

समस्त इन्द्रियों... कान, आँख, नाक, स्पर्श... अरे! पाँच इन्द्रियाँ और जड़-इन्द्रिय और खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय और उनका विषय—इन सबको इन्द्रिय कहा जाता है। भगवान की वाणी इन्द्रिय का विषय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात करते हैं! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव तीर्थंकर परमात्मा, जिनके सौ इन्द्र पिल्ले की भाँति तलिया चाटे। बड़े सिंह और इन्द्र अर्धलोक के स्वामी। कहते हैं कि वह परमात्मा और उनकी वाणी वह इन्द्रिय है। दोनों इन्द्रिय कहलाते हैं। **समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग...** आहाहा! ऐसी अन्तर्दशा को संयम कहते हैं। समाधि की यह सब सामग्री है, ऐसा कहते हैं। अधिकार समाधि का है न! यह सब अन्तरंग साज-सामग्री है। शरीर और इन्द्रियाँ और यह बाहर के साधन सुनना—वह अन्तर समाधि की सामग्री नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

समस्त इन्द्रियों... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय प्रभु है, उसमें इन्द्रियों की ओर के झुकाव का-विकल्प का त्याग करके अन्तर में एकाग्र हो, उसे संयम कहते हैं। सम्यग्दर्शनसहित अन्तर में लीनता, उसे संयम कहते हैं। उस संयम की साधन की

सामग्रीसहित अन्तर में ध्यान में उतरना, ऐसी दशा को यहाँ समाधि कहते हैं। आहाहा! है न समाधि का साधन। पहले ऐसा करना ओम.. ओम.. ऐसा करना, फिर कुम्भक और रेचक... आता है न। यह तो सब बातें निमित्त की। यह तो अकेली समाधि कि ऐसा करो ओम। समाधि की सामग्री। कहते हैं, वह नहीं। ज्ञानार्णव में सब आता है। ऐसा करना मुनियों को। वह विकल्प होता है न, तब होता है, परन्तु वह समाधि का विषय नहीं। वह समाधि की सामग्री नहीं। धर्म को प्रगट करने की वह सामग्री नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

उसे संयम है। ऐसे संयम के अन्तरंग साधन से—समाधि से, समाधि का विषय जो द्रव्य, उसे ऐसे साधन द्वारा पकड़ना, उसका नाम समाधि, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका नाम दु:ख से मुक्त होने का उपाय। आहाहा! अभी किस प्रकार से है, उसकी खबर न हो और हो गये धर्मी। धर्म करते हैं, सामायिक की पाँच और दस, प्रौषध और प्रतिक्रमण। आठ दिन के चतुर्विध आहार त्याग अपवास, हो गया तपस्या। धूल भी नहीं, वह तो सब लंघन है। ऐई! यह आयेगा अभी। **निज आत्मा की आराधना में तत्परता, वह नियम है।** लो, यह नियम की व्याख्या। आहाहा! इसमें उलझन नहीं, ऐसा कहते हैं। वे कहे, ऐसी बात समझने के पश्चात् मुझे चैन नहीं पड़ता। **निज आत्मा की आराधना में...** देखो! तीर्थंकरदेव परमेश्वर की आराधना, वह तो विकल्प है, वह तो पुण्यपरिणाम है। परन्तु वह इसमें है कहाँ? कहाँ गये हीराभाई? दूर बैठे हैं।

कहते हैं, भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द दल, आनन्द का दल प्रभु है। आहाहा! पहले दल के लड्डू होते थे, दीवाली में दल के लड्डू, ऐसे सफेद। इसी प्रकार यह आत्मा आनन्द का दल है, दल का लड्डू है। आहाहा! सर्दी में सालमपाक और वह खाये। समझ में आया? मूसलीपाक और आता है न। सालमपाक नहीं आता? पंजावाला सालमपाक ऊँचा। हमारी दुकान में सब था। हम सब पहिचानते थे। सालम, मूसली। काली, सफेद दो प्रकार की मूसली आती थी। बादाम-पिस्ता यह सब रखते न दुकान में। धूल भी सुख उसमें कहाँ? वह मेवा कहलाता है जगत का। यह मेवा तो यह है कि निज-आत्मा का आराधन करना, यह नियम और यह मोक्ष का मार्ग। यह समाधि की अन्तरंग साधन की बात है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा... 'निज' शब्द प्रयोग किया है न? भगवान का आत्मा नहीं, सिद्ध का आत्मा नहीं, वह तो पर-आत्मा है। **निज आत्मा की आराधना—**सेवा, भगवान आत्मा आनन्द का नाथ, उसकी सेवा... उसकी आराधना कहो या सेवा कहो। उसकी तत्परता अन्दर में, उसे नियम कहा जाता है। बाहर से यह नियम लेकर बैठे और नियम है, ऐसा नहीं। वह सब नियम खोटे हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दूसरा बोल हुआ।

तीसरा सूक्ष्म आया। अब तप किसे कहना, तप? कि जो समाधि आत्मा की शान्ति का साधन है, शान्ति के साथ यह सामग्री है। तप, किसे कहना तप? कि **आत्मा को आत्मा में आत्मा से धारण कर रखता है-टिका रखता है-जोड़ रखता है,..** आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति, ऐसा आत्मा, उस **आत्मा में—**ऐसे आत्मा को अपने में, **आत्मा से...** (अर्थात्) निर्विकल्प समाधि—निर्विकल्पदशा से **धारण कर रखता है-टिका रखता है-जोड़ रखता है,..** अन्तर में उसे अध्यात्म कहते हैं और वह अध्यात्म, उसे तप कहते हैं। आहाहा! लो, यह तप कहते हैं न लोग। अनशन और अपवास करना, ऊनोदर करना और ढींकणा करना। आहाहा! यहाँ तो भगवान **आत्मा को आत्मा में...** (अर्थात्) अपना कार्य करने में आत्मा में, **आत्मा से—**निर्विकल्प समाधि से—निर्विकल्प शुद्ध उपयोग से धार-टिका-जोड़ रखना, उसे अध्यात्म कहते हैं। आत्माश्रित दशा हो, उसे अध्यात्म कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प पराश्रय है। वह अध्यात्म नहीं।

वह अध्यात्म, सो तप है। ऐसे अध्यात्म को भगवान ने तप कहा है। आहाहा! यह सब महिलायें दस अपवास (करे) दसलक्षणी में।... करे और फिर महोत्सव करे। ... तुम्हारे घर से सामने पड़े। आओ भाई! आगे। होशियार हो वह सामने जाये न। कहते हैं, यह होशियारी है यह। अरे! इसने तप की व्याख्या भी सुनी नहीं। तप तो प्रगटा नहीं, परन्तु तप किसे कहना? कौनसा तप वह?

मुमुक्षु : प्रभावना....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना तो अन्दर में होती है या बाहर में होती है? वह तो बाहर की बात शुभविकल्प हो। उसकी—बाहर की बात के साथ सम्बन्ध क्या है? वह आत्मा में है ही कहाँ? बाहर की प्रभावना का विकल्प और बाहर की प्रभावना—यह

आत्मा की मर्यादा में है ही नहीं। वह तो आत्मा के बाहर है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा को आत्मा में आत्मा से... निर्विकल्प वीतरागदशा से आत्मा को धार-टिका-जोड़ रखे (अर्थात्) आत्मा में आत्मा को रखे। आत्मा को राग में आने नहीं दे, पुण्य में आने नहीं दे। आत्मा को आत्मा में—वीतरागी परिणति में रखे, उसे अध्यात्म कहते हैं और उस अध्यात्म को तप कहते हैं। उसे भगवान ने तप कहा है। आहाहा! समझ में आया? मन्द राग से ऐसी तपस्या हो, उससे पुण्य बाँधे। पुण्य बँधे और उसमें धर्म माने तो मिथ्यात्व साथ में लगता है। आहाहा! समझ में आया? यह तप, वह निर्जरा का कारण है। समझ में आया? स्वयं कौन है, उसकी इसे महिमा ही नहीं आयी। यह भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर स्वयं पूर्ण है। एक समय की पर्याय और विकल्प की आड़ में अन्दर भिन्न पड़ा है। आहाहा! अनादि-अनन्त रहनेवाला तत्त्व... समझ में आया? आयेगा इसमें। निश्चय-धर्मध्यान की व्याख्या में आयेगा।

भगवान आत्मा को—वीतरागी आत्मा को वीतरागी परिणाम से—वीतरागभाव से आत्मा को धार रखे, उसे अध्यात्म कहते हैं। जिसमें राग और विकल्प और निमित्त का आश्रय नहीं। उसे—आत्मा-आश्रित भाव को अध्यात्म कहते हैं और उसे तप कहते हैं। अन्तरस्वरूप के समाधि के साधन में अन्तरंग साधन ऐसे होते हैं। बाहर के साधन कहते हैं न कि ऐसा करना और फिर ऐसा करना, फिर श्वास ऐसा करना और ढींकणा। ओम... ओम... ओम ऐसा करना। वह सब बाहर की बातें हैं, वह अन्तर का स्वरूप नहीं है। आहाहा!

तप। तीसरा बोल हुआ। संयम, नियम और तप। है न पाठ में? '**संजमणियमतवेण**' तीसरा शब्द है, उसकी यह व्याख्या। कठिन लगे यह वह सब... इसलिए रतनचन्दजी ने निकाल दिया। पाठ में तप डाला। तप में तो यह लेना है, उसके बदले कहे कि यह लेना। आहाहा! बापू! तप तो निर्जरा हो, निर्जरा तो शुद्धता का आश्रय लेकर त्रिकालीद्रव्य का आश्रय लेकर शुद्धता—पवित्रता, आनन्द प्रगट करे, उसे दुःख की पर्याय का नाश होता है, उसे दुःख की निर्जरा होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसकी आपदा टलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी आपदा और विपदा दोनों टलती हैं। उसको (अज्ञानी को) आपदा और विपदा दोनों जगती है। आहाहा! भगवान आत्मसम्पदावाला तत्त्व, उसका आश्रय नहीं, उसे तो आपदा और विपदा प्रगट होती है। यह अपवास करे दस-दस महीने के और बारह-बारह महीने के तो, वह आपदा और विपदा है। उसमें आत्मसम्पदा नहीं। गजब व्याख्या ऐसी यह, भाई!

अब, निश्चयधर्मध्यान की व्याख्या। सच्चा धर्मध्यान किसे कहते हैं? संयम, नियम और तप—तीन की व्याख्या हुई। अब सच्चा धर्मध्यान, निश्चय अर्थात् सत्य धर्मध्यान किसे कहते हैं? कहा था न एक बार अन्तिम... ९० में मिले, सब इकट्ठे हुए बोटाद। फिर वह एक थे न उजमशीभाई। उजमशीभाई न? ऐई पानाचन्द! पाणवी। क्या नाम पाणवी का वृद्ध था न? उजमशी? पानाचन्द था? पाणवी का। उजमशी नहीं, हों! उजमशी तो यह गोशालावाला। उसका मामा था। गये थे न एक दिन। सब इकट्ठे हुए ९० के वर्ष में।

उसे पूछा, कैसे भाई! धर्मध्यान करते हो? सामायिक करते हो? अपवास करते हो? प्रौषध करते हो? हाँ, अपवास करते हैं। धर्मध्यान करते हैं। वह धर्मध्यान। फिर बात चलते-चलते आयी कि भाई! अनन्त रजकण का पिण्ड यह सोने का टुकड़ा है। यह (शरीर) तो अनन्त रजकणों का पिण्ड है, यह तो जड़-मिट्टी है। तब कहे कि महाराज! आत्मा कितने परमाणुओं का बना होगा? यह सब धर्मध्यान। ऐसे के ऐसे। नाम अभी याद आया था रास्ते में, हों! नानचन्द... नानचन्द... नानचन्द। यह सच्ची बात है। विसाश्रीमाली था। पाणवी, वरवाला की इस ओर। सब धर्मध्यान करते हैं? कि हाँ। फिर पूछा अन्त में तब कहे, आत्मा कितने रजकणों का—परमाणुओं का बना होगा? ऐसा अन्ध खपाया है।

अब कहते हैं कि धर्मध्यान किसे कहना? कि जो आत्मा की शान्ति की सामग्री... शान्तिभाव, वीतरागभाव, धर्मभाव, उसका विषय द्रव्य और उस धर्मध्यान की यह सब सामग्री, समाधि की सामग्री। **समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड के आडम्बर का...** देखो! भाषा। बाह्यक्रियाकाण्ड का आडम्बर है, कहते हैं। यह अपवास किये और तपस्यायें कीं,

प्रभावना की, शोभायात्रा निकलवायी। वरघोड़ा कहते हैं न। तपस्वी को बहुमान देने के लिये, सम्मान देने के लिये शोभायात्रा निकाले और बड़े गृहस्थ हों तो हाथी के हौदे बैठावे और घोड़े के ऊपर नगाड़ा... क्या कहलाता है वह? निधान। डंका बजता हो सामने। ऐ गिरधरभाई! सब प्रमुख ऐसा करे वहाँ। वहाँ क्या करते दूसरा? आता कहाँ था वहाँ कुछ? तुम्हारे बड़ा कार्यकर्ता कोई आया हो, उसे मान देने के लिये श्रृंगारे, गाँव को श्रृंगारे। भाई! देशसेवा है न यह एक? देश की न? वह तो राग की सेवा। यहाँ तो वीतरागता की सेवा की बात चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म की प्रभावना....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कहाँ रहता था? धर्म यहाँ रहता है या बाहर रहता होगा?

यह तो यहाँ कहते हैं, समस्त बाह्य क्रियाकाण्ड का जो आडम्बर... ऐ... बड़ा ऐसा मानो ओहोहो... वर्षीतप करे और गृहस्थ हो तो लाख-लाख खर्च करे। पिचहत्तर हजार खर्च किये थे। यहाँ थी न वह। यह जेसिंगभाई के पुत्र मंगलभाई। जयसिंग उजमशी, अहमदाबाद। उनके मंगलभाई थे। नयी से विवाह किया था और फिर गुजर गये। यहाँ आते थे। कुछ खबर नहीं होती। उन्होंने वर्षीतप किया था। वह गुजर गये अभी थोड़े वर्ष हुए। पिचहत्तर हजार रुपये खर्च करके बड़ी स्पशेल (ट्रेन) पालीताणा। ओहोहो... अपवास किये, उसका उत्सव किया! आहाहा!

मर जाये न लोग, फिर हाथ न उठे तो कहे, ऐ! लकड़ी टूटी है यह? हाथ क्यों उठता नहीं? छाती ऐसे कूटे न महिलायें, ऐसा कहे वे बातें। हाँ, ऐसा कहे। हमने तो सब सुना हुआ है, नजरों से। दडवा में एक बार गये थे। छोटी उम्र में मर गया। ७६ का वर्ष था। मर गया, और गानेवाली आयी गानेवाली। गवाने और रुलाने। ऐसी गावे... ऐसी गावे... ऐई! हाथ क्यों नहीं उठता? यह छाती से उठे न। क्या लकड़ी टूटी है? ऐसा वह कहे, हम अपवास करके बैठे, क्यों महोत्सव नहीं करते? सब समान है वह।

यह अपवास करके... बारह-बारह महीने के अपवास। एक टाईम खाना और दूसरे दिन अपवास। ऐसा है न बहुत करके? एक दिन खाये, परन्तु एक बार नहीं, दो बार खाये, दो-तीन बार। शाम को खाये। खोपरापाक ठीक से खाये न, वह पचे तो

(दूसरे दिन) अपवास व्यवस्थित हो जाये। उसमें कहे, ऐई! उत्सव किया नहीं, तब हम भूखे मरे? ऐ गिरधरभाई! यह सबकी उसे खबर हो। भूखे मरे क्या? पाप बाँधा मिथ्यात्व का, सुन न अब! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ, उसके सन्मुख तो तूने देखा नहीं। उसका अनादर करके क्रियाकाण्ड के राग में नाच रह गया। आहाहा! देखो! यहाँ भाषा। बाह्यक्रिया का आडम्बर है वह तो। दल खोटा है। आहाहा!

उसका परित्याग जिसका लक्षण है... शुभपरिणाम की क्रिया का भी जिसमें त्याग है। आहाहा! **ऐसी अन्तःक्रिया के अधिकरणभूत...** ऐसी अन्तःक्रिया जो निर्मल वीतरागी परिणति का आधार **आत्मा को—कि जिसका स्वरूप अवधि रहित...** देखो! यह अन्तःक्रिया जो है, उसका आधार? बाह्यक्रिया के आडम्बर का—विकल्प का त्याग करके, अन्तर निर्विकल्प परिणति प्रगट करके आत्मा जिसका आधार है... कैसा आत्मा? **जिसका स्वरूप अवधि रहित तीनों काल निरुपाधिक है...** भगवान आत्मा का स्वरूप तो अवधि—मार्यादा रहित तीनों काल—अनादि-अनन्त काल तक निरुपाधिक है। ऐसे जीव को बाह्यक्रिया का आडम्बर छोड़कर अन्तःक्रिया के आधारभूत आत्मा को **जो जीव जानता है...** जो जीव जानता है... आहाहा!

उस जीव की परिणति विशेष... देखो! **वह स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान है।** इतना तो स्पष्टीकरण है। यह उनको—रतनचन्दजी को रुचता नहीं। धर्मध्यान शुभभाव में होता है, शुक्लध्यान में शुद्धभाव होता है, (ऐसी उनकी मान्यता है)। इसलिए यह टीका नहीं सुहाती। समझ में आया? बाह्यक्रिया का जिसमें अभाव है और अन्तरंग वीतरागी अन्तःक्रिया का आधार ऐसा आत्मा कि जिसका तीनों काल रहा हुआ निरुपाधिक स्वरूप है, उसे जो निर्मल परिणति द्वारा जानता है, उस जीव की परिणति अर्थात् वीतरागीदशाविशेष, वह स्वात्माश्रित अपना अनन्त आनन्दस्वरूप भगवान, उसके आश्रय से उसे निश्चय-धर्मध्यान होता है, उसे सच्चा धर्मध्यान होता है। आहाहा! ऐसी पुस्तकें बाहर आ गयी, इतनी स्पष्टता हुई, तो भी लोगों को शल्य छोड़ना भारी कठिन। समझ में आया? कितना स्पष्ट किया!

उसे सच्चा धर्मध्यान कहा जाता है कि विकल्प की क्रियाओं के भाव को

छोड़कर, जिसका लक्षण अन्त:क्रिया है और जो अन्त:क्रिया वीतरागीदशा—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र(रूप) वीतरागी परिणति का आधारभूत आत्मा है कि जो आत्मा तीनों काल निरुपाधि है, उसे जो वीतरागी परिणति द्वारा जानता है, उस जीव की अवस्था—परिणतिविशेष—आनन्दपर्यायविशेष, वह स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान है। यहाँ कहा न, चौथे से होता है, उसकी यह बात चलती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ, किसने लिखा है? कहाँ लिखा है?

मुमुक्षु : समस्त बाह्यक्रिया का त्याग....

पूज्य गुरुदेवश्री : आडम्बर... विकल्प का त्याग। पहले से—चौथे से विकल्प का त्याग है। वह तो स्थिरता की अपेक्षा से बात है। समस्त क्रिया के विकल्प का त्याग... ऐसे सम्यग्दर्शन में समस्त विकल्प का त्याग है, उस सम्यग्दर्शन का आधार आत्मा है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन की परिणतिविशेष वह स्वात्माश्रित धर्मध्यान कहा जाता है। सुनने को मिलता नहीं। उस बेचारे का जीवन चला जाता है। आहाहा! ५०-५०, ६०-६०, ७० वर्ष हो गये। मरण के सन्मुख हो गये अब, तो भी सुनने को मिलता नहीं। ५० से ऐसे... है न। यह १०-१० वर्ष का नहीं? सौ वर्ष का आता है न एक कैलेण्डर में। आता था, वह बहुत वर्ष पहले की बात है। अभी भी आता होगा। दस वर्ष का, बीस वर्ष का, तीस, चालीस, पचास। चित्र... पश्चात् ऐसे ढले। फिर ७०, ८०, ९० और १००। मुर्दा उठाकर ऐसे ले जाये, (ऐसा) चित्र आता था। यूरोप में है, हों! हाँ, तत्प्रमाण वह है। है वहाँ। यह तो हम पढ़ते थे तब विलायत से चित्र आता था तब। ६०-७० वर्ष पहले की बात है।

ऐसे पहले जन्मे, फिर दस वर्ष, फिर बीस वर्ष, फिर तीस वर्ष, चालीस, पचास, और ऐसे जाये। इस ओर साठ, सत्तर, ऐसे नमे चित्र। दामनगर में है श्मशान में। मर जाये सौ वर्ष में। वह पचास के बाद, साठ वर्ष में जरा नमता गिने। इस ओर अब ढला—मरने के सन्मुख (हुआ)। वह बड़ा सन्मुख था। आहाहा! ऐसा आता था पहले, हों! विलायत

से आता था। हमारे गढडावाले डॉक्टर थे, उनके भाई का पुत्र... था उसके पास। आहाहा! ऐसा अपने एक यहाँ था, हों! अन्दर एक फोटो था। कहीं गया। चला गया होगा। अन्दर... अन्दर रखते थे। अरे! वह तो एक बताया सौ वर्ष में। परन्तु सौ वर्ष जीवे या नहीं, यह किसे खबर है? आहाहा! २०-२० वर्ष के आशा के लोढा... अम्बर-आकाश जितनी आशा। अब ऐसा करूँगा, फिर ऐसा करूँगा, फिर ऐसा करूँगा। गये श्मशान में शरीर। आत्मा उस गति में चला गया। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसे भाव को निश्चयधर्मध्यान कहते हैं। देखो! स्पष्ट। अपने धर्मध्यान की बात पहले आ गयी है। आ गया न पहले **निरावरण नित्य-शुद्ध... स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान से...** इसके पहले की गाथा में आ गया। पहले गाथा में आया। उसकी व्याख्या देखो न! वास्तविक ध्यान, धर्म उसे कहते हैं कि जिसमें वीतरागपरिणति हो। राग तो आर्तध्यान है और राग में तो आत्मा के प्राण पीड़ित होते हैं। विकल्प जो शुभराग, उसमें आत्मा की शान्ति तो पीड़ित होती है। जैसे घानी में तिल पिलते हैं, वैसे आत्मा की शान्ति, राग का विकल्प जो है शुभराग... समझ में आया? वह जहर अमृत का नाश करता है। आहाहा! गजब बातें हैं यह।

शुभराग विकल्प, वह तो जहर है। आत्मा के अमृत के स्वरूप से उल्टी दशा है। वह आत्मा के अमृत को उत्पन्न होने नहीं देता। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि विकल्प का त्याग करके... ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जिसका लक्षण ऐसी अन्त:क्रिया के...** आधारभूत... परित्याग जिसका लक्षण है। राग का त्याग जिसका लक्षण है, ऐसा कहना है। ऐसी अन्त:क्रिया का आधार... परन्तु वह निर्मलक्रिया का आधार कौन? ऐसा कि व्यवहारक्रिया थी तो निर्मल निश्चयक्रिया हुई—ऐसा है?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे शास्त्र ने कहाँ कहा? वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। यहाँ इनकार करते हैं, देखो न! अन्त:क्रिया का आधार कौन? निर्मल वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का आधार कौन? पहला दया, दान और व्रत का विकल्प व्यवहार प्रगट हुआ, वह आधार नहीं। धर्मध्यान वीतरागीदशा का आधार राग? (नहीं)। उसका

आधार, त्रिलोकनाथ परमात्मा स्वयं अनादि-अनन्त ध्रुव, उसका वह आधार है। आहाहा!

नियमसार में भी नियम को घोंटा है। अकेला कारणपरमात्मा को ही घोंटा है। ऐसा वह निश्चय अर्थात् सच्चा धर्मध्यान... यह चौथा बोल हुआ। पहला संयम, दूसरा नियम, तीसरा तप, चौथा यह धर्मध्यान।

अब पाँचवाँ शुक्लध्यान। अन्तर्मुख होने की समाधि के साधन यह सब। वे कहें, व्यवहार-व्यवहार साधन है? भाई! इसलिए यह डाला है। शरीर अच्छा हो तो साधन है? 'शरीर आद्यं खलु धर्मसाधनं।' अरे! अन्दर की राग की मन्दता, वह साधन नहीं। आहाहा! अन्तर्मुख हुई परिणति, उस परिणति का आधार त्रिलोकनाथ आत्मा है। आहाहा! यह बात व्यवहार के आग्रहियों को तो ऐसा लगे। नहीं? ...भाई! भगवान की भक्ति करने से हो जायेगा, जाओ। लगाओ धुन भगवान की। भूल जाओ ऐसा लगाओ। भूल जाओ स्वयं अपने को। यह पोपटभाई धुन लगाते हैं न भाई, नहीं? पोपटभाई, अपने बढवानवाले। पोपट भोगीभाई... लगाते हैं। लगायी थी यहाँ। इन्दौर में लगायी थी। यहाँ लगायी थी, वहाँ भी लगायी थी। वह देह की क्रिया और राग का कर्तृत्व है, उसकी कुछ खबर रहती नहीं उसमें। आहाहा!

भगवान तो ज्ञानस्वरूप है। उसमें ऐसी क्रिया के कर्तृत्व का तो अभाव है। यह चार सामग्री कही। किसकी? अन्तर्मुख होने की, शान्ति की यह सामग्री, समाधि की यह सामग्री। ऐसा कैसे वर्णन करना पड़ा? अन्यमति समाधि के बहुत साधन कहते हैं। 'यम नियम' आते हैं न आठ बोल? यम, नियम, संयम और प्राणायम और फलाना— ऐसे आठ बोल आते हैं। आहाहा! वह नहीं (परन्तु) यह, ऐसा सिद्ध करना है। योग के आते हैं आठ बोल। अपने आते हैं। समयसार नाटक में आ गये। अर्थात् आचार्य स्वयं कहते हैं कि '**संजमणियमतवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।**' यह पाँच। '**जो झायइ अप्पाणं**' इनके द्वारा कोई आत्मा का ध्यान करे, उसे परमसमाधि होती है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायरस। उस शान्ति में सुखी है। समझ में आया? वह सुख में है अब। आहाहा!

यह कहे, इतने पैसेवाला और इतनी पूँजीवाला, इतनी इज्जतवाला, वह दु:खी है

बेचारा। राग की ओर का आश्रय है, इसलिए दु:खी है। यह सुखी है। भगवान आत्मा अकेला सुख का पिण्ड प्रभु, आहाहा! उसका आश्रय करके जो दशा शान्ति की, समाधि की, वीतरागीपर्याय प्रगट हुई, उसे साधनभूत यह सब सामग्री है। उसे साधनभूत यह सामग्री है। यह राग और निमित्त, फलाना यह साधन—ऐसा नहीं, इसके लिये यह गाथा ली है। समझ में आया? भाई! यह 'व्यवहार साधन और निश्चय साध्य' पंचास्तिकाय में आता है। लो! ऐई! यह सब अर्थ हिम्मतभाई ने किये हैं। आहाहा!

अरे! अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का नाथ, उसे प्रगट करने के लिये, राग की अपेक्षा लेना पड़े, वह आत्मा नहीं। उसे आत्मा (मानने का) इनकार किया है, वह तो अनात्मा है। आहाहा! प्रत्यक्ष स्वभाव से जानने में आवे, अपना स्वभाव ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष हो, वह आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? जिसे आत्मा के अनुभव के लिये राग की मन्दता और निमित्त के साधन की आवश्यकता पड़े—ऐसा आत्मा है ही नहीं। ऐसा आत्मा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात तो सुनने को मिली नहीं। शामलदासजी! ऐसा का ऐसा बेचारा हैरान हो गया। केचुंआ और पिल्ले मरें, वैसे यह भी मरे। मरते समय तड़फन... तड़फन, पैर खिंचे, यह खिंचे। आहाहा! अरे! यह धर्म किया था न इतने तक? था ही नहीं धर्म। समझ में आया? आहाहा! कितना स्पष्ट किया है! तप की व्याख्या, संयम की व्याख्या, नियम की व्याख्या और धर्मध्यान की व्याख्या। आहाहा!

अब शुक्लध्यान। **ध्यान-ध्येय-ध्याता, ध्यान का फल आदि...** भेद के **विविध विकल्पों से विमुक्त (अर्थात् ऐसे विकल्पों से रहित), अन्तर्मुखाकार...** अन्तर्मुख विशेष दशा **(अर्थात् अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसा),...** आहाहा! ऐसा **समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर...** शुक्लध्यान इन्द्रिय से अगोचर है, विकल्प से अगम्य है। **निरंजन-निज परम तत्त्व में...** अंजन—मैलरहित भगवान त्रिकाली निज-परमतत्त्व, वापस ऐसा। भाषा तो देखो! अपना परमतत्त्व एक समय की पर्याय बिना का ऐसा त्रिकाली परमतत्त्व भगवान **अविचल स्थितिरूप...** न बदले, ऐसी स्थिति अन्दर में, **(-ऐसा जो ध्यान) वह निश्चयशुक्लध्यान है।** लो, इस ध्यान को निश्चय—सच्चा शुक्लध्यान कहते हैं। समझ में आया?

इन सामग्री-विशेषों सहित... लो। यह सामग्री है। **(इस उपर्युक्त विशेष आन्तरिक साधनसामग्री सहित)...** अब '**अप्पाणं**' शब्द है न अन्तिम? '**जो झायइ अप्पाणं**' आत्मा कैसा? ऐसा अब लेते हैं कि **अखण्ड...** है भगवान तो प्रभु। ध्रुव नित्यानन्द अविनाशी उसका दल ऐसा का ऐसा अनादि-अनन्त है। **अद्वैत** है, एकरूप ध्रुव आत्मा है। परम **चैतन्यमय आत्मा...** अकेला ज्ञानमय भगवान, जानन-स्वभाव के नेत्रवाला प्रभु, ऐसे आत्मा को जो **परम संयमी...** इन्द्रियदमन करके, ऐसे भावसहित जो ध्याता है... **नित्य ध्याता है,...** ऐसा कहा वापस। हमेशा उसकी दृष्टि और स्थिरता उसे लक्ष्य में ही पड़ी है। आहाहा! **उसे वास्तव में परम समाधि है।** लो, उसे परम शान्ति है। उसे शान्तिवाला कहते हैं, बाकी सब दु:खी और अशान्तिवाले हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ५, शुक्रवार, दिनांक - २४-९-१९७१
श्लोक-२०१, गाथा-१२४, प्रवचन-१३४

परम शान्ति—समाधि अधिकार है। उसका २०१ कलश है।

अब, इस १२३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

निर्विकल्पे समाधौ यो नित्यं तिष्ठति चिन्मये।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमात्मानं तं नमाम्यहम्॥२०१॥

श्लोकार्थ:—जो... यह आत्मा **सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहता है,...** यह आत्मा वस्तु है, यह आत्मा, वह तो सदा ही चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में ही रहा हुआ है।

मुमुक्षु : निर्विकल्प और समाधि, इसका अर्थ क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा जो वस्तु देह से, पुण्य-पाप के राग से भिन्न है, एक समय की पर्याय से भी भिन्न है, ऐसा यह सदा अर्थात् त्रिकाल चैतन्यमय—ज्ञानमय, निर्विकल्प अर्थात् अभेद, समाधि अर्थात् शान्ति में त्रिकाल स्थित है। प्रगटता की यह बात नहीं। प्रगट में '**नमाम्यहम्**' आयेगा। समझ में आया?

जो वर्तमान में निर्विकल्प—राग बिना की शान्ति और समाधि(रूप) मोक्ष का मार्ग, वह अन्तर में त्रिकाल ज्ञान, आनन्दस्वरूप निर्विकल्प समाधि से स्थित द्रव्य है। समझ में आया? तीनों काल वह तो चैतन्यमय—ज्ञानमयस्वरूप त्रिकाल निर्विकल्प अभेद समाधि-शान्तिस्वरूप ही वह है। आहाहा! शैली इस प्रकार से की है कि जो पर्याय प्रगट करनी है, ऐसा उसका स्वरूप ही त्रिकाल है, कहते हैं। आहाहा! 'समाहि' वीतराग परिणाम मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। नियमसार है न यह! आत्मा शुद्ध चैतन्यघन की प्रतीति और उसका ज्ञान और उसकी रमणता, वह समाधि, शान्ति,

मोक्ष का मार्ग। परन्तु कहते हैं कि वह मार्ग किसके आश्रय से प्रगट हुआ। कि जो निर्विकल्प सदा चैतन्यमय समाधिस्वरूप ही है वह तो। समझ में आया?

सदा अर्थात् नित्य... जो, वह, ऐसा आयेगा न आगे? जो आत्मा अपना निजस्वभाव सदा अभेद चैतन्यमय, अभेद चैतन्य-ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि, ऐसा निर्विकल्प समाधि, अभेद शान्ति, अभेद वीतरागभाव में रहा हुआ तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? जो अपना स्वभाव परम समाधि, परम शान्ति, परम आनन्द से निर्विकल्प स्वभाव से जो (अभेद) आत्मा है, ऐसा कहते हैं। प्राप्त की प्राप्ति—है उसमें से आयेगा, ऐसा कहते हैं। वर्तमान मोक्ष का मार्ग, वह कहाँ से आयेगा? वह त्रिकाली सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उसकी समाधि से भरपूर पदार्थ ही है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? जिसमें शरीर-कर्म नहीं, पुण्य-पाप का राग नहीं और जो सदा अभेदस्वरूप है, जिसमें एक समय की पर्याय भी नहीं। ऐसी टीकाकार की शैली ही अलग है। समझ में आया?

ऐसा जो भगवान अपनी त्रिकाल अस्तिवाला तत्त्व, ऐसा जो आत्मा **वह द्वैताद्वैतविमुक्त...** है। मैं एक हूँ या अनेक हूँ—ऐसे विकल्प से वह वस्तु रहित है। आहाहा! ऐसा आत्मा! यह धर्मकथा कैसी होती है? यह कहते हैं। जो भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति से भरपूर ही पदार्थ है। वह आत्मा द्वैताद्वैतविमुक्त है। उसमें मैं एकरूप हूँ और गुण से अनेकरूप हूँ—ऐसी वृत्ति-विकल्प की वासना से वह तीनों काल मुक्त है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा, उसे **मैं नमन करता हूँ।** वह प्रगट समाधि है। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे मैं नमन करता हूँ अर्थात् कि मेरा झुकाव ऐसे द्रव्य के ऊपर है। मेरा झुकाव ऐसा जो द्वैत-अद्वैत से मुक्त प्रभु सदा निर्विकल्प समाधि से स्थित नित्य ध्रुव शाश्वत् उस चीज़ में मेरा झुकाव—परिणमन है। उसकी ओर मैं झुका हुआ हूँ। ऐसी जो निर्विकल्प शान्ति, उसे अर्थात् कि उस द्वारा मैं त्रिकाल नमन करता हूँ। आहाहा! निर्विकल्प समाधि की परिणति द्वारा मैं त्रिकाली सत् तत्त्व सन्मुख ढला हूँ। गजब! कहो, समझ में आया?

यह **'नमाम्यहम्'**—नमन करता हूँ, यह धर्म है। वह धर्मी है। त्रिकाल वस्तु शान्ति और समाधि का पूरा समुद्र है। अरे! वह आत्मा कैसा, कैसे है—उसे सुनने को मिलता

नहीं, उसके ख्याल में आता नहीं, तब तक उसके माहात्म्य से अन्दर ढले कैसे ? समझ में आया ? लो, इसमें तो कर्म मार्ग दे तो नमन करता हूँ, ऐसा कुछ नहीं आया। नहीं ? राग मन्द हो... व्यवहार... गोम्मटसार में तो निमित्त का ज्ञान कराया है। वस्तु तो ऐसी है, भाई ! पर्याय में विकार होता है, वह कहीं निमित्त से नहीं, निमित्त के आधीन होने से होता है। वह तो उसकी स्वतन्त्रता है, परन्तु वह स्वयं उस स्वरूप नहीं है। स्वयं तो निर्विकल्प समाधि, निर्विकार आत्मा, वीतरागभाव, वीतरागभाव त्रिकाल समताभाव, त्रिकाल सामायिकभाव—ऐसा आत्मा... अरे ! यह आत्मा ऐसा (ऐसा) इसकी दृष्टि में आवे, उस दृष्टि में समाधि होती है, ऐसा कहते हैं। उस दृष्टि में समाधि होती है। दृष्टि स्वयं समाधि शान्तस्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ?

चाहे तो विकल्प हो, उस वस्तु में वह नहीं। तथा गुण और गुण की पर्याय का यह आत्मा गुण-पर्यायरूप है, (ऐसा) कहना, ऐसा अनेकरूप कहना, ऐसा विकल्प भी उसमें नहीं और मैं गुण-पर्याय का पिण्ड अकेला एक हूँ, ऐसा भी विकल्प जिसकी चीज़ में नहीं। आहाहा ! ओहोहो ! सन्तों ने सादी भाषा में जगत को आत्मा परोसा है ! यह तेरा आहार यह है, भाई ! आहाहा ! दिगम्बर सन्तों ने मोक्ष का मार्ग... यह तो नियमसार है न ! मोक्ष का मार्ग तो पर्याय है। परन्तु, कहते हैं कि वह पर्यायवान जो आत्मा, उसमें तो यह मोक्षमार्ग की पर्याय नहीं, तो विकल्प तो कहाँ से होंगे ? आहाहा ! वह तो निर्विकल्प अभेद चीज़ ध्रुव नित्यानन्द प्रभु है। उसके ज्ञान में ऐसा ज्ञेयरूप आत्मा है, ऐसा उसे बैठना चाहिए पहले। समझ में आया ?

ऐसा आत्मा को... यहाँ तक ध्रुव की बात की। शाश्वत् वस्तु ऐसी है। उसे **'नमाम्यहम्'** ऐसा जो अनादि से पुण्य-पाप के विकल्प को और निमित्त में नमा—झुका था, वह अब ऐसे नमता हूँ। आहाहा ! गजब बात की है ! देव-गुरु-शास्त्र को मैं नमता, कहते हैं, परन्तु वह सब परसन्मुख का नमन का विकल्प था। कहो, जेठाभाई ! ऐसा यह सब माने लोग ? यह तो (मानने से ही) छुटकारा है। आहाहा ! भाई ! ऐसा तो तू है। अनादि-अनन्त है, भगवान तुझे ऐसा देखा है-देखा है। तेरा आत्मा ऐसा है, ऐसा भगवान ने देखा है। तू उसमें देख अर्थात् नम तो तुझे खबर पड़े कि ऐसा आत्मा है। समझ में आया ? गजब व्याख्या, भाई !

यह वीतरागमार्ग... त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिसके इन्द्र चरण चाटे, जिनके पैर के नीचे की धूल सिर पर उठावे, जिनके चरण के रज के सेवक—चरणरज सेवक। ऐसे इन्द्र जिन्हें नमे, कहते हैं कि परन्तु नमे (ऐसा) उसे जो विकल्प आया, उन्हें नमने का, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु में तो मैं अपने को नमूँ, ऐसा कायम का त्रिकाली भाव भरपूर है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र को नमूँ, यात्रा में जाऊँ (ऐसे) विकल्प, वह सब मेरे स्वरूप में नहीं, मेरा स्वभाव नहीं, कहते हैं। आहाहा! यह आत्मा। उसे आत्मा कहते हैं, उसे परमात्मा कहते हैं। उसके साधन से स्वयं पर्याय में परमात्मा होता है। लोगों को भारी कठिन पड़े, हों! यह व्यवहारवालों को... उसमें अकेला निश्चय... निश्चय (लगे)। बापू! सत्य सच्चा। निश्चय अर्थात् सच्चा। आहाहा! भाई! यह तो परमेश्वर है तू। पहले दृष्टि में परमेश्वर स्थापित कर तो पर्याय में परमेश्वरता आयेगी। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐई भीखाभाई! यह सब उड़ जाता है। अकेला रहता है अकेला। उसे बोलने न दिया वह... आहाहा!

भाई! तुझे तेरी शाश्वत् चीज़ की खबर नहीं। शाश्वत् चीज़ जो है, स्वयं अविनाशी तत्त्व भगवान आत्मा, जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त नहीं—ऐसा अनादि-अनन्त तत्त्व भगवान, कहते हैं, वह तो त्रिकाल निर्विकल्प समाधिस्वरूप ही है। आहाहा! और वह सविकल्प और अविकल्प अर्थात् यह विकल्पवाला हूँ, निर्विकल्पवाला हूँ—ऐसे विकल्प से भी वह तो रहित है। आहाहा! ऐसे **आत्मा को मैं नमन करता हूँ।** भाषा देखो! परमात्मा, अरिहन्त परमात्मा को नमता हूँ, ऐसा नहीं आया यहाँ। भगवान की ऐसी आज्ञा नहीं, कहते हैं। भगवान की ऐसी आज्ञा है कि हमको नमने की अपेक्षा तेरे स्वरूप को नम। यह हमारी आज्ञा है। आहाहा! समझ में आया? न्यालभाई का दामाद है। अपने न्यालभाई, नहीं? कहते हैं कि भगवान! एक बार सुन, भाई! **जो सदा...** कलश है न, कलश। दुनिया के पठन की अपेक्षा यह पठन अलग प्रकार का है।

मुमुक्षु : पहले ऐसा कहो कि सुखी हुआ जायेगा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखी होने का यह पठन है, बाकी सब पठन दुःखी होने के हैं। सुखी होने का यह मार्ग है। आहाहा! कहते हैं... गाथा बहुत अलौकिक है, हों! **जो**

सदा... जो अर्थात् यह आत्मा जो वस्तु अन्दर है... **जो...** जो यह अन्दर वस्तु है, यह शरीर, वाणी, मन से भिन्न चीज़ है और पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियों से भी यह चीज़ भिन्न है।

मुमुक्षु : भिन्न अर्थात् कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह आत्मा। जो अर्थात् यह आत्मा अन्दर त्रिकाल शाश्वत् प्रभु। जो त्रिकाल शाश्वत्.... देखो न! **जो सदा... जो सदा**—तीनों काल चैतन्यमय निर्विकल्प... वह तो ज्ञान और आनन्दमय, निर्विकल्प अर्थात् एकरूप समाधि में रहता है। उसका त्रिकाल स्वरूप ही वीतराग और समाधि में रहना, ऐसा ही उसका स्वभाव है। अरे! यह बात कहीं! समझ में आया? आहाहा!

भगवान ध्रुव चैतन्य नित्यानन्द, वह सत् है, उसकी शुरुआत नहीं होती। है, उसकी शुरुआत नहीं होती; है, उसका नाश नहीं होता। अर्थात् है, वह सदा... ऐसा शब्द प्रयोग किया है। **जो सदा...** यह कहीं पुस्तक की बात नहीं कि एक अक्षर में समझ में आ जाये। **जो सदा...** जो अर्थात् आत्मा। **जो सदा...** सदा अर्थात् तीनों काल। चैतन्यमय—ज्ञान और आनन्दमय। वह तो ज्ञानमय है। जैसे अफीम कड़वाहटमय है, शक्कर मिठासमय है, उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यमय है। 'मय' शब्द से अभेद बताते हैं। चैतन्यवाला, ऐसा नहीं। चैतन्य—ज्ञानवाला वह तो भेद पड़ गया, परन्तु चैतन्यमय वह भगवान आत्मा चैतन्य अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा के स्वभावमय निर्विकल्प है। एकरूप अभेद है। आहाहा! समझ में आया?

यह आत्मा ऐसा है, इसने कभी सुना नहीं। बेगारी कर-करके मर गया चौरासी के अवतार में। मलूकचन्दभाई! आहाहा! बेगार होगी यह सब? दुःखी होंगे यह सब? न्यालभाई दुःखी? बड़े दुःख के पोटला में हैं। भाई! पैसेवाले कहलाये। लड़की इकलौती और रुपये कितने कहलाये, लो। धूल में भी नहीं अब। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! एकबार सुन तो सही! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने कहा कि तेरा तत्त्व ऐसा है। अरिहन्त प्रभु सर्वज्ञ जिन्होंने एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने। ऐसा आत्मा का स्वभाव शक्तिरूप से था, उसे प्रगट किया। प्रगटता से उसने तीन

काल, तीन लोक ज्ञान में जाने। यह आत्मा ऐसा है ऐसा उसने जाना, ऐसा कहा। समझ में आया?

कि **जो...** भगवान आत्मा **सदा चैतन्यमय...** यह तो अलौकिक शब्द—मन्त्र हैं। आहाहा! वह त्रिकाल निर्विकल्प समाधि में ही रहनेवाला है। पर्याय की बात नहीं—अवस्था की बात नहीं। स्वयं निर्विकल्प समाधि आनन्दमय ही है। आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा आनन्दमय त्रिकाल है। समाधि—शान्ति... शान्ति—समता—वीतरागता—निर्दोषता के स्वभाव से भरपूर वह तत्त्व ही है। आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! कठिन बात, भाई! ऐसा आत्मा! यहाँ तो एक बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, व्यवस्थित उड़द की दाल एकरस न हो तो ढिंचणियुं उड़े। ऐ... एकरस आया नहीं। यह कहते हैं यह। अरे भगवान! तुझे खबर नहीं, नाथ! तेरी चीज़ क्या है?

भगवान आत्मा निर्विकल्प शान्ति में रहता है। पर्याय की यह बात नहीं, अवस्था की बात नहीं। त्रिकाल स्वरूप है ऐसा। शान्त सरोवर... शान्त... जैसे जल से भरा हुआ सरोवर, मीठे पानी से भरा हुआ सागर—समुद्र हो, वैसे भगवान आत्मा मीठी शान्ति और आनन्द से भरपूर सागर है। आहाहा! यह होता है न। मीठा समुद्र, ऐसा। यह खारा पानी का समुद्र नहीं। इसलिए 'मीठा' ऐसा विशेषण दिया है। यह समुद्र, यह लवणसमुद्र समुद्र कहलाता है न! खारा पानी है उसमें। यह तो मीठा महेरामण। आहाहा! अरेरे! उसे खबर नहीं होती।

ऐसा तो कहो कि जिसे आनन्द प्रगट करना है और वह आनन्द, वह भी पूर्ण प्रगट करना है। थोड़ा प्रगट करने का भाव है इसे? आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द जिसे प्रगट करना है और वह भी अतीन्द्रिय पूर्ण प्रगट करना है, वह पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द आयेगा कहाँ से? समझ में आया? बाहर में से आवे, ऐसा है? अन्दर में भगवान आत्मा के स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण... पूर्ण शक्ति पड़ी हुई है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के अन्दर में एकाग्र होने पर उसकी वर्तमानदशा में अतीन्द्रिय आनन्द होता है, उसे भगवान धर्म कहते हैं। लोग बातें करते हों कि ऐसे धर्म होता है, दया पालना, व्रत पालना, भक्ति करना और पूजा करना। समझ में आया? ऐई मलूकचन्दभाई!

तुम्हारा न्याल तो रुपयों के कारण धन्धे से निवृत्त नहीं होता। कहो, समझ में आया? यह निहाल का रास्ता है, ऐसा कहते हैं। यह सब धन्धा (व्यापारादि) नुकसान का रास्ता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनि क्या, मार्ग ऐसा है। यह वकील है न। कहो, समझ में आया? आहाहा!

परन्तु एक सिद्धान्त से, लॉजिक से लें कि लोगों को सुख चाहिए। वास्तविक? अब सुख चाहिए है तो उसके सुख का उपाय भी करना चाहते हैं। परन्तु सुख कहाँ है और सुख का उपाय क्या है—इसकी उन्हें खबर नहीं। समझ में आया? वह सुख क्या इस धूल में—शरीर में है? वह तो मिट्टी में है। वाणी में है? पैसे में है? स्त्री में है? बँगले में है? हजीरा अर्थात् मकान। बड़ा दस लाख का, बीस लाख का मकान हो न बड़ा बँगला। है उसमें सुख?

मुमुक्षु : उसमें सुख नहीं, परन्तु उसमें रहने से सुख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें रहा है ही कहाँ? स्वयं अपने में रहा है। मानता है कि घर में रहता हूँ। वह तो जड़ है। आहाहा! कुछ छोड़कर चले गये दस-दस लाख के मकान। अरे! साढ़े तीन करोड़ का मकान, नहीं भाई का? जॉर्ज, मर गया न जॉर्ज। विलायत में—लन्दन में। साढ़े तीन करोड़ का मकान था। कब मर गया, इसकी खबर नहीं पड़ी। उसके दस-दस हजार के महीनेवाले (डॉक्टर) थे। कब मर गया, खबर नहीं पड़ी। बोलना नहीं... रात्रि में जब उघाड़ने गये, वहाँ मर गया, मुर्दा। ऐसा जॉर्ज है... अब उसके साथ सम्बन्ध क्या है? घर में, देह में रहा नहीं। देह तो जड़, मिट्टी-धूल है। यह तो मिट्टी जड़ है, अजीवतत्त्व है। उस अजीवतत्त्व में जीवतत्त्व रहे? जीव जीव में रहता है; जीव, अजीवतत्त्व में नहीं रहता तीन काल में। समझ में आया?

मुमुक्षु : अभी पक्का विश्वास करा दो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे यह? जिसे करना है, वह करे या करानेवाला करे? कौन करावे? भगवान! तू स्वयं भूला, उस भूल को तू मिटा। बाकी कोई मिटा दे, ऐसी सामर्थ्य है नहीं। आहाहा!

कहते हैं... एक ही श्लोक में तो कितना भरा है! एक सदा समाधि में रहनेवाला

उसका स्वरूप ही... जो समता और सुख प्रगट करना चाहता है, उस सुख से भरपूर तत्त्व है। निर्विकल्प समाधि कहो या सुख कहो। निर्विकल्प समाधि अर्थात् आनन्दस्वरूप ही उसका है। वह सच्चिदानन्द है। सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान... ज्ञान लिया न! वह चैतन्यमय, वह ज्ञान और निर्विकल्प समाधि अर्थात् सुख।—दोनों समाहित कर दिये। समाधि का सुख। उस भगवान आत्मा में चैतन्यमय और निर्विकल्प सुख है। आहाहा! वह रहता है, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा पुण्य-पाप में नहीं रहता, घर में तो रहता नहीं। उसकी धूल की लक्ष्मी हो दो-पाँच करोड़ की, उसमें भी नहीं रहता। वह तो मिट्टी जड़ धूल है। वहाँ घुस गया है अन्दर? वहाँ घुस जाये तो जड़ हो जाये वह। वह सब तो जड़ है। समझ में आया? यह तो चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि है। जिस सुख को शोधना चाहता है, उस सुख से खाली नहीं। समझ में आया?

जिस सुख को शोधना चाहता है ऐसे, वह स्वयं सुख से खाली नहीं है। उसका इसे भान नहीं है। आहाहा! समझ में आया? 'कुछ समझ में आया', ऐसा कहा जाता है न? सब समझ में आये, (ऐसा) कौन कहता है? सब समझ में आ जाये तो हो गया। क्यों हीराभाई? आहाहा! यह क्या गन्ध आती है (अर्थात्) क्या कहना चाहते हैं, यह समझ में आता है? क्या कहना चाहते हैं? आहाहा! भगवान आत्मा... **जो..** अर्थात् आत्मा, **सदा...** अर्थात् त्रिकाल, **चैतन्यमय** अर्थात् ज्ञानमय और दर्शनमय इकट्ठा आ गया। **निर्विकल्प—**अभेद **समाधि** अर्थात् सुख। अभेद सुख में विराजमान प्रभु अनादि-अनन्त है। आहाहा! **वह द्वैताद्वैत विमुक्त...** ऐसा भगवान आत्मा... मैं ज्ञान और आनन्दमय हूँ, ऐसा भेद का विकल्प भी उसमें नहीं। विकल्प अर्थात् वासना—वृत्ति—राग। मैं ज्ञान और आनन्द हूँ... दो आये न गुण, भाई! इसलिए कहा कि मैं ज्ञान और आननद हूँ, ऐसा भेद, विकल्प—राग भी उसमें नहीं और मैं ज्ञान और आनन्दमय हूँ, ऐसा अभेद विकल्प भी उसमें नहीं। आहाहा! विकल्प अर्थात् राग।

यह हूँ वह हूँ। **उस द्वैताद्वैत मुक्त....** ऐसा जो आत्मा। **(द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से मुक्त)...** अद्वैत अर्थात् सब होकर अद्वैत, वह यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो भगवान आत्मा... दो बोल कहे सही न! जो आत्मा सदा चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि में रहा हुआ है। तो उसे अन्दर स्पष्ट किया कि वह आत्मा ऐसा मैं, वह गुण के भेदवाला विकल्प राग मुझमें

नहीं। तथा अभेद कहा ऐसा 'मैं अभेद हूँ, अद्वैत हूँ, अन्दर में एकरूप हूँ' ऐसी राग की वासना भी उसमें नहीं। न्याय समझ में आता है कुछ? न्याय से बात चलती है न! 'नि' धातु चलती है न्याय में। न्याय में 'नि' धातु आती है। 'नि' (अर्थात्) ले जाना। जैसी वस्तु है, वैसे ज्ञान में ले जाना, इसका नाम न्याय। समझ में आया?

कहते हैं, अरे... आहा! कठिन भाई! ऊँचा... हों! मुनिराज वन में रहे, जंगलवासी। **द्वैत-अद्वैत।** पहले द्वैत डाला न! **चैतन्यमय निर्विकल्प समाधि...** दो कहा सही न! आहाहा! मुनिराज की एक शैली तो देखो! ऐसी बात कहीं है नहीं। द्वैत और अद्वैत अर्थात् जिसमें रहा है, ऐसा मैं और यह रहनेवाले गुण—ऐसा भेद नहीं, तथा 'अभेद मैं हूँ' ऐसा राग भी नहीं। ऐसे **आत्मा को...** ऐसे आत्मा को... यह त्रिकाली की बात कही। अब, **मैं नमन करत हूँ।** आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, उसमें मेरा झुकाव है। ऐसे अनादि से जो राग और पुण्य-पाप के विकल्प में झुकाव था, वह मिथ्या झुकाव परिभ्रमण का कारण था। समझ में आया?

ऐसा जो भगवान **मैं... 'मैं'** कहा न! **आत्मा को मैं...** ऐसा आत्मा मैं... ऐसे **आत्मा को मैं नमन करता हूँ।** अर्थात् कि वस्तु का त्रिकाली ऐसा स्वरूप है, उसमें मेरा विनय होकर आदर है। कहो, समझ में आया? आहाहा! इसका नाम धर्म। बहुत व्याख्या, भाई! धर्म की (व्याख्या) सूक्ष्म। दुनिया तो कुछ का कुछ पूजा करो, भक्ति करो, व्रत पालो, यह करो और वह करो, मन्दिर बनाओ और धर्म होगा। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! वह शुभराग—शुभभाव हो पुण्य। धर्म नहीं, वह धर्म नहीं। धर्म तो अलौकिक शान्ति प्राप्त हो, उसे धर्म कहा जाता है। वह अलौकिक शान्ति का सागर भगवान है। शान्ति के सुख से मीठा समुद्र ऐसे आनन्द की मिठास से भरपूर समुद्र है आत्मा। अरे! परन्तु कैसे बैठे? बीड़ी बिना चले नहीं, ठीक से एकरस उड़द की दाल न हो, वहाँ ढिंचणीयुं उडे। ऐई... धान की धूल कर दी। धान माँगो तब लाते हैं। ऐसे कषाय में इसने ऐसा... पण्डितजी!

ऐसे **आत्मा को मैं नमन करता हूँ।** इसका अर्थ ही, मेरी निर्मल पर्याय है मेरे आत्मा की, उसके द्वारा मैं अन्दर नमन करता हूँ। आहाहा! यह कहीं कथा-वार्ता नहीं।

यह तो आत्मा की भागवत शास्त्र की कथा है। भागवतशास्त्र अर्थात् आत्मा, भगवानस्वरूप आत्मा को—ऐसे आत्मा को नमन करता हूँ, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। ऐसे आत्मा में अन्दर में जाता हूँ, ऐसी जो दशा, उसका नाम शान्ति, सुख और मोक्ष का मार्ग। कहो, समझ में आया? आहाहा! चन्दुभाई! देखो! १२३ हो गयी, अब १२४। १२४ गाथा ऊपर है न?

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयण-मोण-पहुदी समदा-रहियस्स समणस्स॥१२४॥

नीचे इसका (हरिगीत)।

वनवास, कायाक्लेशरूप अनेक विध उपवास से।
वा अध्ययन मौनादि से क्या! साम्य विरहित साधुके॥१२४॥

टीका : इस गाथा में... इस ओर यह पुस्तक तो कभी देखी न हो इसने। बाहर परदेश में यह था वहाँ? ऐसे अफ्रीका, जापान और सब होली हो चारों ओर। यह तो भगवान की कॉलेज है, बापू! यह तो भगवान होने की दशा है। वह तो भटकने की सब दशा है। पच्चीस करोड़ और पचास करोड़ और सौ करोड़ और अरब-दो अरब। धूलधाली और वापाणी। वहाँ तो दुःखी... दुःखी... दुःखी। आहाहा! वहाँ नहीं अपने मोरबी में? एक है न? दुर्लभजी झबेरी, अरबपति। ऐसे मोरबी का, अभी जयपुर है। अभी हम गये थे न! जयपुर अपने गये थे न! अरब रुपये। उन गोदिका को तब मैंने पूछा कि दो अरब है। परन्तु अरब तो होंगे, ऐसा लगता है। अपना बनिया यहाँ का दशाश्रीमाली मोरबी का।

फिर आया था बेचारा पैर छूने। ऐसे मेरा नाम तो प्रसिद्ध है न। पहले तो उसमें (—सम्प्रदाय में) थे न तब। ऐसे तो भगत बहुत थे उस समय—मुँहपत्ती में तब। फिर आया था। उसके लड़के का लड़का—लड़का हुआ अठारह वर्ष का। पैसेवाला व्यक्ति। लड़का नहीं था। महाराज आये हैं इसलिए अपने पैर छुआओ महाराज के तो अपने लड़का व्यवस्थित रहे। सबको ऐसी छाप है न थोड़ी। घर गये थे।... उसके पास बहुत रुपये हैं, बहुत हैं। साठ-सत्तर लाख या अस्सी लाख। दो करोड़ कहते हैं, परन्तु इतने

तो नहीं होंगे। आये सब इकट्ठे हुए। सुनाओ, कहा। वहाँ व्याख्यान में आओ। घर में क्या तुमको मिलता है? पाव घण्टे रहे, एक हजार रखे ज्ञानखाते में। दस मिनिट बैठे सही न घर में। परन्तु कहीं शान्ति न मिलती, इतनी धूल है। आहाहा! ऐई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **समता बिना...** है? पहला शब्द है। 'समता बिना' अर्थात् क्या? ऐसी भाषा नहीं चलती। समता अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका अन्तर भान होकर जो वीतरागी पर्याय प्रगट हो, उसे यहाँ समता कहा जाता है। वीतरागभाव को यहाँ समता कहा जाता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह पुण्य है, वह असमता है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, वह भाव, वह विषमभाव, दुःखरूपभाव है, वह असमता का भाव है। यह समता का भाव कहना है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु स्वयं अनादि शाश्वत्, उसका आश्रय लेकर वीतरागदशा जिसने प्रगट की नहीं, जो पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न पड़कर त्रिकाली भगवान आनन्दकन्द में ढला नहीं और जिसने वीतरागभाव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का प्रगट हुआ नहीं, ऐसे द्रव्यलिंगी जैन के साधु हों, नग्न हों, स्त्री-पुत्र छोड़े, करोड़ों पैसे छोड़े। वह सब द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि हैं।

मुमुक्षु : धर्म तो हो न उसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला अधर्म होता है। यह भगवान आत्मा जो त्रिकाली आनन्दमूर्ति उसे कहा, उसकी ओर का आश्रय करके जिसे समता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग निर्मल पर्याय, ऐसी निर्मलपर्याय निर्मल आत्मा के आश्रय से प्रगट की नहीं, ऐसे द्रव्यलिंगी साधु **श्रमणाभास...** द्रव्यलिंगी अर्थात् द्रव्य(लिंग)—नग्नपना धारण किया और पंच महाव्रत के विकल्प कदाचित् पालता हो, परन्तु वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी है। भगवान आत्मा के भान बिना के वे सब मिथ्यादृष्टि पापी हैं, ऐसा कहते हैं। अरे! गजब किया।

मुमुक्षु : मिथ्यादर्शन का पाप कौनसा आता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत में वही बड़ा पाप है। देखो न! पीछे क्या कहा?

देखो! **समता के बिना द्रव्यलिंगधारी...** नग्नपना धारण किया, साधु का वेश

धारण किया। परन्तु **श्रमणाभास...** है। श्रमण नहीं, परन्तु श्रमणाभास है। साहूकार नहीं, परन्तु साहूकाराभास है। आहाहा! भीखाभाई! नग्न होकर साधु नाम धरावे (और माने कि) हम मुनि हो गये। सिर मुंडाकर, स्त्री-पुत्र छोड़कर बैठे। भान नहीं होता, अन्दर आत्मा क्या है, उसकी तो खबर नहीं होती। वह सब बिना बुद्धि के बाबा हों, वे भवसागर में डूब मरते हैं। समझ में आया? पण्डितजी! श्रमणाभास है। श्रमण नहीं, परन्तु श्रमण जैसा लिबास है। ऐसे आभास है न? आभास है, पानी नहीं, परन्तु मृगजल जैसा है।

यह मृगजल होता है न रेतीली जमीन में। रेतीली जमीन में सूर्य की किरणों के कारण मृगजल दिखता है। वहाँ पानी कब था? वहाँ तो रेतीली जमीन में चमक दिखाई देती है। इसी प्रकार साधु नाम धरावे और क्रियाकाण्ड करे पंच महाव्रत के, तपस्या के, अपवास के, वनवास—जंगल में रहे, परन्तु जिसे यह आत्मा शरीर की क्रिया से रहित, पुण्य दया-दान के राग से रहित और आनन्दसहित है, ऐसी जिसे अन्तर्दृष्टि का आत्मा का ज्ञान और श्रद्धा हुए नहीं, उन सब द्रव्यलिंगी श्रमणाभासों को **किंचित् परलोक का कारण नहीं...** मोक्ष के लिये उनका साधन बिल्कुल नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

बेचारे द्रव्यलिंग धारण करे, स्त्री-पुत्र छोड़े, धन्धा छोड़े, व्यापार छोड़े, परन्तु वह आत्मा क्या है, उसका ज्ञान और सम्यग्दर्शन का भान नहीं। उसे ऐसे साधन, किंचित् मोक्ष के कारणरूप उसके साधन नहीं होते, वे सब बन्ध के साधन हैं। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन, भाई! साधु सुने तो उसे ऐसा लगे कि... कायक्लेश है तेरा सब, कहते हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, समाधि का सागर, उसे तो तूने अनुभव में लिया नहीं, उसके सन्मुख देखकर आनन्द की सेवा की नहीं, अतीन्द्रिय आनन्द का भान हुआ नहीं और ऐसे द्रव्यक्रियाकाण्ड में पड़ा, वह क्रियाकाण्ड मोक्ष का किंचित् कारण नहीं है।

मुमुक्षु : यह चौथे काल की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी की बात है। किसकी चलती है यह? कौन कहता है यह? यह स्पष्टीकरण कराते हैं। खीमचन्दभाई! हमारे... स्पष्टीकरण कराते हैं। ....

मुमुक्षु : गृहस्थों के लिये यह बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! आत्मा के लिये है यह बात। आत्मा हो, उसके लिये यह बात है। आत्मा है या कौन जड़ है अन्दर? आहाहा!

देखो न! कैसा लिखा है! **समता बिना...** 'समता' शब्द ऐसा, हों! कोई लकड़ी मारे और क्रोध न करे, वह समता—ऐसा नहीं। वह समता नहीं। आत्मा के आनन्दस्वरूप और अखण्ड अक्रिय आनन्द प्रभु का अनुभव होना, उसके सन्मुख होकर शान्ति की दशा प्रगट होना, उसे यहाँ समता कहा जाता है। समता तो वाचक शब्द है, परन्तु उसका वाच्य समता यह है। समझ में आया? 'साकर' शब्द में कहीं साकर पड़ी है। साकर (मिश्री) शब्द सा-क-र, उसमें साकर है। और साकर में—साकर डली है उसमें 'साकर' शब्द है? इसी प्रकार यह समता शब्द हुआ। शब्द में समता है? समता तो, आत्मा में पुण्य और पाप के विकल्प से रहित होकर, आत्मा का आश्रय लेकर जो वीतरागदशा प्रगट हो, निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट हो, निश्चय आत्मज्ञान प्रगट हो, स्वरूप में लीनता का चारित्र प्रगट हो, उसे यहाँ समता कहा जाता है। उसमें कुछ गड़बड़-फड़बड़ चले, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

समता के बिना द्रव्यलिंगधारी... द्रव्यलिंग अर्थात् मुनिपना लिंग धारण करे, नग्न हो, बाबा हो, साधु हो। **श्रमणाभास को...** श्रमण नहीं, परन्तु श्रमणाभास को ऐसी क्रियायें जो द्रव्यलिंग की, पंच महाव्रत की क्रिया, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य शरीर से पाले, वह सब विकल्प और राग है। ऐसे श्रमणाभास को जरा भी **परलोक का साधन नहीं...** लो, भाई! व्यवहार जरा भी मोक्ष का कारण नहीं, (ऐसा) यहाँ उड़ाया है। यह सब सेठिया थे उसमें। जय नारायण करे वहाँ। भान न हो तो क्या करे वे? दुनिया की बात करने बैठे तो बहुत चतुर दिखाई दे। उसमें ऐसा करना, उसका ऐसा करना, उसका ऐसा करना। देव के पुत्र उतरे मानो बड़ी बातें करते। सबमें लपटे... सबमें लपटे अर्थात् सब जाने, ऐसा। एक यह नहीं। समझ में आया? आहाहा!

एक लाईन में कितना डाला है, देखो! जरा भी मोक्ष का साधन नहीं। अब स्त्री-पुत्र छोड़कर, दुकान छोड़कर साधु हुए और पंच महाव्रत पाले, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य। वे सब विकल्प की क्रिया हैं। आहाहा! ऐसी समता, अन्तर स्वरूप में जो

समता का पिण्ड प्रभु है, उसका अवलम्बन लेकर, उसके आश्रय से जो पुण्य और पाप के भावरहित अरागी समता प्रगट होती है, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग और धर्म कहते हैं। ऐसे धर्म के भान बिना द्रव्यलिंगधारी पंच महाव्रत पाले, धूप में सूखे, जंगल में रहे, महीने-महीने के अपवास (आदि) काय-क्लेश करे तो किंचित् भी परलोक का कारण नहीं, उसे जरा भी धर्म का कारण नहीं। आहाहा! भारी कठिन!

केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को... यह क्या कहा? आत्मा का भान, अन्दर आत्मा आनन्द है, ऐसी वेदनदशा प्रगट हुई है और फिर द्रव्यलिंग धारक हो तो निमित्तरूप कहने में आवे। परन्तु **केवल द्रव्यलिंग...** आत्मा के अनुभव के भान बिना, निर्विकल्प शान्ति का सागर आत्मा, उसकी दशा प्रगट किये बिना **श्रमणाभास को समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त...** समता की व्याख्या की, भाई! समता किसे कहना? कि **समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़...** पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, वह कर्मरूपी कादव का कलंक है। ठीक! अमरचन्दभाई! पाप जो हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, क्रोध, मान, माया, लोभ, वह तो पापरूपी कादव है, परन्तु दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का भाव, वह शुभरूपी पुण्य का कादव है। ऐसा कहा न, देखो न!

समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त... ऐसे शुभाशुभभाव से रहित और **महा आनन्द के हेतुभूत...** देखो! महा आनन्द... मोक्ष का कारण। महा आनन्द, वह मोक्ष, उसका हेतु **परमसमताभाव...** आहाहा! निर्मलानन्द प्रभु के सन्मुख में अनुभव हो और उसके सन्मुख में शान्ति और वीतरागता प्रगटे, उसे यहाँ परमसमताभाव कहने में आता है। वह पुण्य के दया, दान, व्रत के परिणाम से मिश्रित नहीं। समझ में आया? ऐसा धर्म होगा? सुधरे हुए लोगों में ऐसा करना, ऐसा करना, फलाना ऐसा सुधार करना। फेंकाफेंक करे महाथोथा। यह आत्मा को सुधार, इसके बिना मर जाये तो भी तेरा सुधार कहीं नहीं, ले। समझ में आया?

करोड़ों के—अरबों के दान दे और कल्याण हो जाये, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। पैसा कहाँ तेरे बाप का था? वह तो जड़ है। उसमें कदाचित् राग मन्द किया हो, कीर्ति के लिये दुनिया को देता हो तो वह पाप है। ऐई मलूकचन्दभाई! इसलिए नहीं देता

हो यहाँ? क्या होगा हिम्मतभाई! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि वह रखने का भाव भी पाप और दान में देने की राग की मन्दता करे पुण्य, वह भी कादव है। पुण्य और पाप के भाव दोनों कादव है। फँस जायेगा वहाँ, ऐसा कहते हैं। कठिन काम, भाई!

श्रमणाभास को समस्त कर्मकलंक... कर्मकलंक है, देखो! यह शुभभाव भी कलंक है। अरे! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, ऊपर वर्णन किया ऐसा समाधि-आनन्द का नाथ, उसमें पुण्यभाव, वह कलंक है, मैल है। ऐसे पुण्य-पाप के कलंकरूप कादव से रहित... विमुख अर्थात् रहित। और महा-आनन्द परमात्मापद सिद्धपद होना, 'णमो सिद्धाणं' ऐसी सिद्धपद प्राप्ति, उसका नाम महा आनन्द, उसका हेतु अर्थात् कारण परमसमताभाव। आहाहा! वह समता कृत्रिम है। कोई मारे और क्रोध न करे, वह समता नहीं है, वह तो परलक्ष्यी है। यह तो स्वलक्ष्यी अर्थात् परमसमता कही। आत्मा के आश्रय से—आधार से—अवलम्बकर प्रगट हुई पुण्य-पाप के विकल्परहित शान्ति, उसे यहाँ परमसमता कहते हैं। ऐसे परमसमतारहित जीव को **(१) वनवास में बसकर वर्षाऋतु में वृक्ष के—नीचे...** वनवास में—जंगल में रहे। दिगम्बर मुनि तो जंगल में ही रहते थे। कहते हैं, परन्तु ऐसे आत्मा के समता के अनुभव बिना तेरे वनवास में रहना, वह रण में शोर मचाने जैसा है। उसमें कुछ धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : बँगले में रहता था, उसमें रहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ रहता था बँगले में? धूल में भी रहता नहीं। आहाहा! अच्छे बँगले में से निकलना कठिन पड़े।

कहा था एक बार। अपने है न राजकोट? वह छबीलभाई, नहीं? परन्तु ... नहीं थे, छबीलभाई थे। आहार लेने गये आहार लेने। गये थे न पहली बार। वहाँ से पॉलिस... क्या कहलाता है तुम्हारे? सीढ़ियाँ। क्या कहलाती है? सीढ़ियाँ। सब पॉलिस। बिछाया हुआ पॉलिस लकड़ियाँ बड़ी, उसके ऊपर कपड़ा लटके। उसमें बैठे न पैर से... अकेला पॉलिस ऐसा। आहार लेने गये, मैंने कहा, इसमें से निकलना कठिन पड़ेगा, हों! सब साफ चुस्त मुलायम लकड़ियाँ। अब तो बहुत जगह है। यह तो बहुत वर्ष की बात है। ...भाई को बहुत शौक था। यह ३०-३५ वर्ष पहले की बात है, ४० वर्ष। तब हम

आहार लेने गये ने ऐसे... यहाँ से जब मरण आयेगा, कठिन पड़ेगा यह लोगों को, हों! ... यह किया... यह किया... यह किया। कहाँ किया ? धूल ? तू कहाँ का रहनेवाला कहाँ आकर बसा, इसका भान नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वनवास में बसे, वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे स्थिति करे, **ग्रीष्मऋतु में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से...** गर्मी में प्रचण्ड सूर्य की किरणों से **संतप्त पर्वत के शिखर की शिला पर...** बैठे, **और हेमन्त...** अर्थात् सर्दी में **ऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से,...**

मुमुक्षु : लोगों में तो बहुत महिमा ऐसी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल तो पागल ऐसे हों न सब। पागल, पागल की महिमा करे। जेठाभाई! यहाँ तो ऐसा है, भाई! ऐसा करे तो, आहाहा! महाराज ने भारी सहन किया, हों! भारी त्यागी धर्म के। धर्म के त्यागी। धर्म क्या चीज़ है, उसका तो भान नहीं। वह तो क्रियाकाण्ड है बाहर का। समझ में आया ? आहाहा! जहर पीते-पीते अमृत की डकार आवे न ? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे या नहीं ? नहीं आती। इसी प्रकार यह पुण्य की क्रिया करते-करते धर्म होगा या नहीं ? धूल भी नहीं होगा, सुन न! धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। भीखाभाई!

कहते हैं कि ऐसा करके क्या है तुझे ? कहीं उपादेय फल नहीं, ऐसा कहते हैं अन्त में। मोक्ष के साधनरूप फल जरा भी नहीं। वह तो सब क्रियाकाण्ड है बाहर का। अन्तर भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु का अनुभव और उसकी दृष्टि और उसके वेदन बिना इन सब क्रियाकाण्ड में मोक्ष का कुछ कारण नहीं है। आहाहा! विपरीत है, उसमें मोक्ष का कारण कहाँ से (होगा) ? बापू! तुझे मोक्ष के मार्ग की खबर नहीं। अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार... आहाहा! आदिरहित काल (उसमें) रहा कहाँ ? आत्मा कहीं नया होता है ? आत्मा तो सत्... सत्... सत् है। कहो, समझ में आया ?

और यह राजुल के ऊपर नजर गयी। सुशीलभाई को कहा। कहे, नहीं आयी। अपने यहाँ एक लड़की है न, उसे जातिस्मरण है। पूर्व का जातिस्मरण हुआ है। अपने अधिक लोगों में बतानी थी, हों! ऐई मलूकचन्दभाई! तब सब बहुत नये थे। उदाणी

और सब बहुत थे। ...तब तो। लड़की है। भाई ने तो सुना होगा। नहीं... ? दक्षाबेन तो जानती हैं। सामने बहुत रही है न! उस लड़की की तुमको खबर नहीं ? बहिन! वह राजुल। सामने रहती है। बहनश्री के भाई के पुत्र की पुत्री। आठ वर्ष की उम्र है। ढाई वर्ष में पूर्वभव का (ज्ञान) हुआ। यहाँ जूनागढ़ के लुहार थे। पूर्वभव का ज्ञान है। ...दोपहर में आयेंगे या कल सवेरे आयेंगे। कल शनिवार को...।

कहते हैं कि आत्मा के भान बिना, आत्मा के अनुभव सम्यग्दर्शन के बिना ऐसे कायक्लेश से धर्म का लाभ जरा भी है (नहीं)। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ६, शनिवार, दिनांक - २५-९-१९७१
गाथा-१२४-१२५, श्लोक-२०२, प्रवचन-१३५

नियमसार, परम-समाधि अधिकार। यहाँ गाथा में ऐसा है कि समता के बिना जो कुछ अकेला क्रियाकाण्ड का आचरण है, वह सब मोक्ष के लिये जरा भी कारण नहीं। समता अर्थात् कोई मारे, उससे क्रोध नहीं करना, सब धर्म समान और समभाव से मानना।—यह समता हुई या नहीं? जगत में सब धर्म समान हैं, (ऐसी) समता, वह समता नहीं, वह तो विषमता है। समझ में आया? तथा कोई मारे, गाली दे, प्रतिकूलता करे (तो भी) क्रोध न करे—वह कहीं समता नहीं है। वह तो कृत्रिम रागवाली समता है। यह समता तो, आत्मा शुद्ध ध्रुव पवित्र का धाम, उसका आश्रय लेकर जो वीतरागी निर्विकल्प शान्ति प्रगट हो, उसे यहाँ समता कहा जाता है।

उस समता के बिना **केवल द्रव्यलिंगधारी श्रमणाभास को समस्त कर्मकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त और महा आनन्द के हेतुभूत परमसमताभाव बिना,...** देखो! इसका नाम समता कि जिसके परिणाम में से शुभ और अशुभभाव छूट गये हैं। समझ में आया? जिसके स्वभाव में—आत्मा में अकेली वीतरागता भरी है, इससे उसका आश्रय लेकर पुण्य-पाप के राग बिना के जो परिणाम (हों), उसे यहाँ समता कहा जाता है। इसके बिना श्रमणाभास द्रव्यलिंगी को क्रियाकाण्ड पंच महाव्रत, अपवास आदि, वह कुछ धर्म का कारण नहीं है। **(१) वनवास में बसकर...** वन में रहकर, **वर्षाऋतु में वृक्ष के—नीचे स्थिति करने से, ग्रीष्मऋतु में—**गर्मी में **प्रचण्ड सूर्य की किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर की शिला पर बैठने से और हेमन्तऋतु में रात्रि में दिगम्बरदशा में रहने से,...** कुछ लाभ नहीं है। ऐसी क्रिया से आत्मा को मोक्ष का कुछ लाभ नहीं है। आहाहा!

(२) त्वचा और अस्थि... जिसकी हड्डियाँ और चमड़ी—त्वचा अस्थिरूप **हो गये सारे शरीर को...** शरीर में अपवास कर-करके, जंगल में रहकर, धूप सहन करके, सर्दी में नदी के किनारे बैठकर, ठण्डी हवा के झपट्टे आवें, उसमें से चमड़ी रूखी, जीर्ण

हो जाये, तथापि उसे आत्मदर्शन और आत्मज्ञान और आत्मशान्ति नहीं तो, वह जरा भी आत्मा को धर्म का कारण नहीं है। **सारे शरीर को क्लेशदायक महा उपवास से,...** महा उपवास—छह-छह महीने के उपवास करता हो, शरीर जीर्ण हो गया हो, चमड़ी लटकती हो, हड्डियाँ पतली पड़ गयी हों, उसे कुछ धर्म का लाभ नहीं है। समझ में आया? जिसने ज्ञानानन्द आत्मा अनुभव में लिया नहीं, सम्यग्दर्शन के भान में पूरा आत्मा परिपूर्ण है, उसका अनुभव हुआ नहीं। उसके बिना की यह सब क्रियायें धर्मरूप नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, **क्लेशदायक महा उपवास...** ऐसा वापस। इतने उपवास करे कि अन्दर ऐसे खेद आ जाये, सहन न हो इतने उपवास—आहार-पानी त्यागे। वह क्रिया कहीं धर्म नहीं है। समझ में आया? आत्मा की पर्याय में, 'यह ध्रुव चिदानन्द आत्मा है' ऐसा जिसे दृष्टि में आत्मा का अनुभव हुआ नहीं, इसके बिना उसकी यह सब क्रियायें निष्फल हैं। ये क्रियायें करते-करते शुद्ध होगा, ऐसा इसमें इनकार करते हैं। समझ में आया? ऐसी सब क्रियायें करनी चाहिए और जब तक शुद्धता न हो तो उसे शुभ करना। नहीं आता उसमें—दौलतराम में? आता है। वह आ गया अपने दौलतराम में। जिसे शुद्ध किंचित् नहीं तो उसे शुभ करना, ऐसा आता है। भजन ऐसा आता है। अर्थात् कि शुद्ध का अनुभव है, समझ में आया? परन्तु जब तक शुद्धोपयोग अन्दर न जमे, तब उस काल में उसे शुभभाव होता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? वह बन्ध का कारण ही सेवन करता है।

ध्रुव में अन्तर्दृष्टि—दृष्टि नहीं करे, दृष्टि में, वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूरा भगवान जब तक ज्ञेयरूप से नहीं बनावे, तब तक सब शुभभाव मात्र संसार का कारण है। बाद का शुभभाव उसे निमित्त कहने में आता है, परन्तु है वह बन्ध का कारण। आहाहा! **क्लेशदायक महा उपवास...** देखा न! '**विचित्रोपवासः**' है न शब्द में? '**कायक्लेशो विचित्रोपवासः**' ऐसा। और '**अध्ययनमौनप्रभृतयः**' **(३) सदा अध्ययनपटुता...** शास्त्र पठन करे पूरे दिन और रात। अध्ययनपटुता अर्थात् अध्ययन में—शास्त्र पठन करने में होशियार। समझ में आया? पटुता अर्थात् उसमें होशियार है, ऐसा। शास्त्र अध्ययन करने में बहुत प्रवीण है। है परन्तु विकल्प, राग है। समझ में आया?

कहाँ गये देवीलालजी! तुम्हारा प्रश्न आया था रात्रि में इन भाई का। संसार के काम में ज्ञाता-दृष्टा रहें तो मन्द आकुलता दिखती है, पढ़ने में तीव्र आकुलता दिखती है। कहो! उल्टी है न दृष्टि। यहाँ तो कहते हैं कि जिसे आत्मा का आनन्द और ध्रुवता जिसकी दृष्टि में आयी नहीं, जिसकी पर्याय में द्रव्य का परिणमन हुआ नहीं। उसके बिना ऐसे क्रियाकाण्ड के शुभभाव जरा भी आत्मा को लाभ का कारण नहीं, नुकसान का कारण है। कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : संसार तो न बढ़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं ही संसार है। उसका बढ़ना था कहाँ? वह स्वयं ही संसारभाव है। स्वाध्याय का भाव, आहाहा! अपवास का भाव—स्वयं ही राग है और संसार है। रागरहित चीज़ है, ऐसा स्वरूप आत्मा का जिसे अनुभव, जिसे आनन्द का स्वाद आया नहीं, आहाहा! आनन्द के भाव को जिसने चखा नहीं अर्थात् कि उसे आत्मा में विश्वास आया नहीं कि यह आनन्द, वह आत्मा। इसलिए उसकी दृष्टि अकेले क्रियाकाण्ड में ही वर्तती है। आहाहा! समझ में आया?

सारे शरीर को क्लेशदायक... ऐसा कहा न? **महा उपवास...** देखो न! अभी कितने महीने-महीने के उपवास, परन्तु मर गये दो, तीन अभी। सहन नहीं होता, सम्यग्दर्शन तो है नहीं, धर्म तो है नहीं कुछ। यह अपवास करके खींच-खींचकर, न खिंचे तो मर जाये—देह छूट जाये, हो गया। आहाहा! अरे! इसने जीव को अपना क्या करना चाहिए, उसकी खबर नहीं होती। अरे! संथारा करो, कहते हैं। किसका संथारा (जहाँ) भान न हो आत्मा का? मूलचन्दभाई! परन्तु सब मुम्बई नगरी वह... हो-हा... हो-हा... करे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग, वह तो आत्मा का अनुभव होकर... वह तो श्वेताम्बर में कल्पित बात बनायी है। किसी का ऐसा हो, परन्तु उसे आत्मा का आनन्द का अनुभव उग्र होता है, उसे तपस्या और धर्म कहते हैं।

अपने आ गया न! तप की व्याख्या नहीं आयी? संयम, नियम, तप। आ गया या

नहीं ? वह तप। **आत्मा को आत्मा में आत्मा से धार-टिका-जोड़ रखे, वह अध्यात्म और वह अध्यात्म, वह तप है।** हड्डियाँ सूख गयीं और खड़के, उसमें क्या ? हमारे सुखलालजी तप और अपवास बहुत करते थे। अठ्ठम-अठ्ठम के पारणा, हों ! अठ्ठम-अठ्ठम के चतुर्विध आहार त्याग। सोलह महीने। तीन दिन और चार रात पानी की बूँद भी नहीं। सुखलालजी तपस्वी थे सम्प्रदाय में। पहले चौदह महीने छठ—दो दिन और तीन रात्रि की पानी की बूँद नहीं। ऐसे चौदह महीने। फिर तीन दिन और चार रात्रि, ऐसे सोलह महीने पानी की बूँद नहीं। ८० में गुजर गये। सुखलालजी थे।

फिर नरसीभाई आये थे। नरसी डॉक्टर आये, दर्शन करके चले गये। तब बहुत माहात्म्य था न, उपवास बहुत करे न। और बैठे, विचारना, हों ! परन्तु वस्तु की खबर नहीं इतनी। बैठे विचार में अन्दर। कोई तूफान दूसरा कुछ नहीं। लोग बहुत आते थे। ८० के वर्ष की बात है। नरसीभाई आये थे। फिर पूछा सुखलालजी ने। कैसे डॉक्टर ! इसमें कितना समय लगता है देह की स्थिति में ? तब नरसीभाई जरा... अभी पूछा न धन्ना अणगार का। हाँ, ऐसा। ऐसे-ऐसे देखकर कहा, ऐसे खड़खड़ हो, कोयले की गाड़ी की तरह खड़खड़ हो, ऐसी खड़खड़ हो, तब यह देह छूटेगी, कहे।

यह कोयला का गाड़ा होता है न ! दृष्टान्त दिया है धन्ना अणगार का। ... कोलसा समझे न ? कोयला। वह दस-बीस मण भरा हो गाड़ा में, गाड़ा चले तो कैसा हो अन्दर ? खड़खड़ खड़खड़ हो। कोयला हो और या तलसरा का गाड़ा। तलसरा... तिल का। तिल का हो न। ऐसा दृष्टान्त देते हैं। तिल होता है न, उसका छिलका हो न, उसे ऊँचा रखे पहले। वह ऊपर रखे (जिससे) कुछ सूखकर नीचे न गिर जाये। सूख गये हों, तिल निकाल डाले हो और वह गाड़ा भरकर आता हो, वह खड़खड़ होती है। खड़खड़ाहट। तिल का छिलका हो न सूखा। तिल निकाल ले, फिर कुछ गाड़ा में नहीं डाला जाता कुछ। अभी देखा नहीं अपने ? तिल निकाले न, मुख ऊँचा रखे। नहीं तो सूखकर नीचे गिर जाये। निकाल ले फिर गाड़ा भरे। पूरा गाड़ा भरा, खड़.. खड़.. (होता है)।

इसी प्रकार शरीर जीर्ण हो, तब कहते हैं कि देह छूटेगी। ऐसा कहते हैं। यह ८०

की बात है। ४७ वर्ष हुए। अब देह छूटे उससे (क्या होता है)? उस वस्तु में से राग छूटकर निर्विकल्प अनुभव हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है और उसे धर्म होता है। बाकी सब थोथेथोथा है। ऐई! वापस माने यह कि यह सब करते हैं न, करते-करते होगा। अर्थात् मिथ्यात्व को अधिक पोसते हैं। समझ में आया? आहाहा! वह राग की क्रिया करते-करते शुद्ध-उपयोग होगा। समूल मिथ्यात्व को पोसते हैं। आहाहा! कठिन काम! इसने जीव को ठगा है न अनन्त काल से। दुनिया को ठगने का धन्धा किया है, ऐसे अपने को ठगने का धन्धा किया। मूलचन्दभाई! कहते हैं, ऐसे तपने से और ऐसे अध्ययनपटुता—सदा शास्त्रपठन करे, ऐसा। तो भी उसे धर्म नहीं। आहाहा! शास्त्र-अध्ययन करे तो धर्म नहीं, अपवास करे तो धर्म नहीं। आत्मा को ज्ञान की पर्याय में समीप बनावे, उसे धर्म है। कठिन बात। समाज में तो बड़ा... प्रगटे जो यह बाह्य का... आहाहा!

(४) वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्तिस्वरूप सतत मौनव्रत से... मौन ले लेवे चौबीस घण्टे, अड़तालीस घण्टे। चौबीस के दो व्रत। **क्या किंचित् भी उपादेय फल है?** ....यह तो जैन में भी दो-दो वर्ष मौन, छह महीने मौन। मौन, एकेन्द्रिय तो मौन ही है। आहाहा! पहले तो आ गया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञनी बोले तो भी मौन है, चले तो भी स्थिर है। समयसार नाटक में आ गया है। समझ में आया? क्योंकि क्रिया, क्रिया के स्थान में है; आत्मा के स्थान में वह नहीं। **वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्तिस्वरूप...** निरन्तर मौनव्रत, ऐसा वापस। यह सब बोल कहे न ऊपर? जरा भी उपादेय फल है नहीं। जरा भी उसमें शान्ति और आनन्द, धर्म हो, ऐसा कुछ है? जरा भी नहीं।

पाठ में आ गया न, '**किं काहदि**' क्या हो उसे? अर्थात् धूल भी नहीं होता, ऐसा। वह 'क्या हो' इसका अर्थ यह। '**किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो। अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स**' समकितदर्शन और अनुभव की दृष्टि बिना... अनुभव, समकित, वही समता है। जिसमें पुण्य और पाप के भाव से भिन्न ऐसा भगवान आत्मा वीतरागीपरिणति में—परिणाम में जिसे प्रगट हुआ है, यह आत्मा। ऐसी वीतरागी परिणति को समाधि कहते हैं। वह समाधि कहो या समता कहो। ऐसी समाधि और समता बिना ऐसे संथारा दो-दो महीने के करे, समझ में आया? अपवास छह-छह महीने के करे, जिन्दगीपर्यन्त मौन रहे—उसमें जरा भी आदरणीय फल नहीं है।

अर्थात् मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है। उसमें मोक्ष को कुछ... कुछ मदद मिले, (ऐसा) जरा भी नहीं है। आहाहा! भगवान स्वयं शान्त समाधि का स्वरूप ही है। ऐसे समाधि भगवान आत्मा... पहले आ गया है। यह निश्चय समाधिस्वरूप ही है, समतास्वरूप है, वीतरागस्वरूप है। ऐसे आत्मा को अनुभव किये बिना, ऐसे आत्मा को अन्तर में दृष्टि में लिये बिना, ऐसे आत्मा को ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाये बिना, जो कुछ क्रियाकाण्ड किया जाता है, वह सब निरर्थक है। आत्मा को जरा भी धर्म का कारण नहीं है।....

चौबीस है न। १२४ गाथा चलती है। सूक्ष्म बात है। कहते हैं, जब तक आत्मा में... शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है। उसका, पुण्य और पाप के विकल्प—राग से रहित, पर से रहित और अपने अतीन्द्रिय आनन्दसहित ऐसा दृष्टि में सम्यक् अनुभव न हो, ऐसी सम्यक्-दृष्टि जब तक न हो, तब तक जितनी क्रिया की जावे पंच महाव्रत, छह-छह महीने के अपवास, शास्त्र-अध्ययन—वह सब धर्म के लिये निरर्थक हैं। वह धर्म नहीं। है न? आ गया न! **मौनव्रत से क्या किंचित् भी उपादेय फल है?** लो, किंचित्। **(मोक्ष के साधनरूप फल किंचित् भी नहीं है।)** आत्मा अन्तर ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। चैतन्यबिम्ब प्रभु का अनुभव और दृष्टि, आश्रय बिना जितने क्रियाकाण्ड शुभपरिणाम के, पंच महाव्रत के, अपवास के, मौन व्रत के—वह सब क्रिया बन्धन का कारण है। मोक्ष का कारण बिल्कुल नहीं है। ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव फरमाते हैं। समझ में आया? अब योगीन्द्रदेव का दृष्टान्त देते हैं।

इसी प्रकार (श्री योगीन्द्रदेवकृत) अमृताशीति में (५९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

गिरिगहनगुहाद्यारण्यशून्यप्रदेश-
स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा।
प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धिः,
मृगय तदपरं त्वं भोः प्रकारं गुरुभ्यः॥

इसमें '**गुरभ्यः**' शब्द है न! उसमें दूसरा शब्द है। '**स्वसारं**' शब्द है। यह कल

देखा था कि उसमें क्या है। उसका श्लोक है, वह मूल श्लोक। '**गुरभ्य:**' है उसमें और 'स्वसारं' है। श्लोक, हों! क्या कहते हैं? देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाराज संवत् ४९ में हुए, वे कहते हैं और उनकी पुष्टि में आचार्य का दृष्टान्त है। '**गुरभ्य:**' स्वसारं है। '**गुरभ्य:**' नहीं। उसमें है मूल में 'स्वसारं'। उसमें नहीं, इसमें है। नियमसार के मूल... वह शीतलप्रसादजी, उसमें 'स्वसारं' है।

पर्वत की गहन गुफा आदि में अथवा वन के शून्य प्रदेश में रहने से,... उससे क्या लाभ? जिसको आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, अनुभव नहीं... जंगल में रहे पशु, गाँव में रहे ढोर—समान हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्दर आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु—सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द की चीज़ आत्मा है, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द। उसकी जिसको दृष्टि, अनुभव नहीं और अनुभव बिना अकेला क्रियाकाण्ड करे, तो कहते हैं कि **इन्द्रियनिरोध से, ध्यान से,...** ध्यान लगावे, परन्तु किसका ध्यान? भान तो है नहीं वस्तु का। राग का ध्यान करे क्रियाकाण्ड में।

तीर्थसेवा... तीर्थस्थान में वास करने से क्या लाभ है? तीर्थ तो यहाँ है भगवान! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा स्वयं निजस्वरूप तीर्थ है। उसका तो अनुभव और दृष्टि नहीं, उसका तो स्वीकार नहीं और बाहर की तीर्थसेवा से आत्मा को कुछ धर्म नहीं। ऐ... मूलचन्दभाई! पाठ है या नहीं अन्दर? **तीर्थसेवा से...** तीर्थ के स्थान में वास करने से, **पठन से...** शास्त्र के पठन से, **जप से...** जप... जप... भगवान... भगवान... भगवान... अरिहन्त... अरिहन्त... अरिहन्त... और **होम से ब्रह्म की (आत्मा की) सिद्धि नहीं है;...** और होम करने से... स्वाहा। यह सब क्रियाकाण्ड में शुभराग का विकल्पभाव है, यह धर्म नहीं। आहाहा! भारी कठिन। लोगों को सत्य वस्तु क्या है, उसकी खबर नहीं और बाहर में मान बैठे कि हम धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। ऐसा तो अनन्त बार किया। समझ में आया? **पठन से, जप से तथा होम से... सिद्धि नहीं है;...** उससे मुक्ति होती नहीं।

हे भाई! तू गुरुओं द्वारा उससे अन्य प्रकार को ढूँढ़। भगवान! यह सब क्रियाकाण्ड, महाव्रत, यात्रा, भक्ति, पूजा, दान, दया—यह तो सब शुभराग की क्रिया है। उससे मुक्ति

नहीं है, उससे धर्म नहीं है। आहाहा! योगीन्द्रदेव कहते हैं न! योगीन्द्रदेव मुनि हुए हैं दिगम्बर सन्त। **इसलिए, हे भाई! तू गुरुओं द्वारा...** धर्मी द्वारा... धर्मात्मा ऐसे कहेंगे कि राग से रहित तेरी चीज़ भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? मूलचन्दभाई! यह सब अभी तक ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली गयी। सेठिया दाँत निकालते हैं, परन्तु ऐसा का ऐसा गँवाया और उसका अनुमोदन किया। ओहोहो! कहो, समझ में आया?

हे प्रभु! भाई! कहा। स्पष्टीकरण किया है न! **तू गुरुओं द्वारा...** गुरु धर्मात्मा ज्ञानी ऐसा कहेंगे कि पुण्य की क्रिया से पार आत्मा भिन्न है, उसका तू अनुभव कर, तो तुझे धर्म होगा। नहीं तो तुझे धर्म-बर्म होगा नहीं। आहाहा! 'यम-नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो...' श्रीमद् ने बनाया है। 'यम नियम संयम...' पाँच महाव्रत पाले, नियम लिया, इन्द्रिय का दमन किया। 'वह साधन बार...' 'यम नियम संयम आप किये, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो, वनवास रह्यो...' आया न वनवास?

'वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो,
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सु तार भयो,
जप भेद जपे तप त्योंही तपे, उरसेंही उदासी लही सबपें,
सब शास्त्रनके नय धारि हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये,
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो,
अब क्यों न विचारत न है मनसे, कछु और रहा उन साधन से?'

बिन सद्गुरु... देखो! आया गुरु। 'बिन सद्गुरु कोय न भेद लहे,...' ऐसी बात है। 'बिन सद्गुरु (कोई) न भेद लहे, मुख आगल है कह बात कहे?' भीखाभाई का कुछ आया नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि धर्मात्मा सन्त ऐसा उपदेश में कहते हैं कि ऐसी पंच महाव्रत की, तीर्थ की सेवा आदि, भक्ति, पूजा, दान, व्रत, दयाभाव आदि सब रागभाव है। यह धर्म नहीं। धर्म (तो) राग से भिन्न आत्मा चिदानन्द प्रभु का नाम अनुभव दृष्टि करना, वह धर्म है। समझ में आया? आहाहा! लो!

१२४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं: —
कठिन बात है। मूल उसने अपनी चीज़ की महत्ता कभी जानी नहीं और बाह्यलक्ष्यी सब

क्रियाकाण्ड, बस यह किया और मैं निवृत्त हुआ, स्त्री-कुटुम्ब छोड़ दिया, नग्न हो गया, पंच महाव्रत पालते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि वह सब क्रियाकाण्ड धर्म नहीं। धर्म तो, अपना आत्मा अखण्डानन्द की मूर्ति वीतरागस्वरूप का अन्तर में आश्रय करके, ध्येय बनाकर वीतरागपर्याय प्रगट हो, उसका नाम जैनदर्शन में धर्म कहने में आता है। उसको—राग की क्रिया को कोई धर्म कहे, तो जैनदर्शन की मान्यता उसको नहीं है, (वह) मिथ्यादृष्टि है। वीतरागभाव से धर्म कहे, वह जैनदर्शन है। राग की क्रिया से धर्म कहे, वह जैनदर्शन है? भीखाभाई! ऐसी बात है, हों! यह तुम्हारा चिरंजीवी है न? आहाहा! यहाँ कहते हैं... आहाहा!

अनशनादितपश्चरणैः फलं
समतया रहितस्य यतेर्न हि।
तत इदं निजतत्त्वमनाकुलं
भज मुने समताकुलमन्दिरम्॥२०२॥

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि—दिगम्बर सन्त, जंगल में बसनेवाले—वनवासी सन्त और अन्दर में आनन्दकन्द में रमनेवाले... आहाहा! मुनि ऐसा कहते हैं, **वास्तव में समता रहित यति को अनशनादि तपश्चरणों से फल नहीं है;...** अपवास करना, ऊनोदरी करना, रसपरित्याग करना, भगवान की भक्ति और विनय—सब उसमें आया। क्यों अनशन, ऊनोदरी आया न उसमें? प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय, ध्यान—सब आया। आत्मा वीतरागस्वरूप आत्मा है, ऐसी दृष्टि में—पर्याय में वीतरागता प्रगट न हो, तब तक अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय आदि उसका फल... अनशनादि, तपश्चर्यादि से फल नहीं। उसमें धर्म का फल कुछ है नहीं। लो, अनुशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग। आहाहा!

वीतराग जैनधर्म अलौकिक है। उसके सिवा कहीं है नहीं। दिगम्बर सन्त मुनि कहते हैं, जिसको आत्मा पुण्य-पाप के राग से रहित है, ऐसी समता अन्तर के आश्रय से प्रगट हुई नहीं, ऐसे जीव को अनशनादि बारह प्रकार के तप का फल नहीं है, उसके कुछ लाभ—धर्म है नहीं। आहाहा! कठिन काम भाई कठोर! एक अपवास करे, वहाँ

हो गया धर्म, निर्जरा। 'तपसा निर्जरा च।' यह तपस्या नहीं, यह तो लंघन है। तपस्या तो उसको कहते हैं कि आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द में आत्मा रहता है, ऐसा जो अध्यात्मभाव उसको भगवान तप कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन! जगत् को ऐसा लगे कि अररर! तब व्यवहार करते हैं... अरे! निश्चय बिना व्यवहार था ही कहाँ? वह तो अज्ञानी का व्यवहार, वह अकेला बन्ध का ही कारण है, धर्म का किंचित् कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया?

हे मुनि! मुनि मुनि को कहते हैं। मुख्य मुनि हैं न, गौण में सब जैन श्रावक आदि। **समता का कुलमन्दिर...** आहाहा! क्या कहते हैं? शुभ-अशुभ जो विकल्प—रागभाव है, शुभराग और अशुभराग—उससे रहित अपनी पर्याय में वीतरागता प्रगट हो, वह समताभाव है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह मोक्ष का मार्ग है। **समता का कुलमन्दिर...** ऐसी समता का मूल मन्दिर भगवान आत्मा है। आहाहा! **उत्तम घर; वंशपरम्परा का घर।** देखो! ऐसा यह अनाकुल निजतत्त्व, उसे भज। आहाहा! भाई! तेरा अन्तर स्वरूप तेरी चीज़ त्रिकाली अविनाशी आनन्द और अविनाशी ज्ञान से भरा हुआ आत्मा है। ऐसे आत्मा को भज। लो, भगवान को भज और नवकार को भज, ऐसा नहीं कहा। वह तो सब विकल्प है। हो, आता है। अशुभ से बचने को आता है, परन्तु धर्म नहीं। आहाहा! जेठाभाई! यह सब श्वेताम्बर (आदि) अभी चिल्लाहट मचा जाये।

विधि से करना, विधि से आराधना.... आहाहा! भाई! तुझे तेरी चीज़ अन्दर पुण्य और पाप के शुभ-अशुभ उपयोग से रहित अनादि-अनन्त अविनाशी आनन्दतत्त्व है। ऐसा आनन्दतत्त्व वर्तमान वीतरागीपर्याय का कुलमन्दिर है। वह वीतरागीपर्याय का घर है। दया, दान, महाव्रत का विकल्प, वह समता का घर नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **समता का कुलमन्दिर...** परम्परा से वीतरागभाव अन्दर, अकषायस्वभाव त्रिकाली भगवान भाव, वह समता अर्थात् निजघर है। समता वहाँ से प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। कोई निमित्त से और व्यवहार की क्रिया से समता उत्पन्न नहीं होती। ओहोहो! मुनिराज ने कितनी स्पष्ट की है! समझ में आया? भगवान आत्मा भगवानस्वरूप अन्दर है। भग अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी से भरा हुआ है। समतारूपी वीतरागी परिणाम, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चयपरिणाम—इस परिणाम का निजघर आत्मा

है, उसका कुलमन्दिर है। परिणाम का कुल वह है। कुल की परम्परा में से वह पर्याय आती है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! समझ में आया?

थोड़ा, परन्तु सत्य होना चाहिए। असत्य के बड़े ढ़ेर करे, उसमें क्या काम तुझे हुआ? नौवें ग्रैवेयक... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' छहढाला में आता है। मुनिव्रत धार... नग्न दिगम्बर अनन्त बार हुआ, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' नौवाँ ग्रैवेयक होता है। 'पै निज आतमज्ञान बिना...' परन्तु राग की क्रिया से भिन्न आत्मा के भान बिना, आत्मा के अनुभव बिना की वह क्रिया चार गति में रुलने की हुई। समझ में आया?

कहते हैं, **वास्तव में समता रहित यति...** जिसे वीतरागभाव अन्दर में प्रगट हुआ ही नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड में लवलीन है। यह अनशनादि तपश्चरणादि से कुछ फल नहीं है। उससे धर्म का किंचित् लाभ नहीं। **इसलिए हे मुनि!...** समता कहो या स्वभाव त्रिकाली भगवान, उसका समकित, उसका ज्ञान और उसका चारित्र, यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह समता। और निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का घर द्रव्य, उसका मूल घर आत्मा। आहाहा! सत्यार्थ—सत्य सम्यग्दर्शन, उसका घर आत्मा—निजघर आत्मा। आहाहा! निश्चय सम्यक्—सत्यदर्शन, उसका घर व्यवहार समकित या राग की मन्दता उसका घर नहीं है। आहाहा! कठिन काम ऐसा। वे भाई गये भीलवाड़ावाले? गये होंगे। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात थोड़े में कह दी है।

भगवान! तेरी चीज़ में तो, अन्तर अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु तू और अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द तू है। उस चीज का अवलम्बन लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसका नाम समता और उस समता का कुलमन्दिर द्रव्य। आहाहा! समझ में आया? यह स्थान वह। उस स्थान में से समता, ज्ञान, दर्शन, चारित्र पकते हैं। निमित्त की अनुकूलता से और राग की मन्दता की क्रिया से समता अर्थात् मोक्षमार्ग नहीं पकता। मोक्षमार्ग का वह घर नहीं। आहाहा! यह देह तो मिट्टी—धूल है, यह पुद्गल है। यह आत्मा है? कर्म जड़ है, वाणी जड़ है। अन्दर दया, दान, भक्ति, व्रत का परिणाम होता है, वह शुभपरिणाम

विकार है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग-वासना वह पाप विकार है। दोनों से रहित आत्मा है।

ऐसा वीतरागी परिणामस्वरूप—वीतरागी भावस्वरूप, उसके आश्रय से जो मोक्षमार्ग(रूप) परिणाम प्रगट हो, उसका वंश परम्परा का घर द्रव्य है। 'वंश परम्परा का घर' लिखा है। उसके वंश परम्परा का घर वह है। तेरी परम्परा का घर मन्दराग का व्यवहार और उसमें से निश्चय समकित होगा—ऐसा वंश परम्परा का घर है ही नहीं। भाषा कैसी ली, देखो! समझ में आया? अरेरे! इसने कभी अपनी निजदया की ही नहीं। अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार में भटकते हुए, अनन्त बार दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु भी हुआ और बारह व्रतधारी श्रावक अज्ञानी अनन्त बार हुआ। भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय अनाकुल शान्तरस का पिण्ड आत्मा है, उसका अवलम्बन—आश्रय कभी लिया नहीं। उसके अवलम्बन और आश्रय बिना सम्यग्दर्शन—धर्म की दशा कभी प्रगट नहीं होती। यह धर्म की दशा प्रगट होने का मूल कुल... मूल कुल... मूल—उसकी वंश परम्परा, वह आत्मा द्रव्य है। आहाहा!

यह अनाकुल निजतत्त्व... आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहा? पंच महाव्रत, दया, दान, व्रत आदि के विकल्प तो आकुलता है। तो आकुलता में से अनाकुलपर्याय कैसे प्रगट हो? धर्म की पर्याय तो अनाकुल है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो आनन्दमय है। आनन्दमय की पर्याय धर्म और मोक्ष का कारण है। इस आनन्दमय पर्याय का कुलमन्दिर—मूल मन्दिर—मूल घर—वंश परम्परा का स्थान आत्मा है। आहाहा! ऐ भीखाभाई! यह वास्तु-बास्तु घर नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तेरा घर तो अन्दर है न! तू शाश्वत् चीज़ आत्मा हो। आत्मा कोई नया उत्पन्न नहीं होता और आत्मा का नाश कभी नहीं होता। ऐसा आत्मा त्रिकाली अविनाशी ध्रुव, वह वर्तमान धर्म की पर्याय का कुलमन्दिर—वंश परम्परा का मन्दिर है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! धर्म कोई अपूर्व चीज़ है। अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र किया नहीं। एक सेकेण्डमात्र धर्म हो (तो) जन्म-मरण रहे नहीं। मूलचन्दभाई! आहाहा! थोथा ऊपर से किया और माना कि हम धर्म करते हैं। राजमलजी! क्या है यह? ...लालजी

गये ? आहाहा! तेरा निजघर क्या है (ऐसी) तेरी खबर नहीं और परघर की क्रियाकाण्ड में लवलीन (है तो) धर्म का कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव धर्मसभा में—समवसरण में इन्द्रों और गणधरों के बीच यह कहते थे। वह बात यहाँ आचार्य महाराज स्वयं कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? पंच महाव्रत और अनशन आदि की क्रिया तो बहिर्मुखी दशा है और वीतरागी परिणाम जो सम्यग्दर्शन आदि हो, वह तो अन्तर्मुख तत्त्व का परिणाम है। समझ में आया ?

ऐसा **अनाकुल निज तत्त्व...** भगवान! (बाह्य) तत्त्व, वह तेरा निज तत्त्व नहीं। अनशन, उपवास, रागादि मन्दता, पठन-पाठन आदि वह कोई निजतत्त्व नहीं, वह तो राग है। राग तो आस्रव है, आहाहा! **अनाकुल निज तत्त्व, उसे भज।** भगवान! तेरी चीज़ तेरे पास है। तू ही है अनाकुल। उसके सन्मुख होकर उसकी सेवा कर, उसको भज। अनाकुल निज तत्त्व, वह वस्तु और भजन करना अर्थात् एकाग्र होना, वह धर्म। आहाहा! वह पर्याय है। अनाकुल निज तत्त्व, वह त्रिकाली वस्तु और उसमें एकाग्र होना आनन्द में, निर्मल पर्याय प्रगट हो, उसे यहाँ 'भज' कहा जाता है। उसे भज तो निर्मल पर्याय होगी, ऐसा कहते हैं। भगवान को भजने से कहीं निर्मल पर्याय नहीं होती। आहाहा! कठिन काम भाई कठोर! तब हमारे ऐसा कुछ करना नहीं न ऐसा ? कोई ऐसा पूछता है। अशुभभाव से बचने को ऐसा भाव आता है, परन्तु वह धर्म नहीं। उसको धर्म मानना छोड़ दे। धर्म आत्मा के आश्रय से होता है, वह निर्णय कर। समझ में आया ? ओहोहो! अभी तो प्ररूपणा सब बदल गयी है। भगवान के वीतरागमार्ग के बदले रागमार्ग में धर्म। मूलचन्दभाई! १२४ (गाथा) हुई, लो। १२५।

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे॥१२५॥

अब सामायिक किसे होती है, उसकी बात करते हैं। यह सामायिक... सामायिक करते हैं न! दो घड़ी बैठे न, 'णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं।' सामायिक हो गयी। यह सामायिक नहीं। सामायिक में तो... भजन करना, बोलना, अन्दर स्मरण करना (ऐसा) विकल्प, वह भी राग है। उससे रहित आत्मा आनन्दमूर्ति में एकाग्र स्थिर हो जाये और वीतराग परिणाम प्रगट हो, उसका नाम परमात्मा सामायिक कहते हैं। उसके अतिरिक्त

सब असामायिक है। दो घड़ी बैठकर कहे 'णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं।' हो गयी सामायिक, लो, दो घड़ी हो गयी। पण्डितजी! यहाँ कहते हैं, यह सामायिक नहीं है।

सावद्य-विरत, त्रिगुप्तमय अरु पिहितइन्द्रिय जो रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२५॥

केवली परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान समवसरण में ऐसी सामायिक कहते हैं।

टीका: — सर्व सावद्य व्यापार से रहित... पुण्य-पाप के जो परिणाम हैं, वे सब सावद्य हैं—दोष हैं और **त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त...** मन, वचन और काया का लक्ष्य छोड़कर, **समस्त इन्द्रियों के व्यापार से विमुख...** पाँचों इन्द्रियों के ओर का झुकाव का रुकाव, पाँचों इन्द्रियों के ओर का झुकाव, उसका रुकाव... आहाहा! **उस मुनि को सामायिकव्रत स्थायी है,...** ऐसा धर्मात्मा अन्तर ज्ञायकस्वभाव भगवान, उसमें लीन रहता है, वीतरागभाव प्रगट करके द्रव्य का आश्रय किया है, उसको भगवान त्रिलोकनाथ 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं..' 'केवली पण्णत्तो धम्मो' यह। मांगलिक में पहाड़े बोलते जाये। 'अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवली पण्णत्तो... अरिहंता लोगुत्तमा... अरिहंता शरणं...' अरिहंत का कहा हुआ धर्म (अर्थात्) 'केवली पण्णत्तो धम्मो।'

'केवली पण्णत्तो धम्मो' है क्या? केवली भगवान ने कहा धर्म, वह तो शुभ-अशुभ क्रियाकाण्ड के राग से रहित अपने त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के आश्रय से वीतरागता प्रगट हो, उसका नाम 'केवली पण्णत्तो धम्मो' कहा जाता है। व्यवहार के क्रियाकाण्डी को तो ऐसा लगे कि यह तो सब उत्थापते हैं, कहते हैं। आहाहा! अभी तक क्या किया? यह सब व्यवहार का पोषण किया होगा या नहीं? यह कहाँ खबर थी? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्दर आत्मा, वह तो स्वाभाविक—सहजस्वरूप आनन्द और ज्ञान और शान्ति का सागर है। उसका अन्तर आश्रय करके, अन्तर्मुख होकर जो दृष्टि, ज्ञान और शान्ति प्रगट हो, उसका नाम भगवान ने सामायिक कही है। वह सामायिक सच्ची, बाकी सामायिक झूठी। आहाहा! सामायिक तो बहुत की होगी तुमने? उल्टा? आहाहा!

भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी चीज़ क्या है और चीज़ के अवलम्बन से क्या प्रगट होता है और पर के अवलम्बन से क्या प्रगट होता है—किसी चीज़ की खबर नहीं। बाहर के अवलम्बन से तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, धन्धे के आश्रय से अशुभराग; देव-गुरु-शास्त्र-भक्ति-पूजा के आश्रय से शुभराग। दोनों राग है।

मुमुक्षु : दो में से कौन सा राग.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रागरहित आत्मा के आश्रय से जो वीतराग पर्याय उत्पन्न हो, उसको यहाँ समाधि कहते हैं, उसको यहाँ सामायिक कहते हैं, उसको यहाँ मोक्षमार्ग कहते हैं, उसको तप कहते हैं, उसको समता कहते हैं। आहाहा! एक-एक बात में...

तथा **समस्त इन्द्रियों के व्यापार से विमुख है, उस मुनि को सामायिकव्रत स्थायी है,...** स्थायी अर्थात् सच्ची सामायिक है। बाकी सब झूठ है। अपने भगवान आत्मा में सन्मुख, अन्दर वीतरागभाव में सन्मुख होकर जो परिणाम शान्ति, वीतरागता, समता का प्रगट हो, उसका नाम भगवान सच्ची सामायिक कहते हैं। सत्य सामायिक। स्थायी अर्थात् सत्य। समझ में आया? वह असत्य, ऐसा। स्थायी अर्थात् सत्य सामायिक, सच्ची सामायिक। इसके अतिरिक्त झूठी सामायिक है। ऐसा मार्ग वीतराग का है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव केवली परमात्मा का यह हुकम है। यह न समझे और धर्म मान ले, अनादि से भटकता है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ७, रविवार, दिनांक - २६-९-१९७१
गाथा-१२५-१२६, श्लोक-२०३, प्रवचन-१३६

नियमसार, परम-समाधि का अधिकार। समाधि कहो या मोक्ष का मार्ग कहो या सामायिक कहो—सब एक ही चीज़ है। सामायिक की व्याख्या करते हैं। केवली भगवान के शासन में सामायिक किसे कही है और सामायिक कैसी होती है, उसका स्वरूप है।

यहाँ (इस लोक में)... दूसरा पैराग्राफ। (गाथा) १२५। **जो एकेन्द्रियादि प्राणीसमूह को...** एकेन्द्रियादि प्राणी, उसके समूह को अर्थात् बहुत एकेन्द्रिय, दो इन्द्रियादि। **क्लेश के हेतुभूत समस्त सावद्य के व्यासंग से विमुक्त है,...** एकेन्द्रियादि प्राणी को मारने के परिणाम से रहित (और) उनकी आसक्ति से भी रहित... दृष्टि में तो उनसे रहित है... परप्राणी को मारने का जो सावद्यभाव निमित्त, उससे सम्यग्दृष्टि रहित ही है। आत्मा... सम्यग्दर्शन भी एक सामायिक है, सम्यग्ज्ञान भी एक सामायिक है। और फिर सावद्ययोग की निवृत्ति और शुभभाव की भी निवृत्ति अर्थात् कि आसक्ति की निवृत्ति, आहाहा! उसका नाम सामायिक कहा जाता है। समझ में आया इसमें? पहली सामायिक तो उसे वह होनी चाहिए कि आत्मा अत्यन्त वीतरागमूर्ति समता का पिण्ड है। ऐसी दृष्टि में समभाव की सम्यग्दर्शनदशा प्रगट हो, उसे सम्यग्दर्शन सामायिक कहा जाता है और उसका—आत्मा का ज्ञान, वह भी सम्यग्ज्ञान सामायिक कहा जाता है। यहाँ इससे उपरान्त की बात है।

जो एकेन्द्रियादि प्राणी को क्लेश... को निमित्त... समस्त सावद्ययोग निमित्त है न? **व्यासंग से विमुक्त है,...** गाढ संग—आसक्ति से छूट गया है। **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार के अभाव के कारण...** वहाँ अशुभ तो छूटा है, परन्तु शुभ और अशुभ विकल्प अर्थात् राग उसके व्यापार के **अभाव के कारण त्रिगुप्त है।** मन-वचन और काया, उनके लक्ष्य से होनेवाले शुभाशुभभाव से सम्यग्दृष्टि रहित ही

है, परन्तु सामायिक में उनकी आसक्ति से रहित है, ऐसा कहना है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? सम्यग्ज्ञान में, सम्यग्दर्शन में आत्मा पूर्ण आनन्द और समता का स्वभाव, ऐसी जो अनुभव होकर प्रतीति (हुई), वह दृष्टि की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन में पुण्य-पाप के आसक्ति के भाव से रहित ही है। समझ में आया?

अब यहाँ स्थिरता की अपेक्षा लेनी है। अपना जो समभाव, उसका त्रिकाली स्वरूप, उसको अवलम्बकर हुआ दर्शन-ज्ञान और उसका उग्र आश्रय लेकर शुभ-अशुभ परिणाम का संग अर्थात् आसक्ति छूट गयी है और असंग परिणमन जिसका सामायिक का हुआ है, उसे सामायिक जैनशासन में कहा जाता है।

मुमुक्षु : शब्द समझना कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द समझना कठिन है, कहते हैं। यह तो सीधी सादी भाषा है। देखो न! व्यासंग कहा है न, इसका अर्थ नीचे है न। **गाढ संग; संग; आसक्ति।** गाढ संग कहो या आसक्ति कहो या अकेला संग कहो। अर्थात् कि वस्तु भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञायकस्वभाव के सन्मुख दृष्टि होकर राग-द्वेष के विकल्पों से विमुक्त दृष्टि हुई है, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान सामायिक कहा जाता है। समझ में आया?

अब यहाँ तो यह दृष्टि और ज्ञानसहित, जब पुण्य-पाप के परिणाम में आसक्ति थी, अस्थिरता थी, उनका संग था, वह संग छोड़कर आत्मा में असंगरूप परिणमना, उसका नाम सामायिक कहा जाता है। मूलचन्दभाई! यह कितनी सामायिक की अभी तक? बहुत की। यह सब की होगी न वाड़ा की। आहाहा! बात तो न्याय से है न! आत्मा जो वस्तु है, वह तो वीतरागस्वरूप ही है। सामायिक में 'समता का आय—लाभ' ऐसा है न! सम-आय, 'इक' तो प्रत्यय है। समता का लाभ अर्थात् क्या? सामायिक का अर्थ, समता का लाभ, असमता का नाश। अर्थात् क्या? कि यह आत्मा अत्यन्त अकषायस्वभाव, अकषायस्वभावरूप समता के स्वभाव से भरपूर तत्त्व आत्मा है। ऐसे तत्त्व को... पर निमित्त की, राग की और एक समय की पर्याय की रुचि छोड़कर, त्रिकाल वस्तु की रुचि होना और उसका परिणमन ज्ञान का होना। वह जो राग का परिणमन एकत्व में था, वह छूटकर ज्ञान का परिणमन सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप से होना, वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान की सामायिक हुई। समझ में आया?

पश्चात् स्वरूप में दृष्टि होने पर भी, शुद्धस्वरूप का स्वीकार होने पर भी, आसक्ति का भाव जो रहा है, वह दृष्टि की अपेक्षा से तो उससे मुक्त है, परन्तु स्थिरता की अपेक्षा से वहाँ अस्थिरता कही है। आहाहा! वह आसक्ति का अभाव और स्थिरता का भाव, उसे सामायिक कहते हैं। सामायिक तो सब शब्द रटे हुए हैं। सम्प्रदाय में सामायिक की और प्रौषध किये और प्रतिक्रमण किये। एक सेकेण्ड भी सामायिक करे, उसे जन्म-मरण रहता नहीं। ऐसी सामायिक कहना किसे, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? सामायिक अर्थात् सम-आय (अर्थात्) समता का लाभ। वीतरागीभाव का लाभ, उसका नाम सामायिक। अब उस वीतरागीभाव का लाभ किस प्रकार हो? कि आत्मा जो वस्तु है, स्वयं त्रिकाली अविनाशी आत्मा, उसमें अविनाशी वीतरागस्वभाव भरा है। समझ में आया? ऐसी सामायिक तो सुनी न हो इसने। सामायिक की, पाँच-आठ वर्ष का लड़का पंचरंगी कर लो, पाँच सामायिक एक आसन पर लो। दो भाई अब उसे पेड़ा आधा सेर या सेर। आहाहा!

भाई! सामायिक किसे कहना? यहाँ देखो न! '**इदि केवलिसासणे भणियं**' केवली के शासन में—भगवान के मार्ग में ऐसा कहा है। 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं।' मांगलिक में आता है। पहाड़ा आवे न, शब्द तो आवे। भाव कुछ समझे नहीं। कहते हैं कि जो एकेन्द्रिय आदि प्राणी को मारने का भाव... मार सकता है, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। उसका जो पापभाव था, उससे तो सम्यग्दृष्टि मुक्त तो है, दृष्टि की अपेक्षा से, परन्तु अब वहाँ स्थिरता आत्मा में करनी है, इसलिए सावद्ययोग से निवर्तितित और **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त काय-वचन-मन के व्यापार के अभाव...** शुभभाव और अशुभभाव दोनों का अभाव। शुभ-अशुभभाव की आसक्ति है। (आसक्ति) होने पर भी सम्यग्दर्शन को दिक्कत नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो 'व्यासंग' शब्द उठा न, उसमें से सब उठा। आसक्ति है न यह! सम्यग्दर्शन में राग की आसक्ति होती है, एकत्वबुद्धि नहीं होती। परन्तु सामायिक में तो राग की एकत्वबुद्धि टूटने के उपरान्त आसक्ति का भी जिसमें अभाव है। आहाहा! समझ में आया? भीखाभाई!

मुमुक्षु : जीवदया के परिणाम, वे आसक्ति में जायेंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आसक्ति में जायेंगे। जीवदया के भाव, सत्य बोलने का भाव, ब्रह्मचर्य का भाव, वह सब शुभभाव की आसक्ति में जाते हैं।....भाई! कैसी सामायिक सुनी थी? कैसी सामायिक (सुनी) थी? मैंने तो ऐसा पूछा न!

केवलीशासन अर्थात् केवली की शिखा में, केवली के मार्ग में, उनके—केवली के उपदेश में सामायिक ऐसी कही गयी है। आहाहा! पहली गाथा है न! अभी पहली गाथा है 'केवलीशासन' की। फिर अभी आता है अब। समझ में आया? यह तो सवेरे-शाम सामायिक करने बैठे। किसकी? शुभभाव कदाचित् हो और उसके साथ एकत्वबुद्धि पड़ी है, तो मिथ्यात्व का भाव है। समझ में आया? देह की क्रियायें मैं कर सकता हूँ (ऐसा माने) तब तक अजीव को जीव मानता है। अभी जीव को जीव मानता नहीं, वहाँ जीव में स्थिरता की क्रिया उसे होगी कहाँ से? समझ में आया? जीव को जीव मानता नहीं। जीव अर्थात् क्या? जीव अर्थात् आनन्द और ज्ञान का वीतरागी स्वभाव का पिण्ड, वह जीव। अब उस जीव की जब तक खबर नहीं, तब तक उसमें ठहरने की क्रिया—सामायिक आवे कहाँ से? समझ में आया?

त्रिगुप्त (तीन गुप्तिवाला) है और स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्र नामक पाँच इन्द्रियों द्वारा उस-उस इन्द्रिय के योग्य विषय के ग्रहण का अभाव होने से बन्द की हुई... इन्द्रियाँ रुक गयी हैं सब, ऐसा। '**पिहिद**' शब्द है न? '**पिहिदिंदिओ**' इन्द्रियाँ काम करना बन्द हो गयी हैं। विकल्प और इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य बन्द हो गया है। आहाहा! कहो, समझ में आया? शान्तिभाई! कैसी ऐसी सामायिक? यह सब सामायिक करते हैं न? खोटी करते हैं। ५०-५० वर्ष तक सामायिक की और आसन फाड़े। (वह) सामायिक हमारी खोटी होगी? आसन फाड़े और चढ़-उतरकर सीढ़ियाँ घिस गयीं। खबर नहीं होती कि अभी सामायिक किसे कहना। आहाहा! कहते हैं कि ये पाँचों इन्द्रियाँ '**पिहिद**' हो गयी है—बन्द हो गयी है। अशुभयोग का त्याग हुआ, शुभ की आसक्ति का त्याग, इन्द्रियों की ओर के झुकाव का भाव रुक गया है।

उस महामुमुक्षु... आहाहा! **उस महामुमुक्षु...** यहाँ तो सामायिकवाला लेना है न। सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु है, परन्तु यह तो सामायिकवाला लेना... आहाहा! **परमवीतराग-**

संयमी को... परम रागरहित—वीतरागी संयमी जीव को **वास्तव में सामायिक व्रत शाश्वत-स्थायी है।** स्थायी अर्थात् सामायिक तो पर्याय है, परन्तु वह सत्य सामायिक है, ऐसा। स्थायी शाश्वत् अर्थात् सत्य सामायिक है। बाकी सब खोटी सामायिक है, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? पाठ यह है न? 'स्थायी' ऐसा शब्द है। है तो सामायिक परिणाम की बात, परन्तु वह सामायिक स्थिर है, स्थायी है, सत्य है, सनातन है, वही शाश्वत् सामायिक का स्वरूप है। समझ में आया? भारी कठिन लगे लोगों को।

परन्तु यह ऐसा फिर होवे कब? ऐसी सामायिक करते-करते, व्यवहार से करते-करते, फिर आवे या ऐसी की ऐसी अध्धर आ जाती होगी? कैसे न हो? यह सब सामायिक सीधे... भान नहीं, परन्तु पहले व्यवहार सामायिक करे, निवृत्त होकर मुनिराज के सामने देखकर बैठे। फिर हो न या सीधे हो जाता होगा? यहाँ तो कहते हैं कि वह उसका स्वभाव ही सीधे होने का है। समझ में आया? पाधरो अर्थात् सीधे ऐसा ही हो, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! कहो, मलूकचन्दभाई! तुम्हारे... बहुत सामायिक हो। तुमने की थी या नहीं? तुम्हारे मनसुखभाई यह सब चार भाई बैठे हैं न? ....उद्योगकार। सबने की है, खोटी। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! जिसमें से समता परिणाम प्रगट करना है, वह समता का पिण्ड न हो तो समता परिणाम आयेगा कहाँ से? यह पहले जहाँ अभी निर्णय में आया नहीं... भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा अकषायस्वभाव-स्वरूप ही उसका है। अकषायस्वभाव कहो, वीतरागस्वभाव कहो, समतास्वभाव कहो या समाधिस्वभाव कहो। पहले आ गया था, वह समाधिस्वरूप ही है। आ गया है। त्रिकाल समाधिस्वरूप है। आहाहा! नियमसार, वह नियमसार है न! अमृत बहाया है! आहाहा! अब यह कितनों को पसन्द नहीं आता। भगवान! परन्तु ऐसा अवसर आया। पहले पसन्द तो कर कि बात तो यह सच्ची है, मार्ग तो यह है। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं हो सकता।

कहते हैं कि **महामुमुक्षु...** सम्यग्दृष्टि है, वह मुमुक्षु है मोक्ष का, परन्तु यह तो सामायिकवन्त प्राणी महामुमुक्षु है, चारित्रवन्त है। उसमें भी चारित्र आया न? मुक्ति का

साक्षात् कारण... आहाहा! **महामुमुक्षु परमवीतरागसंयमी को...** सम्यग्दर्शन है, वह भी वीतरागदृष्टि है; सम्यग्ज्ञान है, वह वीतरागीज्ञान है स्व के अवलम्बन (सहित), परन्तु यह तो चारित्र, परमवीतराग चारित्र का परिणमन है। शुभाशुभराग की आसक्ति छोड़कर स्वरूप में आसक्त होना, स्थिर होना, यहाँ आसक्ति छूटी, यहाँ आसक्त—स्थिर होना, उसे यहाँ सामायिक कहा जाता है।

यह सब 'सामायिक' शब्द प्रसिद्ध है न, इसलिए अधिक उसका (स्पष्टीकरण करते हैं)। स्पष्टीकरण होता है। यह तो सब तीनों सम्प्रदाय में सामायिक... सामायिक। उन तेरापंथी में सामायिक। हमारी सामायिक अध्यात्म की है। धूल भी नहीं। तुझे वस्तु क्या है, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? तेरापंथी ऐसा कहे, हमारा यह मार्ग अध्यात्ममार्ग है, निवृत्ति का मार्ग है। ऐसा कहे, साधु का अध्यात्ममार्ग है और विशेष में यह कहा कि दूसरों को बचाना... भाव नहीं न, इसलिए विशेष अध्यात्म है। दूसरे को बचाना और यह करना, वह सब मार्ग... परन्तु तेरा पंच महाव्रत का विकल्प जो अज्ञान का है, वही अव्रत का मार्ग है, सुन न! महाव्रत का कहाँ ठिकाना है उसके? आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया?

जिसका भक्त ठिकाने बिना का देव माने, उसे यहाँ सच्चे सम-परिणाम आवे कहाँ से? समझ में आया? आहाहा! परमात्मा सर्वज्ञदेव एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने, ऐसा न माने... कुछ गड़बड़ उठी है न अभी। देखो न! कोई (कहे), भविष्य का नहीं जानते, फलाना जाने, ढींकणा जाने। अरे रे! भगवान! ऐसा जो भगवान तेरी श्रद्धा में है तो तेरा पूरा विवाद ही द्रव्य का विवाद है। और भगवान आहार ले, भगवान को रोग होता है, वे रोग मिटाने के लिये आहार लेने जायें, भले दूसरे लेने जाये। दूसरे लेने जाये। वे भगवान स्वयं लेने न जाये न! शिष्य हो न... सेठिया कहीं सब्जी लेने जाये? नौकर को भेजे सब्जी लेने। इसी प्रकार कहीं भगवान कुछ आहार लेने जाये? शिष्य लावे और खाये। आहाहा! गजब किया है न! आहाहा! बापू! यह मार्ग नहीं है। ऐसा जिसने वीतराग स्वीकार किये, उनका दासत्व (स्वीकार किया), वह राग का दास है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जिसकी दृष्टि में अरिहन्त का स्वरूप... सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा, जिन्हें सौ इन्द्र भी वन्दन करे, ऐसी तो पुण्य की प्रकृति और महाप्रभु को वन्दन करे पर्याय स्वयं की। स्वभाव और प्रकृति दो पूरे होते हैं भगवान को। उनका भक्त किसे कहा जाये? उनका भक्त तो, वीतरागस्वभाव का श्रद्धावान, वह उनका भक्त कहलाये। राग की श्रद्धावाला वीतराग का भक्त नहीं है। राग से लाभ माननेवाला, वह वीतराग का भक्त नहीं है। उसे सामायिक नहीं हो सकती, ऐसा कहते हैं। गजब बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : महाराज के प्रति राग... यह तो ऊपर से बातें करते हैं। भले हो, परन्तु वह आवे तो ही लाभ होगा, ऐसा (अज्ञानी) कहता है।

यहाँ कहते हैं कि **महामुमुक्षु...** ओहो! जिसने आत्मा के परिपूर्ण स्वभाव का तो अनुभव किया है, उसके उपरान्त जिसने आसक्ति छोड़कर यहाँ आसक्ति जमी है, पुण्य-पाप के आसक्ति के भाव को छोड़कर... ऐसे आसक्ति छोड़ी है, यहाँ आसक्ति जमी है। आहाहा! ऐसे **महामुमुक्षु परमवीतरागसंयमी को वास्तव में...** वास्तव में, ऐसा। समझ में आया? **सामायिक व्रत शाश्वत-स्थायी है।** यहाँ विकल्प की बात नहीं। अन्दर की वीतराग परिणति, वह सामायिक है, ऐसा कहा। समझ में आया?

१२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

इत्थं मुक्त्वा भव-भयकरं सर्व-सावद्यराशिं,
नीत्वा नाशं विकृतिमनिशं कायवाङ्मानसानाम्।
अन्तःशुद्ध्या परम-कलया साक-मात्मान-मेकं,
बुद्ध्वा जन्तुः स्थिर-शम-मयं शुद्धशीलं प्रयाति॥२०३॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार भवभय के करनेवाले... पाप के—सावद्य के परिणाम भवभय के करनेवाले हैं। आहाहा! हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, वह तो भवभय करनेवाले—भय उत्पन्न करनेवाले भाव हैं। आहाहा! उत्साह-उत्साह से करता है। स्त्री के लिये, पुत्र के लिये, परिवार के लिये उत्साह-उत्साह से पाप करे। फल भोगने इसे भवभय के। और (दूसरे) के लिये करता नहीं, इस उनके

बिना सुहाता नहीं, इसलिए करता है। यह (बात) सही है? हीराभाई के लिये जाता है वहाँ चूड़ी के बाजार में? दो घण्टे जा आऊँ फुरसत होकर। उसके लिये नहीं जाता, परन्तु इसे स्वयं को चैन नहीं आता वहाँ। यह तो एक दृष्टान्त। तुम्हारा क्या, सबका— बहुतों को ऐसा है न। क्यों मलूकचन्दभाई? यह तो दृष्टान्त है। आहाहा!

प्रभु! तू किसके लिये करता है, क्या करता है—यह तुझे खबर नहीं। आहाहा! यह सावद्य परिणाम तो भवभय के करनेवाले हैं। ओहोहो! अकेला जाये और अकेला दुःख को भोगे। ऐसे भवभय को करनेवाला सावद्ययोग छोड़कर... छोड़ उस भाव को। आहाहा! **काय-वचन-मन की विकृति को निरन्तर नाश प्राप्त कराके,...** अर्थात् कि शुभ-अशुभभाव दोनों, ऐसा। मन-वचन-काया के शुभाशुभ परिणाम (रूप) विकृति निरन्तर नाश प्राप्त कराकर, ऐसा है। सतत स्वभाव में एकाग्रता द्वारा... इन शुभ के परिणाम का निरन्तर नाश करनेवाला है। आहाहा!

वह कहे कि शुभराग होगा तो अपने को कहीं भगवान के पास जाया जायेगा, स्वर्ग में जाया जायेगा। भाई! जो नाश करनेयोग्य चीज़ है, उसे रखने योग्य (मानता) है, वह तो तेरी दृष्टि राग के ऊपर है, भगवान आत्मा के ऊपर नहीं। भगवान की आज्ञा में वह नहीं। आहाहा! भगवान का शासन तो ऐसा कहता है। केवली की आज्ञा अर्थात् शिक्षा तो यह है। भगवान का शासन अर्थात् शिक्षा, आज्ञा तो यह है। तेरा आत्मा अकेला वीतरागधर्मरूपी स्वभाव का तो भण्डार है। उसका अन्तर स्वीकार करके दृष्टि में, 'बड़ा मैं हूँ, मुझसे बड़ा कोई जगत में नहीं है मेरे लिये।'—ऐसी दृष्टि, अनुभव प्रगट करके फिर, कहते हैं कि ज्ञानी को भी सावद्यपरिणाम भी भव के कारण हैं। यहाँ अस्थिरता छुड़ानी है न! शुभभाव भी संसार है। मुनि को प्रमत्तभाव है, उसे भी संसार कहा है। समझ में आया?

छठवें गुणस्थान में प्रमत्तभाव अर्थात् यह महाव्रत, वहाँ जाये तो संसार है। यहाँ आये तो मुक्ति है, ऐसा कहा है। समझ में आया? आहाहा! दृष्टि से मुक्त है, परन्तु अस्थिरता का भाव है, उतना संसार खड़ा होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मन, वचन और काया... **काय-मन-वचन...** ऐसा लिया है। काया पहली सदा

से होती है, वचन बाद में होते हैं, पश्चात् मन मिलता है। इसलिए तीनों की **विकृति को...** तीन प्रकार के मन-वचन-काया से (होते) शुभ-अशुभभाव **निरन्तर नाश प्राप्त कराके,...** आहाहा! जिसमें शुभभाव की भी गन्ध न रहे। जादवजीभाई! यह सामायिक। कितनी सामायिक की, लो! समझे बिना की। समझे बिना की? तुम्हारे घर में महिलायें तो बहुत चतुर कहलाती हैं। कलकत्ता के सेठिया के घर से होशियार हो तो बाहर... चले। परन्तु संसार की खबर नहीं होती। आहाहा! भाई! तेरे स्वरूप की—तू कितना, कैसा इसकी—भी खबर नहीं होती, अब उसमें स्थिरता किस प्रकार करना? समझ में आया?

शुभाशुभ के (भाव) **निरन्तर नाश प्राप्त कराके,...** आहाहा! उपदेश की शैली यही आवे न! इसका अर्थ कि निरन्तर स्वरूप में स्थिर होकर। दृष्टि में जो आत्मा का भान हुआ था, उसमें निरन्तर स्थिर... स्थिर... स्थिर... स्थिर अन्दर, अर्थात् शुभाशुभ को निरन्तर नाश करके, ऐसा कहा। **अन्तरंग शुद्धि से...** दो गये और अब तीसरी कला आयी अन्दर। **अन्तरंग शुद्धि से परम कला सहित...** यह ज्ञान की कला—आत्मा के स्वभाव की कला, उसे ज्ञानकला कहते हैं। वह पुण्य-पाप की आसक्ति से तो नाश करके, ऐसा कहा न! अब किस कला द्वारा स्थिर होना? समझ में आया? **परम कलासहित...** परम ज्ञानकला अर्थात् कि आत्मा का स्वभाव वीतराग है, उस वीतरागी पर्यायरूपी कला द्वारा... वीतराग की पर्याय (रूप) कला, वह ज्ञानकला। पुण्य और पाप के विकल्प की कला, वह विकारी कला। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? यह सामायिक किसे कहना, उसकी व्याख्या चलती है। कहाँ गये तुम्हारे शिवलालभाई गये? यहाँ नहीं आये? काम होगा। समझ में आया? पहले व्याख्यान का काम हो, पश्चात् दूसरा काम हो न! कहो, समझ में आया इसमें?

उन बाह्य के भाव का निरन्तर नाश, अन्तरंग शुद्धि की निर्मल परम ज्ञानकला द्वारा **एक आत्मा को जानकर...** आहाहा! कठिन बात, भाई! अन्य अनेक प्रकार के पुण्य-पाप की आसक्ति का नाश करके और अन्तरंग शुद्धि से... भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध परमात्मा के आश्रय से प्रगट हुई अन्तरंग शुद्धि—शुद्धोपयोग—शुद्धभाव—शुद्धपरिणति, ऐसी परम कलासहित, ऐसा। **अन्तरंग शुद्धि से परम कला...** वह परमकला। लो, यह कलाबाज आत्मा। आहाहा! भारी दिक्कत है। कहे, यह तो सब निश्चय...

निश्चय... निश्चय (कहते हैं)। निश्चय... निश्चय अर्थात् सच्चा। व्यवहार अर्थात् खोटा, आरोपित उपचार कथन। आहाहा! समझ में आया?

'अन्तरंग शुद्धि से' वह पर्याय हुई। जो शुभाशुभभाव का व्यय करके, उत्पन्न हुई अन्तरंग शुद्धि, ऐसी परम ज्ञानकला। ज्ञानस्वभावी आत्मा की ज्ञान की कला, वह ज्ञानकला, ऐसा। **एक आत्मा को जानकर... एक आत्मा को (अन्दर) जानकर जीव...** 'जानकर' पहले कहा। **जीव स्थिरशममय शुद्ध शील को प्राप्त करता है...** उसे जानकर फिर स्थिर शममय समता—सामायिक... स्थिर शममय—स्थिरता वीतरागमय, शान्ति समतामय, **शुद्ध शील...** पवित्राचार, वह शुद्ध शील। सामायिक को शुद्ध शील कहा है। सामायिक को शुद्ध शील... शुद्ध शील... ऐसे **आत्मा को जानकर जीव स्थिरशममय...** स्थिर वीतरागमय... **शुद्ध शील...** पुण्य-पाप का भाव अशुद्ध स्वभाव है, अशुद्धभाव है, उससे रहित आत्मा शुद्ध है, उसे जानकर और स्थिर शममय, शील अर्थात् सामायिक को पाता है, वह शील को प्राप्त करता है। उसे सामायिक होती है, लो! भाषा भी समझना कठिन है। यह तो सब आठ वर्ष से सामायिक करने बैठ जाये। लड़का हो तो मुँहपत्ती बाँधकर साथ में बैठा दे। ले, बैठ, सामायिक कर चल। आहाहा!

यह भगवान के घर में जाना है, बापू! उसकी तैयारी कितनी चाहिए? साधारण राजा के घर में जाये तो भी नहा-धोकर वे व्यवस्थित वस्त्र पहनकर जाता है, दुपट्टा ऐसे डालकर, फलाना डालकर, वस्त्र-बस्त्र बाँधे ठीक से। आहाहा! यह तो भगवान के घर में जाना है। तीन लोक का नाथ चैतन्यबिम्ब प्रभु में जाना है। उसे तो कितने पुरुषार्थ की उग्रता हो? आहाहा! ऐई! सामायिक-बामायिक तो की होगी बहुत? नहीं की। खोटी भी की थी न, यह बात है। परन्तु उसके घर में वृद्ध सब पुरानी रूढ़ि के बहुत। ...डॉक्टर सेवा करेगा। शामजीभाई डॉक्टर थे। खबर है। परिचित आते हमारे पास वहाँ व्याख्यान में आते थे। स्कूटर से राजकोट आते थे न!

आहाहा! अरे! सत्य बात मिली नहीं, हों! और सत्य बात बिना असत्य के पंथ में माना सत्य। अरेरे! जिन्दगियाँ पशु को मिले और मनुष्य को (मिले), परन्तु यह भान बिना दोनों की गति मिली—नहीं मिली जैसा हुआ। आहाहा! फिर चाहे तो पैसा करोड़ों

इकट्ठा करे, शरीर हो सब (व्यवस्थित, परन्तु) सब राख होनेवाली है। आहाहा! तू अविनाशी भगवान आत्मा, उसे पकड़े बिना उसमें कभी स्थिर नहीं हुआ जाता। समझ में आया? इसलिए कहा न, **एक आत्मा को जानकर...** आहाहा! लाकर-लाकर वर के पास रखा सब। 'जीव' (शब्द) डाला समझाने को। पाठ में 'जीव' नहीं, परन्तु उसमें डाला। '**जन्तु**' है न यह? उसमें—कलश में डाला। '**बुद्ध्वा जन्तु**' ऐसे भगवान आत्मा को, भाई! **जानकर जीव स्थिरशममय शुद्ध शील को प्राप्त करता है (अर्थात् शाश्वत समतामय शुद्ध चारित्र को प्राप्त करता है)।** लो। समझ में आया? शाश्वत् तो आत्मा है, परन्तु उसके आश्रय से प्रगट हुई समता भी शाश्वत् कहलायी। क्योंकि उसका फल भी मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शाश्वत् दो प्रकार के हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों वे। वह भी शाश्वत् है, सत् है, वह सत् है, पर्याय सत् है। शुद्ध वह, हों! अन्य तो अशुद्ध है न। शुद्ध का फल भी शाश्वत् आता है। पूर्ण शुद्धता के पश्चात् पूर्ण शुद्धता। वह शुद्धता शाश्वत् रहती है। शुद्धपर्याय केवलज्ञान की हुई, वह शाश्वत् रहती है, ऐसा। समझ में आया? उसका कारण भी आत्मा की शान्ति, सामायिक, वह भी शाश्वत् हुआ, ऐसा। आहाहा! २०३ हो गया। (गाथा) १२६।

जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे॥१२६॥

केवली के मार्ग में—त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव के मार्ग में सामायिक उसे कहा गया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने गाथा-गाथा में लिया है, देखो न! '**तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे**' भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! भगवान के मार्ग में तो यह है।

स्थावर तथा त्रस सर्व जीवसमूह प्रति समता लहे।
स्थायि सामायिक है उसे यों केवली शासन कहे॥१२६॥

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं तो भगवान का नाम लेकर कहते हैं। आहाहा! भाई! परमात्मा तो ऐसा कहते हैं न! दो भाई हों तो लड़कों को समझावे न। भाई! बापू तो ऐसा

है। बापूजी ऐसा कहते हैं और तूने ऐसा कहाँ दावा लगाया? इसी प्रकार कहते हैं कि भाई! केवली परमात्मा तो उसे सामायिक कहते हैं न! आहाहा! जिसे तू देवरूप से स्वीकारता है, वह देव तो उसे सामायिक कहते हैं। शान्तिभाई! यह वाड़ावालों को तो कठिन लगे, हों! दिगम्बर जैन। आहाहा! वृत्ति बिना का आत्मा, वह दिगम्बर आत्मा, जिसमें वृत्ति जरा भी नहीं। पुण्य-पाप के वस्त्र नहीं, ऐसा भगवान, ऐसे आत्मा को जानकर उसमें स्थिर हो। आसक्ति छोड़ दे, ऐसा कहना है। आसक्ति का व्यय और स्थिरता का उत्पाद, ध्रुव त्रिकाल। आहाहा!

ऐसी बात वीतराग सर्वज्ञ के सिवाय—तीर्थंकर के सिवाय कहीं हो नहीं सकती। जिनेन्द्रदेव सौ इन्द्र के पूजनिक... आता है न उसमें? जिनका नाम स्मरण करने से भी... हाथ आवे न भाई! प्रवचनसार। आहाहा! वह याद आवे न, उस नाम में से। ऐसा वीतरागभाव, ऐसे केवली, उन्होंने शासन अर्थात् शिक्षा के उपदेश में, उनके मार्ग में यह सामायिक कहा गया है।

टीका: —यहाँ, परम माध्यस्थभाव आदि में आरूढ़ होकर स्थित... ऐसा। परम मध्यस्थभाव कहो, सामायिक कहो या वीतरागभाव कहो। अर्थात् विकल्प—शुभाशुभ विकल्प से रहित ऐसा जो आत्मा का मध्यस्थभाव, उसमें **आरूढ़ होकर स्थित परममुमुक्षु का स्वरूप कहा है।** उसे उपदेश किया है, ऐसा नहीं, परन्तु उसका स्वरूप कहा है, ऐसा। पहले में ऐसा आया कि यह शुद्ध उपयोग सन्मुख को ऐसा कहा है, शुद्ध उपयोगवाले को ऐसा कहा है। आया था न पहले। समझ में आया? कहते हैं कि सामायिकवाला कैसा होता है? **जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि...** आहाहा! जिसे शुभपरिणाम से भी वैराग्य वर्तता है (अर्थात्) जिसकी आसक्ति छूट गयी है। सहज वैराग्यरूपी महल... वैराग्यरूपी बँगला—महल, उसका शिखर, उसका शिखामणि। आहाहा!

परम सहजवैराग्यवन्त मुनि... उसमें एकदेश में श्रावक की सामायिक लेना। ऐसा शिखर का शिखामणि **विकार के कारणभूत समस्त मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण...** विकार का कारण तो मोह और राग-द्वेष है। उनके अभाव के कारण... मिथ्यात्व और

राग-द्वेष की आसक्ति के अभाव के कारण, ऐसा कहते हैं। ठेठ से शुरु करते हैं वापस। पर से जिसे उदास... उदास... आहाहा! ऐसा सहज वैराग्य, उसका महल, उसका शिखर, उसका शिखामणि ऊपर हो। शिखर के ऊपर मणि। ऐसा मुनि। आहाहा! जिसे वीतरागी भगवान के ऊपर का रागभाव भी छूट गया है, ऐसा कहते हैं। वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य... आहाहा! समझ में आया?

'मध्यस्थ' पहले आता है, नहीं? एक कलश में आ गया है। केवली के प्रति और शत्रु के प्रति, सबके प्रति वह तो मध्यस्थ है। कलश आ गया है। धर्मात्मा सन्त-मुनि सामायिकवन्त जिन्हें केवली के प्रति भी बहुमान का विकल्प है नहीं अब। आहाहा! यह कहीं आ गया है पहले। समझ में आया? धर्मात्मा के प्रति का भी प्रेम उड़ गया है। उड़कर कहीं द्वेष हुआ है, ऐसा नहीं। आहाहा! उड़कर समाया है आत्मा में, ऐसा। समझ में आया? गजब! नियमसार तो! आहाहा! यह मोक्षमार्ग ऐसा खड़ा करते हैं, देख यह! देख यह! 'मोक्षमार्ग' तो शब्द है, परन्तु उसका वाच्य यह। यह सब टीका कहा, नहीं? इतना अधिक लम्बा। कल कहा नहीं था?

'स्व में बस, पर से खस, अति संक्षिप्त।' यह टूंकू और टच। इतने से न समझ में आये (इसलिए) यह संक्षिप्त टच की सब यह व्याख्या—स्पष्टीकरण है। आहाहा! समझ में आया? क्या सुना? स्व में वस—आनन्दकन्द में ठस, पर से खस—रागादि से हट जा, यह संक्षिप्त टच। आहाहा! यह बहुत याद न रखना हो उसमें संक्षिप्त। यह सब उसकी व्याख्या है। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर उसका व्याख्यान अलग पड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आवे न! अर्थात् क्या? स्व किसे कहना? वश किसे कहना? खस किसे कहना? किससे हटना? किस चीज़ से? यह अति संक्षिप्त, परन्तु यह जिसका विस्तार है, उसमें से अति संक्षिप्त यह कहलाता है।

मुमुक्षु : टूंकुं टच यह लम्बा हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस लम्बे को हल करना हो तो टूंकुं टच और संक्षिप्त को हल करना हो तो यह। ऐसा आया था न। नियमसार में आया था न! टीका नहीं आती?

उसका यह कर तो यह टीका, नहीं तो... ऐसा आया है न ५३ में। भाई ने लिखा है न! ५३वीं गाथा न? ५३वीं देखो यह। यह जवाब में लिखा है न भाई ने।

यह भगवान का उपदेश, मुनियों का उपदेश यह उसका अभ्यन्तर निमित्तकारण और उनकी वाणी बाह्यकारण। उसे यहाँ कहा है, उसका विस्तार करें तो यह और समेटे तो यह, ऐसा। शब्द के अर्थ को शब्द है वह यह, विस्तार करें तो उसकी टीका, ऐसा। आहाहा! क्या कहा? ५३ में आया न। उसमें लिखा है? वह तो उस कागज में लिखा हुआ है। खबर है। यह टीका मूल में नहीं... परन्तु मूल की यह टीका है। मूल की यह टीका है, ऐसा। आता है न वह 'अभ्यन्तर' है। 'द्रव्यश्रुत वह तत्त्वज्ञान है और मुमुक्षु हैं वे उपचार से पदार्थ निर्णय का हेतु, वह उसकी टीका है, ऐसा। शब्द यह है। विस्तार करें तो ऐसा हो, संक्षिप्त करें तो ऐसा हो। कहो, समझ में आया?

ज्ञानानन्द की लहरें हैं। लहर के झूले में झूला खाता है अन्दर से, लो! भाई! तू पर से निराला है न, प्रभु! ऐसा भले तुझे भान हुआ, परन्तु अब जब चारित्र—सामायिक प्रगट करना है, तब वह पर के विकल्पों की आसक्ति छूटकर, यहाँ आसक्ति—लीनता होगी, तब तुझे सामायिक होकर चारित्र होगा। आहाहा! इसमें वाद-विवाद को स्थान ही कहाँ है? 'वादविवाद करे सो अन्धा।' मार्ग ऐसा वहाँ... तुझे न बैठे, न सुना हो तो सत्य दूसरा हो जायेगा? तीन काल का सत्य केवलियों ने स्वीकारा है, इन्द्रों ने, गणधरों ने जिसे स्वीकार किया है, वह कहीं मालूली भरत(क्षेत्र) के अमुक लोगों का स्वीकार नहीं। समझ में आया?

अहो! कहते हैं कि सामायिकवाला कैसा होता है? मुख्य मुनि को लक्ष्य कर बात है न! **विकार के कारणभूत समस्त मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण...** वैराग्य है इसलिए, ऐसा। **भेदकल्पना विमुक्त...** आहाहा! यह गुण-गुणी के भेद की कल्पना से भी विमुख। मोह-राग-द्वेष का तो अभाव, परन्तु गुण-गुणी का भेद—ऐसी जो कल्पना, उस कल्पना सन्मुख भाव है, उससे विमुख। आहाहा! समझ में आया? उसकी सामायिक में गुण-गुणी के भेद की कल्पना से रहित ऐसी निर्विकल्प अनुभवदशा, स्थिरता, उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा!

उस प्रवचनसार में लिखा है कि सामायिक में किसी समय शुद्धोपयोग—भावनारूप शुद्ध भी आता है। तब कहते हैं कि भावना (अर्थात्) कल्पना कि शुभ ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा। शुभभाव ही उसे होते हैं, ऐसा वे कहते हैं। कहो! यह कुछ अर्थ? रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं। शुभभाव में ही सामायिक होती है। तब उसमें कहा है न कि किसी समय श्रावक को सामायिक में भी शुद्धभावना होती है? वह भावना अर्थात् शुद्ध होऊँ, ऐसी भावना। लो, अब ऐसा (उल्टा) अर्थ करे। सामायिक में किसी समय... तीन कषाय का अभाव हो गया, उतनी स्थिरता तो है, परन्तु कदाचित् विकल्प में खड़ा होता है और स्थिरता न हो तो उसे शुद्धोपयोग की एकाग्रता हो, तब उस सामायिक का विकल्प छूट जाता है। समझ में आया? शुद्धोपयोग की एकाग्रता हो जाती है। उसे शुद्धोपयोग की भावनावाला सामायिकवाला कहा जाता है, लो।

परम समरसीभावसहित होने से... होने से, ऐसा। **त्रस-स्थावर (समस्त) जीवनिकायों के प्रति समभाववाला है,..** किसी को मारना या जिलाना, ऐसा कोई विकल्प है नहीं। **उस परम जिनयोगीश्वर को...** परम जिनयोगीश्वर अर्थात् आत्मा में जुड़ान उग्र हुआ, उसे **सामायिक नाम का व्रत सनातन (स्थायी) है, ऐसा वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में सिद्ध है।** वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में यह साबित है। इस सत्य को सामायिक कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ८, सोमवार, दिनांक - २७-९-१९७१
श्लोक-२०४-२०८, प्रवचन-१३७

नियमसार, परम-समाधि अधिकार। १२६ गाथा के आठ श्लोक हैं। सामायिक... सामायिक किसे कहना?

त्रसहतिपरिमुक्तं स्थावराणां वधैर्वा,
परम-जिन-मुनीनां चित्त-मुच्चै-रजस्त्रम्।
अपि चरम-गतं यन्निर्मलं कर्म-मुक्त्यै,
तदह-मभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि॥२०४॥

कहते हैं कि सामायिक कैसे भाव में होती है और किसे होती है? **श्लोकार्थः— परम जिनमुनियों का जो चित्त...** अर्थात् **चैतन्यपरिणमन...** चेतन जो आत्मा, उसका स्वभाव चेतन सर्वस्व, उसका जो परिणमन चैतन्य का... पुण्य और पाप के विकल्परहित जो चैतन्यस्वभाव त्रिकाल, उसका परिणमन **निरन्तर त्रस जीवों के घात से विमुक्त है...** जिसके परिणाम में सामायिक अर्थात् समताभाव का परिणमन हुआ, उस जीव का चैतन्य परिणमन निरन्तर त्रस के घात—वध से भिन्न है, तथा स्थावर जीवों के वध से भी भिन्न है, अत्यन्त भिन्न है। क्योंकि वहाँ पर के ऊपर लक्ष्य है नहीं। सामायिक में अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द और ज्ञान, उसमें जिसकी लीनता शुद्ध उपयोग की वर्तती है, उसे त्रस और स्थावर के घात का भाव होता नहीं।

और जो (चित्त) अन्तिम अवस्था को प्राप्त... है। जिसकी निर्मलदशा अन्तिम स्थिति को प्राप्त है अर्थात् कि निर्विकल्पदशा हुई है। जैसा अपना स्वभाव शुद्ध ध्रुव है, वैसी ही परिणति शुद्ध हुई है। आहाहा! यह सामायिक। मुनि की बात है न प्रधानता से। गौणरूप से श्रावक ... (एक)देश समता होती है। और यह तो चरमसीमा को प्राप्त है, ऐसा कहा है न। मुनि हैं, उन्हें तो वीतरागता का परिणमन जोरदार अन्दर हुआ है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तथा निर्मल है,... यह चैतन्य परिणमन, जो पुण्य-पाप के विकार का परिणमन था, उसका नाश होकर शुद्धस्वभाव में एकाग्रता के कारण से शुद्ध परिणमन(रूप) जिनकी दशा प्रगट हुई है। लो, यह सामायिक। पण्डितजी! सामायिक तो सब बहुत करते हैं। लाखों लोग कहे सामायिक... सामायिक। भगवान तो इसे... ऐई भगवानजीभाई! वह सामायिक इसे कहते हैं। **अन्तिम अवस्था को प्राप्त...** है। **'चरमगतं'** है न? जिसकी निर्मलता, पुण्य और पाप के रागरहित स्वभाव के आश्रय से शुद्ध परिणमन—दशा, अन्तिम में अन्तिम—आखिर की वीतरागता जिसे प्रगट हुई है, ऐसा। केवलज्ञान की नहीं, परन्तु यहाँ उसके योग्य है वह।

मुमुक्षु : शुद्धोपयोग की पराकाष्ठा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह।

उसे मैं... ओहो! ऐसे सन्तों के परिणमनरूप सामायिक को मुक्त होने के लिये नमन करता हूँ। आहाहा! **मैं कर्म से मुक्त होने के हेतु नमन करता हूँ,...** लो। देखो! पर को नमता हूँ तो कर्म से मुक्त होने के लिये। उसका अर्थ यह है कि मैं मुझे नमता हूँ। समझ में आया? मेरी वीतरागता निर्विकल्पता के स्वभाव का सरोवर—सागर भगवान, उसमें डुबकी मारता—एकाग्र होता हुआ मैं मुझे ही नमता हूँ। आहाहा! बात पहली समझ में आना कठिन पड़े। आहाहा! यह वीतराग का मार्ग तो यह है। वीतराग मार्ग कहो या सामायिकभाव कहो—सब एक ही है। उसे मैं **नमन करता हूँ, स्तवन करता हूँ,...** स्तवना—गुणगान करता हूँ। **सम्यक् प्रकार से...** एकाग्रता से **भाता हूँ।** तीन बोल लिये, लो। यह सामायिक। जेठाभाई! यह सामायिक... उस सामायिक में कुछ मेहनत नहीं पड़ती थी। ४८ मिनिट बैठे और सामायिक हो गयी, जाओ।

यहाँ तो कहते हैं कि एक मिनिट भी—असंख्य समय की शुद्धोपयोगदशा, अन्तर स्वभाव में सन्मुख होकर जिसे वीतरागी परिणति की लीनता प्रगट हुई है, उसे सामायिक कहा जाता है। समझ में आया? तीनों कहा। उसे **नमन करता हूँ, स्तवन करता हूँ, सम्यक् प्रकार से भाता हूँ।** अहो! वीतरागभाव से भरपूर पदार्थ ऐसा जो निजतत्त्व, उसमें जो नम जाना, उसका आदर करके उसमें स्थिर होना... आहाहा! ऐसे वर्तमान

शुद्धोपयोगरूपी परिणमन की दशा को यहाँ भावना कहते हैं, उसे यहाँ शुद्धोपयोगरूप भाव कहते हैं, उसे सामायिक होती है। कहो, समझ में आया?

त्रस और स्थावर—छह काय से निवृत्त हुआ है वह। दया पालता हूँ, ऐसा आया नहीं, उस ओर का विकल्प छूट गया है। और स्वभाव की महिमा दृष्टि में तो प्रगटी थी, परन्तु आसक्ति का भाव छूटकर अब इसमें लीन होता हूँ। इसे मैं नमूँ, ...स्तवन करूँ और फिर एकाग्र होता हूँ। यह निश्चय—सच्ची सामायिक है, लो। समझ में आया? आहाहा! तथापि उस सामायिक का भाव, निजतत्त्व की अपेक्षा से पर्याय भी बहि:तत्त्व है। अरे, अरे! गजब बात! समझ में आया?

भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु नित्य ध्रुव चैतन्य और आनन्द का दल, उसमें से शान्ति और वीतरागता, स्वच्छता, प्रभुता प्रगट हुई, वह भी त्रिकाली की अपेक्षा से तो... आहाहा! गजब बात है न यह! समझ में आया? बहि:तत्त्व कहा उसे। त्रिकाली की अपेक्षा से बहि:तत्त्व कहा। बहि:तत्त्व—ऐसे तत्त्व को सामायिक कहते हैं। आहाहा! अन्तर्तत्त्व तो यह समताभाव के पिण्डरूप त्रिकाल पड़ा है। वह पर्याय का जो तत्त्व है... आहाहा! समझ में आया? यह बात ऐसी है कि भाई! यह तो सत्यस्वरूप होना है। जिसे यह जानना और प्रगट करना हो, उसकी बात है। महँगा पड़े परन्तु मार्ग तो यह है।

मुमुक्षु : ....भेदपना नहीं लिया? पर्याय एकरूप हो गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकरूप हो गयी... ? पर्याय, पर्याय में है; सामान्य, सामान्य में है। अभेद तो, पर से हटकर यहाँ (एकाग्र) हुई, उस अपेक्षा से अभेद कहने में आया है। ऐसा-ऐसा बड़ा विवाद।

मुमुक्षु : उसकी अपेक्षा की एक डिक्शनरी करनी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : डिक्शनरी... तैयार करते थे, परन्तु फिर नहीं की। तुम्हारे गोण्डलवाले पटेल। एक पटेल थे। गोण्डल के राज के कैसे कहलाये? शिक्षा अधिकारी। शिक्षा अधिकारी। पाटीदार थे। आते थे। यह तो प्रत्येक शब्द के अर्थ... अपने डिक्शनरी बनाओ। बनाते थे परन्तु फिर हाथ नहीं आयी पूरी। गुजर गये। गोण्डल के क्या, नाम भूल गये? चन्दुभाई पटेल। पटेल थे। वहाँ पूरे राज में मान, राज में बहुत मान। वे कहें,

इसकी डिक्शनरी बननी चाहिए अलग प्रकार के शब्द... वस्तु, यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। विवाद आया है उसमें। है न ज्ञानचन्द शहादरावाले। उन रतनचन्दजी का आलोचन किया होगा शहादरावाले ने। उनका आलोचन कोई ... एक पण्डित है उसने किया। उसके सामने फिर इन्होंने लगायी। ऐसा और ऐसा झगड़ा।

यह कहे कि रागभाव है, वह आत्मा से तन्मय है, इसलिए वह निश्चय है। तब वह कहे, तन्मय नहीं, इसलिए वह व्यवहार है। ऐई यह झगड़ा। आहाहा! उसमें इसके डाले जैन के... जैन क्या कहा? जैननुमा। मैंने कहा, जैननुमा अर्थात् क्या होगा यह? नकली जैन, ऐसा। कुछ विरोधाभास हुआ होगा। जैनाभास। 'नुमा' आया है, वह जैनाभास कहो। यह सोनगढ़ के लोग कहें, ऐसा तू कहता है। जैनाभास है ऐसे जैन... वे ऐसा कहते हैं कि राग पर है... पर है। आहाहा! यह तो स्व परिणाम में होता है, इसलिए स्व की अपेक्षा से राग को निश्चय कहा जाता है। अशुद्ध की बात है न! अशुद्ध... अशुद्ध... परन्तु है तो पर्यायनय न वह? यह नहीं, पर्याय... व्यवहार को... पर्यायनय को सर्वथा व्यवहार मानना, ऐसा नहीं। पर्याय और क्या होगी, द्रव्यार्थिक होगा? आहाहा!

यह तो शुद्धतत्त्व त्रिकाली, इस अपेक्षा से पर्याय है, वह बहि:तत्त्व है। यह अन्त:तत्त्व तो, वह बहि:तत्त्व। जब शुद्ध परिणमन पर्याय (को) जब अन्त:तत्त्व कहते हैं तो राग बहि:तत्त्व। राग को जब स्वतत्त्व—अन्त:तत्त्व कहते हैं पर्याय की अपेक्षा से, तब कर्म को बहि:तत्त्व और कर्म को जब अन्त:तत्त्व कहे... क्योंकि आता है न, अन्त:तत्त्व का कारण... अन्तरंग सब कर्म का कारण है, ऐसा आता है न? अन्तरंग हेतु। 'कर्म का अन्तरंग का हेतु' आता है न। पंचास्तिकाय में आता है, इसमें—नियमसार में आता है। दूसरी गाथा में, ६७वीं गाथा में। ५३ गाथा का अर्थ किया। कहे, नहीं, अन्तरंग हेतु कर्म चाहिए। अन्तरंग हेतु सामनेवाले का अभिप्राय नहीं। ऐई विवाद। आहाहा! और कर्म को अन्तरंग हेतु कहें तो नोकर्म को बहि:हेतु कहा जाता है। उसमें क्या है? बहि:तत्त्व कहा जाता है। ...सुन न! किस अपेक्षा से है, ऐसा जानना चाहिए न! समझ में आया?

यहाँ तो माल के ऊपर जहाँ जाना है... माल तो एक समय की पर्याय बिना का पूर्ण तत्त्व, वही अन्त:तत्त्व और वही वास्तव में निश्चय है। परम-निश्चयस्वरूप ही वह

है। उसके अवलम्बन से स्थिर होता है, वह निश्चय—सच्ची सामायिक है, परन्तु त्रिकाली की अपेक्षा से वह व्यवहार है। आहाहा! क्या हो? वस्तु की स्थिति ही ऐसी है कि उसमें... समझ में आया? कहते हैं, ओहो! जिसमें सारे प्राणी छहकाय के—निगोद से लेकर सब ऊपर जिनका विकल्प उठ गया है और जो अपने आत्मा में निर्विकल्प उपयोग में जम गया है, ऐसे परिणामी मुनि को अथवा ऐसे भाववाले मुझे मैं नमता हूँ। कर्म से मुक्त होने का अर्थ कि उस दशा में कर्म से मुक्त हुआ जाता है, ऐसा। समझ में आया?

यहाँ तो सामायिक करने बैठे, तो शुभभाव का भी ठिकाना न हो। मुश्किल-मुश्किल से नवकार गिनकर सामायिक पूरी कर दे ४८ मिनिट की। और घड़ी के सामने देखता जाये, कितने बजे?

मुमुक्षु : कोई आवे तो बात भी करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात भी करे। आहाहा! यह तो है न मोहनभाई... वह बात ऐसी ही थी सब। आहाहा! यहाँ तो, प्रभु! तेरे घर में जाना हो, परघर छोड़ना हो, उसकी बात है। आहाहा! तेरे घर में अनन्त परमात्मा विराजते हैं, भाई!

ऐसा स्वभाव जिसका अपना, उसकी अपेक्षा से राग तो विभाव है, पर है। विभाव को भी स्वभाव कहा जाता है, अपनी पर्याय है इसलिए (कहा जाता है), परन्तु उसका विवाद क्या लम्बा? समझ में आया? अपने से होता है, अपने में होता है और पर से नहीं—इस अपेक्षा से उसे स्वभाव भी कहा जाता है। 'स्व-स्थ भवनं स्वभाव।' उसे निर्मलता की अपेक्षा से, इसे (-विकार को) विभाव कहा जाता है, उसे निर्मलता की अपेक्षा से परद्रव्य कहा जाता है, इसे निर्मलता की अपेक्षा से संयोगीभाव कहा जाता है। परन्तु उसमें दिक्कत क्या? आहाहा! संयोगसिद्धसम्बन्ध, परन्तु वह संयोगीभाव ही संयोगी है। वह वस्तु में कहाँ था? निमित्त के लक्ष्य से, आश्रय से उत्पन्न होता... निमित्त सम्बन्ध सब व्यवहार है। आहाहा! इसका २०५ श्लोक। २०४ हुआ।

केचिदद्वैतमार्गस्थाः केचिद् द्वैतपथे स्थिताः।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमार्गे वर्तामहे वयम्॥२०५॥

ऐसा तो सुना जाये नहीं उसको तो। अभी तो राग में दिक्कत, क्रिया में विवाद और... विवाद। **श्लोकार्थः—कोई जीव अद्वैतमार्ग में स्थित हैं...** अकेला मैं अद्वैत, अभेद हूँ, ऐसा विकल्प, ऐसे। राग भी नहीं और भेद भी नहीं, गुण-पर्याय का भेद भी नहीं। अभेद, अद्वैत मैं हूँ। सब होकर अद्वैत, यह बात नहीं यहाँ। मैं स्वयं आत्मा अद्वैतस्वरूप अखण्ड-आनन्द अभिन्न हूँ, ऐसा विकल्प... **और कोई जीव द्वैतमार्ग में स्थित हैं;...** यह द्रव्य और यह पर्याय अथवा द्रव्य और गुण—ऐसे भेद के विकल्प में स्थित है। **और द्वैत-अद्वैत से विमुक्त मार्ग में हम वर्तते हैं।** आहाहा!

देखो! यह सामायिक। मैं अभेद चैतन्य अखण्ड-आनन्द हूँ, ऐसा भी एक विकल्प—राग, वह सामायिक नहीं। ऐसा मैं गुणवाला हूँ, जिसमें अनन्त गुण हैं, ऐसा भेद-विकल्प, वह भी सामायिक नहीं। भगवानजीभाई! यह सामायिक कभी सुनी थी वहाँ? की थी खोटी... आहाहा! हणोल और भावनगर (में) बहुत की थी। उस समय चलती थी। यहाँ तो स्वयं मुनिराज ऐसा कहते हैं... वीतराग के भाववाले मुनि हैं यह तो। हम... परन्तु विकल्प वर्तता है न यह लिखने के समय? हम उसमें वर्तते नहीं, वह तो भिन्न चीज़ है। समझ में आया? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के एकरूप में जहाँ लीनता है, वहाँ अभेद का और भेद का विकल्प और राग का अभाव है। अरे! यह मार्ग है, भाई! यह सामायिक कहो या निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो, उसमें विकल्प नहीं है।

यह विवाद आया। यह तो बहुत लिखते हैं। यह वह था न... चौथे गुणस्थान में व्यवहार समकित ही होता है, निश्चय होता नहीं। वीतरागचारित्रसहित हो, उसे निश्चय समकित होता है। आता है न। वह दूसरी अपेक्षा से बात है। जयसेनाचार्य की टीका में आता है न, वह डाला है। अरे! ... विवाद... तब विकासचन्दजी कहते हैं न कि चौथे गुणस्थान में व्यवहार ही होता है। बराबर... यह जयसेनाचार्य की टीका है। तुम भी वाँचकर निर्णय करो। सब ऐसे ही हैं न इस प्रकार के। आहाहा!

कहते हैं, शरीर-वाणी तो, मन तो कहीं रह गये, उनसे तो मेरी निर्विकल्प दशा(रूप) सामायिक होती नहीं, परन्तु पुण्य के दया-दान के भाव से भी सामायिक

होती नहीं, परन्तु मैं एकरूप अद्वैत अभिन्न हूँ, ऐसा अन्दर विकल्प उठे, उससे भी सामायिक नहीं होती। तथा यह गुणवाला हूँ... यह गुणवाला हूँ, ऐसा जो भेद का विकल्प—राग, वह भी सामायिक नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई! ऐसी सामायिक, लो।

द्वैत और अद्वैत से विमुक्त मार्ग में... देखो! विमुक्तमार्ग में (अर्थात्) विकल्प से रहित मार्ग में—**जिसमें द्वैत या अद्वैत के विकल्प नहीं हैं, ऐसे मार्ग में हम वर्तते हैं।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वभाव हमारा शुद्ध चैतन्य, उसके शुद्ध परिणमन में वर्तते हैं, वह सामायिक है। शुद्ध में वर्तना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : नय के विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्पवाला नहीं... विकल्पवाला नहीं। यह वहाँ आया। अद्वैत और द्वैत का विकल्प कहा न? **हम वर्तते हैं।** आहाहा! शान्तरस का पिण्ड ध्रुव, उसके निर्मल परिणाम में हम बसते हैं। वर्तना अर्थात् परिणमना, होना, उसका नाम सामायिक और उसका नाम मोक्ष का मार्ग। २०६ (कलश)।

काङ्क्षन्त्यद्वैतमन्येऽपि द्वैतं काङ्क्षन्ति चापरे।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्तमात्मान-मभिनौम्यहम् ॥२०६॥

'अभिनौम्यहम्' उसे नमता हूँ। **श्लोकार्थः—कोई जीव अद्वैत की इच्छा करते हैं...** अर्थात् कि त्रिकाली ध्रुव और अभेद हूँ, ऐसा विकल्प होता है उसे। **अन्य कोई जीव द्वैत की इच्छा करते हैं;...** दो प्रकार से हम हैं। द्रव्य और गुण से अथवा द्रव्य और पर्याय से। **मैं द्वैत और अद्वैत से विमुक्त आत्मा को नमन करता हूँ।** ऐसे शास्त्र सूर्य के प्रकाश जैसे बाहर प्रकाशित हुए हैं। आगम का आधार, सर्वज्ञ की आज्ञा। मैं यह... विवाद... भाई! यहाँ विवाद को स्थान नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि पहले श्रद्धा में तो ले। अद्वैत और द्वैत के विकल्प से रहित... विमुक्त जो मार्ग अद्वैत-द्वैत के राग से... ऐसा जो आत्मा, उसे मैं नमता हूँ। जादवजीभाई! ऐसी सामायिक सुनी थी कलकत्ता में? वहाँ सेठिया कहलाये सामने। बात ही नहीं थी न! बाहर में घोटाला... आहाहा!

पहले इसकी समझण में ऐसी वस्तु हो, ऐसी इसकी ज्ञानदशा तो होनी चाहिए न! समझ में आया? इसके बिना इसकी सामायिक आयेगी कहाँ से? कहीं बाहर से आवे

ऐसा है? सामायिक—सम+आय—लाभ+(इक)। समता का लाभ, वीतरागता का लाभ, निर्दोषदशा का लाभ-प्राप्ति। वह तो द्रव्यस्वभाव में से आयेगी। कहीं विकल्प में से आती नहीं। विकल्प तो असमताभाव है। विकल्प है, वह असमताभाव है। उसके मार्गरहित विमुक्त आत्मा—ऐसा भगवान आत्मा... भेद-अभेद के विकल्प से रहित ही है। 'मैं हूँ और यह नहीं' ऐसा विकल्प भी जिसमें नहीं।

उसमें कहा न कि कोई उसमें स्थित है, कोई उसमें चाहता है। ऐसा कहा। चाहता है कि हमारे अद्वैत के विकल्प ठीक हैं, ऐसा। द्वैत के विकल्प ठीक हैं, ऐसा कहते हैं। इच्छता है... अधिक स्पष्ट किया है। वहाँ ऐसा कहा, 'द्वैत-अद्वैत से विमुक्त मार्ग', यहाँ ऐसा कहा, 'द्वैत-अद्वैत से विमुक्त आत्मा', ऐसा। उसमें, मार्ग में हम वर्तते हैं, ऐसा कहा न? क्या कहा? उसमें ऐसा कहा कि उसके विमुक्त मार्ग में—पर्याय में हम वर्तते हैं,... यहाँ द्रव्य में, कहते हैं। समझ में आया? उसे और उसे स्पष्ट करके ऐसे अभेद में ले गये हैं। कोई जीव अद्वैत को इच्छते हैं। एक ही मैं हूँ, मैं एक ही हूँ, ऐसा विकल्प है। वापस ऐसा कहते हैं कि इस अद्वैत और द्वैत से कुछ अलग चीज़ है। ऐसा नहीं, यहाँ तो अद्वैत और द्वैत के विकल्प से भिन्न चीज़ है।

कितने ही ऐसा कहते हैं, देखो! मार्ग तो भगवान ऐसा कहते हैं इसमें। नय से सब कहा है, ऐसा नहीं। वह अगम्य है। वह अगम्य है, इसका अर्थ कि विकल्प से अगम्य है। बाकी वस्तु तो अद्वैत, अभेद एक ही चीज़ है। उसका जो विकल्प है, उसरहित आत्मा है, ऐसा कहते हैं। उसमें (कहा कि) '(द्वैत)-अद्वैत से विमुक्त मार्ग में हम वर्तते हैं।' यहाँ 'ऐसे आत्मा को हम नमन करते हैं' ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो आत्मा बस। जिसमें विकल्प नहीं, द्वैत-अद्वैत का विकल्प नहीं। द्वैत-अद्वैत ऐसे रागवाला स्वभाववाला नहीं, ऐसे आत्मा को मैं नमता हूँ। आहाहा! २०६। अब २०७ (कलश)।

अहमात्मा सुखाकाङ्क्षी स्वात्मानमजमच्युतम्।
आत्मनैवात्मनि स्थित्वा भावयामि मुहुर्मुहुः॥२०७॥

'**अजमच्युतम्**' (अर्थात्) जन्म और मृत्यु नहीं। कितने ही कहे न, पहले मार्ग दूसरा हो या सीधे ही यह एल.एल.बी. का मार्ग? मार्ग ही यह है। आहाहा! जिस मार्ग

को, अद्वैत हूँ, द्वैत हूँ—ऐसे विकल्प की भी जिसे अपेक्षा नहीं। क्योंकि वह विकल्प बिना की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? अकेला ज्ञायक चैतन्यस्वभाव नित्यानन्द प्रभु में विकल्प की तो गन्ध ही नहीं। ऐसा जो आत्मा, उसे मैं नमता हूँ। 'नमता हूँ' यह सामायिक है। ऐसे आत्मा में मैं नमता हूँ। मेरा आदर उस त्रिकाली द्रव्य को है। ऐसे आत्मा को नमूँ अर्थात् आदर करता हूँ। बस, यह आदरदशा जो उपादेयबुद्धि हुई, वह सामायिक हुई। आहाहा! अब सातवाँ।

मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला आत्मा... मैं... मैं तो आनन्द को इच्छनेवाला आत्मा... मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द का अभिलाषी। **अजन्म और अविनाशी...** वह भगवान आत्मा तो जन्म और नाशरहित है। जिसे उत्पत्ति नहीं और जिसका नाश भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उत्पाद-व्ययरहित है। समझ में आया? मैं सुख को इच्छनेवाला भगवान, उत्पत्ति और व्यय, ऐसे रहित वह अजन्म और अविनाशी **ऐसे निज आत्मा को...** उत्पाद और व्यय बिना का ऐसे जो आत्मा को **आत्मा द्वारा**—निर्मलपर्याय द्वारा **आत्मा में**—निर्विकल्प स्थिति में **रहकर बारम्बार भाता हूँ।** समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, (जिसे) जन्म नहीं, उसका नाश नहीं—मृत्यु नहीं। ऐसा '**अच्युतम्**' कहा न। '**अच्युतम्**' कहा। मृत्यु नहीं, ऐसा नहीं लिया। '**अजम् अच्युतम्**' आहाहा!

और ऐसे आत्मा को आत्मा द्वारा अर्थात् कि स्वभाव द्वारा... 'स्वभाव द्वारा' यह तो वापस उत्पाद और व्ययवाला हुआ। आवे सही, परन्तु वस्तु में यह नहीं, ऐसा कहते हैं। उत्पाद और व्यय तो व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! दूसरा क्या हो? '**भूदत्थं अस्सिदो... अस्सिदो**'—आश्रय करनेवाली तो पर्याय है। आहाहा! पर्याय को माहात्म्य है द्रव्य में। आश्रय लेनेवाली पर्याय है, परन्तु आश्रय जो जिसका लेती है, वह तो ध्रुव है। अरे... अरे...! भारी कठिन। समझ में आया? ऐसे **आत्मा को आत्मा द्वारा...** और वापस परिणति तो ली। 'आत्मा द्वारा' अर्थात् कहीं ध्रुव द्वारा है? आहाहा! निर्विकल्प द्रव्य, निर्विकल्प गुण और निर्विकल्प परिणति—ये तीनों आत्मा, ऐसा लिया। आहाहा! समझ में आया?

निज आत्मा को... वापस ऐसा। ऐसा मेरा आत्मा। पर्याय ऐसा जानती है कि यह

मेरा आत्मा... यह मेरा आत्मा। आहाहा! ऐसे **आत्मा द्वारा ही...** राग द्वारा और व्यवहार द्वारा नहीं, ऐसा। **आत्मा द्वारा ही आत्मा में...** कार्य तो आता है, परन्तु कार्य तो पर्याय में है, परन्तु उसका वजन नहीं, जोर नहीं। समझ में आया? कार्य तो पर्याय में है, परन्तु उसका जोर नहीं, जोर द्रव्य का है। आहाहा! समझ में आया? **आत्मा में स्थित रहकर...** यह पर्याय आयी। **आत्मा द्वारा ही आत्मा में स्थित रहकर...** निर्विकल्प परिणति द्वारा निर्विकल्प आत्मा में स्थिर रहकर बारम्बार उसमें मेरा झुकाव है, (इसलिए) उसे एकाग्ररूप से भाता हूँ, ऐसा। 'भाता हूँ' का अर्थ बारम्बार एकाग्रता करता हूँ, ऐसा। एक समय में एकाग्रता, दूसरे समय में (एकाग्रता), एकाग्रता उसमें ही वर्तती है, ऐसा। समझ में आया?

भाई! यह तो शब्दों के अर्थ ही समझना अभी कठिन लगे। ऐसी सामायिक। यह तो आठ वर्ष की लड़की हो तो पाँच-पाँच सामायिक, आठ-आठ पंचरंगी और अठरंगी और... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में दिक्कत होगी कुछ। ऐसा कि प्रतिज्ञा ऐसी ली हो, फिर सामायिक उसे लेना या नहीं, परन्तु प्रतिज्ञा झूठी थी। आहाहा! हमारे प्रतिदिन इतनी सामायिक करना, ऐसी प्रतिज्ञा ली, परन्तु सामायिक का भान ही कहाँ था तुझे? सामायिक किसे कहना? क्रियाकाण्डवाले को कठिन पड़े। यह तो अनन्त बार ऐसा तो किया है, उसमें क्या है? वह तो शुभभाव है। वह मिथ्यात्वसहित है। आहाहा! शुभभाव का आचरण करनेयोग्य है—ऐसी बुद्धि है, वहाँ मिथ्यात्व है और उसके आचरण में रुका हुआ है वह तो शुभभाव है। आहाहा! मार्ग तो यह है, उसका पहले निर्णय करना पड़ेगा। निर्णय करके अनुभव में आना, वह मार्ग है। यह निर्णय करके वहाँ रुकना, ऐसा नहीं। समझ में आया?

बारम्बार भाता हूँ, ऐसा आया न? '**मुहुर्मुहुः**' धर्मात्मा को तो '**मुहुर्मुहुः**' वीतरागपने का उपदेश करना, ऐसा आता है। उसमें तो यह आया, मैं एक वीतरागपने को ही बारम्बार भाता हूँ। मुनियों ने उपदेश में अकेला वीतरागभाव का उपदेश देना। राग से यह होता है और राग करनेयोग्य है, यह उपदेश का मुनि को हो नहीं सकता। आहाहा!

भाई! २४ वर्ष के एक अभी आचार्य हुए। उनका लेख... २४ वर्ष का है। साधु, आर्यिका और... आचार्यपद में है। २४ वर्ष की उम्र। निर्मलसागर है न? अभी २४ वर्ष की उम्र... दृष्टान्त ऐसा कि आठ वर्ष में केवल(ज्ञान) पावे, उसमें क्या है? पावे। इसलिए २४ वर्ष में आचार्यपद लेने में दिक्कत क्या है? उसमें आया है। २४ वर्ष का है निर्मलसागर। अन्त में बैठे थे। हम साधु हैं और आर्यिका हैं, क्षुल्लक हैं... बड़ा टोला है।

अरे, भाई! साधुपना किसे कहना अभी? आहाहा! यह साधुपने की व्याख्या चलती है। सामायिक कहो या साधुपना कहो। श्रावक भी एकदेश से साधु है। साधक है, इसलिए एकदेश साधु। आहाहा!

मुमुक्षु : नमूना....

पूज्य गुरुदेवश्री : नमूना उस प्रकार का हो कि शक्कर के बदले जहर बतावे कि यह नमूना है—ऐसा होगा? शक्कर का बड़ा ढ़ेर हो हजार मण का, फिर उसमें से थोड़ी काली जीरी निकलती होगी नमूना? भाई! यह लो नमूना। रुई का बड़ी गाँठ हो। रुई की बड़ी क्या कहलाती है? धोकडुँ (गाँठ)। उसमें से निकाली हो थोड़ी ईयल। लो, यह उसका नमूना। उसका नमूना होगा? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : वेश का नमूना तो है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वेश ही कहाँ था उसमें? वह जड़ की पर्याय है। आहाहा! शरीर की पर्याय, वह तो मिट्टी की, जड़ की है। उसमें आत्मा में उसकी पर्याय कहाँ आयी? शुभराग तो उसमें होता है। उसे अपना मानता है और उसे सामायिक मानता है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। कठिन काम है। इसके घर में सब तीनों ही हैं। स्त्री दूसरी हो श्वेताम्बर की, यह हो दिगम्बर, भाई हो स्थानकवासी। एक घर में तीन, सब सबका खींचे।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर, दिगम्बर के बीच समभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे समभाव कहते होंगे? समभाव की व्याख्या यह (कि) जहर और अमृत, लड्डू और अमृत दोनों समान हैं? खानेवाला समझेगा, ऐसा हुआ न? आहाहा! कठिन बात है। वह अनादि की रूढ़ि है न चारित्र की, दूसरी बात सुनी कहाँ है? दिगम्बर कोई सम्प्रदाय नहीं, वह तो वस्तु के स्वभाव की बात है यह तो। समझ में

आया ? श्वेताम्बर में और स्थानकवासी में यह वस्तु की स्थिति ही नहीं है। यह सब ४०-४० वर्ष के, ५०-५० वर्ष के सुननेवालों को पूछो ? सुना था कभी ? था ही कहाँ ? वह भी मर गये क्रिया कर-करके। यह मन्दिरमार्गी, हमारे भगवानभाई स्थानकवासी, यह गुलाबचन्दभाई स्थानकवासी। यह तो अभ्यासी कहलाये, होशियार कहलाये न, पुस्तकें बहुत फिरायी हों उसकी।

मुमुक्षु : सबको मुसलमान बना देंगे....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुसलमान बना देंगे, ऐसा कहा न ?

मुमुक्षु : मुसलमान नहीं परन्तु उनके जैसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एक व्यक्ति ने ऐसा कहा था। लालचन्दभाई थे वकील वांकानेर में। लालचन्दभाई वकील थे न ? बहुत होशियार। श्वेताम्बर के प्रमुख, वांकानेर, नहीं ? वकील थे। गाँव में साधु आये होंगे, श्वेताम्बर के साधु। उसने (कहा), लालचन्दभाई ! आओ, कुछ प्रश्न-उत्तर करना हो तो। आचार्य महाराज आये हैं। इसलिए जरा कहे, देखो भाई ! मैं तो श्वेताम्बर साधु—श्वेताम्बर को और मुसलमान को समान गिनता हूँ। वह चिल्लाहट मचाये। 'गृहीत मिथ्यात्वी' आता है न ? भाई ! उसमें मोक्षमार्ग प्रकाशक के पाँचवें (अधिकार) में आता है। वह तो कहने आया कि आओ न ! अब मैं तो दोनों को गृहीत मिथ्यात्वी मानता हूँ। दोनों गृहीत मिथ्यादृष्टि है। बात भी सच्ची। मानना कठिन। अरर ! जैन श्वेताम्बर (और) मुसलमान एक जैसे होंगे ? वकील क्या बोले ? वकील थे। ऐसे थे श्वेताम्बर। फिर उन्हें लग गया कि यह मार्ग सच्चा है। ऐसा मार्ग (अन्यत्र) है नहीं, कहीं नहीं। उसे दुःख लगे, उसका प्रश्न नहीं। यह तो मार्ग... समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो, मैं अद्वैत, अखण्ड, अभेद हूँ, ऐसा विकल्प भी असमता है और वीतरागता को रोकनेवाला है। ऐसी बात परमात्मा सर्वज्ञ के मार्ग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। समझ में आया ? व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं होना चाहिए। उसकी मान्यता हो, (परन्तु) उसके (-व्यक्ति) के साथ द्वेष नहीं होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति हो, उसकी मान्यता (के कारण से) द्वेष नहीं हो। परन्तु जैसा स्वरूप है, वैसा मानना तो पड़े न।

समझ में आया? श्रीमद् में आता है 'आत्मज्ञान समदर्शिता...' आता है न? 'आत्मज्ञान समदर्शिता विचरे उदय प्रयोग...' समदर्शिता की व्याख्या की है उसमें। सब समान, ऐसा नहीं। वह तो मूढ़ है...। परन्तु कुधर्म को कुधर्म कहे, सुधर्म को सुधर्म आचरे; सुगुरु को सुगुरु कहे, माने, मनावे और कुधर्म को कुधर्म कहे, माने, मनावे, सुधर्म को सुधर्म (कहे)—इसका नाम समता है। है दो लाईनें। है न यहाँ? लाओ, वह पुस्तक है न। बड़ी... बड़ी पुस्तक है।

'आत्मज्ञान समदर्शिता...' उसमें नहीं। बड़े में अर्थ है। 'आत्मज्ञान समदर्शिता...' कितनी लाईन है? इन्हें मुखाग्र होगी। 'विचरे उदय प्रयोग, अपूर्व वाणी परम श्रुत, सद्गुरु लक्षण योग्य।' स्वयं... श्वेताम्बर दिगम्बर... परन्तु लेखन ऐसा किया है अर्थ करते हुए। अर्थ स्वयं ने किये हैं, हों! आत्मसिद्धि के। बड़ा है न। यह लो, यह सब चिह्न किये हैं नीचे। 'समदर्शीपना अर्थात् लौकिक भाव का समानभाव, अभेदभाव, एकसरीखी बुद्धि, निरविशेषपना नहीं।' सब समान हैं, ऐसा नहीं। काँच और हीरा दोनों समान गिनना; सत्श्रुत और अश्रुत—असत्श्रुत में समपना गिनना, यह समभाव नहीं है। सत्धर्म और असत्धर्म में अभेद मानना और सद्गुरु और असद्गुरु में एकसरीखी बुद्धि रखना, सत्देव और असत्देव में निरविशेषपना दिखाना, दोनों को एक समान गिनना—इत्यादि समान वृत्ति, वह समदर्शिता नहीं, वह तो आत्मा की मूढ़ता है, विवेकशून्यता है, विवेक-विकलता है।

समदर्शी एक सत् को सत् जाने और बोधे, असत् को असत् जाने और निषेधे, सत्श्रुत को सत्श्रुत जाने और बोधे, कुश्रुत को कुश्रुत जाने और निषेधे, सत्धर्म को सत्धर्म जाने और बोधे, स्वयं जाने और प्ररूपणा भी करे, ऐसा; असत्धर्म को असत्धर्म जाने और निषेधे, सद्गुरु को सद्गुरु जाने और बोधे, असद्गुरु को असद्गुरु जाने और निषेधे, सत्देव को सत्देव जाने और बोधे, असत्देव को असत्देव जाने और निषेधे—इत्यादि जो जैसे हो, उसे वैसा देखे, जाने, प्ररूपित करे, उसमें राग-द्वेष, इष्ट-अनिष्ट बुद्धि न करे, इस प्रकार से समदर्शीपना जानना। श्रीमद् की बड़ी (पुस्तक)। ३१वें वर्ष में है। बड़ी पुस्तक में है। अर्थ स्वयं ने किये हैं। कुधर्म और सत्धर्म, सब समान, यह

विवेक-विकलता है, मूढ़ है, कहते हैं। समझ में आया? ऐई! शिवलालभाई! ऐसा कहते हैं, देखो! यह भी सच्चा और वह भी सच्चा। समभाव रखो, भाई! ऐसा समभाव नहीं होता। इसका नाम मिथ्यात्व है। समझ में आया? २०७ (कलश) हुआ। २०८ (कलश)।

विकल्पोपन्यासैरलमलममीभिर्भवकरैः,
अखण्डानन्दात्मा निखिलनयराशेरविषयः।
अयं द्वैताद्वैतो न भवति ततः कश्चिदचिरात्,
तमेकं वन्देऽहं भवभयविनाशाय सततम्॥२०८॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ,...** देखो! मैं अभेद, अखण्ड, सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा हूँ, ऐसा अभेद का विकल्प, वह भवभय का करनेवाला है। भव के करनेवाले, ये विकल्प हैं।

मुमुक्षु : समकित-सन्मुख ले जाये ने?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी ले जाये नहीं। कौन कहता था? ऐई, चेतनजी! होवे, वह तो प्रशस्त (राग है)। आहाहा! जहर, वह अमृत तक ले जाये न? थोड़ा पीकर फिर उसकी डकार आती होगी या नहीं? **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प...** देखो! इसके कथन और भाव दोनों। यहाँ कथन का मेल किया है।

भव के करनेवाले... आहाहा! मैं पूर्णानन्द शुद्ध सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा हुआ आत्मा, ऐसा हूँ, ऐसा जो विकल्प—राग, भव का करनेवाला राग है। आहाहा! दूसरा साधारण शुभभाव तो भव का करनेवाला है ही, परन्तु उसके एकरूप में अद्वैत और द्वैत के विकल्प भव के करनेवाले हैं। 'ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री भगवान...' **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। 'अलम्'** यह तो भाई! स्थिर होकर आत्मा को प्राप्त करना हो, उसकी बात है। भटकन करना, ऐसी जाल बहुत है, भटकने के बहुत रास्ते हैं, छूटने का एक रास्ता आत्मा की ओर ढलकर वीतरागता प्रगट करना। आहाहा! कहते हैं, भव के करनेवाले विकल्प से बस होओ।

जो अखण्डानन्दस्वरूप है... भगवान आत्मा एकरूप अखण्ड-आनन्दस्वरूप जिसका है। समझ में आया? जिसका त्रिकाली स्वभाव एक अखण्डस्वरूप है।

अखण्डानन्द... अखण्डानन्द का अखबार आता है न अहमदाबाद में? वह नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव अखण्ड एकरूप वस्तु है। ऐसे **समस्त नयराशि का अविषय है;...** पुण्यभाव का तो विषय नहीं, परन्तु नय यह निश्चय और व्यवहार, ऐसे जो विकल्प, उसका वह विषय नहीं। आहाहा! नय सम्बन्धी जो विकल्प, उनका वह विषय नहीं। समझ में आया? निश्चयनय से मैं एकरूप अभेद हूँ, ऐसा विकल्प का भी वह विषय नहीं और मैं गुणवाला हूँ, ऐसा भेद का विकल्प का भी वह विषय नहीं। **नयराशि**—नय का ढ़ेर... चाहे जितने नय हों, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो विकल्पवाले लेने हैं। **समस्त नयराशि का अविषय है;...** अर्थात् कि विकल्प के प्रकार चाहे जितने उठें, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के भेदवाले या अभेद—उसका वह विषय नहीं। उससे आत्मा पकड़ में आये, ऐसा नहीं है।

इसलिए यह कोई (अवर्णनीय) आत्मा... आहाहा! अवर्णनीय आत्मा... कथन करने जाये, वहाँ सब विकल्प और भेद उठेगा, कहते हैं। आहाहा! अरूपी आनन्दघन भगवान जिसके एक समय के स्वाद समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन जहर जैसे दिखते हैं, आहाहा! पूरी दुनिया के सुख की कल्पना की रुचि जहाँ उड़ जाती है। आहाहा! अखण्डानन्दस्वरूप ऐसा स्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। 'अखण्डानन्दवाला' ऐसा नहीं लिया। भगवान वीतराग अखण्ड आनन्द की मूर्ति है। विश्वास ला... विश्वास ला। विश्वास की कसौटी पर चढ़ा उसे—आत्मा को। ओहोहो! यह निर्मलपर्याय की बात है, हों!

इसलिए यह कोई (अवर्णनीय) आत्मा द्वैत या अद्वैतरूप नहीं है... आहाहा! मैं द्वैत हूँ या अद्वैत—ऐसी वासना की वृत्ति उठती है, वह वासना राग है। उसका वह रूप नहीं। उसको नयराशि का विषय नहीं, ऐसा कहा। वह स्वयं द्वैत-अद्वैतरूप नहीं, ऐसा कहा। यह **(अर्थात् द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से**—राग से **पर है)।** आहाहा! ऐसा ही उसका स्वभाव है। **उसे एक को मैं...** ऐसे आत्मा को एक को मैं... दूसरा भगवान या तीर्थंकर, उसे नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात भाग्य बिना सुनने को मिलती नहीं, ऐसी चीज़ है। संयोग है न सुनना, वह तो। (इसके लिये) पुण्य चाहिए न। यह वस्तु संक्षिप्त, सुनने से पार।

उसे एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये... पहले शुरु किया था कि विकल्प, पुण्य और पाप नय का विषय उठे अथवा द्वैत-अद्वैत का विकल्प उठे, वह सब भव के करनेवाले हैं। भव के अभावस्वरूप ऐसा जो भगवान आत्मा... आहाहा! ऐसे एक को मैं... 'इस एक को मैं' यह तो विकल्प है, परन्तु समझाना कैसे? समझ में आया? आहाहा! **अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये...** ओहो! अल्प काल में पुण्य-पाप का अन्त लाना है यहाँ। आहा! **सतत वन्दन करता हूँ।** मेरा निरन्तर आदर द्रव्यस्वभाव में है। समझ में आया? मेरी पर्याय में—निर्मलदशा में आदर—वन्दन करने में द्रव्य को वन्दन करता हूँ। आहाहा! **सतत्—**निरन्तर... सम्यग्दृष्टि का निरन्तर परिणमन द्रव्य के ऊपर ही होता है। समझ में आया? **सतत् वन्दन करता हूँ।** २०८ कलश हुआ। है न, पाँच श्लोक हुए न? तीन बाकी हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ९, मंगलवार, दिनांक - २८-९-१९७१
श्लोक-२०९-२११, गाथा-१२७, प्रवचन-१३८

कलश २०९ है।

सुखं दुःखं योनौ सुकृत-दुरित-व्रात-जनितं,
शुभाभावो भूयोऽशुभपरिणतिर्वा न च न च।
यदेकस्याप्युच्चैर्भव-परिचयो बाढ-मिह नो,
य एवं सन्न्यस्तो भवगुणगणैः स्तौमि तमहम्।।२०९।।

क्या कहते हैं यहाँ? सामायिक कहो, समाधि कहो—उसके स्वरूप का वर्णन है। **श्लोकार्थः—योनि में—**चौरासी लाख अवतार में, ऐसा कहते हैं। चौरासी लाख उत्पत्तिस्थान है न? उसमें **सुख और दुःख सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है...** चौरासी के अवतार में कल्पना से सुख है और कल्पना से दुःख है। ऐसी कल्पना का सुख-दुःख वह सुकृत और दुष्कृत के समूह से होता है। शुभभाव और अशुभभाव उनसे चौरासी लाख में अवतार सुख-दुःख के स्थानरूप होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चौरासी के अवतार में उपजने का कारण, कहते हैं कि उसमें सुख-दुःख होने का कारण, संयोग अनुकूल-प्रतिकूल मिले, उसका कारण शुभ और अशुभभाव है। **चार गति के जन्मों में सुख-दुःख शुभाशुभ कृत्यों से होता है।** यहाँ तो शुभ और अशुभभाव दोनों चौरासी के अवतार में उपजने के कारण कहे हैं। आहाहा! समझ में आया?

और दूसरे प्रकार से (-निश्चयनय से),... चाहिए तो **आत्मा को शुभ का भी अभाव है...** क्योंकि शुभभाव तो आस्त्रव है, आस्त्रव से कर्म आते हैं और संयोग अनुकूल-प्रतिकूल मिलते हैं। आत्मा में तो वह है नहीं। **आत्मा को शुभ का भी अभाव है तथा अशुभ परिणति भी नहीं है—नहीं है,...** दो बार बताया। ऐसा आत्मा उसे जिसने पकड़ा और दृष्टि में लिया, उसे समाधि होती है, उसे शान्ति और सामायिक होती है।

आहाहा! **क्योंकि इस लोक में एक आत्मा को...** भगवान शुद्ध सच्चिदानन्द आत्मा—शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पूर, ऐसा जो आत्मा... **एक आत्मा को (अर्थात् आत्मा सदा एकरूप होने से उसे) निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** आहाहा! भव के भावरूप नहीं, इससे उसे भव का परिचय नहीं। आत्मा उसे कहते हैं, जो ज्ञान-आनन्द और वीतरागस्वभाव से भरपूर भरा हुआ तत्त्व है। ऐसे आत्मा को शुभभाव नहीं, अशुभ नहीं। और उससे तो अवतार होने का कारण था, परन्तु भगवान आत्मा को—एकरूप स्वरूप को भव के भाव का अभाव है, तो भव का परिचय तो है नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा ध्रुव आनन्दस्वरूप में शुभ-अशुभभाव का परिणमन नहीं और वह शुभ-अशुभभाव योनि में उत्पन्न होने का कारण था। इसलिए एकरूप आत्मा को, पुण्य और पाप के राग के परिणमन से रहित है कि जो राग का परिणमन शुभ-अशुभ का सुकृत और दुष्कृत संसार के सुख-दुःख के संयोग में उत्पन्न होने का कारण है। ऐसे आत्मा को भव का परिचय नहीं। भव के भाव का उसमें स्वरूप नहीं, (इसलिए) भव का परिचय नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा, उसे दृष्टि में लेकर, उसमें वीतरागभाव—स्वभाव से स्थिर हो, उसे सामायिक कहा जाता है। समझ में आया? जिसमें भव के भाव का अभाव है, तब ऐसा हुआ कि मोक्ष के स्वभाव का उसमें सद्भाव है। समझ में आया?

निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। जिस भाव से देव का भव मिले, उस भाव से आत्मा नहीं और उस भाव का परिणमन द्रव्य में नहीं, द्रव्य में वह है ही नहीं। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, उसे चौरासी के भव का परिचय ही नहीं। आहाहा! भव का उसे अभ्यास ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे भव का अभ्यास नहीं। वह अपने स्वभाव को पकड़कर आत्मा का अभ्यास करे, उसे सामायिक होती है। आहाहा! व्याख्या तो देखो! दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी स्पष्ट बात कहीं है नहीं—है ही नहीं। आहाहा! कितना सीधा... सीधा है न। भाई! तू आत्मा है। आत्मा को भव का परिचय कैसा? भव का अभ्यास कैसा उसे? आहाहा!

कहते हैं कि तेरा शुद्ध आनन्दस्वभाव, उसका अभ्यास हो, ऐसा उसका स्वभाव है। उसका अभ्यास हो, ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। भव के अभाव-स्वभावरूप होना, वह तेरा स्वभाव है। सामायिक, वह भव के अभावस्वरूप होने के लिये है। समझ में आया? आहाहा! मूलचन्दभाई! ऐसी सामायिक। आहाहा! भाई! तेरे घर में तो... सामायिक कहो, समाधि कहो, वीतरागता कहो, मोक्षमार्ग कहो। इस मोक्षमार्गरूप परिणमना, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु संसार के भावरूप होना, ऐसा उसमें स्वभाव नहीं है। आहाहा! यह आत्मा। उसे कहते हैं जैनशासन का आत्मा। आहाहा! समझ में आया? यह भारी कलश करते हैं न! गजब करते हैं न परिचय की शैली! जिसे सामायिक है, उसका तो स्वभावरूप से परिणमना, उसका स्वभाव ही है, कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि जो भव के अभावरूप ऐसे स्वभावरूप परिणमना, वह तो उसका त्रिकाली स्वभाव में स्वभाव पड़ा हुआ ही है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : परिणमना ऐसा उसका स्वभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव सन्मुख परिणमना, ऐसा उसका स्वभाव है।

मुमुक्षु : परिणमना, वह तो पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है न परन्तु वह शुद्धरूप से परिणमना, उसकी पर्याय है। अशुद्धरूप से होना, उसकी पर्याय है ही नहीं। यहाँ द्रवति इति द्रव्य, तो शुद्धरूप से ही द्रवे, ऐसा कहते हैं। वह दूसरी अपेक्षा। आहाहा! समझ में आया? पर्याय उसमें नहीं। पर्याय... वह तो अंशपना है त्रिकाल में, परन्तु जो त्रिकाल वस्तु जो आनन्दस्वरूप, समाधिस्वरूप, सामायिकस्वरूप अर्थात् त्रिकाल, हों! उसमें रागरूप होना, उसका स्वभाव नहीं। भव का परिचय नहीं, परन्तु भव के अभावरूप से परिणमना, उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो न! क्या शैली ली है! निश्चय से तो जो परिणमन शुभ-अशुभ होता है, वह तो अन्दर शक्तिरूप से है। सर्वज्ञ के ज्ञान में ऐसा आया है कि यह परिणमन—यह पर्याय जो है, वह शक्ति का भेद है, उसमें से आयी है। भेद की अपेक्षा से, हों! सामान्य की अपेक्षा से नहीं। समझ में आया? आहाहा! शुद्धता में से

शुद्धता की धारा बहती है। आहाहा! वह मुक्तस्वरूप है। वीतरागस्वरूप, समाधिस्वरूप, प्रायश्चित्तस्वरूप आदि आया न? आहाहा!

अरे! धीर होकर कभी देखे और जाँचे तो सही कि यह कौन है, क्या है परन्तु यह? समझ में आया? जो भगवान आत्मा **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** उसमें से गुलाँट खाकर निकाला है। ऐई! उसमें से आया मस्तिष्क में। भव का परिचय बिल्कुल नहीं। (तो) है क्या? समाधिरूप से परिणमना, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! गजब बात है! यह बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं सुनने को मिलती, नहीं। एक वीतरागमार्ग सनातन दिगम्बर नग्न मुनि, नागा, वह बादशाह से आघा। आहाहा! ऐसी चीज़, देखो न! भाई! तू कौन है? कि तू है भव के परिचयरहित। आहाहा! समझ में आया?

बाद में तो आयेगा न सन्निहित... वहाँ तो भावी तीर्थंकर लेंगे कलश में। भावी तीर्थंकर के ऐसे परिणाम होते हैं। दूसरे के भले हों, परन्तु उसे तो इस परिणाम से केवल (ज्ञान) लेना है। वह 'भावी तीर्थाधिनाथ' आता है न? समीप लिया न समीप? वह भावी में होनेवाली तीर्थंकर की पर्याय में वर्तमान में उसे आत्मा ही समीप सदा है। कभी राग उसे समीप होगा, ऐसा उसे बनेगा ही नहीं, ऐसा कहते हैं। 'सन्निहो अप्पा' है न? यह शब्द आता है श्वेताम्बर में। अनुयोगद्वार में आता है, आठ गाथा आती है। '**जस्स संणिहिदो अप्पा**' (गाथा १२७)। जिसकी पर्याय में समीपपने द्रव्य है, उसे राग का समीपपना कभी होनेवाला नहीं। समझ में आया?

कलशकार ने 'भावी तीर्थंकर' डाला है '**संणिहिदो अप्पा**' में। मैंने कहा, यह कैसे आया? उनका आत्मा इस भाव से ही भविष्य में तीर्थंकर होनेवाला है न, इसलिए ये भाव उन्हें ऐसा ही रहनेवाला है। दर्शन—सम्यग्दर्शन का, चारित्र नहीं। कहते हैं कि आहाहा! भगवान! तू कौन? कि मैं इस भव के परिचयरहित वह मैं। समझ में आया? तब किसका परिचय—अभ्यास पर्याय में उसे होगा? आता है न वह '**सुदपरिचिदाणुभूदा**' भाई! (समयसार) चौथी गाथा में। '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।**' यह सुना नहीं, आत्मा का परिचय किया नहीं, अनुभव किया नहीं। चौथी गाथा में आता है। परिचय किया नहीं। यह परिचय किया, वह परिचय उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया? आहाहा!

शुभ-अशुभराग, वह संसार का मूल है, चौरासी की उत्पत्ति का वह मूल है, जो मूल वस्तु में नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा शान्तरस का सागर अनन्त-अनन्त—बेहद शान्तरस से भरपूर भगवान, उसे भव का परिचय नहीं। गजब बात है! अभी तो उसे देव होना है, फलाना होना है, फिर भगवान के पास जाना है। आहा! अरे, भाई! समझ में आया? ऐसा पुण्य बाँधेंगे, देव में जायेंगे, भगवान के पास जायेंगे। परन्तु वह तेरे स्वभाव में नहीं। भव का भाव ही नहीं, वहाँ कहाँ जाना है तुझे? यह सब भावना ही पूरी खोटी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'निश्चित्' वापस ऐसा शब्द है न? बाढ़। उसमें बाढ़ नहीं आती। क्या कहते हैं तुम्हारे समुद्र में? भरती को दूसरा क्या कहते हैं तुम्हारे हिन्दी में? ज्वार। समझ में आया? आत्मा के समुद्र में वह पुण्य-पाप के भाव का ज्वार है ही नहीं। कहाँ से आवे? उसमें था कहाँ, वह आवे? आहाहा! समझ में आया?

इस लोक में एक आत्मा को... द्वैत—दूसरा विकल्प ही नहीं उसमें। आहाहा! **(आत्मा सदा एकरूप होने से उसे) निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** जोरदार—निश्चित भव का परिचय जरा भी नहीं। सर्वार्थसिद्धि का भव करना या तीर्थंकरपने का भव करना—ऐसा भाव बिल्कुल आत्मा में नहीं है। आहाहा! उसमें समझ में आया? **इस प्रकार जो भवगुणों के समूह से संन्यस्त है...** लो। आहाहा! भव की पर्याय हुई न वह। 'कामगुणे' आता है न? 'पंचवे कामगुणे' ऐसा आता है। किया था श्रमणसूत्र? नहीं? आता है न चौथे पद में। 'पंचवे कामगुणे' उस कामना का... अफीम का गुण कड़वाहट, शक्कर का गुण मिठास, आत्मा का गुण आनन्द, ऐसा। गुण उत्कृष्ट वह अच्छा कहलाये। ... 'कामगुणे' शब्द प्रयोग किया है। उसी प्रकार यह भव के गुण... तुम्हारे श्रमणसूत्र नहीं होगा मन्दिरमार्गी में। साधु को होता है।

चौथा श्रमणसूत्र सुना है न? सुना तो होगा। 'पडिकमामी....' उसमें आता है। किसी समय साधु प्रतिक्रमण करावे तो उसमें—प्रतिक्रमण में आता है। ...यहाँ तो स्थानकवासी को श्रावक में आता है। एक श्रमणसूत्र है। श्वेताम्बर में है। 'श्रमणसूत्र' नाम। स्थानकवासी श्रावक को वह बुलावे। मन्दिरमार्गी श्रावक को नहीं, साधु बोले। उसका श्रमणसूत्र नाम है। श्रमण का सूत्र। 'पंचविहिं कामगुणेहि' पडिकमामि—निवर्तता

हूँ, मैं पाँच प्रकार के काम के गुण से अर्थात् विषय के गुण से निवर्तता हूँ। वह एक भी गुण है न जगत में भटकने का। समझ में आया?

इस प्रकार जो भवगुणों के समूह... देखो! चौरासी लाख के कारण जो शुभाशुभ परिणाम, असंख्य प्रकार के शुभ और अशुभ, उससे संन्यस्त है। आहाहा! **गुणों से रहित है, उसका मैं स्तवन करता हूँ।** आहाहा! 'स्तवन करता हूँ' यह सामायिक है। ऐसा जो भगवान आत्मा कि जो भव के गुण शुभ-अशुभ राग-द्वेष, उनसे प्रभु रहित है। अरे! सहित है उसे 'रहित है' ऐसा मानना वह कुछ नहीं? समझ में आया? वर्तमान में ही उसे मानना कि रहित हूँ। ऐई! राग-द्वेष पर्याय में सहित होने पर भी वस्तु उनसे रहित है, यह वह कहीं पुरुषार्थ को हद है? अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया? आहाहा! उस पुरुषार्थ की कीमत नहीं आती, परन्तु कुछ ऐसा करे और राग करे और क्रिया करे, उसकी लोगों को कीमत होती है, अर्थात् आत्मा की कीमत उसे आती नहीं। राग की—आस्रव की कीमत आती है, जो उसमें नहीं, उसके गुण की कीमत आती है। आहाहा! समझ में आया? गुजराती समझ में आता है न? हिन्दी है न? आहाहा!

गजब कलश है! बिजली आवे न बिजली ऊपर से? ताँबे का अर्थिंग करते हैं न उस ताँबे का, क्या कहलाता है? सरिया। क्या कहलाता है वह? पट्टी ताँबे की। वह ऊपर से उतर जाये एकदम बिजली। ऐसा कहते हैं, ऐसे पुरुषार्थ की जागृति कर, द्रव्य में उतर जा एकदम अन्दर (कि) जिसमें राग-द्वेष, संसार नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा यह भगवान आत्मा अनादि का ऐसा यह है। समझ में आया? जिसे भव का परिचय नहीं, जिसमें भव नहीं। आहाहा! जिसने भव किये नहीं। भगवानभाई! चौथा श्रमणसूत्र तो आता होगा? यह तो आता ही हो न। ... चौथा ... परन्तु अर्थ-बर्थ की कुछ खबर नहीं होती। आहाहा!

वहाँ तो वहाँ तक आता है, उसमें 'पडिकमामि चऊवि...' आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान—चारों से निवर्तता हूँ। लो, यह बड़ी चर्चा हो गयी है सम्प्रदाय में। आहाहा! यह चर्चा हो गयी है सम्प्रदाय में। ...शुक्लध्यान से निवर्तना है, ऐसा कहते हैं। आवे न यह 'चोविहं जाणिहं' ... क्या फिर नाम? नाम क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, वह नहीं। पडिकमामि... फिर यहाँ तो पंच... अपने 'पडिकमामि चोविहं जाणिहं' .... चार ध्यान से विमुख होता हूँ। यह तो उसमें उसने साधारण भाषा की है। परन्तु यह तो ऐसा अर्थ निकालते थे। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! तू कौन है? कि जिसकी शरण लेने से समाधि और सामायिक प्रगटे, उस सामायिकरूप होने का, शुद्ध परिणमन होने का स्वभाव है। '**सुद्धं तु बियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो**' (समयसार, गाथा १८६) आता है न? वह शुद्ध ध्रुव भव के अभाववाला तत्त्व, वह समाधि और भव के अभाव के परिणाम को प्राप्त करता है। समझ में आया? ऐसा जो **नित्य-शुद्ध आत्मा...** उसे मैं... मैं आत्मा... **मैं स्तवन करता हूँ।** अर्थात् ऐसा मैं, उसे स्तवन करता हूँ, लो। उसके गुणग्राम मैं करता हूँ, इसका अर्थ कि मैं उसमें एकाग्र होता हूँ। समझ में आया? लो, २०९ (कलश हुआ)। २१०।

इदमिह-मघसेना-वैजयन्तीं हरेत्तां,
स्फुटित-सहजतेजःपुञ्जदूरीकृतांहः।
प्रबलतर-तमस्तोमं सदा शुद्धशुद्धं,
जयति जगति नित्यं चिच्चमत्कार-मात्रम्॥२१०॥

ऐसी सब महिमा की तो उसको अच्छा नहीं लगा। इसमें कुछ व्यवहार आता नहीं। व्यवहार करते हैं, होवे न? व्यवहार तो ऐसा कुछ करे तो दिखाई दे। यह करते हैं, देखो! यह व्रत करते हैं। वह तो शुद्धपर्याय स्वयं व्यवहार है। पूरा त्रिकाली द्रव्य तो यह है, उसे 'स्तवन करता हूँ' यह व्यवहार है। एकाग्र होना, वह पर्याय है। पर्याय स्वयं व्यवहार है, त्रिकाली निश्चय है। मोक्षमार्ग स्वयं व्यवहार है। पर्याय है न! मोक्षमार्ग पर्याय है। एक द्रव्य में ऐसे दो उतारेंगे, तब निश्चय और व्यवहार ऐसे उतरेंगे। शुद्ध व्यवहार पर्याय... वह आत्मा का शुद्ध व्यवहार। रागादि कहीं आत्मा का व्यवहार नहीं। वह तो मनुष्य का कर्तव्य भव-भववाले का है। आहाहा!

सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह... भगवान आत्मा **सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष)...** 'यह' शब्द पड़ा है सही न! **चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व...** उसमें तो चैतन्य का चमत्कार

है। राग का, बाह्य का, उसका, फलाने का (है नहीं)। आहाहा! 'चमत्कार, वहाँ नमस्कार।' यह चैतन्य चमत्कार, उसे नमस्कार करनेयोग्य है। वह तो कुछ कैसा निकाल दे,... और ढींकणा कर दे। ऐसा करे वहाँ नींबू निकाल दे। अब उसमें क्या? वह चमत्कार सब। वह सोने की साँकल निकाल देता है सांईबाबा। उसमें क्या धूल में? तेरी साँकल में क्या है? जन्तर भूतड़ा हुआ था तो ऐसा अनन्त बार पाया है। निकाला था बाहर से लाकर। क्या है परन्तु? अरे, गहल-पागल! उसका चमत्कार लगा इसे। ऐसे निकाला, कंकू निकाला ऐसे से। कुछ हाथ में नहीं था, ऐसा-ऐसा किया तो कंकू। कंकू निकला न? जड़। जड़ निकला, वह आत्मा नहीं। आहाहा! यहाँ तो शुभाशुभपरिणाम निकाले, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे, सुन न! ... आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक, उसमें ऐसे मुनि मिले टीका करनेवाले! आहाहा!

अरे! '**इदं**' है न? यह (अर्थात्) '**इदं... इदमिदमघसेना**' आहाहा! **जगत में नित्य जयवन्त है—कि जिसने प्रगट हुए...** उसमें दूर किया है। देखो! आया यह स्वधर्मत्याग। क्या कहते हैं? **सदा शुद्ध-शुद्ध...** जोर दिया है। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, ध्रुव शुद्ध त्रिकाल। ऐसा भगवान आत्मा, प्रत्यक्ष—वह मति और श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हो, ऐसा वह है। उसका स्वभाव ही प्रत्यक्ष है, स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष जिसका स्वभाव है। कहो, समझ में आया? देखो! यह स्वभाव आया या नहीं? ऐई! 'प्रत्यक्ष' आया है न अलिंगग्रहण में। अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। पर्यायरूप से हो, ऐसा ही उसका स्वभाव है। शुद्ध, वह शुद्धरूप से परिणमे, वह ही उसका—पर्याय का स्वरूप है। समझ में आया? शुभाशुभरूप तो अवतार के कारण का परिणमन है भव-भव का। आहाहा! अब (अज्ञानी को) लगे, शुभ—पुण्य भव का कारण नहीं, शुभ (भाव) भव का कारण नहीं। यहाँ कहते हैं कि शुभ-अशुभ दोनों भव के कारण हैं। समझ में आया?

शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह... शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष) चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व... चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व, जिसे अल्प काल में ज्ञान में लोकालोक ज्ञात हो, ऐसा वह चमत्कारी तत्त्व है। समझ में आया? **चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व...** श्रीमद् में आता है न? जगत को... क्या आया है? गुप्त चैतन्यचमत्कार की खबर नहीं। गुप्त चैतन्यचमत्कार...

पर्याय के ऊपर दृष्टि, राग के ऊपर दृष्टि, उससे गुप्त द्रव्यस्वरूप का चमत्कार क्या है, (उसकी खबर नहीं)। पर्याय में प्रगट नहीं, वस्तुरूप से प्रगट है। ऐसे गुप्त चमत्कार भगवान आत्मा का तत्त्व जगत में नित्य जयवन्त है। लो, ठीक! पर्याय में भान आया न? सामायिक में समाधि—शान्ति होकर। अहो! जहाँ अशान्ति का नाश होकर शान्ति आवे, ऐसा **चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत में नित्य जयवन्त है...** ऐसा का ऐसा विराजता है अनादि-अनन्त।

कि जिसे प्रगट हुए **सहज तेजःपुंज द्वारा...** लो, ठीक! जिसने प्रगट हुए स्वाभाविक तेज:पुंज द्वारा... यह तो प्रगट हुई पर्याय हुई। जिसने प्रगट हुए सहज ज्ञान के पुंज द्वारा **स्वधर्मत्यागरूप...** लो। **(मोहरूप)...** स्वधर्म का त्याग, वह मोह। **कृतांहः** आहाहा! स्वधर्मत्याग—अपने धर्म का अभाव। ठीक! जिसे राग में प्रेम है, उसे स्वधर्म का अभाव है, उसका मोह है। आहाहा! समझ में आया? बाह्य में त्याग करके मानता है कि हम त्यागी हैं। कहते हैं कि अन्तर में स्वधर्म के त्यागी हैं, मोह है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु का स्वभाव, उसका जिसे त्याग अर्थात् उसका अभाव अर्थात् मोह का सद्भाव। आहाहा!

ऐसा मोह **अति प्रबल तिमिरसमूह को...** मोहरूप अतिप्रबल तिमिरसमूह, ऐसा। **(मोहरूप) अति प्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है...** किससे? सहज तेज:पुंज द्वारा। वह वस्तु में ही नहीं। समझ में आया? मोहरूप प्रबल तिमिरसमूह वस्तु में ही नहीं और वस्तु का आश्रय लेकर पर्याय में था, उसका नाश किया है। दोनों बातें। वस्तु में ही यह नहीं। मोहतिमिर का पटल वस्तु में ही नहीं। इसलिए वस्तु का आश्रय लेने से, सामायिक और समाधि प्रगट होने से मोह का नाश होता है। समझ में आया?

और जो उस अघसेना की ध्वजा को... आहाहा! अघसेना की ध्वजा। पाप की सेना की ध्वजा। लहराती हो न उसकी ध्वजा? उसे **हर लेता है...** वस्तु में अघ—पाप की सेना है ही नहीं और ऐसी चीज़ का आश्रय लेने से जो सामायिक और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय (होती है), वह अघसेना की ध्वजा को लूट लेती है। पाप की ध्वजा फिरकती थी, उसे लूट लेता है। समझ में आया? सेना में, उसकी ध्वजा लुट गयी तो

राजा लुट गया, ऐसा माना जाता है। सेना के ऊपर उसका राजा। ऊपर होता है न? राणपर में ऐसा हुआ था। राणपर है न यह? ऊनारा गाँव का नाम है। वहाँ राजा रहता था। राजा था। वह गढ़ है न? 'राणा क्रीड़ा छोड़, कटक आया किनारे।' वह राजा था, वह खेल करता था। क्या कहलाये? चौपड़, तुम्हारे चौपड़।

उसमें किसी ने कहा, कटक—सेना आयी। राजा! अब खेल छोड़, सेना आयी किनारे। एकदम तैयार होकर, रानी-बानी एक ओर रखकर भागा। यहाँ कहा कि देखो! मेरी ध्वजा है, वह ऊँची रहती है, तब तक मैं जीतता हूँ—जीवित हूँ। मेरी ध्वजा गिरे तो समझना कि हार गया। नजदीक आ गयी सेना। वहाँ उसमें एक ऐसा निकला, शरारत की और हारे बिना यों ही ध्वजा गिरा डाले। रानियाँ कुँआ है वहाँ... ऊपर कुँआ है, ऊपर कुँआ है। एक के बाद एक रानी गिरी कुँआ में। राजा हार गया, ऐसा हुआ। आकर अपने को पकड़ेगा, ले जायेगा, लूटेगा। कुँआ है न ऊपर। देखा था, हम गये थे। एक के बाद एक मर गयी। लो, यह राजा की ध्वजा लुट गयी। यह अघ की ध्वजा लुटने से पाप का—सबका नाश हो गया, जाओ। आहाहा! यह गजब बात आयी। अघसेना की ध्वजा **हर लेता है।** वह कहे, अरिहन्त में 'हंत'—'हनना' नहीं आता। यहाँ तो हर लेता है। आहाहा! यह २१० हुआ। २११ (कलश)।

जयत्यनघमात्मतत्त्वमिदमस्तसन्सारकं,
महामुनिगणाधिनाथहृदयारविन्दस्थितम्।
विमुक्तभवकारणं स्फुटितशुद्धमेकान्ततः,
सदा निजमहिम्नि लीनमपि सद्दृशां गोचरम्॥२११॥

यह अनघ (निर्दोष) आत्मतत्त्व... अघ अर्थात् दोष, पुण्य और पाप दोनों दोष। अनघ अर्थात् निर्दोष। ऐसा आत्मतत्त्व... भगवान आत्मा निर्दोष तत्त्व जयवन्त वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? निर्दोषता में से निर्दोषता निकालनी (प्रगट करनी है)। सदोषता से निर्दोष विस्तार निकलेगा नहीं। गजब! **(निर्दोष) आत्मतत्त्व जयवन्त है...** आहाहा! **कि जिसने संसार को अस्त किया है,....** आहाहा! भगवान आत्मा निर्दोष आत्मतत्त्व नित्यानन्दरूप विराजता है। जिसमें संसार बिल्कुल नहीं है। 'अस्त किया है'

अर्थात् संसार उसमें है नहीं। संसार के भव अस्त हो गये हैं, कहते हैं, अस्त हो गये हैं। आहाहा!

संसार को अस्त किया है,... 'संसारकं' है न? **'अस्तसंसारकं' जो महामुनिगण के अधिनाथ के हृदयारविन्द में स्थित है,...** यहाँ गणधर को लिया है। यहाँ गणधर को लिया है, उसमें—बाद की गाथा में तीर्थंकर को लेंगे। ओहो! **महामुनिगण के अधिनाथ...** सन्त-भावलिंगी आत्मशान्तिवाले सन्त, उनके जो गण, उसके अधिनाथ—उसके झुण्ड के नाथ गणधर। गण अर्थात् साधु—सन्त का समूह, उसके धारक—अधिनाथ। जिसके **हृदयारविन्द में स्थित है,...** आहाहा! समझ में आया? जिसे निश्चित् हो गया है कि इनकी मुक्ति निश्चित है, ऐसा। ऐसे गणधरों के हृदयारविन्द—हृदयकमल—अन्दर ज्ञानरूपी कमल, उसमें आत्मा स्थित है।

जिसने भव का कारण छोड़ दिया है,... आहाहा! भव संसार से तो अस्त हो गया है। वह संसार में अस्त हो गया है। वह अब संसार उगे, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक तत्त्व के गीत तो देखो! एक तत्त्व की वस्तुस्थिति। कहना है संक्षिप्त—स्व में आना और पर से हटना। परन्तु उसका विशेष स्पष्टीकरण करते हुए... ऐसा स्व है, इसलिए अन्दर आ। **हृदयारविन्द में स्थित है, जिसने भव का कारण छोड़ दिया है,...** समझ में आया? आत्मा में भव के कारण नहीं और जिसकी पर्याय में भी भव के कारण नहीं। **जो एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है...** अर्थात् कि **सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है...** ऐसा। एकान्त से त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा जानने में आता है (अर्थात्) वह प्रगट हुआ है।

जो एकान्त से शुद्ध प्रगट हुआ है (अर्थात् जो सर्वथा शुद्धरूप से स्पष्ट ज्ञात होता है)... जिसमें भव का अन्त है, भव के कारण का अभाव है। ऐसा जो उसका स्वरूप चैतन्यचमत्कार सदा स्पष्ट ज्ञात होता है। स्पष्ट जानना, वही उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परोक्ष रहना उसका स्वभाव—वस्तु का स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रत्यक्ष होता है पर्याय में, परन्तु उसका स्वभाव प्रत्यक्ष होने का था तो होता है न? समझ में आया? त्रिकाल द्रव्यस्वभाव प्रत्यक्ष होने के योग्य ही है। पर्याय में प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! यह आत्मा छोड़कर बात, यह 'वर छोड़कर बारात'

की बात है। ऐसा आत्मा, जिसे कल्याण करना है, वह करनेवाला है कितना? कितना, कैसे, कहाँ, क्यों, किस प्रकार से है? खबर बिना करो। आहाहा! कहो, भीखाभाई!

तथा जो सदा (टंकोत्कीर्ण चैतन्यसामान्यरूप)—ध्रुव **निज महिमा में लीन होने पर भी...** सामान्यस्वरूप जो ध्रुव नित्य जयवन्त वर्ते, ऐसा तत्त्व है। निज महिमा में लीन होने पर भी, वह तो स्वरूप में ही है, ऐसा कहते हैं। **सम्यग्दृष्टियों को गोचर है।** **'सदृशां गोचरम्'** आहाहा! स्वयं अपने में वस्तुरूप से रहा हूँ, ऐसा कहते हैं। तथापि सम्यग्दर्शन में सम्यग्दृष्टि को गम्य है। लो, 'चार भाव को अगम्य' आया था न? यहाँ, सम्यगदर्शन को गम्य है, (ऐसा कहा)। (वहाँ) चार भाव का आश्रय लेकर नहीं होता, इस अपेक्षा से बात है। त्रिकाली शुद्धस्वभाव सम्यग्दृष्टि को गम्य है।

गोचर में से गोचर आया मस्तिष्क में। गाय गोचर करती है न? सम्यग्दृष्टि आनन्द का स्वाद, पूरा निकाले बिना अन्दर स्वाद लेता है पर्याय का। यह गोचर नहीं कहते? गोचर गाय। गोचरी करके थोड़ा-थोड़ा खाये। गाय गोचरी करे, इसका अर्थ, मूल में से उखाड़े नहीं। गधा होता है, वह मूल में से खींचकर निकालता है, ऐसे गाय है, वह ऊपर से खाती है। गो-चर। इसी प्रकार पूरे आनन्दकन्द को रखकर आनन्द की पर्याय को वेदे, वह गोचर। समझ में आया? आहाहा! अलग-अलग कलश करके... गाथा से अधिक कलश हैं। यह तो आठ कलश हैं। एक गाथा के आठ कलश हैं। आहाहा! भगवान (आत्मा) को भूला और दूसरे को तूने स्मरण किया। १२६ (गाथा) हुई, अब १२७।

जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे॥१२७॥

संयम-नियम-तप में... यह नियमसार है न! नियम भी आया साथ में।

संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२७॥

केवली भगवान के शासन में इसे सामायिक कहा जाता है। समझ में आया? **(इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है।** भगवान चैतन्य सामान्य ध्रुव, ज्ञानी के गुण-पर्याय में वह आत्मा समीपपने वर्तता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में

समीपपने, सम्यग्ज्ञान में समीपपने, सम्यक्चारित्र में समीपपने, सम्यक् नियम और तप में भी आत्मा समीपपने होता है, उसे समाधि और तप कहा जाता है। आहाहा! जिसने दृष्टि में आत्मा लिया है, उसे प्रत्येक निर्मल पर्याय में आत्मा का समीपपना वर्तता है। समझ में आया? राग में वर्तनेवाले को आत्मा दूर वर्तता है। समझ में आया? निर्मल संयम, नियम, तप आदि में वर्तनेवाले को आत्मा समीपपने है। इसलिए उसे संयम, नियम, और तप कहा जाता है। जिसमें आत्मा दृष्टि से दूर वर्तता है, उसकी पर्याय को राग और अज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

पुण्यपरिणाम में जिसकी दृष्टि वर्तती है, उसे आत्मा दूर वर्तता है। पवित्र परिणाम जो हुए, उसे आत्मा समीप वर्तता है। आहाहा! निर्मलपर्याय का ध्येय वह है, इसलिए उसकी पर्याय में समीप है—नजदीक में है। उसके साथ सहवास मांडा है। पुल उसके साथ मांडा है, कहते हैं। पवित्रता की पर्याय का पुल द्रव्य के साथ है, समीपपने से है। आहाहा! ऐसा शब्द आता है श्वेताम्बर में। ... परन्तु वह सब लिया हुआ किसी का। दूसरी बात में ठिकाना न हो। यह तो एकधारी बात। समझ में आया? और वापस ऐसा वहाँ कहे, व्यवहारक्रिया करते-करते निश्चय होगा। तो फिर यह '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' कहाँ आया वहाँ? पहले राग समीप हो गया, शुभराग हो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र होता है। परन्तु आत्मा हो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र हो। समझ में आया? बात पूर्वापर विरोध हो गयी।

यह तो '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' जिसकी निर्मल धर्म की पर्यायों में आत्मा ही समीप है, उसकी दौड़ द्रव्य के ऊपर है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी धर्म की बात कब थी? वे कहें, अपवास करना और ऐसा करना और व्रत पालना, फिर उसके अतिचार टालना, उसके दोष लगे तो प्रायश्चित्त लेना। लो, यह तो समझ में आता है। परन्तु 'तू कौन है' इसे समझे बिना क्या करेगा तू? आहाहा! समझ में आया? आत्मा को क्या करना है? आत्मा ऐसा है, ऐसा निर्णय करना, पर्याय में करना है। ध्रुव में क्या करना है? परन्तु ध्रुव है, ऐसा स्वीकार किसमें करना है? पर्याय ने उसका समीपपना करके प्रगट करना है या नहीं? पर्याय को राग का समीपपना, निमित्त का समीपपना प्रगट होता होगा?

मुमुक्षु : उसे प्रगट करनापना कहाँ है? वह तो तीनों काल है.....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा प्रगट होगा? परन्तु पर्याय में भान होता है, तब प्रगट हुआ कहलाता है। पर्याय में भान नहीं, तब दूर है, ऐसा कहलाता है।

कहा न, 'ज्ञायकभाव' नहीं कहा ग्यारहवीं गाथा में? यह ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है, ज्ञायकभाव तिरोभाव होता है। ज्ञायकभाव तिरोभाव होता है? परन्तु जिसकी पर्याय में राग की रुचि और प्रेम है, उसे ज्ञायकभाव तिरोभाव—दूर वर्तता है और जिसे ज्ञायकभाव का आश्रय लेकर 'यह ज्ञायकभाव' ऐसा भान हुआ, उसे उसकी पर्याय में ज्ञायकभाव प्रगट हुआ है। ज्ञायकभाव प्रगट नहीं होता, वह तो द्रव्य है। परन्तु ख्याल में आया तो ओहो! यह... वह यह। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! ऐसा मार्ग! आहाहा! मीठा समुद्र डोला है, डोलाया है। एक आत्मा, जिसमें समीपपने उपादेय है, ऐसा कहा। 'समीप' का अर्थ, उपादेय कहा। धर्मी को प्रत्येक धर्म की पर्याय में आत्मा ही नजदीकपने वर्तता है, डोर वहाँ बाँधी है। आहाहा! राग और व्यवहार और निमित्त के ऊपर डोर होती नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक - २९-९-१९७१
गाथा-१२७, प्रवचन-१३९

नियमसार, परम-समाधि अधिकार। समाधि कहो या सामायिक कहो या निश्चय मोक्षमार्ग कहो, (कि) जो प्रत्येक परिणमन में धर्मात्मा को आत्मा समीप वर्तता है, ऐसा यहाँ कहना है। देखो!

टीका : यहाँ (इस गाथा में) भी आत्मा ही उपादेय है, ऐसा कहा है। आत्मा अर्थात् कारणपरमात्मा अन्दर.... गुरु का उपदेश भी यह है, ऐसा कहते हैं। यह आयेगा अन्दर। कारणपरमात्मा ध्रुव चैतन्य की दृष्टि कर और तेरी पर्याय में उसे समीप रख अथवा तू उसके समीप जा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तू अर्थात् क्या? तू अर्थात् पर्याय द्रव्य के समीप में जाये। यहाँ तो कहते हैं कि उस पर्याय में आत्मा समीप है। समझ में आया? यह तो आमने-सामने अपेक्षा है। आत्मा यहाँ समीप है, वह पर्याय समीप में कही (और) आत्मा यहाँ समीप में आया, दूसरा क्या? और राग में जो था, उसमें से पर्याय में—निर्मल में आया। **'चरित्तदंसणणाणठिदो'**

कहते हैं कि धर्मी जीव को धर्म के वीतराग परिणाम में आत्मा समीपपने है, भगवान कारणपरमात्मा ही उसकी दृष्टि और ज्ञान में तैरता है, ऐसा कहते हैं। और गुरु का, शास्त्र का उपदेश भी यह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! तेरा आत्मा कारणप्रभु ध्रुव चैतन्य, उसे तेरे निर्मल परिणाम में समीप रख अर्थात् वहाँ दृष्टि दे। आत्मा को तेरे वीतराग परिणाम में मुख्य रख। परिणाम को मुख्य न रखकर आत्मा को मुख्य रख, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? प्रत्येक धार्मिक क्रिया जिसे कहते हैं सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त, आलोचना, संवर, निर्जरा इत्यादि, उस परिणाम में आत्मा का मुख्यपना रख, तब वे धर्म के सच्चे परिणाम कहने में आते हैं। आहाहा! गजब!

अब दृष्टान्त देते हैं। इसका स्पष्टीकरण करते हैं। संयम है न, संयम। परन्तु कलश में, दृष्टान्त में भावी तीर्थंकर को लिया है। क्योंकि जिसे सम्यग्दर्शन और चारित्र

में आत्मा समीपपने है, कभी दूर नहीं रहता, सदा ही समीपपने होता है। समझ में आया? तीर्थंकर का आत्मा समीप है, समकित से गिरता ही नहीं। यह पहले आयुष्य बँध गया हो और नरक में जाये और अन्तर्मुहूर्त गिरे, समझ में आया? वह बात गौण है। यहाँ चारित्रभाव आवे और चारित्र से गिरे, अचारित्र हो जाये, ऐसा उसे नहीं होता। सातवें-छठवें में झूले और गिरे, यह अलग बात है। यह तो एक वस्तु की स्थिति है। समझ में आया? तीर्थंकर के जीव को चारित्र आवे और उस चारित्र से गिर जाये, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? इसलिए यहाँ तीर्थंकर के जीव को उसके सभी धर्म में आत्मा सदा ही समीप ही है, ऐसा टीकाकार योगफल निकालते हैं। समझ में आया? पहली संयम की व्याख्या। संयम में है न!

बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख... बाह्य व्यवहारादि से पराङ्मुख हो गया है। **समस्त इन्द्रिय व्यापार को जीते हुए...** पाँचों इन्द्रिय के झुकाववाला भाव को जिसने टाला है **ऐसे जिस भावी जिन को...** देखो! यहाँ से शुरु किया है। 'समीप से' कहा है न? तीर्थंकर के आत्मा को उसका समीपपना हटता नहीं, इस बात से यहाँ बात ली है। समझ में आया? **बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख और समस्त इन्द्रिय व्यापार को जीते हुए ऐसे जिस भावी जिन को पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम...** पहला बाह्यसंयम लिया। उस बाह्यसंयम में भी आत्मा समीप में है। है भले विकल्प... समझ में आया? परन्तु उसकी मुख्यता में आत्मा मुख्य है। समझ में आया? अभ्यन्तर संयम भी बाह्यसंयमवाले को मुख्य नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? अभ्यन्तर संयम जो है, उसे बाह्यसंयम विकल्पादि हों, परन्तु उसे मुख्यरूप से तो द्रव्य वर्तता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

श्रावक को यह सब एकदेश होता है, परन्तु सर्वोत्कृष्ट बात मुनि की और उसमें भी तीर्थंकर की (ली है)। समझ में आया? ऐसे पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम... बाह्यसंयम में अशुभ से निवृत्त हुआ, इतनी बात। परन्तु अशुभ से निवृत्त हुआ, उसमें मुख्य तो आत्मा समीप में है। आहाहा! समझ में आया? देखो न, सन्तों की कथनी! बाह्यसंयम... वह 'संयम' शब्द पड़ा है न मूल में, उसमें से बाह्यसंयम पहला निकाला। और अभ्यन्तर संयम तो साथ में ही है। परन्तु वह बाह्य और अभ्यन्तर संयम में आत्मा त्रिकाली कारणप्रभु मुख्य है, अर्थात् समीप में है, ऐसा। समझ में आया? जिसे आत्मा त्रिकाली

ध्रुव मुख्यपने हो, उसे अभ्यन्तर चारित्र और बाह्यचारित्र कहा जाता है। जिसे आत्मा ही मुख्यपने दृष्टि में नहीं, उसे तो अभ्यन्तर चारित्र और व्यवहार चारित्र होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'संयम' शब्द पड़ा है न पहला? '**संजमे णियमे तवे**' संयम के दो भाग किये। उसमें से तप पहला चारित्र निकालेंगे। चार बोल निकालेंगे। संयम, नियम, चारित्र और तप। है तीन बोल, परन्तु उसमें से चारित्र लेंगे। समझ में आया? और अभ्यन्तर संयम **काय-वचन-मनोगुप्तिरूप,...** वह अशुभ से भी गुप्त, शुभ से भी गुप्त हो गया है। बाह्य में अशुभ से निवृत्त हुआ था—उसमें—अत्यन्तर संयम में अब शुभ से निवृत्त हुआ। परन्तु वह सब दृष्टि द्रव्य के ऊपर है (और वह) मुख्य है, उसकी बात है। समझ में आया? कारणपरमात्मा कहते हैं। तारणस्वामी देखो '**अप्पा... अप्पा**' का अर्थ कारणपरमात्मा। और वापस गुरु का उपदेश भी यही है, ऐसा कहकर सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह जैनशासन का उपदेश ही यह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीतरागपना प्रगट कर अर्थात् कि कारणपरमात्मा का आश्रय ले। समझ में आया?

और **काय-वचन-मनोगुप्तिरूप,...** उसमें समुच्चय कहा था। पापक्रिया की निवृत्ति बाह्य से... यहाँ तीनों को गुप्तरूप **समस्त इन्द्रियव्यापार रहित...** पहला लिया था समुच्चय का (कि) बाह्यप्रपंच से पराङ्मुख समस्त इन्द्रिय-व्यापार को जीते हुए ऐसे भावी जिन... पश्चात् उसके भाग करके समझाते हैं। पापक्रिया की निवृत्तिरूप बाह्यसंयम और मन-वचन-काया की गुप्तिरूप समस्त इन्द्रियव्यापाररहित अभ्यन्तर संयम। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का व्यापार, ऐसा जो **अभ्यन्तर संयम...** उसमें भी मुख्य तो कारणप्रभु है। वह कारणपरमात्मा द्रव्यस्वभाव की मुख्यता बिना अभ्यन्तर संयम और बाह्यसंयम नहीं हो सकता। समझ में आया?

एक बात। यहाँ नियम... नियम... दूसरा बोल है न? '**संयमे नियमे**' **मात्र परिमित (मर्यादित) काल के आचरणस्वरूप नियम में,...** लो, अभिग्रह धारण करते हैं न? ऐसा मर्यादित विकल्प। पाँच दिन तक आहार नहीं लेना और लेना तो फलाना के हाथ का ऐसा... ऐसा जो नियम। **मात्र मर्यादित काल के आचरणस्वरूप नियम में,...** भी

आत्मा समीप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें भी मुख्य तो आत्मा द्रव्य अन्दर वस्तु, उसे समीप में, दृष्टि में—ज्ञान में—चारित्र में रखा है। आहाहा! समझ में आया? कहो, ऐसा स्वरूप जिनेन्द्र के अतिरिक्त है कहीं? अभी ऐसा कहते हैं कि हमारा धर्म एक ही (सच्चा) धर्म है, ऐसा जो अहंकार करे, वह विश्व की शान्ति को लूटनेवाले हैं, विश्व को अशान्ति करनेवाले हैं। आहाहा! अनन्त केवली, ऐसा कहा कि जगत में ३६३ पाखण्ड हैं, वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा कहा है। यह एक ही धर्म सत्य है, ऐसा कहा है।

..... आता है न पाँचवें श्रमणसूत्र में। आता है भगवानभाई? कण्ठस्थ किया है या नहीं? अर्थ-बर्थ नहीं आवे। .... वीतरागमार्ग में स्थित जीव सिझंती—सीझेंगे। मुचंति....

मुमुक्षु : दर्शन से भ्रष्ट सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : दंसण भट्ठा भट्ठा, ज्ञान भट्ठा और चारित्र भट्ठा—तीनों से भ्रष्ट हैं, ऐसा कहा है। आहाहा! उसमें वीतराग ऐसे सन्त—दिगम्बर मुनि एक ही केवली के मार्गानुसारी हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा, बापू! क्या हो? सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा कहा था। उन्होंने ऐसा कहा था कि कारणपरमात्मा को पकड़। सब सार का सार यह था। इसका अर्थ कि वीतरागता प्रगट कर अर्थात् कि निमित्त, विकल्प और पर्याय की उपेक्षा करके त्रिकाल की अपेक्षा कर। आहाहा! समझ में आया?

उसमें ईश्वर कर्तावाले उड़ जाते हैं, जैन में राग को धर्म माननेवाले उड़ जाते हैं। मूलचन्दभाई! अकेली पर्याय को माननेवाले उड़ जाते हैं, आहाहा! अकेले द्रव्य को ही माने और पर्याय को न माने, वह मिथ्यादृष्टि भी उड़ जाते हैं। मार्ग तो ऐसा है, भाई! वस्तु तो ऐसी है, वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया? यह मर्यादा उल्लंघकर दूसरे प्रकार से माने, वह मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। वीतरागमूर्ति भगवान को मुख्य करके, आश्रय लेकर, मिथ्यात्व की उत्पत्ति न हो और मिथ्यात्व का नाश हो, स्वरूप का उग्र आश्रय लेकर राग-द्वेष का नाश हो, यह वस्तु का स्वरूप है, यह जैनधर्म है। समझ में आया?

यह नियम की व्याख्या हुई। अब तप की व्याख्या चाहिए, यह पहले चारित्र की

करते हैं। चारित्र की व्याख्या 'आचार' शब्द करके चारित्र की व्याख्या करते हैं। समझ में आया? आहाहा! एक-एक गाथा में बस है। इस प्रकार से है। **निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप,...** यह पहला निश्चय आचार लिया। संयम में बाह्य पहला लिया था। है, तथापि समीप में वह है। उसे व्यवहार कहा जाता है। यहाँ अब समझाकर कहते हैं। **निजस्वरूप में...** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कुण्ड। यह गर्म पानी में नहाने नहीं जाते लोग? जहाँ-तहाँ हो न... क्या कहलाता है? झरा... राजगृही नगरी में है न गर्म पानी के कुण्ड। बहुत रोगवाले नहाने जाते हैं। बहुत देखे हैं, वहाँ बाहर खड़े-खड़े देखते थे। नहाते थे। यह खस हो, चमड़ी के रोगवाले। इसी प्रकार इस संसार के रोगवाले आत्मा में नहाये, उसका रोग मिट जाये। समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

यहाँ कहते हैं कि निजस्वरूप... ज्ञान और आनन्द और शान्ति की स्वच्छता से भरपूर प्रभु, ऐसा जो **निजस्वरूप...** उसमें **अविचलस्थिति—**चलित नहीं, ऐसी रमणता, चलित नहीं ऐसा जिसका स्वरूप। आहाहा! **चिन्मय-परमब्रह्म में नियत (निश्चल रहे हुए)...** चिन्मय... यहाँ तो निजस्वरूप कहा परन्तु कैसा? ऐसा। कि **चिन्मय-परमब्रह्म...** ज्ञानमय, परम आनन्दमय। आहाहा! ज्ञान और परम आनन्दमय दोनों ले लिये। **(निश्चल रहे हुए) ऐसे...** उसमें निश्चल रहे हुए **ऐसे निश्चय अन्तर्गत-आचार...** निश्चय अन्तर्गत आचार कहो या चारित्र कहो। समझ में आया? **निश्चय अन्तर्गत-आचार में...** भी आत्मा आनन्दमूर्ति, वह ध्रुव समीप में-मुख्यपने वर्तता है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! ऐसा एक भी शब्द था कहीं इतने वर्ष में समझने में? यह तुम्हारे गर्म पानी पीने के परिणाम में आत्मा मुख्य है?

भगवान को भूलकर जो कुछ किया जाये, वह सब बिना एक का शून्य है। आहाहा! कहते हैं, ऐसा निश्चय-अन्तर्गत आचार अथवा निश्चय-अभ्यन्तर चारित्र, ऐसा स्पष्टीकरण किया। तप से पहले चारित्र की व्याख्या की। समझ में आया? पाठ में तो संयम, नियम और तप तीन शब्द हैं, उसमें से चार निकाले—संयम, नियम, चारित्र और तप। उसमें संयम के दो भेद लिये, नियम का एक लिया, समझ में आया? और चारित्र के दो। चारित्र के दो—निश्चय और व्यवहार। यह निश्चय आचार में अर्थात् सच्चे—सत् अभ्यन्तर चारित्र—स्वरूप की रमणता... चारित्र अर्थात् चरना, रमना, आनन्द

का वेदना। आनन्द का वेदन ऐसा चारित्र, उसकी धारा द्रव्य के ऊपर है। उसकी मुख्यता अथवा चारित्र की पर्याय में मुख्यता आत्मा की समीपता वर्तती है। समझ में आया?

ओहोहो! नियमसार! लो, पाठ में यह है या नहीं? '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' समयसार से भी कितना अधिक स्पष्ट। आहाहा! भगवान! तू त्रिकाली, ऐसा जिसने दृष्टि में लिया नहीं और अपनी पर्याय में द्रव्य को समीप रखता नहीं, उसे कुछ नहीं। धर्म का कोई लक्षण उसे प्रगट हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे ऐसा आत्मा समीप नहीं, उसके परिणाम निर्मल भी नहीं और उसके विकल्प प्रमाण व्यवहार कहना, वह उसे नहीं है। समझ में आया? यह श्लोक आता है श्वेताम्बर में। अर्थ करते थे उस समय, हों! यह श्लोक आता है अनुयोगद्वार में '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' दूसरे शब्द याद नहीं, परन्तु ऐसा शब्द है पहला अनुयोगद्वार में। पूरा अनुयोगद्वार पारायण करते थे रात्रि में।

जिसके परिणाम में आत्मा समीप है अर्थात् कि आत्मा के ऊपर जिसकी दृष्टि है और ज्ञान की पर्याय में उसने आत्मा को ज्ञेय बनाया है... समझ में आया? ऐसा गजब धर्म! अपवास कर डालना आठ-दस दिन के, आठ-दस लो, दसलक्षणी पर्व करो दस दिन। मूलचन्दभाई! दस कर या लाख कर। यह आत्मा जिसकी दृष्टि में आया नहीं और आत्मा जिसके ज्ञान में ज्ञेयपने अनुभव में आया नहीं, उसे सब व्यर्थ है। सब ही व्यर्थ। थोथा नहीं, फलदायी है, संसार में दुःख मिलेगा। आहाहा! गजब बात है। बाह्यसंयम अकेला शुद्ध परिणाम बिना का और समीपता बिना का, वह सब उसे दुःख देगा। चार गति में जायेगा तो दुःख है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा अलौकिक मार्ग।

अब व्यवहार-आचार—व्यवहारचारित्र की व्याख्या। निश्चयचारित्र की यह व्याख्या कही। उसकी समीप में भी भगवान आत्मा द्रव्य ही वर्तता है। भगवान द्रव्य चैतन्यमूर्ति ज्ञायकभाव कारणपरमात्मा, कारणजीव कहो... समझ में आया? अथवा वह आत्मा कहो। आत्मा तो वही है आत्मा। वास्तव में तो आत्मा, कारणपरमात्मा, वही आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे जीव को बाह्यसंयम और अभ्यन्तर संयम में भी चैतन्यमूर्ति भगवान वर्तता हो अन्दर। उसके समीप में वह (आत्मा) होवे तो उसको

निश्चय और व्यवहार कहने में आता है। इसी प्रकार नियम में, अन्दर भगवान कारणपरमात्मा शुद्ध चैतन्यपदार्थ त्रिकाली जिसके समीप में नियम में वर्तता हो तो उसे नियम कहा जाता है। जिसके चारित्र में भी, मुख्य निश्चयचारित्र में अर्थात् निश्चय आचार में... समझ में आया?

वहाँ स्पष्टीकरण नहीं किया, उसमें स्पष्टीकरण करेंगे। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य पाँच, ऐसा। निश्चयचारित्र पाँच निश्चय-आचार—सम्यग्दर्शन आचार, सम्यग्ज्ञान आचार, सम्यक्चारित्र, सम्यक् तप और सम्यक् वीर्य—ऐसे निश्चय पाँच आचार में या पाँच आचाररूप चारित्र में—अभ्यन्तर चारित्र में त्रिकाली ज्ञायकभाव जिसकी दृष्टि में आया है और उसका परिणमन हुआ है और उस परिणमन में द्रव्य का समीपपना सदा ही निरन्तर वर्तता है.... समझ में आया? उसे अभ्यन्तर चारित्र या अभ्यन्तर आचार कहा जाता है।

वे कैलाशचन्दजी एकबार कहते थे कि निश्चय की बात आवे तो हम छोड़ देते हैं, व्यवहार की बात आवे तो हम स्पष्ट करते हैं। यहाँ पहले आये थे न विद्वत्-परीषद के समय। निश्चय ऐसा कि वह तो ठीक है। व्यवहार 'करना' आया न? तब अभी अब वह का वही है। व्यवहार यह... व्यवहार यह। मूल बिना व्यवहार कैसा? मूल बिना निश्चय नहीं और मूल बिना व्यवहार भी नहीं। आहाहा! गजब बात है। ऐसी सत्... सत्... समझ में आया? ऐसा मार्ग एक भगवान जिनेन्द्रदेव का है। वह भी दिगम्बर धर्म में वह है, अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! ऐसा है, परन्तु क्या करे? नाम सब ... वस्तुस्वरूप ही यह है। समझ में आया?

अब व्यवहार आचार की बात करते हैं। ऐसा निश्चय आचार हो, उसे ऐसा व्यवहार होता है, परन्तु इन दोनों में आत्मा समीप होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें अमृत के सागर उछाले हैं। ऐ! तू भी प्रभु पूरा, जहाँ दृष्टि में लिया नहीं, जिसे दृष्टि और ज्ञान में समीप रखा नहीं, अब तेरे ज्ञान और आचरण-फाचरण खोटे हैं, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! देवीलालजी! क्या है? ऐसा मार्ग एक ही सच्चा होगा? दूसरे खोटे होंगे? आहा! भाई! मध्यस्थता से विचार कर। यह कहाँ पक्ष

की बात है ? यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जो वस्तु पूरी है, उसे जिसने समीप में परिणाम में लिया नहीं, कहाँ जाना है तुझे ? उसे छोड़कर क्या करना है तुझे ? समझ में आया ? चेतनजी ! अनुयोगद्वार में यह शब्द है, हों ! दंसण भट्ठा... परन्तु इसका अर्थ साधारण करके छोड़ दिया। वहाँ अन्यत्र साधन दूसरा हो, उसका अर्थ ऐसा। आहाहा ! यह तो एकधारा... आहाहा ! सम्यग्दर्शन का कण उत्पन्न हुआ क्षयोपशम, परन्तु कहते हैं कि उसके समीप में द्रव्य है। समझ में आया ? क्षयोपशमज्ञान प्रगट हुआ, परन्तु उसके समीप में आत्मा है तो क्षयोपशमज्ञान कहलाता है। समझ में आया ? आहाहा ! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : व्यवहार में से भी मुख्य तो जान लिया है, ऐसा बचाव करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से, उसे समीप में है, उसे ऐसा व्यवहार कहलाता है, ऐसा। शुभ-अशुभ टलकर निश्चय हुआ, अशुभ टलकर व्यवहार शुभ, परन्तु द्रव्य समीप हो, उसे यह कहलाता है। बात ऐसी है। अशुभ टले, वह था ही कब ? उसे निश्चय से पर्याय नहीं, दृष्टि में भी नहीं, वहाँ और अशुद्ध टला है, ऐसा है कहाँ ? आहाहा ! अशुभ ... शुभभाव से निवृत्ति... आता है न ? यह दृष्टान्त बहुत बार आता है वह द्रव्यसंग्रह में। अशुभवाले को निवृत्ति। परन्तु किसे ? आता है न वह द्रव्यसंग्रह में ? ...चारित्र। वह व्यवहार कहा, परन्तु वह व्यवहार किसको होता है ? कि द्रव्यस्वभाव अखण्ड आनन्दकन्द निष्क्रिय परमब्रह्म परमात्मा जिसके समीप में है, उसको व्यवहार होता है। आहाहा ! गजब गाथा परन्तु, हों ! उसे सामायिक कहते हैं। भगवानभाई !

यह मुँहपत्ती बाँधकर बैठ गये, णमो अरिहंताणं... दो घण्टा, एक घण्टा हुआ तो खड़े हो गये। तीन-तीन इकट्ठी करे। सात-सात करे, आठ-आठ करे। एक व्यक्ति तो तीस करे। मासखमण कहलाता है। तीस सामायिक का मासखमण। हमारे पोपटभाई थे। दो घड़ी की सामायिक होती है या नहीं ? ऐसी तीस-तीस सामायिक एक साथ करे। वह सामायिक का मासखमण कहलाता है। मासखमण समझे ? महीने के उपवास। जैसे महीने के उपवास, वैसे महीने की सामायिक। एक साथ में तीस। चार बजे उठे, सामायिक ले, वह दूसरे दिन चौबीस घण्टे में... चौबीस घण्टे में तीस हो। वह तो अधिक करते थे।

यह तो चार बजे लेते, वह दूसरे दिन और तीसरे दिन आठ बजे। व्याख्यान पूरा हो, बाद में आवे। हमारे पोपटभाई थे होंकारा देनेवाले। पहचानते हैं कोई? बोटाद के थे, पोपटभाई थे। उन्होंने दृष्टान्त नहीं दिया था एक बार? उनके लड़के की लड़की थी आठ वर्ष की। 'समझाया समझे नहीं करे कुछ का कुछ...'

यह उपाश्रय के सामने में डेला में रहते थे। मोढ का डेला... मोढ के डेला में रहते थे। अमृतलाल के बहनोई अमरशी... वह लड़की थी उनके लड़के की छोटी लड़की। सिखाया था बहुत ऐसा। 'समझाया बिना समझे नहीं, करे कुछ का कुछ, फानस सळगावो कहो डाला भड़का मांही।' फानस सलगाओ। वह लड़की बोलती होगी। उसमें सात वर्ष में क्षय (टी.बी.) होकर मर गयी। सात वर्ष में क्षय हो गया। लड़की छोटी रूपवान बहुत बोलनेवाली थी। ऐसे पच्चीस-पचास ऊपर कण्ठस्थ कराये थे। उसके पिता के पिता होंकारा देते थे सामने। जी, हाँ.... ऐसे व्यक्ति नरम बेचारा। वस्तु नहीं, यह अलग बात है। ऐसे अपवास बहुत करे। सायला के थे सायला के। ३० सामायिक, तदुपरान्त करे वे तो। चार बजे से वे दूसरे चार बजे, ३० हो जाये। तीसरी रात के चार बजे पूरी हो जाये, पश्चात् भी व्याख्यान तक बैठे और फिर जावे। ऐसी २८ घण्टे की सामायिक बहुत हुई। धूल भी धर्म नहीं। जहाँ आत्मा नहीं, वहाँ सामायिक कैसी? ऐसा कहते हैं यहाँ। यह अधिकार क्या है यह? सामायिक का अधिकार है। समझ में आया? आहाहा!

जिसके परिणाम में परिणामी समीप नहीं, उसके परिणाम कैसे धर्म के? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसे अभ्यन्तर चारित्रवाले को भी समीप में तो आत्मा ही है। अब, **व्यवहार से प्रपंचित... प्रपंचित=दर्शाये गये; विस्तार को प्राप्त।** प्रपंचित=विस्तार। व्यवहार का विस्तार है न बहुत? ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार— इन पंचाचार में... शुभ विकल्परूप व्यवहार पंचाचार, व्यवहार चारित्र में भी समीप में आत्मा होवे तो उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! सन्तों ने तो अकेला अमृत बहाया है। भाई नहीं कहते?

सोगानी में आता है न? 'आचार्यों के शास्त्रों में शब्द-शब्द में अमृत भरा हुआ

है।' अमृत की बूँद झरती है। जैसे गन्ना—शेरडी का रस। एक ओर ऐसा कहे, आचार्य के शब्द सुनना, वह नुकसानकारक है (क्योंकि) विकल्प है। ऐई! दूसरे प्रकार से कहने पर अपने स्वलक्ष्य से अन्दर में मंथन करते हैं। उसका भाव अन्दर का क्या है, वह अन्दर में एकाग्र होते जाते हैं, तो कहते हैं कि अमृत की बूँद झरती है। आहाहा! समझ में आया? दिगम्बर आचार्यों ने—सन्तों ने तो पूरा अनादि का केवली का धर्म टिका रखा है। मार्ग यह है। इसके अतिरिक्त मार्ग कोई माने, वह मार्ग है नहीं। ऐसा मार्ग है, परन्तु क्या हो? समभाव की व्याख्या ही यह है। खोटे को खोटा जाने, सच्चे को सच्चा जाने।

आया था न कल। श्रीमद् राजचन्द्र। समभाव की व्याख्या नहीं की थी परसों? 'आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग' आता है न? पश्चात् क्या आया? 'अपूर्व ज्ञानी परम श्रुत, सद्गुरु लक्षण जोग।' वहाँ समदर्शी की व्याख्या की है। समदर्शी ऐसा नहीं कि सच्चा और झूठा सबको समान माने। वह तो मूढ़ है। वह तो अज्ञानी है। तेरा भी सच्चा और मेरा भी सच्चा। यहाँ तो सत्य को सत्य कहे, कुदेव को कुदेव कहे, कुदेव को कुदेव (कहकर) छुड़ावे कि छोड़ यह श्रद्धा। सुदेव को सुदेव कहे, सुदेव को सुदेव (कहकर) प्ररूपणा करे, ऐसी धर्म की प्ररूपणा करे; कुधर्म को कुधर्म बतावे। बताया था न? सुजानमलजी! आया था न परसों?

ऐसी कौनसी वीतरागता? सत्य को सत्य कहे। असत् और सत् दोनों समान माने, ऐसा समभाव होगा? वह तो विकलता है, मूढ़ता है, लिखा है न? बहुत शब्द प्रयोग किये हैं। उस प्रकार की दृष्टि वह द्वेष नहीं। परन्तु उसका स्वरूप जो है, उस प्रकार से ज्ञान में ज्ञान सच्चा जाने या ज्ञान खोटा जाने? आहाहा! समझ में आया? 'ऐसा मार्ग वीतराग का, भाषित श्री भगवान।' आहाहा! 'सीमन्धर भगवान के समवसरण में...' हमारे हरिभाई गाते हैं न! सीमन्धर भगवान के समवसरण में ऐसा मार्ग भासित किया था। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहारचारित्र में व्यवहार ज्ञान, व्यवहार दर्शन, व्यवहार चारित्र, व्यवहार तप और व्यवहार वीर्याचार अर्थात् व्यवहार पंचाचार हुए, इसलिए व्यवहारचारित्र, ऐसा। उसमें भी आत्मा मुख्य वर्तता है। आहाहा! वर बिना की बारात किसे विवाहेगी? वह

अणवर हो, उसे कन्या नहीं देते। खाने का दे पंचोला में बैठने को। वह हो न थाल इकट्ठा। तुम्हारे होता है या नहीं वर को अणवर? अणवर। उसका कुछ कहते होंगे। हिन्दी में क्या कहते हैं? वर के साथ होता है न? विनायक। विनायक कहते हैं। अपने विनायक ... होता है न? यन्त्र। विनायक यन्त्र। भगवान का यह एक है न, वह विनायक है। यह कहत हैं बाबूभाई, वर-अणवर जाये साथ में, ...उसे कन्या दे? इसी प्रकार निश्चय-व्यवहार साथ में हो तो व्यवहार से मोक्ष मिले?

यह दृष्टान्त संसार का... अपने ऐसा किया हुआ नहीं, इसलिए खबर नहीं। परन्तु सामने दृष्टान्त दे। कहते हैं न? वर और अणवर दोनों जाते हैं बारात में, उस अणवर को कहीं कन्या देते होंगे? इसी प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में होते हैं, वह निश्चय से मोक्ष होता है, परन्तु व्यवहार से मोक्ष होगा? व्यवहार है... ...मिले ऐसा। वर-विनायक। विनायक को वह मिले लड्डू और पेड़ा, इकट्ठे बैठे न! बारात को (थोड़ा) दे। उसको दो-पाँच-दस मिठाई फीके और मीठे ऐसा सब हो, बर्फी हो, यह जंबुडा क्या कहलाते हैं तुम्हारे? गुलाबजामुन, ऐसा दे। वह कहीं बारात को सबको नहीं देते ऐसा। इसी प्रकार शुभभाव में व्यवहार में स्वर्गादि मिले, भगवान की वाणी मिले, ऐसा आवे लो न! निश्चय जो निर्मल परिणति, उसका फल मुक्ति है और उस निश्चय और व्यवहार में समीप में भगवान हो तो निश्चय और व्यवहार कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? यह पंचाचार। अब तप आया। पाठ में है न!

पंचम गति के हेतुभूत,... देखो! वहाँ अकेला परमतत्त्व निश्चय लेंगे। वहाँ व्यवहार नहीं। पंचम गति मुक्ति का हेतु-कारण **किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित,...** आहाहा! ऐसा नग्न मुनि दिगम्बर बाह्य से, अन्दर में विकल्प के पक्षरहित हैं। कोई भी पकड़ बिना के—सर्वथा रहित... देखा! **परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित, सकल दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत...** आहाहा! पुण्य और पाप दोनों दुराचार है। अरे! अरे! भारी कठिन। पुण्य की ऐसी मिठास है न जगत को! अभी तो यह ही होता है, शुद्ध तो होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा ही कहते हैं वे लोग। छठवें गुणस्थान में तो शुभ-उपयोग है। धर्मध्यान कहा... भाई! यहाँ धर्मध्यान तो छठवें में कहा, परन्तु वीतरागी

धर्मध्यान कहा। आयेगा अन्तिम गाथा में। धर्म(ध्यान) और शुक्लध्यान। आहाहा! यह दोनों निर्विकल्प है यहाँ तो।

परम पंचम गति के कारणरूप **किंचित् भी परिग्रहप्रपंच से सर्वथा रहित,...** अर्थात् अभ्यन्तर राग और बाह्य में तप का कुछ नहीं। **सकल दुराचार की निवृत्ति के कारणभूत...** शुभाशुभ परिणाम सकल दुराचार है। उसके निवृत्ति के कारणभूत **ऐसे परम तपश्चरण में...** लो। परम तपश्चरण। संयम, नियम, चारित्र और तप, (ये) चार बोल आये। समझ में आया? संयम के दो भेद किये, नियम का एक रखा, चारित्र के दो रखे और तप का एक रखा; इस प्रकार से। आचार दो आये, संयम के दो, यह चारित्र कहा। तप और नियम एक।

इन सबमें.... यह सब जो परिणति वीतरागी और राग की कही, उस परिणति में **परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त किया हुआ...** परम गुरु ने कहा कि कारणपरमात्मा, वह आश्रय करनेयोग्य है। इसलिए कहा न। उन्होंने कहा यह, इसलिए उनका प्रसाद हुआ कहलाता है। प्राप्त हुआ उनके निमित्त से। उन्होंने कहा कि यह करनेयोग्य है। भाई! यह करनेयोग्य है। प्रसाद अर्थात् मेहरबानी। परमगुरु की मेहरबानी से प्राप्त किया हुआ... इसका अर्थ कि मैं पात्र था, इसलिए मुझे ऐसा उपदेश मिला। पाँचवीं गाथा में है समयसार में। पाँचवीं में था समयसार में। कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), 'हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह करके—मेहरबानी करके...' परन्तु हम पात्र थे, ऐसा कहीं कहे? हमारे गुरु ने हमको यह उपदेश दिया। समझ में आया?

(समयसार) पाँचवीं (गाथा)। बीच में है न? लो, हमारे आत्मा में... **अन्तर्निमग्न परमगुरु-सर्वज्ञदेव और अपरगुरु-गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त, उनके प्रसादरूप से दिया गया...** हमको प्रसादी दी, मेहरबानी करके। **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश...** कृपापूर्वक उपदेश। भाई! मार्ग यह है। तीन लोक का नाथ परमात्मा जिसकी वाणी, विकल्प में ज्ञात न हो, जो पर्याय को पहुँच (गम्य) नहीं। पर्याय जाने सही, परन्तु पहुँच—उसमें प्रविष्ट हो जाये अन्दर, ऐसी नहीं है। ऐसा भगवान... समझ में आया? 'शुद्धात्मतत्त्व' शब्द ऐसा है। शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश। शुद्धात्मतत्त्व कहो या

कारणपरमात्मा कहो। ठीक! **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश...** जिससे हमारा जन्म है, हमारी पर्याय उससे प्रगट हुई है। समझ में आया?

ओहोहो! समयसार, अभी भरतक्षेत्र में केवली का विरह भुलावे, ऐसी वाणी है। लोग समयसार (सुनें) वहाँ यह निश्चय... निश्चय। भड़कते हैं। भगवान! निश्चय, वह सच्चा... उपचार होता है, वह बात तो की। उपचार में वह समीप हो तो उस उपचार को निश्चय कहने में आता है। परन्तु द्रव्यस्वभाव में दृष्टि नहीं और द्रव्य का समीपपना पर्याय ने किया नहीं, वह सब पर्यायें और विकल्प सब झूठे हैं। समझ में आया? परमगुरु के प्रसाद से... उसमें दो लिये हैं—प्रसाद और अनुग्रह। पाँचवीं गाथा में। कृपा....

प्राप्त किया हुआ निरंजन निज कारणपरमात्मा... आहाहा! लो। निरंजन—जिसे अंजन नहीं। त्रिकाली भगवान निरावरण वस्तु अपना परमात्मशक्तिस्वरूप तत्त्व। त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा... अपना कारणपरमात्मा सब कार्य में वह मुख्य है। आहाहा! **सदा समीप है (अर्थात् जिस मुनि को...)** मुख्यरूप से मुनि को उपदेश कर (बात) है न। उसके भेद में लेते हैं। **संयम में, नियम में, चारित्र में और तप में...** लो चार लिये। अर्थ में है न चारों। **निज कारणपरमात्मा सदा निकट है),...** आहाहा! **उस परद्रव्यपराङ्मुख...** देखो! स्वद्रव्य सन्मुख, परद्रव्य-पराङ्मुख। भगवान कारणपरमात्मा में सन्मुख (और) परद्रव्य (से) पराङ्मुख।

परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि... मुनि की अपेक्षा से बात छठवें-सातवें में... उसे परम वीतरागी कहा जाता है। **परम वीतराग-सम्यग्दृष्टि वीतराग-चारित्रवन्त को...** लो, रागरहित स्थिरता, ऐसी चारित्रदशा... **सामायिक व्रत स्थायी है,...** लो, यह योगफल किया। उसे सामायिक सच्ची है। जिसके निर्मल परिणाम में या मलिन विकल्प में... निर्मल वह सामायिक सच्ची; विकल्प वह उपचारिक, परन्तु उन दोनों में जिसे द्रव्यपना समीप में है, वह सामायिक की स्थिरता की दशा को सामायिक कहते हैं। समझ में आया? यहाँ सामायिक कही, वह विकल्पवाली?—कि नहीं। बतलाया—ज्ञान कराया उसे। ज्ञान में.... वस्तु यह। वस्तु कारणपरमात्मा को अवलम्बकर जो वीतराग पर्याय सामायिक, समता (होती है), उसकी समता में समतावान त्रिकाली भगवान समीप

है, उस परिणाम को सच्ची सामायिक कहा जाता है। गजब सामायिक की व्याख्या। ओहोहो!

ऐसा केवलियों के शासन में कहा है। है? 'केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं।' सर्वज्ञ परमात्मा केवली तीर्थंकर के उपदेश में यह आया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले इनने भावी जिन कहकर उसे सामायिक कहा, ऐसा कहा है। समझ में आया? ...स्थापी है न? भावी जिन को ऐसा होता है। उसे आत्मा समीप वर्तता है। आहाहा! कभी एक समय भी जिसे समीपता हटती नहीं, ऐसे जिन का आधार में दृष्टान्त दिया है। समझ में आया? उसमें ऐसा दिया था। '**महामुनिगण के अधिनाथ के हृदयारविन्द में स्थित है...** आत्मा।' पहले पहले कलश में। ऐसा १२६ (गाथा के) कलश में है। १२६ गाथा का अन्तिम कलश है २११। महामुनिगण के, ऐसा कहा न, अधिनाथ—गणधर। गणधर डाला। ....

अरे! ऐसी बात परम सत्य सुनने को मिले नहीं, वह समझे कब? आहाहा! कहीं अटक कर पड़े बेचारे। साधु हो, नग्न मुनि हो, पंच महाव्रत पालन करे, उसकी शक्ति प्रमाण—वह सब थोथा है। समझ में आया? व्यक्ति को लगे कि यह कुछ अलग प्रकार है। अरर! हमारा यह मुनिपना हमने उत्साह से लिया और त्याग किया, ऐसे परीषह सहन किये (और) कहे, यह साधु नहीं? गजब भाई! .... आत्मा जैसी चीज़ है, वैसी जानी है, मानी है और पूर्ण करने को साधता है पर्याय में। अब यह आत्मा ही दृष्टि में नहीं आया, वह साधे कहाँ से और पूर्ण कहाँ से करे? आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार ऐसी सामायिक को स्थायी अर्थात् सच्ची कही है। ऐसा केवलियों के शासन में कहा है। अब इसकी टीका करते हुए....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक - ३०-९-१९७१
श्लोक-२१२-२१३, गाथा-१२८, प्रवचन-१४०

परम-समाधि अधिकार, उसका श्लोक है २१२।

आत्मा नित्यं तपसि नियमे संयमे सच्चरित्रे,
तिष्ठत्युच्चैः परम-यमिनः शुद्ध-दृष्टेर्मनश्चेत्।
तस्मिन् बाढं भवभयहरे भावितीर्थाधिनाथे,
साक्षादेषा सहज-समता प्रास्त-रागाभिरामे॥२१२॥

यहाँ भावी तीर्थंकर को याद किया है, क्योंकि वे समतावन्त होते हैं। उनकी समकित और चारित्र गिरता नहीं। इस अपेक्षा से उनको तीर्थंकर भव में... लो। पहले और तीर्थंकरगोत्र बाँधा हो और थोड़ा—अन्तर्मुहूर्त जाये, तथापि उसका भाव अप्रतिहत है। उसे यहाँ याद किया है। क्यों? '**जस्स सण्णिहितो अप्पा**' ऐसा शब्द है न? जिसका आत्मा, जिसकी प्रत्येक धर्मपर्याय में समीप वर्तता है, एक समय भी जहाँ दूर नहीं। समझ में आया? '**जस्स सण्णिहितो अप्पा**'—समीप में आत्मा है, अर्थात् कि उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, वीतरागता इत्यादि पर्याय में द्रव्य मुख्य वर्तता है। समझ में आया? उसके वीतरागी धर्मपरिणाम, परिणामी को छोड़कर परिणाम रहते नहीं। परिणामी ही जिसका ध्येय है, इससे उसके धर्मपरिणाम में आत्मा निकट—समीप वर्तता है, ऐसा कहा है। समझ में आया? देखो! अर्थ।

श्लोकार्थः—यदि शुद्धदृष्टिवन्त... क्योंकि सम्यग्दृष्टि का ध्येय ध्रुव त्रिकाल परम स्वभाव के ऊपर होता है, अर्थात् कि उसकी दृष्टि में आत्मा समीप में वर्तता है। समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा आत्मा जिसकी श्रद्धा-ज्ञान में समीप वर्तता है, अर्थात् कि श्रद्धा-ज्ञान उसकी ओर झुक जाते हैं। समझ में आया? 'शुद्धदृष्टि' ऐसा शब्द पड़ा है न? निश्चय सम्यग्दृष्टि, ऐसा। अशुद्ध व्यवहार सम्यग्दर्शन, वह कुछ वस्तु नहीं। समझ में आया? 'शुद्धदृष्टिवन्त' यह शब्द

है। अर्थात् कि आत्मा त्रिकाल परमस्वभावभाव, वह जिसे नजर में नजदीक वर्तता है। समझ में आया? धर्म की पर्याय में आत्मा मुख्यरूप से वर्तता है। पर्याय और राग और निमित्त तो सब गौण हो गये। अरे! ऐसी व्याख्या। समझ में आया?

शुद्धदृष्टिवन्त जीव ऐसा समझता है कि परम मुनि को तप में,... परम तपस्या आयी थी न? टीका में चार बोल हैं तो चार बोल लिये हैं। परम तप अर्थात् अन्तर में स्वरूप में प्रकृति—स्वभाव ऐसा आनन्द, उसमें जिसकी उग्रता, चारित्र से भी उग्रता जिसमें अधिक है, उसे यहाँ तप कहते हैं। उस तप में भी समीप में तो आत्मा है। समझ में आया? उस तप के परिणाम में समीप द्रव्य है—वस्तु है। उस वस्तु उसके ध्येय—उसके समीप से हट जाये तो धर्म रहता नहीं। समझ में आया?

उसके **नियम में...** मर्यादित काल का कोई नियम लिया हो, उस नियम में तो आत्मा समीप में है। समझ में आया? तप और नियम में तप और नियम समीप में है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म—जैनधर्म होगा? नियम अर्थात् वीतरागता, वीतरागता के समीप में तो द्रव्य होता है। वीतरागी परिणति में, अभेदरूप से परिणति हुई, इससे उसके ध्येय में तो द्रव्य है। आत्मा परमस्वभाव, वह समीप है। आहाहा! समझ में आया? **संयम में...** इन्द्रिय—संयम व्यवहार हो या निश्चय हो, उन दोनों में समीप आत्मा है। व्यवहार का विकल्प आदि हो संयम का या निश्चय का निर्विकल्प परिणति हो, परन्तु दोनों में समीप आत्मा है। आत्मा समीप में न हो तो वह निश्चय परिणाम नहीं और व्यवहार भी नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म!

सत्चारित्र में... देखा! सच्चा चारित्र, ऐसा कि निश्चय। निश्चयस्वरूप भगवान आत्मा परम प्रकृति स्वभावभूत, प्रकृति स्वभावभूत, त्रिकाल स्वभाव-स्वरूप, ऐसा भगवान जिसके सत्चारित्र में समीप है (अर्थात्) पर्याय की दौड़ वहाँ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चारित्र की जहाँ... सच्चा—'सत्' ऐसा शब्द प्रयोग किया है न? व्यवहारचारित्र विकल्प... तथापि वह विकल्प और निर्विकल्प चारित्र के समीप में तो द्रव्य है, ऊर्ध्व द्रव्य है, मुख्य द्रव्य है, पहला यह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है...** लो, भाषा प्रयोग की है। सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता

है। वीतरागी पर्याय के यह सब भेद हैं। अथवा यह सामायिक कहो, सत्चारित्र कहो, संयम, नियम, तप कहो।

वीतरागी परिणाम है अथवा नियमसार है न यह? (अर्थात्) निश्चय मोक्षमार्ग है। निश्चय समकित, निश्चय ज्ञान और निश्चय चारित्र—इन तीन में तो समीपपना, उसकी दौड़ ध्रुव के ऊपर है। समझ में आया? सुजानमलजी! क्या है? आनन्द के परिणाम में आनन्दमय आत्मा समीप है, ऐसा कहते हैं। प्रकृति में आता है न? 'प्रकृति' आता है न! प्रकृतिभूत—स्वभावभूत। बाद के स्पष्टीकरण में। यह स्वभावभूत समता-परिणाम। ऐसा लें तो प्रकृतिभूत स्वभाव-भाव त्रिकाल। वह प्रवचनसार में आता है न, १२४ गाथा। समझ में आया? प्रकृति अर्थात् स्वभाव त्रिकाली। वह कर्मप्रकृति नहीं। वह कर्म... यह आता है न? प्रकृति... उसमें आ गया न? 'आकार' लिया है टीका में। इसमें नियमसार में आ जाता है। ईष्वाकार... आकार लिया है, आकार। मूल उसका स्वरूप है, उसका स्वभाव, ऐसा (अर्थात्) प्रकृति है। पहले आ गया है। इस ओर के पृष्ठ पर है।

कहते हैं कि भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन की पर्याय में मुख्य ध्रुव ऊर्ध्व है। ऊर्ध्व... ऊर्ध्व। पंचास्तिकाय में आता है न ऊर्ध्व। निमित्त... निमित्त। निमित्त का इस ओर डाला है। इसमें आत्मा ऊर्ध्व है। आहाहा! जिसे धर्म की पर्याय... अरे! सामायिक... यहाँ सामायिक की व्याख्या चलती है। सामायिक की गाथा है। '**सामाइगं ठाइ**' उसे सामायिक सत्य कहते हैं। '**ठाइ**' अर्थात् सत्य—स्थायी। '**केवलिसासणे**'—केवली भगवान के उपदेश में, उनके ज्ञान में और उनकी शिक्षा में ऐसा कहा है कि जो सामायिक में त्रिकाली आत्मा समीप और ऊर्ध्व रहे, उसे सामायिक कहते हैं। जादवजीभाई! ऐसा तो वहाँ सुना नहीं था। सेठाई की थी, नहीं? सामायिक उसे कहते हैं। यह तो बैठे आसन बिछाकर, 'णमो अरिहंताणं... णमो सिद्धाणं।' यह तो सबने किया है न।

यहाँ पालेज में ऐसा करते थे पहले। शाम को प्रतिक्रमण करें, पर्यूषण के आठ दिन हों न। चार अपवास करें। पहले से हों! यह अपवास... आठ दिन के चार अपवास। एक अपवास और एक दिन खाना। दो दिन में खाना आवे तब हुए न चार और फिर

शाम को प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण हो रहे इसलिए... मांडे कहीं... हो गयी सामायिक, देखो। 'देखो रे देखो रे जैनों कैसे...' ऐसा बोलते थे। 'देखो रे देखो रे जैनों कैसे व्रतधारी।' जम्बूस्वामी। लो आया दृष्टान्त। हम व्रत करते हैं ऐसे ये व्रतधारी थे। आहाहा! व्रतधारी परन्तु, किसे व्रतधारी कहना? जो निश्चय व्रत स्वरूप में लिपट गया, स्थिर हो गया है और जिसे व्यवहार व्रत का विकल्प वर्तता हो, तथापि उन दोनों में समीप तो आत्मा ही है। यदि आत्मा दृष्टि में ऊर्ध्व न हो तो उसे नहीं निश्चय परिणमन, नहीं व्यवहार परिणमन। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि धर्मात्मा और समकिती ऐसा समझते हैं... चौथेवाला, पाँचवेंवाला और छठवेंवाला—तीना ऐसा समझते हैं। छठवेंवाले को वर्तता होता है, परन्तु समझते हैं तीनों कि तप में इच्छानिरोध अमृत का सागर जहाँ उछलता हो, ऐसी दशा में नियम में, काल से मर्यादित नियम किया हो किसी चीज़ का और संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा... सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है। आहाहा! वह निर्मल पर्याय में सदा उसका ध्येय वहाँ पड़ा है। उस द्रव्य में पर्याय अभेद हुई है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर्याय, पर्याय में रहे, द्रव्य में (द्रव्य) रहे, परन्तु उसका अर्थ कि ऐसे भेद थी, वह ऐसे अभेद हुई। ऐसा उसका अर्थ है। समझ में आया? भाषा तो क्या, उपदेश की शैली तो ऐसी होती है। समझ में आया?

कहते हैं कि उसमें सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है, उसकी पर्याय में आत्मा मुख्य रहता है, ऐसा कहते हैं। लो, ठीक। सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, संयम, तप—इन सबमें अखण्ड आत्मा ध्रुव चैतन्य पूर्ण परमात्मा प्रकृतिभूत—आनन्दभूत... प्रकृति उसकी आनन्द (रूप) है (अर्थात्) ऐसा उसका स्वरूप है। प्रकृतिभूत त्रिकाल... पर्याय में प्रकृतिभूत कहलाता है और स्वभाव में प्रकृतिभूत है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऊर्ध्वता का मतलब सन्मुख?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्य, अग्रगण्य, सामने वह होता है। महिलाओं में बहुत सी ऐसी होती हैं। लड़का छोटा हो तो सामने उसे चलावे। समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ मुख्य भगवान आत्मा अनन्त गुण की खान, अनन्त आनन्द का सागर, ऐसा सच्चिदानन्द

प्रभु, जिसकी धर्म की पर्याय में मुख्य हो तो उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसी कठिन बात है। सामायिक करो और प्रतिक्रमण करो और प्रौषध करो, जाओ, अपवास दसलक्षणी के कर डाले, हो गया, जाओ। ए मलूकचन्दभाई! ऐसा आता था तुम्हारे वहाँ नागनेश? नहीं? आहाहा! कहते हैं... उसमें वह तुम्हारे सामनेवाला... उपाश्रय है न मूलचन्दभाई। वह तो और झोला खाये ऐसे। सवेरे जल्दी उठकर आवे, चार बजे आवे, ऊं... ऊं... किया करे, सामायिक बाँधे। ... ऐसे के ऐसे सब। अभी व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। झोला खाते हों। आहाहा! झोला समझते हो? झोंका। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि परिणाम का झोंक (झुकाव) पूरा द्रव्य में ढला हुआ है। आहाहा! कहो, जेठाभाई! आहाहा! अर्थात् जिसकी धर्मदशा में आत्मा मुख्यरूप से—ध्रुवरूप से—द्रव्यरूप से—ऊर्ध्वरूप से—....पने वर्तता है, उसे धर्म की पर्याय होती है। उसे सामायिक होती है कि जिसे द्रव्य—वस्तु के ऊपर दृष्टि हुई और जिसे समता प्रगट हुई है। उसे सामायिक होती है। समझ में आया? जिसे त्रिकाली आत्मा क्या है, उसका जहाँ भान नहीं, उसे सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण कुछ है नहीं। आहाहा!

(प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है)... लो, स्पष्टीकरण किया है। प्रत्येक कार्य अर्थात् धर्म का पर्यायरूपी कार्य अथवा उस धर्म की पर्याय के साथ व्यवहार का भले विकल्प हो,... समझ में आाय? परन्तु निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है। समझ में आया? जिसकी दौड़ द्रव्य के ऊपर है, जिसका लक्ष्य वस्तु के ऊपर है, जिसका ध्येय ध्रुव के ऊपर है, उसे धर्म के परिणाम में समीप आत्मा है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! **तो (ऐसा सिद्ध हुआ कि) राग के नाश के कारण...** जिस परिणाम में द्रव्य समीप है, उसे राग का नाश है। **राग के नाश के कारण अभिराम... अभिराम=मनोहर; सुन्दर। (भवभय के हरनेवाले ऐसे इस भावि तीर्थंकर ने राग का नाश किया होने से वह मनोहर है।) अभिराम ऐसे उस भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ... अभिराम ऐसे उस भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ...** ऐसा कहा है न? भावी तीर्थंकर—

तीर्थाधिनाथ कैसे हैं ? भवभयहर। वह अभिराम ऐसा है (अर्थात्) वह सुन्दर है। समझ में आया ?

यह साक्षात् सहज-समता निश्चित है। लो, भावी तीर्थंकर को यह परिणाम ऐसे उत्पन्न होते हैं और वे परिणाम वापस गिरते नहीं। भव में तीर्थंकर(गोत्र) पहले पूर्व में आ गया, वह अलग बात है, तो भी उसी भावधारा, तीर्थंकरपद बाँधा, तब से उसकी धारा वापस गिरती नहीं। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं। उसे आधार ऊपर लिया। **'जस्स सण्णिहिदो'** प्रत्येक को समीप है, परन्तु उसका समीपपना तो कभी हटता नहीं। दूसरे का तो गिर जाये भी सही। इतनी बात है। समझ में आया ? दूसरे जीव कोई हों और पाकर गिर भी जाये, (तो) आत्मा उसे सदा समीप रहता है, ऐसा (बनता) नहीं। परन्तु सदा रहे, उसके दृष्टान्त में यह निकाला इन्होंने—टीकाकार ने। टीका में भी था। **जीते हुए ऐसे जिस भावी जिन को...** दूसरी लाईन टीका की। समझ में आया ? आहाहा ! कठिन बात, भाई !

अप्रतिहतभाव वर्णन करते हैं, हों ! भगवान परमात्मा पूर्ण आनन्द, उसका प्रकृति—स्वरूप ही ऐसा है। कुदरत—प्रकृति उसकी—आत्मा की आनन्दमय है, ऐसा कहते हैं। वह आनन्दमय स्वभाव प्रत्येक पर्याय में समीप (रहे, इसलिए) वापस नहीं फिरे, ऐसे तीर्थाधिनाथ को इसमें लिया है। समझ में आया ? आहाहा ! **यह साक्षात् सहज-समता...** (अर्थात्) सामायिक... मुनि की मुख्यता से (बात) ली है न ? **समता निश्चित है।** गजब गाथा। जितने परिणाम धर्म के कहे हैं, उनका स्वरूप... स्वरूप उसमें ऐसा है, ऐसा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप, नियम, प्रायश्चित्त किये, परिणाम के—जितने वीतराग परिणाम के प्रकार हैं, वे सब स्वभाव में, उसका पूरा स्वभाव ऐसा अखण्ड है। समझ में आया ?

जितने वीतरागी आनन्द परिणाम, ज्ञान परिणाम, शान्ति परिणाम अर्थात् चारित्र कहा, वह पूरा उसका स्वरूप ही वह है। शान्ति के परिणाम कहो तो पूरा आत्मा शान्तिस्वरूप है, प्रायश्चित्त के परिणाम कहो तो पूरा आत्मा प्रायश्चित्तरूप है, समता के परिणाम कहो तो पूरा आत्मा समतारूप—वीतरागरूप है, सम्यग्दर्शन के परिणाम (कहो)

तो पूरा दर्शनस्वभावमय है, चारित्र के परिणाम (कहो) तो पूरा वीतराग—चारित्रमय स्वरूप त्रिकाल है। समझ में आया? इसलिए यहाँ समीपपना लिया है। प्रजा को राजा का समीपपना त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? यह पर्याय—प्रजा है न? सिर पर राजा है, उस पर्याय के सिर पर राजा है। भीखाभाई! वापस गिरता ही नहीं, ऐसा कहते हैं।

जिसे भाव से... आता है न दृष्टान्त समयसार में? (गाथा १६८)। परिपक्व फल। फल जो परिपक्व हुआ, खिरे, फिर से चिपटता नहीं वह फल। आम पका हो, टूटा, वह फिर से चिपकेगा? ऐसा भाव लिया। ऐसे भाव में दृष्टान्त इन्होंने ऐसा दिया है। समझ में आया? **साक्षात् सहज-समता...** यह पर्याय की व्याख्या है, हों! **साक्षात् सहज-समता निश्चित है।** यह पर्याय की—वीतरागता की बात है। उसे सामायिक-समता है कि जो पूरा समतारस का पिण्ड, जिसके समीप में वर्तता है। १२७ गाथा हुई। १२७ हुई। १२८।

जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेइ दु।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे॥१२८॥

दूसरा पद तो प्रत्येक में है, दूसरा पद पूरा।

नहिं राग अथवा द्वेष से जो संयमी विकृति लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२८॥

यह सच्ची सामायिक उसे कहते हैं, बाकी सब खोटी। व्यवहार कहो या झूठा कहो, अभूतार्थ कहो, समझ में आया? पर्याय की बात है, हों! भूतार्थ सामायिक है, सच्ची सामायिक है, ऐसा। 'भूतार्थधर्म' ऐसा आता है न बन्ध में, नहीं? भूतार्थधर्म और अभूतार्थ, यह पर्याय के दो वाक्य हैं। भूतार्थ त्रिकाली चीज़ है, वह दूसरा। यह तो भूतार्थधर्म—सच्चा धर्म। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और सच्चा धर्म और विकल्प आदि झूठा धर्म। अभव्य का दृष्टान्त दिया है। अभव्य झूठे धर्म को—अभूतार्थधर्म को श्रद्धता है, भूतार्थधर्म को श्रद्धता नहीं। ठीक! भूतार्थधर्म को श्रद्धता नहीं, यह तो पर्याय हुई। इसका अर्थ यह कि वह द्रव्य को श्रद्धता नहीं। ज्ञानमय आत्मा अकेला ज्ञानस्वरूप ही

है। वह आता है न! उस ज्ञान को श्रद्धता ही नहीं। भूतार्थधर्म को श्रद्धता नहीं, वह ज्ञान को श्रद्धता नहीं। ज्ञान अर्थात् आत्मा। आहाहा! गजब टीका। टीका १२८।

टीका : यहाँ राग-द्वेष के अभाव से... देखो! व्यवहार का राग है, उसके अभाव से (अर्थात्) शुभभाव और अशुभभाव के अभाव से। **अपरिस्पन्दरूपता होती है,...** अपरिस्पन्दरूपता अर्थात् समता। **अपरिस्पन्दरूपता=अकम्पता; अक्षुब्धता; समता।** यहाँ योग की—कम्पन की बात नहीं। योग का कम्पन और अकम्पन, वह बात नहीं। यहाँ तो असमता, वह कम्पन है। समता, वह अपरिस्पन्द। समझ में आया? स्थिरता। **ऐसा कहा है। पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग संयमी को...** संयम की बात ली है। जिसने आत्मा को समीप करके जिसकी दशा श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति—वीतरागता, संयमदशा प्रगट की है, वह पापरूपी अटवी को जलाने में... पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों। **पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान ऐसे जिस परमवीतराग संयमी को राग या द्वेष विकृति उत्पन्न नहीं करता,...** उसे राग-द्वेष विकार नहीं करते। राग-द्वेष उत्पन्न होते ही नहीं, ऐसा कहते हैं।

नीचे अर्थ किया है। **विकृति...** अर्थात् **विकार; स्वाभाविक परिणति से विरुद्ध परिणति।** पर्याय की अपेक्षा से। समझ में आया? उसमें द्रव्य अपेक्षा से बात थी (प्रवचनसार में)। सर्वोत्तम प्रकृतिभूत, ऐसा है। ज्ञानप्रकृति... १२४ न? उसमें कितनी आवे? ९० ? यह ज्ञेय अधिकार तो है परन्तु... (प्रवचनसार) १२४ में। यह है न! नीचे अर्थ में है। **प्रकृतिभूत—स्वभावभूत। सुख स्वभावभूत है।** त्रिकाल की बात है इसमें। **क्योंकि वहाँ सौख्य के लक्षण का अभाव है। प्रकृतिभूत सौख्य है** और **विकृतिभूत दुःख है।** ऐसा कहा है। स्वभावभूत—सुख स्वभावभूत है त्रिकाल। विकृति विभावभूत है, स्वभावभूत नहीं। यहाँ ऐसा लिया। **उसका फल अनाकुलत्वलक्षण प्रकृतिभूत सौख्य है।** वह पर्याय में ऐसा आ गया अनाकुलत्व लक्षण। परन्तु वह अनाकुललक्षण है, वह पूरा आत्मा अनाकुल प्रकृतिभूत लक्षण है, ऐसा इसमें आया 'प्रकृतिभूत' में। समझ में आया? यह पूरा आत्मा ही प्रकृतिभूत सुखरूप ही है। उसका समीपपना, प्रकृतिभूत जो स्वभावपरिणाम प्रगट हुए, उसमें स्वभावभूत वस्तु समीप है। समझ में आया?

दु:ख में तो कुछ है ही नहीं, वह विकृत है, उसके स्वरूप में ही नहीं। समझ में आया? उसके स्वरूप में—प्रकृति में तो अकेला आनन्द ही जिसका स्वभाव है। भगवान आत्मा का आनन्द ही स्वभाव है। उसका सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और स्थिरता होने पर उसमें आनन्द की ही पर्याय आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सामायिक, वह आनन्दमय है। सामायिक में अतीन्द्रिय आनन्द आवे, ऐसा कहते हैं। जादवजीभाई! उसे सामायिक कहते हैं। क्यों? कि अतीन्द्रिय आनन्द के परिणाम के समीप में अतीन्द्रिय आनन्दमय ध्रुव बसता है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए उसे सामायिक कहते हैं, पर्याय की सामायिक हों! कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आवे। आहाहा! क्योंकि उसकी—वस्तु की प्रकृति—स्वभाव ही आनन्दमय है। वस्तु का स्वभाव आनन्दमय है।... चीज़ प्रकृतिभूत, आनन्दरूप उसका समीपपना किया तो पर्याय में आनन्द आये बिना रहता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? धर्म, वह दु:खरूप नहीं। धर्म में कष्ट होता है, ऐसा माने, वह द्रव्य में स्वभावभूत आनन्द है, उसे मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो! **(परमवीतरागसंयमी को समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य का...)** लो, क्या कहा? **समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य...** क्योंकि यहाँ सामायिक, वह समता है, राग-द्वेष रहित के परिणाम हैं। तो उसे **समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य का दृढ़ आश्रय होने से...** समतास्वरूप भगवान, वीतरागस्वरूप कहो या समतास्वरूप कहो, ऐसा आत्मा ही है त्रिकाल। उसका **दृढ़ आश्रय होने से विकृतिभूत (विभावभूत)...** लो, **विषमता नहीं होती, परन्तु प्रकृतिभूत (स्वभावभूत) समतापरिणाम होते हैं।)** देखो! क्योंकि समताभूत ही त्रिकाल आत्मा है। उसका दृढ़ आश्रय करने से समता परिणाम प्रगट होते हैं। आहाहा! समझ में आया? लो, ऐसी सामायिक है। सुजानमलजी! तो यह सब (बाहर की) सामायिक की न अभी तक? सादड़ी? बड़ी सादड़ी। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि वह समतास्वभावी शुद्धात्मद्रव्य, उसका जिसे दृढ़ आश्रय है, उसका आश्रय है... निमित्त का नहीं, विकल्प का नहीं, एक समय की पर्याय का भी नहीं। ऐसा प्रकृतिभूत आनन्दमय भगवान का जिसे दृढ़ आश्रय होने से विकृति उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया?

परन्तु ऐसी सामायिक करने से—व्यवहार करते-करते होगा या निश्चय सीधे होता होगा? सबका यह प्रश्न है, लो। ऐसी चर्चा करते... दामोदरभाई है न? गये थे उन अमरचन्दजी के पास। अमरचन्दजी के साथ बात हुई थी। वह व्यवहार करते-करते होगा या सीधे होता होगा? हाँ, आता है। यहाँ आ गये हैं, यहाँ आये हैं। उसे 'मैं जानता हूँ... मैं जानता हूँ' (ऐसा) बहुत है उसे। श्रीमद् का जानता हूँ, समयसार का जानता हूँ, श्वेताम्बर का जानता हूँ। ऐसी बात है। बापू! जिसे अपने धर्मपरिणाम में आत्मा की एक ही अपेक्षा है, जिसे व्यवहार की भी अपेक्षा नहीं, ऐसी उपेक्षा है। इसकी अपेक्षा है—वस्तु की अपेक्षा है, विकार की उपेक्षा है। सहज उसका स्वरूप ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा ऐसी मुख्य वस्तु, वह तो पूरी गौण हो गयी। हो गये क्रियाकाण्ड, यह करूँ, यह करूँ और यह करूँ। जिसकी कुछ कीमत है दुःख की! चार गति दुःख में जाना। आहाहा! शुभभाव में... आया था न अपने देखो न! शुभभाव अर्थात्? आया था पहले। प्रवर्तमान आया था, नहीं? शुभभाव ऐसा है। उसमें ही आया था। **सुख-दुःख सुकृत-दुष्कृत के समूह से होता है (अर्थात् चार गति के जन्मों में सुख-दुःख शुभाशुभ सुकृत से होता है)।** कलश है न २०९। २०९ कलश, १२६ गाथा में आ गया है। शुभभाव से तो दुःखरूप—यह कल्पना का सुख, ऐसी गति मिलती है। अब जिससे यह मिले, उससे निश्चय मिलेगा? शुभ-अशुभभाव से गति मिलती है, विकृतभाव का फल। अब विकृत का फल गति (होती है), उसके विकृत के फल में अगति—निश्चय (कैसे होगा)? समझ में आया? आहाहा! शुभ का अभाव और अशुभ का भी अभाव है। एक आत्मा को निश्चित भव का परिचय है ही नहीं। भगवान आत्मा को भव का परिचय नहीं। आहाहा! इसका अर्थ कि आत्मा को शुभाशुभ परिणाम का परिचय ही नहीं। क्योंकि वह भिन्न तत्त्व है और यह भिन्न तत्त्व है। समझ में आया?

भगवान ने—भगवान आत्मा ने भव किया ही नहीं न, भव है ही नहीं न, भव होता ही नहीं न! आहाहा! भव में आत्मा कैसा और आत्मा में भव कैसे? आहाहा! समझ में आया? आ गया था अपने। **निश्चित भव का परिचय बिल्कुल नहीं है।** अकेला प्रत्यक्ष आनन्दस्वभाव ऐसी वस्तु, उसे भव और भव के कारण ही जहाँ नहीं, वहाँ और

भव का परिचय कहाँ से आया? आहाहा! कहते हैं कि जिसे राग-द्वेषरहित समतापरिणाम समतास्वरूप त्रिकाल भगवान के दृढ़ आश्रय से प्रगट हुए हैं, उसे विकृति उत्पन्न होती नहीं, उसे प्रकृति उत्पन्न होती है। प्रकृति अर्थात् समता। समझ में आया? इस ओर... डाला था किसी ने कुछ पृष्ठ में। कृति... विकृति... प्रकृति, फलाना शब्द... परन्तु उसका भाव क्या, यह समझे बिना? यहाँ आया था पत्र में। विकृति... कृति... प्रकृति और आकृति—ऐसे सब शब्द आते हैं न? बहुत आये हैं दस... दस-बारह थे। वे शब्द, परन्तु उनका भाव क्या, वह नहीं समझ में आता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अहो! जहाँ भगवान आत्मा... यह राग-द्वेषरहित सिद्ध किया है न, इसका अर्थ ही कि यह समताभूत ही आत्मा है। त्रिकाल समता का रसकन्द है। उसका दृढ़ आश्रय किया, उसे तो प्रकृतिभूत स्वभाव सुख और आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, उसे विकृतभूत पर्याय उत्पन्न नहीं होती। यह उत्पन्न होती है तो वह उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहना है। आत्मा उत्पन्न हुआ अर्थात् आत्मा समताभाव का पिण्ड स्वयं उठा जागकर समता परिणाम में, उसे विकृत परिणाम होंगे कहाँ से? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उस महा आनन्द के अभिलाषी जीव को... कहो, महा आनन्द के अभिलाषी जीव को... और एक ओर कहते हैं कि समकिती को कोई अभिलाषा होती ही नहीं। भाई! पंचाध्यायी में आता है। यहाँ अपेक्षा से कहा। अभिलाषा में तो महा आनन्द की भावना है। पंचाध्यायी में आता है... यहाँ तो महा आनन्द की अभिलाषा अर्थात् भावना। पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये जिसकी अन्तर एकाग्रता है, ऐसा। समझ में आया? जो पूर्णानन्द है, महा आनन्द का पिण्ड प्रभु है, महा आनन्द का सागर है। उसे दृढ़ निश्चय से महा आनन्द का भाव एकाग्र होकर... **कि जिसे पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह है...** मुनि की बात की न! मुख्यरूप से मुनि की बात है न। उसे कि जिसे पाँच इन्द्रियों का विस्तार नहीं—फैलाव नहीं, अतीन्द्रियरूप से है, ऐसे को देहमात्र परिग्रह है। आहाहा!

मुनि को देह के अतिरिक्त दूसरा होता नहीं। समझ में आया? यह वस्त्र और पात्र

और पोटला और यह सब मुनि को होते नहीं। समझ में आया? अकेला देह। 'देहमात्र' आता है न श्रीमद् में? 'देहमात्र वह संयम हेतु होय जब।' 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' वहाँ तो ऐसा डाला। वहाँ वेश और वाडा की बात नहीं डाली। ऐसा वेश और ऐसा... वहाँ डाले आत्मसिद्धि की बात। 'जातिवेश का भेद नहीं कहा मार्ग जो होय।' यहाँ तो ऐसा कहा। देहमात्र, संयम का हेतु देहमात्र। 'मात्र देह वह' ऐसा कहा न। 'मात्र देह' का अर्थ क्या हुआ? अकेला देह (हो), दूसरा कुछ नहीं। मुनि को वस्त्र, पात्र हो सकते ही नहीं। परन्तु ऐसे भान सहितवाले की बात है, हों! संसार छोड़कर बैठे और आत्मा ही जहाँ (ऊर्ध्व) नहीं, उसे कुछ है नहीं, वह तो संसारी भटकते प्राणी हैं। आहाहा! समझ में आया?

महा आनन्द के अभिलाषी जीव को—कि जिसे पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह है उसे—सामायिक नाम का व्रत शाश्वत है,... उसे समता, शाश्वत आत्मा की समता में से प्रगट हुई है, इसलिए उसे भी स्थिर और शाश्वत् कहा जाता है। आहाहा! नियमसार की कथनी अलग प्रकार की प्रत्येक गाथा में। एक अजीव अधिकार और एक व्यवहार (चारित्र) अधिकार डाले वस्तु (स्थिति समझाने के लिये), बाकी सब अधिकार में एकदम त्रिकाली स्वभाव जैसा, उसके परिणाम उसके जैसे। अलग-अलग सब बात की प्रतिक्रमण की, आलोचना की... आहाहा! यह सामायिक का व्रत उसे होता है। बहुत सब शर्तें रखी हैं। राग-द्वेष के परिणाम ही जिसे नहीं। तो यहाँ ऐसा सिद्ध करते हैं कि वह तो बारहवें में नहीं। यह यहाँ ही नहीं, सुन न! छठे गुणस्थान में राग-द्वेष के परिणाम हैं ही नहीं। समझ में आया?

अरे! समकिती को राग-द्वेष परिणाम नहीं। आहाहा! क्योंकि विकार से तो विमुक्त है (और) अविकारी चीज़ सहित है। स्वयं आत्मा ही अविकारी मुक्तस्वरूप है। इसलिए उसकी दृष्टि में मुक्त के परिणाम ही हैं। बन्ध के परिणाम उसके परिणाम में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यहाँ तो अस्थिरता को टालने की अपेक्षा से बात है न! अस्थिरता से मुक्त है, वह दृष्टि की अपेक्षा से और यहाँ स्थिरता की अपेक्षा से अस्थिरता उत्पन्न होती नहीं, ऐसा कहना है। अरे! एक ओर देखो तो सम्यग्दृष्टि को राग है ही नहीं। उसे तो अकेला शुद्धता का परिणमन है। वह दृष्टि द्रव्य-गुण-पर्याय की

एकता की अपेक्षा से बात है। वह अस्थिरता दृष्टि में और दृष्टि के विषय के परिणाम में नहीं है, परन्तु चारित्र की अस्थिरता की अपेक्षा से जो अस्थिरता थी, वह टलकर जो समता हुई, उसे अस्थिरता उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

एक ओर, दृष्टिवाले समकिती को अशुद्धता उत्पन्न होती ही नहीं, ऐसा कहा। समझ में आया? क्योंकि उसकी दृष्टि में द्रव्य है, गुण है, उसका परिणमन शुद्ध ही है। अशुद्ध परिणमन उसका नहीं। परन्तु अस्थिरता टालने की अपेक्षा से—चारित्र की अपेक्षा से अस्थिरता जो उत्पन्न थी, वह समता भगवान आत्मा उसके खूँटे से परिणाम को बाँधा। समझ में आया? उसे यहाँ सामायिक शाश्वत् है। भाषा 'शाश्वत् सामायिक' की है। वह तो पर्याय है। वह शाश्वत् में से आयी, इसलिए उसे शाश्वत् (कही)। कृत्रिम राग की जो सामायिक करके बैठे, उसे सामायिक नहीं, वह बतलाने के लिये 'यह शाश्वत् है' (ऐसा कहा)। उसे सत् सामायिक है, ऐसा कहना है। समझ में आया? वह सत्-स्वरूप भगवान आत्मा उसका जो दृढ़ आश्रय करके पड़ा है, उसके परिणाम को यहाँ सत् सामायिक कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

आता है न कहीं? वृक्ष के नीचे जायें तो फल मिले, राजा की चाकरी करे तो अमुक मिले। ऐसा आता है एक भजन में। राजा की चाकरी सेवक बहुत मिलेगा, ऐसा आता है कहीं। ऐसा तो लौकिक भजन में कुछ... उस वृक्ष के नीचे जायें तो फल मिले, राजा के पास नौकरी करें तो मिले, प्रभु! तेरे पास जायें और आनन्द न मिले, ऐसा कैसे होगा? समझ में आया? आनन्ददाता ऐसा भगवान आत्मा, उसके घर में जाये और वह दाता आनन्द दिये बिना रहे? ऐसा कहते हैं। स्वयं दाता और स्वयं लेनेवाला—पात्र स्थान। आहाहा! समझ में आया? यह समता समकित सामायिक, एक ज्ञान सामायिक, एक स्थिरता सामायिक। यह स्थिरता की सामायिक की बात है। **ऐसा केवलियों के शासन में प्रसिद्ध है।** लो, यह तो प्रसिद्ध है। तुझे खबर नहीं? ऐसा कहते हैं। लो, समझ में आया? निश्चय की बात में ऐसा लगे कि यह तो एकान्त... निश्चय... निश्चय है। यह एकान्त निश्चय, वही सत्य है। तब उसे अनेकान्त का सच्चा ज्ञान हुआ। पर्याय में राग आदि है, उसे जानता है। आहाहा!

इस १२८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

रागद्वेषौ विकृति-मिह तौ नैव कर्त्तुं समर्थौ,
ज्ञानज्योतिः-प्रहतदुरितानीक-घोरान्धकारे।
आरातीये सहज-परमानन्द-पीयूष-पूरे,
तस्मिन्नित्ये समरसमये को विधिः को निषेधः॥२१३॥

आहाहा! इसमें आया, हों! इसमें आया। '**को विधिः**' परिणाम में आया। २१५ पृष्ठ। इसमें २१५ आता है न। वहाँ द्रव्य में आता है। ऐसा आया था। १५५ (कलश) है न। **अतिक्रान्त वचन और मन के अगोचर है। यह निकट परमपुरुष में विधि क्या और निषेध क्या? परमसंयमियों के चित्त कमल में स्पष्ट है...** आत्मा। **वह आत्मा संसारी जीवों के वचन-मनोमार्ग से अतिक्रान्त है। उस निकट परमपुरुष में विधि क्या और निषेध क्या?** उसके द्वारा आत्मा... यह छोड़े और रखे, ऐसा आत्मा में है नहीं। यह आत्मा है और रागरहित है, ऐसी विधि-निषेध के विकल्प, उसके स्वरूप में कहाँ हैं? संयमी के परिणाम में भी... वह यहाँ आया, देखो! आहाहा! **समरसमय आत्मतत्त्व में विधिा क्या और निषेध क्या?** यह आया। तत्त्व आया पूरा। वहाँ विधि-निषेध पर्याय का लिया। वहाँ परिणाम में विधि-निषेध का नाश आया, यहाँ द्रव्य में विधि-निषेध नहीं। समझ में आया?

है न? **नित्य (शाश्वत्) समरसमय आत्मतत्त्व में विधि क्या और निषेध क्या है?** आहाहा! अकेला भगवान समरस का पिण्ड प्रभु, उसमें विधि क्या, निषेध क्या? समझ में आया? उसमें परिणाम में था कि विधि क्या और निषेध क्या? परन्तु वह परिणाम में नहीं था, वह स्वरूप में था तो परिणाम में विधि-निषेध नहीं, (ऐसा आया)। स्वरूप तो विधि-निषेध रहित है। समझ में आया? वस्तु स्वयं ही विधि-निषेध रहित है। अर्थात् परिणाम में उसका आश्रय होने पर उसे फिर यह करने जैसा, यह नहीं करने जैसा—उसमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ होगा, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ११, शुक्रवार, दिनांक - ०१-१०-१९७१
श्लोक-२१३-२१४, गाथा-१२९-१३०, प्रवचन-१४१

२१३ कलश है। कोष्ठक... कोष्ठक का रह गया अन्दर। अन्त में क्या कहा? देखो! **उस नित्य समरसमय आत्मतत्त्व में विधि क्या और निषेध क्या है?** सामायिक की व्याख्या है न? इसलिए स्वयं समरसमय ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आत्मा समरसमय त्रिकाली वस्तु है। उसके आश्रय से सामायिक होती है। कहते हैं कि वह समरसमय ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसमें यह करनेयोग्य काम (या) नहीं करनेयोग्य—यह तो वस्तु के स्वरूप में नहीं है। तो उसके परिणाम में—सामायिक में भी यह करनेयोग्य—नहीं करनेयोग्य (ऐसा) विकल्प है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **समरसमय आत्मतत्त्व...** ऐसा अभेद। समता रस का पिण्ड आत्मतत्त्व, समभाव—स्वभाव—स्वरूप—स्वभावमय वह आत्मतत्त्व, उसमें विधि क्या और निषेध क्या? यह करनेयोग्य—नहीं करनेयोग्य, (ऐसे) विकल्प का अवकाश उसमें नहीं है। ऐसे आत्मतत्त्व को अन्तर अवलम्बकर, दृढ़रूप से आश्रय करके जो स्थिर होता है, उसे सामायिक कहा जाता है। लो। यह सामायिक की व्याख्या। कोष्ठक।

(समरसस्वभावी आत्मतत्त्व में... भगवान समरस अकषायस्वभाव—वीतरागस्वरूप त्रिकाली ऐसे स्वभावी आत्मतत्त्व में **'यह करने योग्य है और यह छोड़ने योग्य है' ऐसे विधि-निषेध के विकल्परूप स्वभाव न होने से...** ऐसा विकल्प का स्वभाव उसमें नहीं होने से... शुभ-अशुभ परिणाम कि 'यह है और नहीं' ऐसे जो विकल्प, उसके स्वभाव में नहीं होने से... उसका स्वभाव ही वह नहीं। आहाहा! **आत्मतत्त्व का दृढ़ता से आलम्बन करनेवाले...** ऐसा जो समरसमय ध्रुवतत्त्व आत्मतत्त्व, उसे दृढ़रूप से अवलम्बन करनेवाला—उसका अवलम्बन लेनेवाले **मुनि को स्वभावपरिणमन होने के कारण...** शुद्धस्वभाव का परिणमन(रूप) दशा होने के कारण **समरसरूप परिणाम होते हैं,...** जैसा समरसमय आत्मतत्त्व था, वैसे उसके

परिणाम होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम सच्ची सामायिक कहा जाता है।

विधि-निषेध के विकल्परूप—राग-द्वेषरूप परिणाम नहीं होते)। वस्तु स्वयं ही समरसमय होने से, उसका दृढ़रूप से आश्रय लेनेवाले के परिणाम में भी, 'यह करनेयोग्य—न करनेयोग्य' (ऐसा) विकल्प उसके परिणाम में भी नहीं है। वस्तु में नहीं तो उसके परिणाम में भी नहीं। ऐसी समरसमय परिणामदशा को सामायिक कहा जाता है। यह २१३ (कलश) हुआ। २१३ कलश। (गाथा) १२८ का कलश है। १२९ (गाथा)।

जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे॥१२९॥

रे! आर्त्त-रौद्र दुध्यान का नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे॥१२९॥

टीका:—यह आर्त और रौद्रध्यान के परित्याग द्वारा सनातन... अर्थात् **शाश्वत्** अर्थात् सच्ची **सामायिकव्रत के स्वरूप का कथन है।** कैसा है भगवान आत्मा? सनातन कहा न वहाँ। सामायिक को सनातन कहा है। तो अब सनातन त्रिकाली कौन है, उसे पहले वर्णन करते हैं। **नित्य-निरंजन निज कारणसमयसार के स्वरूप में...** वस्तु आत्मा वह नित्य है, निरंजन है (अर्थात्) आवरण और मैलरहित चीज़ है। ऐसा निज कारणसमयसार—निज कारण-आत्मा, उसके **स्वरूप में नियत...** उसके स्वरूप में रहे हुए... क्या रहे हुए? **शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग-सुखामृत...** शुद्ध निश्चय परम वीतराग सुखामृत के **पान में परायण...** आहाहा! उस स्वरूप में रहे हुए, ऐसा लिखा है न? उसमें ऐसा कहा कि ऐसे स्वरूप में स्थिर होने से, ऐसा लिखा है। ...परन्तु यह तो स्वरूप में ही रहे हुए भाव... यह तो स्वरूप में रहने से ऐसा होता है, ऐसा। परन्तु यह बराबर है। ओहोहो! नियमसार में आत्मा के वास्तविक स्वरूप को सैकड़ों प्रकार से (वर्णन करते हैं)। मूल चीज़ क्या है? भाई! यह कायम रहनेवाला तत्त्व, कायम रहनेवाला, वह तू कौन है? कायम टिकनेवाला तत्त्व वह कौन है तू? समझ में आया?

तू नित्य है, एक समय की पर्याय भी नहीं, ऐसा कहते हैं। निरंजन है—उसमें राग-द्वेष आदि आवरण (नहीं)। नित्य को क्या आवरण होगा? अपना कारणसमयसार, निज-अपना स्वरूप कारणपरमात्मा, कारणसमयसार, कारणजीव—ऐसे स्वरूप में रहे हुए **शुद्ध-निश्चय-परम-वीतराग-सुखामृत...** शुद्ध निश्चय परम वीतराग सुख-अमृत... आहाहा! भगवान में परमवीतराग सुख-अमृत भरा है। समझ में आया? कारणजीव में कहो, कारणपरमात्मा में कहो, कारणसमयसार (में) कहो, ध्रुवतत्त्व कहो—उसमें शुद्ध निश्चय परम वीतराग सुख-अमृत... शुद्ध, निश्चय, परम, वीतराग, सुख, अमृत... आहाहा! उसके पान में परायण... ऐसे निर्विकल्प के आनन्द के पीने में तत्पर है। गजब व्याख्या! यह सामायिक। कभी सुनी नहीं हो ऐसी सामायिक। सामायिक करो... सामायिक करो। कहो, भीखाभाई! आहाहा! ऐसा ही है, भाई कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा कायम रहनेवाला, उसका स्वभाव नित्य निरंजन, निज-अपना स्वभाव कारणप्रभु... कारणप्रभु त्रिकाल, उसमें रहे हुए शुद्ध और सच्चा परम वीतरागी सुखामृत... आहाहा! उसके पान में—उसे अनुभव करने में परायण... आहाहा! लो, पण्डितजी! यह सामायिक कभी सुनी नहीं होगी। नहीं? लो, यह पण्डित कहते हैं न! यह तो पण्डित है। आहाहा! नित्यबिम्ब प्रभु, वह तो शुद्ध निश्चय-सत्य परम वीतराग सुख-अमृत... सुख का—अमृत का सागर है। आहाहा! इतने में कैसे बैठे इसे? भाई! स्वभाव है न, और स्वभाव की महिमा क्या कहना? आहाहा! आया नहीं था कल? उसकी कीर्ति कहाँ नहीं है? त्रिकाल कीर्ति से भरपूर आनन्दसागर है। समझ में आया? जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ कैसी है, वह कहते हैं पहले।

सामायिक, वह स्थिर होने की चीज़ है न! परिणाम की चीज़ है न! वीतराग परिणाम है न, तो उस वीतराग परिणाम को स्थिर होने का स्थान कौन सा? कि ऐसा आत्मा, जिसमें शुद्ध निश्चय परम अकषाय—वीतराग सुख का अमृत, बस वह वस्तु। वह वहाँ तक वस्तु। पान में परायण—उसके अनुभव में तत्पर, वह पर्याय। वह पान में परायण, यह सामायिक। आहाहा! कहो, सुजानमलजी! सादड़ी में सुनी थी यह सामायिक? आहाहा! पहले इसका ख्याल तो करे, इसके ख्याल में तो यह बात ले कि यह वस्तु ऐसी है। और उस वस्तु में एकाग्र होना कहो या उसके पान में परायण कहो। निर्विकल्परस

के पीने में परायण है, ऐसा कहते हैं। कहो, जादवजीभाई! लो, ऐसी सामायिक थी वहाँ? अरे! वास्तविक तत्त्व क्या है, उसका त्रिकाली स्वभाव क्या है और उसके वर्तमान धर्म के परिणाम कैसे होते हैं—उसकी भी जिसे खबर नहीं। आहाहा! कहाँ ढलना है और जहाँ ढलना है, वह चीज़ कैसी है? आहाहा! समझ में आया?

जिसमें झुकना है... परसन्मुख तो झुक रहा है अनादि से। आहाहा! परसन्मुख तो झुक रहा है अनादि से। अब जिसमें झुकना है, वह चीज़ कैसी है? वह तो नित्य-निरंजन निज प्रभु का स्वरूप, उसमें रहा हुआ शुद्ध सच्चा परम वीतराग सुखामृत... आहाहा! इसके शब्द भी कम पड़ते हैं मुनिराज को। और सुख के साथ अमृत जोड़ दिया, और उसके साथ वीतराग जोड़ा, उसके साथ परम जोड़ा, उसके साथ नित्य, उसके साथ शुद्ध। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? भगवान आत्मा में अन्दर अनादि-अनन्त सुखरूपी अमृत है। कैसा सुखरूप अमृत है? कि वीतरागी सुखरूप अमृत है। कैसा है? परम वीतराग सुखरूप अमृत है। कैसा है? निश्चय परमवीतराग सुखामृत है और वह शुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की... क्या कहलाते हैं यह सब चूसते हैं वह? कुल्फी। कुल्फी करते हैं न? दूसरा क्या? कुल्फी नहीं, पूरी... है। लड़के चूसते हैं न कुल्फी... कुल्फी। उसी प्रकार यह तो अतीन्द्रिय आनन्द की कुल्फी है, कहते हैं। यह वीतरागी अमृत सुखामृत... वह परम वीतरागी सुखामृत... परन्तु परिणाम में, वीतरागी सुख का अनुभव पर्याय में होता है। यह तो परम वीतरागी सुखामृत त्रिकाल। समझ में आया? और वह भी शुद्ध-निश्चय... पवित्रता का अकेला पिण्ड प्रभु सत्। आहाहा! बस ऐसा जो आत्म ध्रुवस्वरूप, उसके पान में—उसके रस को पीने में तत्पर, परायण—तत्पर है, उसे शुद्ध निश्चय परम वीतराग सुखामृत की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? ऐसी बात!

वह तो पहले कहा था कि नित्य-निरंजन निजकारणपरमात्मा... और उसके स्वरूप में—भाव में रहा हुआ, ऐसा। ऐसा जो भाव शुद्ध निश्चय—शुद्ध सत्य परम वीतराग सुख अमृत, वह वस्तु। तो उसका पीना—उस ओर की एकाग्रता करना, उसमें तत्पर है, उसका उसे अंश प्रगट परिणाम में होता है। यह तो बड़ा अंशी है पूरी चीज़।

आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? उसे पर्याय में शुद्ध निश्चय वीतराग सुखामृत की परिणति प्रगट होती है। समझ में आया? उसे निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं, उसे समाधि कहते हैं, उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो जरा से मक्खन के, क्या कहलाते हैं? जामुन—गुलाबजामुन। घी में तले हुए, ऊपर काले, अन्दर सफेद। ऊपर काले होते हैं न। चासनी पी गये होते हैं। अन्दर... ऊपर तो काले हैं। यह तो अन्दर और बाहर दोनों सफेद। समझ में आया? आहाहा! गुलाबजामुन, यह तो गुलाबी भगवान आत्मा। आहाहा!

जिसके सुखरूपी अमृत, उसमें जो प्राणी पान में परायण... ऐसी भाषा प्रयोग की है न? 'पान परायण' पाठ ही है। '**पानपरायणो**' यह तो 'प' और 'प' दो इकट्ठे रहे न। पान परायण—पीने में तत्पर—पीने में परायण। अनादि से अज्ञानी राग-द्वेष को पीने में तत्पर था। समझ में आया? यह सब सेठिया, राजा या देव, सब विकार के पीने में तत्पर थे, दु:खी थे बेचारे। मूलचन्दभाई! दु:खी, परन्तु यह सब पैसेवाले कहलाये, लड़के अमेरिका जाये, खम्मा... खम्मा... माणेकलालभाई को चले दवा का कारखाना—दुकान। उसमें सुख नहीं होगा कुछ? आहाहा! अनादि से राग और द्वेष में तत्पर, अनुभवी, वह दु:खी प्राणी संसारी है। समझ में आया? जिसे आत्मा, अरे! आंशिक भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान की परिणति प्रगट हुई, भले चारित्र की पूर्णता न हो। आहाहा! भगवान कहते हैं कि वह सुखी हुआ है, हों! वह सुख को पीता है, हों! आहाहा! वह सुख का पेय पीता है। आहाहा! समझ में आया? और अज्ञानी को वह सामायिक विकल्प और प्रतिक्रमण और महाव्रत, वह विकल्प है, वह जहर का पेय पीता है। समझ में आया?

ऐसा जो जीव... ऐसा। **ऐसा जो जीव...** उसे **तिर्यंचयोनि, प्रेतवास**—हल्के देवादि, **नारकादिगति की योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है,...** लो। उसे उत्पन्न होते ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान पूर्ण जिसे चूसनी मिल गया... वे लड़के तो लकड़ी का चूसना (चूसते हैं)। छोटे लड़के नहीं, लकड़ी के चूसना चूसते हैं? फिर छोड़ देते हैं और यह अँगूठा चूसे। आहाहा! यह धर्मी तो आत्मा चूसता है। कहो, समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा... यह सामायिक। देखो! शान्तिभाई! थी यह मूली में? नहीं। आहाहा! अभी क्या चीज़ है,

उसकी खबर नहीं, सुनी नहीं और हो गये धर्मी, (हो गयी) सामायिक। आहाहा!

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ऐसा आत्मा जाना, देखा और कहा, ऐसे आत्मा में जो अन्दर में एकाग्र होकर रमे, उसे सामायिक, उसे प्रौषध, उसे प्रतिक्रमण, उसे प्रायश्चित्त, उसे सम्यग्दर्शन, उसे ज्ञान, उसे चारित्र कहा जाता है। आहाहा! उस पराश्रय के भाव को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (कहे), उसकी तो बात इसमें कुछ ली नहीं। व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार चारित्र, लो! यह जहर का पेय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन लगे। बापू! तू पूरा पड़ा है न, प्रभु! तुझमें कहाँ कचाश और कहाँ अपूर्णता है कि जिसे पर का आश्रय लेना पड़े? आहाहा!

भगवान नित्य आनन्द से भरपूर जिसका स्वभावभाव अकेला परम वीतराग सुखामृत, ओहो! ऐसा जिसका भाव जिसमें रहा हुआ है, ऐसा आत्मा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा भाव जिसमें रहा है, वह आत्मा। वह आत्मा... पान में परायण ऐसा आत्मा अर्थात् ऐसा जीव... **तिर्यंचयोनि, प्रेतवास** और **नारकादिगति की योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को...** नित्य (वस्तु) के आश्रय से **नित्य छोड़ता है,...** समझ में आया? परन्तु भाई! यह तो निश्चय की बात हुई, परन्तु उसका साधन? यह सब कहते हैं लोग। निश्चय बात बराबर है, परन्तु उसका—निश्चय का साधन होगा या कुछ साधन बिना? सिद्धान्त में कहा है कि व्यवहार साधन है, लो। निश्चय साध्य है, व्यवहार साधन है। यह तो साधन निमित्त से कहा है। नहीं है, उसे कहा, उसका नाम व्यवहार। साधन तो भगवान स्वयं ही है। आहाहा! उसे पर के आश्रय से साधन मानकर आत्मा ऐसा है, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह आत्मा ऐसा है नहीं।

नारकादिगति की योग्यता के हेतुभूत आर्त और रौद्र दो ध्यानों को नित्य छोड़ता है, उसे—ऐसे आत्मा को... इसमें ऐसा नहीं कहा कि भाई! पहले व्यवहार करे और फिर आत्मा का आश्रय ले, उसे सामायिक होगी। यहाँ नहीं कहा होगा, परन्तु अन्यत्र—दूसरे शास्त्र में कहा होगा न? परन्तु दूसरे शास्त्र में कहा हो तो इससे कहीं विरुद्ध कहा होगा? भाई! वह आत्मा राग—विकल्प... वह तो कहा न! जिस द्रव्य में विधि-निषेध नहीं, तो फिर उसकी परिणति में भी इस राग का अभाव है और राग से होता है, वह

वस्तु है नहीं। ऐसा **केवलदर्शनसिद्ध...** लो, केवलज्ञानी भगवान के दर्शन में, ज्ञान में **निश्चित हुआ** है। वह **शाश्वत् सामायिकव्रत है।** उसे सच्ची सामायिक कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह दुरूहता कर डालते हैं सब। आपकी वाणी....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में है या वाणी में? (भाव में)। वाणी में भाव कहाँ आया? यह भाव तो आत्मा में है, ऐसा कहा पहले। आत्मा में वह भाव है, ऐसा कहा, देखो न! कारणसमयसार में—स्वरूप में रहे हुए... वाणी में नहीं, राग में नहीं, पर्याय में भी नहीं। वाणी में वाणी के भाव होते हैं। वाणी में यह भाव कहाँ आवे? आहाहा! वाणी के भाव को इस भाव की खबर भी क्या? वह जड़ है। समझ में आया?

ऐसा केवलदर्शनसिद्ध—केवली से निश्चित हुआ—त्रिलोक के नाथ तीर्थंकर से निश्चित हुआ, लो। आहाहा! समझ में आया? पहले इसकी पद्धति क्या है वह इसके ख्याल में तो ले। ख्याल बिना प्रयोग किस प्रकार करेगा? अन्तर्मुख चीज़ क्या है? उसे एकाग्र होना—उसमें एकाग्र होना, वह सब वस्तु है। जितने धर्म के प्रकार कहते हो, वे सब यह है। पश्चात् विविध प्रकार से समझाते हैं। समझ में आया? कोई संक्षिप्त भाषा में आवे, कोई विस्तार से आवे।

अब इस १२९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—२१४ कलश।

इति जिनशासनसिद्धं सामायिकव्रतमणुव्रतं भवति।
यस्त्यजति मुनिर्नित्यं ध्यान-द्वय-मार्त-रौद्राख्यम्॥२१४॥

देखो! पूर्ण तो केवलज्ञान हो तब....

श्लोकार्थ:—इस प्रकार, जो मुनि... अर्थात् आत्मा **आर्त और रौद्र नाम के दो ध्यानों को...** आर्तध्यान जिसमें शान्ति पिलती है, आत्मा का आनन्द आर्तध्यान में पिलता है। जैसे तिल घानी में पिलते हैं, उसी प्रकार आर्तध्यान में आत्मा का आनन्द पिलता है। आहाहा! समझ में आया? रौद्रध्यान—क्रोध आत्मा के ऊपर चोट पड़ती है। आहाहा! कठोरघात, आनन्द के ऊपर रौद्रध्यान की कठोर चोट पड़ती है। आहाहा! ऐसे दो ध्यानों

को... ऐसे एकाग्रता को, ऐसा कहना है। **नित्य तजता है...** अर्थात् कि सदा उसे उत्पन्न होते नहीं। **उसे जिनशासनसिद्ध...** लो, **जिनशासन से निश्चित हुआ...** जैनशासन से निश्चित हुआ **अणुव्रत सामायिकव्रत है।** इसे अणुव्रत सामायिक कहा है। पूरा व्रत तो केवल, यथाख्यातचारित्र हो तब। समझ में आया? उस श्रावक के अणुव्रत, वे नहीं; महाव्रत के परिणाम, वे यह नही, व्यवहार महाव्रत के, वे यह नहीं। यह तो अणुव्रत... भगवान पूर्ण स्वरूप के अवलम्बन से प्रगट दशा वीतरागी पर्याय पूर्ण नहीं, इसलिए उसे अणुव्रत कहा जाता है। उसे अभी अणुव्रत कहा है। समझ में आया?

उसको महाव्रत तो इसे अणुव्रत। ले! आहाहा! अभी तो ध्यान करते हैं न इसका? 'वर्जे नित्य...' अर्थात् वर्जते हैं न। अर्थात् निचली दशा है न, ऐसा। समझ में आया? **उसे जिनशासनसिद्ध...** लो, यह जैनशासन से निश्चित हुआ अनादि-अनन्त अणुव्रत सामायिक व्रत है, लो। आहाहा! मुनि को छठवें गुणस्थान में, त्रिकाल भगवान आत्मा सुखामृत का सागर, उसका पेय पीकर जो स्थिरता, शान्ति—वीतरागता प्रगट हुई, उसे अणुव्रत सामायिक कहते हैं। पंच महाव्रत के विकल्प को तो उसमें छूता भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जैनशासन रखा इसमें। उसमें केवलीशासन... केवली से—केवलदर्शन से सिद्ध हुआ... (वहाँ कहा) केवलदर्शन से, यहाँ कहते हैं जैनशासन से, (वहाँ कहा) केवलज्ञान से सिद्ध हुआ है। यह सत्य है और इस सत्य से उसे पूर्ण सत्यता की प्राप्ति (होती है)। दूसरी कोई पद्धति नहीं है।

उसमें कोई ऐसा कहे कि यह एक ही मार्ग सच्चा है और दूसरा नहीं। तो यह नहीं, खोटा है कहते हैं। यह तो दूसरा नहीं, वह कहे कि दूसरा सही। दूसरा भी मार्ग है। अकेला तुम कहो, वह एक ही मार्ग है यह? जेठाभाई! यह एक ही है। दूसरे सब इससे विरुद्ध कहते हैं, वे सब पाखण्डमार्ग हैं। आहाहा! जैनशासन, वीतरागी शिक्षा जिसके साथ में है। आहाहा! जानपना कम हो या अधिक हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? धारणा बहुत हो या कम हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। द्रव्य के साथ सम्बन्ध है यहाँ तो। समझ में आया? पूर्णानन्द सुखामृत भगवान को कितना अवलम्बन किया है, बस, इसके ऊपर से धर्म का माप है। उसे यहाँ आचार्य मुनिराज ने अणुव्रत कहा, लो। आहाहा! त्रिकाली नित्यानन्द सुखामृत के अवलम्बन से प्रगट हुई

सामायिकदशा, कहते हैं कि अभी पूर्ण वीतरागता, केवलज्ञान नहीं, (तब तक है)। समझ में आया? आर्त-रौद्र ध्यान तजने का स्थान है। यहाँ ऐसा होता है, इसलिए उपजते नहीं, उसे अणुव्रत कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह तो निश्चय की बात हुई, परन्तु इसका कोई व्यवहार होगा या नहीं? ऐसा कहते हैं... लोग। ऐई चेतनजी! निमित्त होता है या नहीं कुछ उसका साधन? निमित्त कहो तो भी निमित्त उसका कर्ता नहीं कहीं, ऐसा कहते हैं। कर्ता है, कर्ता हो तो निमित्त कहलाये नहीं। समझ में आया? द्रव्य के आश्रय से होती परिणति में व्यवहार उसका कर्ता नहीं। व्यवहार निमित्त हो, निमित्त का अर्थ ज्ञान करने के लिये परचीज़ है। पर से है, ऐसा ज्ञान करने के लिये है। उसे आदरणीय है और उसे मददकर्ता है—ऐसा ज्ञान करने के लिये व्यवहार नहीं है। समझ में आया? कठिन मार्ग! बस, तुम्हारा एक ही मार्ग भगवान कहे वह सच्चा? यह सब बहुत कहते हैं न? यह एक ही मार्ग सच्चा है। इससे यहाँ कहा कि **केवलदर्शन से सिद्ध... जिनशासन से निश्चित हुआ।** देखो न! वीतरागभाववाले में निश्चित हुआ, ऐसा कहते हैं। उसे सामायिक कहा जाता है। (गाथा) १३०।

'जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।' देखो, विशिष्टता! ओहोहो! नियमसार की रचना और वह भी स्वयं आचार्य ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये रचा है। ऐसा आता है न, भाई! अन्तिम। मेरी भावना के लिये... ओहोहो! गजब बात है। **'णियभावणाणिमित्तं'** (गाथा) १८७ अन्तिम। निजभावना के कारण से... आहाहा! मैंने मेरी एकाग्रता के कारण से यह सब वर्णन (किया) है। समझ में आया? लो, यह शास्त्र में कैसे डाला होगा? समयसार में तो ऐसा है कि ऐसा जो कोई करेगा, तत्त्व का अनुभव करेगा, उसे सुखरूप परिणमन हो जायेगा। समझ में आया? यह तो **'णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं'** आहाहा! मेरी भावना के कारण से मैंने यह नियमसार किया है।

उस प्रवचनसार में, 'भक्ति की प्रेरणा से प्रवचनसार किया है' ऐसा कहा है। मेरी भक्ति की प्रेरणा से यह किया है प्रवचनसार। ... मार्ग की प्रभावना के लिये, वहाँ ऐसा कहा है। आहाहा! यहाँ ऐसा कहा समयसार में। 'जो तत्त्व में स्थित होगा, वह सुख को

पायेगा।' सुख का अनुभव करेगा, सुखरूप हो जायेगा। पायेगा अर्थात् सुखरूप हो जायेगा। यह कहते हैं कि यह नियमसार मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! समझ में आया? जैनशासन से सिद्ध हुआ यह नियमसार मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। भावना में बारम्बार भाव आवे, इसलिए वह कहीं पुनरुक्ति (दोष) नहीं है। समझ में आया? वीतरागभाव के प्रकार बहुत प्रकार से समझाते हैं और उसका आशय, उसे भी बहुत-बहुत प्रकार से प्रगट—प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे ॥१३०॥

जो पुण्य-पाप विभावभावों का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१३०॥

भाव को है, हों! दोनों भाव की बात है। पुण्य-पाप, वह परमाणु—कर्म की (बात) नहीं है। समझ में आया? पाठ में है न, '**भावं वज्जेदि णिच्चसो**' आहाहा! गजब बात है। टीका भी ऐसी करेंगे न!

टीकाः—यह, शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले सुकृतदुष्कृतरूप कर्म के संन्यास की विधि का (-शुभाशुभ कर्म के त्याग की रीति का) कथन है। शुभाशुभ परिणाम है न? उनसे उपजते कर्म। उन सबका यहाँ निषेध है। परन्तु इससे अधिक बात दूसरी आयेगी यहाँ कि पुण्य किसे कहना? आहाहा! **बाह्य अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित परमजिनयोगीश्वरों का...** वापस उनका। साधारण प्राणी के चरणकमल की सेवा की बात नहीं। आहाहा! बाह्य-अभ्यन्तर परित्याग लक्षण से लक्षित परम जिनमुनि—सन्त... बाह्य में नग्न और २८ (मूलगुण के) विकल्प, अभ्यन्तर में तीन कषाय का अभाव और वीतरागता—ऐसे मुनियों के चरणकमल। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य की व्याख्या करते हैं। ऐसे **चरण-कमल के प्रक्षालन...** उससे उपजती शुभपरिणति—पुण्यभाव, वह भी निषेध्य है, कहते हैं। समझ में आया?

यह तो ऊँचे में ऊँचा पुण्य लिया। जिसमें बाह्य और अभ्यन्तर परित्याग, बाह्य का और अभ्यन्तर रागादि का परित्याग, ऐसे लक्षण से लक्षित परम जिनयोगीश्वर...

सुखामृत के स्वादिया, प्रचुर स्वसंवेदन ऐसे मुनियों के चरणकमल का प्रक्षालन—पैर धोना, वह शुभभाव है, वह धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! और वह भी शुभपरिणति त्याज्य है, ऐसा कहना है न! आहाहा! उससे उपजता पुण्यकर्म, ऐसा वापस भाव से उपजता कर्म, ऐसा... **'भावं वज्जेदि'** पाठ में तो ऐसा है, अकेले भाव को, तथापि दो डाला वह अधिक समझाने के लिये। समझ में आया? ऐसे भाव से उपार्जित कर्म... आहाहा! वह कैसा है कर्म? आहाहा! भारी गजब बात है न!

परम सन्त, वीतराग की परिणति से झूलते और जिनका चारित्र मुक्ति को लेने को तैयार है। आहाहा! ऐसे परम जिनयोगीश्वर... जिन डाला वापस, वीतरागी सन्त। अज्ञानी के माने हुए नग्न बाबा नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि एक वीतरागमार्ग में—सर्वज्ञपंथ में ही सर्वज्ञ ने कहा वह स्वरूप परम आनन्द और परम सुखामृत सागर, उसमें जो झूलता, सम्यग्दर्शन भी उसके आश्रय से प्रगट होता है और ऐसे त्रिकाली के आश्रय से जो शान्ति और वीतराग परिणति के अमृत के वेदन करनेवाले ऐसे मुनियों के चरणकमल का प्रक्षाल, वह शुभभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

उनका **चरणकमलसंवाहन...** पैर दबाना, पगचम्पी करना, लो। ऐसे मुनियों की बात है, हों! आहाहा! भाव(लिंगी) सन्त, जिन्हें पर्याय में अमृत बरसता है, अतीन्द्रिय अमृत बरसता है दशा में। आहाहा! समझ में आया? और जिनकी नग्नदशा है—दिगम्बरदशा है, अन्दर अमृत के झरने बहते हैं। ऐसे मुनि के पैर के प्रक्षालन, उनका चरणकमलसंवाहन, वह भी पुण्य है, शुभभाव है। और वापस कहकर, कहना ऐसा है कि वह शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण है, वह पुण्यकर्म उससे उपजा है। उत्पन्न हुआ पुण्य, (शुद्ध) परिणति से उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! वीतरागी सन्तों के ऐसे कथन हैं। दूसरे को तो डर लगे कि अरे! ऐसा कहूँगा तो ऐसा होगा, ऐसा कुछ होगा। फिर मुनि की कोई सेवा भी नहीं करेगा। पुण्य हो, पुण्य से तो कर्म बँधते हैं। समझ में आया? कहो, चेतनजी! ऐसा खुल्ला रखा है यह तो।

पुण्यकर्म बँधेगा (ऐसा कहोगे तो) फिर कोई नहीं करेगा। कौन करता है? अब सुन न! यह तो देह की क्रिया के काल में देह की क्रिया होती है और शुभभाव आते हैं। करे-न करे (इसका) प्रश्न यहाँ कहाँ है? परन्तु उस शुभ परिणति का फल तो पुण्य है,

ऐसा सिद्ध करना है, पुण्यबन्ध है, पुण्यकर्म है। उस शुभपरिणति का फल यहाँ आत्मा में शान्ति की सहायता करे नहीं। शुभभाव कारण और शुद्धोपयोग कार्य। अरे, भगवान! बापू! तुझे यह बात कैसे बैठती है? राग तो अशान्ति है, ऐसे मुनि के प्रक्षालन से उत्पन्न हुई शुभ परिणति... गजब बात की है न! और कोई गरीब मनुष्य की सेवा करे और 'सेवा गहनं धर्म' आता है न? आया था न एक बार दिल्ली से। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : सेवा धर्म परम गहनं....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'योगीनांपि गहनं...' पर की सेवा करना 'योगीनांपि गहनं' अरे! भगवान! तू क्या कहता है? भाई! पर की सेवा कौन करे? यह तो ऐसे चरणकमल भगवान सन्तों के... आहाहा! उनकी सेवा का जिसे प्रसंग बना... समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह सेवा कोई निराली होगी। सेवा धर्म परम गहनं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की सेवा। वह नहीं। यहाँ तो ऐसे मुनि की सेवा शुभ परिणति है, कहते हैं। तेरे धर्मरूपी कौनसी होगी? समझ में आया?

इन्हें तो दूसरा कहना है, हों! आहाहा! गप्प ही गप्प। एक आया था दिल्ली से जुगलकिशोर। उनका लेख आया था। पैसा-बैसा दिया होगा सेवा में... दे न पैसेवाले। अब उसमें क्या? पैसे किसके थे? कौन दे? पर के नाम से ठगा जाता है। ...पच्चीस हजार दिये। किसने दिये? कौन ले? विकल्प हुआ हो, परन्तु उसके जैसा तो विकल्प नहीं। आहाहा! परमेश्वर (पद) की प्राप्ति के लगभग (-नजदीक) है, ऐसे सन्तों की सेवा भी शुभपरिणति है। आहाहा! टीका, वह टीका की है न! वह आर्तध्यान है। व्यवहार से धर्मध्यान कहलाता है, व्यवहार से अर्थात् कि ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

टीका करनेवाले ने पुण्य-पाप को किस प्रकार से वर्णन किया है! यह पुण्य-पाप का भाव पुण्य-पापकर्म का कारण है, इसलिए वह सब ही त्याज्य है। यह समयसार में चार बोल आये हैं। आहाहा! बन्धन, बन्धन का कारण और बन्धन का फल और यह शुभाशुभभाव, वह बन्ध के आश्रय से उत्पन्न होते हैं। आहाहा! ऐसे **लक्षण से लक्षित**—पहचाननेयोग्य मुनि... ऐसा कहते हैं। बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह... अकेला बाह्य नग्नपना नहीं, अभ्यन्तर परित्याग। जिसका राग-द्वेष का त्याग होकर वीतरागता प्रगट हुई है।

आहाहा! ऐसे **लक्षण से लक्षित**—ऐसे लक्षण से पहिचाननेयोग्य... ऐसे लक्षण से पहिचाननेयोग्य, लो, ऐसा कहा। परम जिनयोगीश्वरों के चरणकमल—उनके पैर का सेवन, प्रक्षालन—धोना... पहले होता है न! मुनि को बुलावे, तिष्ठ... तिष्ठ... फिर पैरप्रक्षालन करे। वह बात यहाँ डाली, देखो! आहाहा! पैरप्रक्षालन करते हैं न पहले। समझ में आया?

ओहो! दिगम्बर सन्तों ने तो वीतरागता का ढिंढ़ोरा पीटकर प्रसिद्ध किया है। लोगों को बैठेगा या नहीं, समाज इसमें समतौल रहेगी या नहीं? यह कहते हैं कि यही मार्ग है। अब माने—न माने उसके कारण... ऐसा ही मार्ग है। आहाहा! वे कहे, व्रत पालते हैं शुभभाव; तप करते हैं, शुभभाव, उसमें से शुद्ध होगा। यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे मुनियों की सेवा, ...इत्यादि... देखो! सन्तों की सेवा **इत्यादि वैयावृत्य करने से...** आहाहा! ऐसे वीतरागी मुनि, साक्षात् केवलज्ञान लेने को तैयार ऐसे छद्मस्थ मुनि परमजिनयोगी, उनका (पाद) प्रक्षालन, चरण दबाना, कोई कफ आदि छोड़ना, शरीर में ऐसी ताकत न हो तो मल आदि हुए हों तो साफ करना इत्यादि वैयावृत्य...

प्रवचनसार में आता है न! उसे राग है, वह वैयावृत्य का काल है। आहाहा! चारों ओर बात एकधारा... वे मुनि आदि रोगी हो और इसे विकल्प ही ऐसा हो तब, ऐसा ही इसका काल है। ध्यान का काल होनेवाला हो तो भी ऐसे... परन्तु है वह पुण्यबन्ध का कारण। आहाहा! ऐसे परिणाम कर्म बाँधे, परन्तु ऐसे परिणाम इस शुद्धता को सहायता करे, ऐसा नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। यह **शुभ परिणति...** शुभ परिणति... **विशेष**—खास **शुभ परिणति...** लो, ठीक! होगा क्या? **उपार्जित पुण्यकर्म...** उससे उपजे पुण्यकर्म, इतना। पाठ में इतना भाव है। दोनों छोड़नेयोग्य हैं। सामायिक में दोनों आदरणीय है नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १२, शनिवार, दिनांक - ०२-१०-१९७१
गाथा-१३०, श्लोक-२१५, प्रवचन-१४२

नियमसार, परम-समाधि अधिकार चलता है। सामायिक किसको होती है? सामायिक... सामायिक करते हैं न लोग? सामायिक कहो, निश्चयधर्म कहो या अपने स्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र कहो—जो सुख का पंथ है, जो मोक्ष का मार्ग है, उसको यहाँ सामायिक कहा जाता है। यह सामायिक कैसे हो?

यह, शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न होनेवाले सुकृतदुष्कृतरूप कर्म के संन्यास की विधि का कथन है। जो आत्मा है, उसमें पुण्य-पाप का भाव जो उत्पन्न होता है, शुभ-अशुभभाव—शुभाशुभ परिणाम से उत्पन्न दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ऐसा शुभपरिणाम; हिंसा, झूठ, चोरी, विषय आदि अशुभभाव—दोष से उत्पन्न होनेवाले सुकृत-दुष्कृतरूप कर्म... पुण्य और पापरूपी कर्म से संन्यास की विधि का कथन है। शुभाशुभकर्म के त्याग की विधि का कथन है। धर्म इसको होता है और जन्म-मरण के नाश करने की रीति यह है। जो कोई शुभ-अशुभभाव होता है, उसका पहले दृष्टि में से त्याग करना। आहाहा! भगवान आत्मा अपना अतीन्द्रिय आनन्द, ज्ञानस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके, शुभ और अशुभभाव दृष्टि में त्याग करना कि वह भाव मेरा नहीं। बन्धन का कारण है, वह मेरा परिणाम नहीं।

ऐसे प्रथम सम्यग्दर्शन—आत्मा शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद की प्रतीति करके अनुभव में उसकी प्रतीति करना, यह प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन की रीति है। मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी है। पश्चात् स्वरूप में रमण करके पुण्य और पाप के अस्थिरभाव को छोड़ना, वह चारित्र है। समझ में आया? ऐसी कठिन बातें! अभी शुभाशुभ परिणाम किसे कहना, उसकी खबर न हो। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह शुभभाव है, ऐसी खबर नहीं। वह तो मानता है कि हमारा धर्म है। धर्म नहीं, वह तो राग है। पण्डितजी! माना जाता है? ऐसा मानते हैं सब लोग कि हम धर्म करते हैं। वह तो पुण्यपरिणाम है।

यहाँ कहेंगे कि वह तो संसार का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त काल से जन्म-मरण से दु:खी प्राणी है, उसकी चीज़ का उसे पता नहीं कि मैं क्या हूँ? उसका पता (किये) बिना उसमें है नहीं, ऐसे भाव को अपना मानकर चार गति में परिभ्रमण (करके) प्राणी दु:खी है। समझ में आया? यह जन्म-मरण का कारण आकुलता, आकुलता, वह दु:ख है। चाहे तो शुभभाव हो या अशुभभाव हो—ये दोनों आकुलता है, दु:ख की जननी है। आहाहा! पहले उसकी दृष्टि छोड़कर, मैं तो शुद्ध आनन्द-ज्ञायक हूँ, ऐसी प्रथम दृष्टि प्रगट करना, वह प्रथम धर्म की सीढ़ी है। बाद की बात यहाँ चलती है। पश्चात् जब मुनि—सच्चे मुनि होकर... बाह्य द्रव्यलिंग—नग्नपना धारण किया, उससे वे मुनि हो गये, ऐसा नहीं है। वह कहते हैं, देखो!

बाह्य-अभ्यन्तर परित्यागरूप लक्षण से लक्षित... जिसको बाह्य में वस्त्र-पात्र, शरीर की ममता छूट गयी है बाह्य से भी। समझ में आया? और अभ्यन्तर से रागादि का अभाव हो गया है। वीतरागस्वरूप मैं हूँ, परम आनन्द का धाम मैं हूँ—ऐसे लक्षण से लक्षित **परमजिनयोगीश्वर...** मुनि की व्याख्या की है। परमजिनयोगीश्वर (कि) जिसको आत्मा में आनन्द की लहर उठती है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द... परम जिनयोगीश्वर... परम वीतराग के भाव में जिसका एकत्वभाव उग्ररूप से हो गया है, ऐसे मुनि, उनको मुनि कहते हैं। आहाहा! ऐसे मुनि का **चरणकमल प्रक्षालन...** ऐसे मुनि का चरणप्रक्षालन करना, यह भाव शुभराग है। आहाहा! शुभ परिणति है। ऐसे मुनि की, हों! आहाहा! चरणकमल प्रक्षालन... मुनि का चरणकमल प्रक्षालन तो गृहस्थ करते हैं, मुनि मुनि का नहीं करते। समझ में आया? गृहस्थ को शुभभाव होता है।

चरणकमल संवाहन... पाँव दबाना, पगचम्पी करना—वह सब शुभपरिणति का भाव है, धर्म नहीं। मुनि की ऐसी वैयावृत्त्य करना, यह शुभभाव है। आहाहा! क्योंकि वह परद्रव्य है। परद्रव्य का झुकाव राग बिना होता नहीं।

मुमुक्षु : महाराज! .... करे तो भी शुभभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो साधारण शुभभाव है। ठीक कहा पण्डितजी ने। साधारण धर्म का पुण्य है। वह आता है प्रवचनसार में। भाषा क्या है? देखा होगा।

...हल्का पुण्य। यह तो अच्छे में अच्छा पुण्य कहते हैं, वह भी हेय है। यह तो कहा है। प्रक्षालन कौन करे? मुनि करे? गृहस्थ... ऐसा मुनि हो सच्चा, अन्तर में आनन्द की लहर उठती हो और वीतरागभाव प्रगट हुआ हो, परमस्वरूप में जिसका योग जुड़ा हो, रागादि विकल्प आता है, उसको हेय मानकर, जहर मानकर उसको छोड़ना चाहते हैं। समझ में आया? ऐसे मुनि का **चरण-कमलप्रक्षालन, चरणकमलसंवाहन आदि वैयावृत्य करने से उत्पन्न होनेवाली...** आहार-पानी देना भी उसकी वैयावृत्य है, वह भी शुभभाव है। समझ में आया?

सच्चा मुनि—सत्य मुनि, जिसको प्रगट हुआ आनन्द, उनको आहार-पानी देने का भाव भी शुभभाव है, पुण्यभाव है; धर्म नहीं। आदि में आया न वैयावृत्य सब। उत्पन्न होनेवाली **शुभपरिणति विशेष...** राग की मन्दता का भाव, शुभ अवस्था—दशा विशेष। एक बात। उससे **उपार्जित पुण्यकर्म को...** उससे पुण्यकर्म बाँधता है। समझ में आया? तथा **हिंसा** का भाव, **असत्य**—झूठ बोलने का भाव, **चौर्य**—(चोरी करने) का भाव, **अब्रह्म**—विषय का भाव **और परिग्रह...** का भाव... इस **परिग्रह के परिणाम से उत्पन्न होनेवाले अशुभकर्म...** इन पाँच पाप से जो परिणाम हुआ, वह अशुभभाव है, उससे उत्पन्न होनेवाला अशुभ कर्मबन्धन है। उससे अशुभकर्म बँधते हैं।

वे दोनों कर्म... पुण्य और पाप और उसका भाव, दोनों **संसाररूपी स्त्री के विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान होने से,...** ये दोनों कर्म संसाररूपी स्त्री... ये चार गति में भटकाने का भाव पाप है, ऐसे **संसाररूपी स्त्री के विलासविभ्रम का...** विलासयुक्त हावभाव क्रीड़ा ऐसा **जन्मभूमिस्थान....** संसाररूपी स्त्री का जन्मभूमिस्थान है वह। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव से संसार उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इससे धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! कहते हैं... 'संसाररूपी स्त्री' (शब्द) है यहाँ तो (अर्थात्) वह दुःखरूपी दशा, उसका परिभ्रमण का कारण है अथवा वह विलासविभ्रम का जन्मभूमिस्थान है। दुःख की क्रीड़ा में रमने का स्थान है शुभाशुभ परिणाम और शुभाशुभकर्म। आहाहा! समझ में आया? शुभ परिणाम हो और पुण्यबन्ध हो, लक्ष्मी आदि पाँच-पचास लाख मिल गयी (तो भी) वह दुःखी प्राणी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : जरा भी (सुखी) नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा दुःखी है। धूल में सुख नहीं वहाँ। लक्ष्मी में कैसा सुख है? वह तो मिट्टी-धूल है। वह क्रिया हुई वह माँस, हड्डियाँ, चमड़ा है, उसमें कहाँ सुख आया? और मकान बना हो २५-५० लाख का बड़ा, उसमें कहाँ सुख है? वह तो जड़ है, मिट्टी-धूल है।

ऐसे दुःख का उत्पन्न करनेवाला पुण्य परिणाम है, ऐसा कहते हैं। भाषा देखो! ओहोहो! मैं भगवान हो गया, लो। कहाँ गये हीराभाई? गये? कहो, समझ में आया? हीराभाई मिले और यह मकान-कमरे हुए, वह सब दुःख का निमित्त है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शुभपरिणाम—राग की मन्दतारूपी शुभदशा, वह विकार है। आहाहा! विकार तो संसार की परिणति उत्पन्न करने का स्थान है। आहाहा! उसकी जन्मभूमि, संसार की उत्पत्ति का वह स्थान है। आहाहा! समझ में आया? मुनि को भी कहते हैं कि तेरा यह (शुभ)परिणाम संसार उत्पत्ति का कारण है। आहाहा!

इसे, अपनी चीज़ अन्दर क्या है और नित्यानन्द अविनाशी शक्ति और शक्तिवान, जिसमें वह पुण्य-पाप का भाव है ही नहीं, ऐसी चीज़ की कभी दृष्टि की नहीं और उस चीज़ की दृष्टि किये बिना उसका जन्म-मरण कभी मिटता नहीं। चौरासी लाख योनि में परिभ्रमण करता है। समझ में आया? देखो! मुनि ने कितना स्पष्ट किया है! आहाहा! कहते हैं कि ऐसा जो परिणाम—भाव है, उसको सामायिक नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि अन्दर आत्मा की समता उत्पन्न हुए बिना सामायिक होती नहीं। यह तो विषमभाव है। शुभ-अशुभभाव तो विषमभाव है, वह सामायिक नहीं, वह धर्म नहीं। वह तो संसार की उत्पत्ति का जन्मभूमि का स्थान है। आहाहा!

ऐसे मुनि **जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि...** देखो! मुनि को कहते हैं। तेरा परिणाम ऐसा हुआ हो और पूर्व के निमित्त से भी ऐसी कषाय मन्द हुई हो, वह छोड़नेयोग्य है। अस्थिरता छोड़कर स्वरूप में स्थिरता करना, उसका नाम सामायिक और धर्म है। समझ में आया? अरे! उसको अन्दर पुण्य के परिणाम की मिठास है। मिठास में, आत्मा क्या है, वह अनादि से भूल गया है। धूल में बाहर में पुण्य

और पाप का फल... नटुभाई! पुण्य थोड़ा मिले तो दस हजार, पचास हजार वर्ष की आमदनी हो, पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी हो, सुखी है। मूढ़ है, सुख कहाँ से आया? समझ में आया? पुण्यफल का जन्मभूमि स्थान है संसार। वह संसार है, उसमें सुख कहाँ आया? सुख तो अपने आत्मा में है। पुण्य-पाप का विकल्प—राग, उसकी दृष्टि छोड़कर पहले पूर्णानन्दस्वरूप अभेद चैतन्य की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन धर्म है। पश्चात् अस्थिरता छोड़कर स्थिरता करना, वह मुनियों का संयम है, यह सामायिक मुनि की है। मुनि की सामायिक की बात चलती है न! समझ में आया?

मुमुक्षु : महाराज! गृहस्थ हैं.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गृहस्थ की बात चलती है न। क्या कहते हैं? गृहस्थ को कहते हैं।

मुमुक्षु : आप मुनि की बात फरमाते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की उत्कृष्ट बात है, परन्तु उनका (पाद) प्रक्षालन करनेवाला श्रावक है या नहीं? उसको भी शुभपरिणति संसार उत्पन्न करनेवाली है, ऐसा कहते हैं।

पादप्रक्षालन (किसका) करे? सच्चा मुनि। जिसको आत्मज्ञान है, अनुभव है, राग का—विकल्प का कर्ता नहीं, पंच महाव्रत के विकल्प का करनेवाला नहीं, पंच महाव्रत के परिणाम को संसार की उत्पत्ति का स्थान मानते हैं। आहाहा! गजब बात है न! यह राग है। यह राग संसाररूपी स्त्री का जन्मभूमिस्थान—उसका पीहरस्थान वह है। समझ में आया? बापू! धर्म का मार्ग अलौकिक है। उसमें वीतराग सर्वज्ञदेव तीर्थंकर परमात्मा अरिहन्तदेव ने कहा धर्म, वह अपूर्व-अलौकिक है। जगत में कहीं नहीं है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि ऐसे मुनि की प्रक्षालन करे, पग चम्पी करे, आहार-पानी दे—वह भाव संसाररूपी स्त्री का जन्मभूमिस्थान। कौन कहता है यह? कहो, मूलचन्दभाई! यह सब आचार... यह सब सेठिया... ऐसे आहारदान मुनि को दो, अपने को धर्म हो जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करना पड़े, परन्तु धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। जिसको देते हैं,

वह मुनि है नहीं। मुनि की तो बात अलौकिक है। जिसको नग्नदशा (और) जंगल में बसना है और आनन्द की दशा उत्पन्न हो, अतीन्द्रिय आनन्द के आगे जहाँ सारा जगत उसको जूठन लगती है। सारा जगत, इन्द्र और इन्द्राणी के शरीर, वे जूठन, जगत की जूठन है। ऐंठ समझते हो? झूठा। जूठन। जूठन।

झूठा नहीं दृष्टान्त दिया था अभी एक? जूठन कहो। एक आदमी था... आदमी था, उसका दूसरा आदमी विरोधी था हिन्दी में। वह मनुष्य करे उससे उल्टा करना। उसकी.... वह कहे उसका उल्टा करना। एक बार उल्टा करनेवाला आदमी था, वह सुपारी खाता था, सुपारी। सोपारी कहते हैं? सुपारी का टुकड़ा (मुँह में से) बाहर निकल गया तो दूसरा आदमी था न विरुद्ध करनेवाला, वह कहता है, अरेरे! यह टुकड़ा त्याग दिया। दूसरा आदमी कहे। वह त्याग करे तो मैं खा लूँ। वह करे उसका उल्टा करना। जूठन। क्या करना? ... सब लोग मजाक करते थे कि अरर! क्या किया तूने? .... वह करे उससे उल्टा करना। सुपारी का टुकड़ा मुँह में से निकल गया। यह तो जूठन है, त्याग है। तुम त्याग करते हो, हम ग्रहण करते हैं।

ऐसे झूठा व्यक्ति अज्ञानी, भगवान कहते हैं कि पुण्य-पाप का त्याग (करो)। वह झूठा कहे कि नहीं, हमें ग्रहण करना है। भगवान कहते हैं, उससे उल्टा करना है। अनादि से ऐसा किया ही है। समझ में आया? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा जिनेश्वरदेव समवसरण के मध्य में ऐसा फरमाते थे, वह बात यहाँ है। मुनि सच्चे छठवें-सातवें गुणस्थानवाले भावलिंगी, उनकी सेवा करनेवाले को जो शुभभाव होता है, वह संसार के जन्मस्थान का कारण है। आहाहा! संसार की उत्पत्ति का वह कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! भीखाभाई! यह आता है तुम्हारे श्वेताम्बर में। विपाक... विपाक...

विपाक (सूत्र में कथन है) दस मिथ्यादृष्टि गृहस्थ थे। साधु को आहार देते हैं। मिथ्यादृष्टि आहार देते हुए संसार परित् कर डाला, ऐसा पाठ है। दस... दस अधिकार। विपाक (सूत्र) श्वेताम्बर में... सब झूठ बात है। शुभभाव में परित् संसार किया, ऐसा पाठ है। संसार का नाश किया, ऐसा विपरीत मार्ग है। समझ में आया? एक बात चली थी (संवत्) १९७७ में गोण्डल में। वह आती है न उसमें ... श्वेताम्बर में आता है कि भगवान को रोग हुआ। भगवान ने कहा किसी अणगार को कि जाओ, आहार ले आओ।

अपने लिये बनाया नहीं, परन्तु घोड़ा के लिये बनाया आहार है, वह लाओ मेरे लिये। रोग हुआ। बात सब झूठी है। भगवान को रोग होता ही नहीं। परन्तु श्वेताम्बर में ऐसी बात चलती है। तो वह बात चली थी ७७ में, गोण्डल में। .... पोपटभाई थे।

मैंने कहा, देखो! भाई! यह भगवान को आहार दे, उसमें परित् संसार नहीं होता। परन्तु इसमें लिखा है न? भगवती (सूत्र) में ऐसा लिखा है। भगवान को रोग हुआ, कोई अणगार आहार लेने गया, आहार दिया। रेवती के घर से आहार लिया तो आहार लेने से परित् संसार हो गया—बाई का संसार नाश हो गया। खबर है। मुझे खबर है। ऐसा नहीं होता। (संवत्) १९७७। ५० वर्ष हुए। ५० वर्ष पहले की बात है। सब लोग तो ऐसा मानते हैं। .... क्यों लिखा है खबर है। भगवान को आहार देने से संसार का नाश होता है। .... यह और वहाँ फिर। भगवान को आहार कैसा? तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा भगवान को आहार और रोग कैसा? रोग-बोग होता नहीं। समझ में आया?

यहाँ आचार्य कहते हैं, मुनि कहते हैं। देखो! दिगम्बर सन्त हैं, जंगलवासी। पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले (हुए)। वे कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा का अर्थ करते हैं। गाथा, कुन्दकुन्दाचार्य की २००० वर्ष पहले की गाथा है। दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्य। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी...' आता है न? 'मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।' कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा का मुनिराज दिगम्बर सन्त अर्थ करते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। सच्चे मुनि की वैयावृत्य करने से भी जो शुभभाव हुआ, वह भी संसार(रूपी) स्त्री की जन्मभूमि है, वह उत्पत्तिस्थान है। आहाहा! गजब बात है न!

....में यहाँ दूसरा दृष्टान्त आता है न वह। हाथी ने दया पालन की। ....ऐसा होता नहीं। ऐसी दयायें तो अनन्त बार पालन की हैं। नौवें ग्रैवेयक गये... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया (ऐसा) भगवान फरमाते हैं। खरगोश की दया पालने से संसार परित् हो (वह) हमको मान्य नहीं। शास्त्र में लिखा है। भले लिखा हो। श्वेताम्बर में है। एक हाथी था। वह जंगल में रहता था। जंगल जला तो हाथी ने एक योजन चार कोस में

मण्डल बनाया था। ....करते हैं। चार... निकालकर ऐसा करते हैं। जंगल जला तो यह हाथी वहाँ आ गया। चारों ओर जंगल जलता था, ऐरिया में। उसमें बहुत (पशु) आये खरगोश, दूसरे पक्षी (आदि)।

एक खरगोशी ऐसा आया (और) कहीं रहने का स्थान नहीं था। उसमें उस हाथी ने पैर उठाया। जरा खुजली उठी। इतने में खरगोश (उस जगह में) घुस गया। हाथी ने नीचे देखा, अरे! उसने तीन दिन तक पैर मोड़कर रखा। नीचे नहीं रखा। उसकी दया से संसार परित् किया, ऐसा आता है। आहाहा! तीन दिन... ...तीन दिन। धूल भी नहीं। तपस्या क्या है? शुभ परिणति, शुभराग है, विकल्प है। दया अनुकम्पा का ऐसा पाठ है। पश्चात् वह निकल गया खरगोश। तीन दिन से ऐसा पैर था न ऐसा, जम गया। ऐसा करने गया हाथी तो मर गया, स्वर्ग में गया। यह कथा बनायी है। यह बात सच्ची नहीं है। हाथी को दया से संसार का नाश हो। पर की दया से कभी (धर्म) होता नहीं। ऐसे तीर्थंकर को मुनि (अवस्था में) छद्मस्थ काल में आहार दे, तीर्थंकर जब छद्मस्थ (अवस्था में) होते हैं, तो आहार दे। संसार परित् (होता) नहीं, पुण्यबन्ध होता है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि मुनि... आहाहा! गृहस्थ समकिती तो उसको दृष्टि में हेय करते हैं। मुनि अस्थिरता में से छोड़कर स्थिरता करते हैं, ऐसा कहते हैं। गृहस्थाश्रम में समकिती धर्मी जीव ऐसे शुभपरिणाम को हेय मानकर अपनी दृष्टि में से छोड़ देता है। समझ में आया? और मुनि, अस्थिरता है, उसको छोड़कर अपने स्वरूप में स्थिरता करते हैं। समझ में आया? अरे! जन्म-मरण के चौरासी के अवतार... कहीं धूल में भी सुख नहीं। हड्डियाँ, माँस, यह तो चमड़ी है। राख होगी श्मशान की। फू... जाओ। तेरी चीज़ कहाँ है? वह तो जड़ की चीज़ है। जड़ से तो पुण्य भी नहीं होता। अपने परिणाम में शुभभाव हो तो पुण्य होता है। और देह की क्रिया से पाप भी नहीं होता। वह तो जड़ है, मिट्टी है, अजीव है। परिणाम लिया न यहाँ? देखो न!

हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, अब्रह्म, परिग्रह परिणाम। परिणाम से उत्पन्न अशुभकर्म... देह की क्रिया से उत्पन्न अशुभकर्म, ऐसा नहीं है। उसमें भी वह लिया था। पुण्यकर्म परिणाम। शुभपरिणति विशेष से पुण्यकर्म उत्पन्न हुआ, उस परिणाम से... शुभपरिणति...

शुभपरिणति कही न पहले। .... परन्तु है वह शुभपरिणाम। विशेष शुभपरिणति से पुण्यकर्म उत्पन्न किया, लो। खास प्रकार का पुण्य है, तो भी है संसार का कारण। ऊँची जाति का हो तो भी संसार का कारण। तीर्थंकरगोत्र का भाव, वह भी संसार—दो भव का कारण हो गया। भगवान ने उड़ा दिया है। मैं क्या करूँ? पण्डितजी! पुण्य, पुण्यरूप से है; परन्तु वह धर्मरूप से नहीं, ऐसा उड़ा दिया है।

यहाँ तो कहते हैं कि जैसे अशुभपरिणाम अशुभकर्म का कारण है, देह की क्रिया शुभ का कारण नहीं, ऐसा कहना है, ऐसे शुभपरिणति शुभपुण्य का कारण है। देह की क्रिया कि आहार दिया (आदि) वह क्रिया पुण्य का कारण, शुभपरिणति है नहीं। समझ में आया? आहार देने की क्रिया हो न शरीर से, उससे पुण्य नहीं हुआ। परिणति से पुण्य हुआ, परिणाम से पुण्य हुआ है। समझ में आया? भगवान की पूजा, स्वाहा ऐसा करे, उससे पुण्य नहीं होता। शुभभाव में पुण्य होता है। समझ में आया? शुभभाव से पुण्य होता है, देह की क्रिया से पुण्य होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह तो जड़ है। जड़ से पुण्य-पाप, धर्म तीनों नहीं होते। यह मिट्टी है, अजीव है। यह (स्व)तत्त्व है ही नहीं। तो परतत्त्व से क्या पुण्य होता है? परतत्त्व से पाप होता है? परतत्त्व से धर्म होता है? समझ में आया?

वह कहा न, शुभपरिणति से उपार्जित पुण्यकर्म... देह की क्रिया आहार देने की हुई, वैयावृत्य की हुई, उससे पुण्यकर्म उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं। परिणाम... आहाहा! ऐसे शुभ और अशुभ परिणाम **संसाररूपी स्त्री के विलासविभ्रम—विलासयुक्त हावभाव; क्रीड़ा** दु:ख का जन्मभूमिस्थान होने से... आहाहा! **जो सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि...** धर्मात्मा सन्त या धर्मात्मा समकिती पुण्य-पाप परिणाम को हेयबुद्धि करके छोड़ देते हैं। मुनिराज उसको हेय जानकर छोड़कर स्थिरता करते हैं। समझ में आया? **उसे नित्य केवलीमतसिद्ध...** देखो! ऐसे धर्मात्मा को जो पुण्य और पाप का भाव है, वह छोड़ते हैं। उससे सामायिक नहीं होती (अर्थात्) शुभपरिणति से सामायिक नहीं होती। राग—शुभराग है, उससे तो पुण्यबन्ध होता है, उससे सामायिक नहीं होती। वह भाव को छोड़ते हैं।

उसे नित्य केवलीमतसिद्ध (केवलियों के मत में निश्चित हुआ)... सर्वज्ञ परमात्मा

'केवली पण्णत्तो धम्मो' केवली के कहे अभिप्राय में (निश्चित हुआ) सामायिक व्रत है। उसका नाम सामायिक व्रत कहने में आता है। अभी तो समझना कठिन पड़े (कि) क्या कहते हैं और कैसा है। समझ में आया? केवली के मत में (अर्थात्) सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव के अभिप्राय में (निश्चित हुआ) उसको यथार्थ सामायिक कहने में आता है। यहाँ तो कहे कि शुभ करो, करते-करते शुद्धोपयोग होगी। धूल भी नहीं होगा, शुभ से पुण्यबन्ध होगा। शुद्धभाव(रूप) धर्म का आश्रय तो द्रव्यस्वभाव है, धर्म का आश्रय पुण्यपरिणाम नहीं।

इस १३०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज तीन श्लोक कहते हैं:—पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे दिगम्बर सन्त, वनवास में रहनेवाले। २१५ कलश है न?

त्यक्त्वा सर्वं सुकृत-दुरितं सन्सृतेर्मूलभूतं,
नित्यानन्दं व्रजति सहजं शुद्ध-चैतन्य-रूपम्।
तस्मिन् सदृग् विहरति सदा शुद्धजीवास्तिकाये,
पश्चादुच्चैः त्रिभुवनजनैरर्चितः सन् जिनः स्यात्॥२१५॥

जिन—तीर्थंकर तक ले गये हैं। **श्लोकार्थः—सम्यग्दृष्टि जीव...** दो पंक्ति के बाद। जिसको, आत्मा का शुद्धस्वभाव पूर्णानन्द वह ही मैं हूँ, पुण्य-पाप का राग होता है, वह मैं नहीं, मुझसे भिन्न है, मेरे चीज़ में तो अकेला ज्ञान और आनन्द भरा है—ऐसी जिसको अन्तर्दृष्टि हुई, वह जीव... वह जीव—सम्यग्दृष्टि जीव—धर्मी जीव **संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,...** देखो! लो, यह संसार का मूलभूत इन पुण्य-पाप को छोड़कर... पुण्य-पाप कर्म हो, उसका कारण शुभाशुभभाव, सब संसार का मूलभूत है। आहाहा! मोक्ष का मूल तो आत्मा है। अतीन्द्रिय वीतरागमूर्ति आनन्दकन्द के स्वभाव का आश्रय करके जो शुद्धपरिणति हो, वह मोक्ष का कारण है। शुभपरिणाम है, वह तो संसार का कारण है। आहाहा! भारी कठिन।

यह (तो) कहे, शुभ करते-करते होगा न? एकदम शुद्ध होगा? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी न? नहीं। लहसुन... लहसुन... लहसुन खावे आदमी यहाँ तक और डकार आयी कस्तूरी की—ऐसा होता है? कस्तूरी अर्थात् क्या? कस्तूरी

हो जाती है ? कम कीमत में चीज़ मिले और उससे कार्य हो, उस अपेक्षा से उसे कस्तूरी कहा। कस्तूरी चीज़ क्या ? आहाहा ! एक बार नहीं कहते थे वीरजीभाई ? सवा सेर कस्तूरी थी उसके पास। कोई रस गया था। सवा सेर कस्तूरी। वीरजीभाई एक थे न वकील। अपने काठियावाड़ में दिगम्बर शास्त्र के अभ्यासी पहले वे। वीरजीभाई वकील थे जामनगर के। ९२ वर्ष में गुजर गये न ! वे कहते थे बड़े वकील थे वे (कहते थे) कि कोई उनके घर में सवा सेर कस्तूरी रख गया था, सवा सेर कस्तूरी। पहले की बात है, ५०-६० वर्ष पहले की। सम्हालने के लिये दी थी किसी ने। बाद में ले गया, ५-१० वर्ष बाद ले गया, परन्तु जिसमें कस्तूरी रखी थी, डिब्बा, उसके अन्दर डिब्बा, उसके अन्दर डिब्बा। तो अच्छे कपड़े आदि सबमें कस्तूरी की सुगन्ध हो गयी। यह वीरजीभाई कहते थे। डिब्बे में रखी थी। ऐसे घर बड़ा और वहाँ जितनी कोई वस्तुएँ रखी हों, उनमें ऐसी गन्ध... डिब्बे में पक्की हों ! इतनी गन्ध (हो गयी) उसमें कि सारी बहियाँ... चोपडा कहते हैं ? पृष्ठ-पृष्ठ फिरावे तो कस्तूरी की सुगन्ध आवे। उसकी सुगन्ध घुस गयी। ऐसी कस्तूरी...

इसी प्रकार आत्मा की ऐसी सुगन्ध है... आहाहा ! पर्याय-पर्याय में पृष्ठ फिराओ तो आनन्द आता है, ऐसी है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी सुगन्ध आनन्द की है उसमें। पुण्य-पाप में तो दुःख है, जहर है। नटुभाई ! बाहर में भी कैसा लगे। बड़ा वकील कहलाये। कल याद किया था चन्दुभाई को—तुमको। एक प्रश्न आया है। यह पादुका होती है न चरणपादुका, यह चरणपादुका श्वेताम्बर में कैसी है और दिगम्बर में कैसी है ? कि पूछो नटुभाई को थोड़ा, कहा, उनको याद होगा तो। .... रामजीभाई को बहुत पत्र आये हैं। वहाँ सम्मेदशिखर में भगवान की चरणपादुका अपने कैसी होती है, श्वेताम्बर में कैसी होती है ? दोनों के लक्षण क्या हैं ? अन्तर क्या है ? रामजीभाई के पास चन्दुभाई ने कल तुमको याद किया था। पूछो, कहा। पूछने में क्या दिक्कत है ? हमारे यहाँ चेतनजी है, उसको पूछो। कैलाशचन्दजी है, पूछो कि क्या है। तुम तो पहले से दिगम्बर सम्प्रदाय के हो। मालूम न हो तो बराबर है। चरणपादुका का प्रश्न आया है। सम्मेदशिखरजी में श्वेताम्बर-दिगम्बर के बीच में... बनाते हैं तो अपने भी बनाना है। अपना विषय तो है नहीं। समझ में आया ? किसी को पूछे तब जवाब....

अरेरे! दुनिया कहाँ पड़ी है? शुभभाव का कारण है, मैंने कहा था साहूजी को, जयपुर। शान्ति साहू... साहू शान्तिप्रसाद। जयपुर में आये थे न हम, तब थे न वहाँ। आये थे, तो कहा, २५०० वर्ष का... भगवान के (जन्म का) २५०० वाँ वर्ष लगता है तो सब मिलकर... प्रेम है लोगों को... अपना विचार कर लो। इस सम्बन्धी में सब इकट्ठे होकर करे तो पुण्यभाव का कारण है, भाई! पुण्यभाव का कारण है। २५०० वर्ष का महोत्सव करना, पुण्यभाव का कारण है। साहूजी आये थे वहाँ, जयपुर में आये थे। शिक्षण शिविर में गये थे न अभी। जयपुर, २० दिन। बहुत तीन लाख खर्च किये न गोदिका ने। तो वे आये थे। क्या कहलाता है? कमेटी मीटिंग... मीटिंग। ....संगठन करके इकट्ठे होकर... शुभभाव है, पुण्यभाव का कारण है, धर्म का कारण है नहीं। अरे... अरे! चिल्लाहट मचाये न। ...शुभभाव है, वह तो आता है। भगवान के (जन्म के) २५०० वर्ष होते हैं न! २५०० वर्ष। सब मण्डल इकट्ठे होकर महोत्सव करते हैं।

यहाँ कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा मानते हैं, धर्मी ऐसा जानते हैं कि **संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,...** देखो! आहाहा! **सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,...** सर्व पुण्य-पाप, ऐसा। साधारण पुण्य नहीं, विशेष पुण्य (आदि) सब, ऐसा। शुभपरिणति लिया है न, विशेष लिया है। धर्मी जीव तो इसको कहते हैं... आहाहा! कि जिसकी दृष्टि में आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप ही पड़ा है। वह तो पुण्य-पाप को हेय मानता है। छोड़ने की चीज़ मानता है, रखने की चीज़ मानता नहीं। थोड़ी जहाँ सुविधा हो, वहाँ मिठास आ जाती है, उसको तो पुण्य की मिठास है। जेठालालभाई! हजार-दो हजार, पाँच हजार का वेतन मासिक, लड़के दो-चार अच्छे, स्त्री अच्छे इज्जतदार घर की, मकान जरा २-५-१० लाख का, झूला... क्या कहलाता है? झूला। सांकली घड़ियाल। बस, सुखी है। धूल में नहीं है, सुन न! उसमें सुख मानता है, उसको पुण्य की मिठास है। समझ में आया? आहाहा! उसमें मिठास है तो उसके कारणभाव में मिठास है ही उसको। समझ में आया? उसके कारण की मिठास है ही, आत्मा की मिठास उसको नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुनिराज कहते हैं... दिगम्बर सन्त आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी, आत्मा में मस्त। आगे कहते हैं, हमारे मुख में से परमागम झरता है। आहाहा! परमागम झरता है। देखो!

यह परमागम है। परमागम में मुनिराज ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत... अरेरे! आहाहा! संसार का मूल यह पुण्य-पाप सर्व... चाहे जिस प्रकार का हो। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव हेय है। आहाहा! समझ में आया? राग है न! षोडशकारणभावना... 'दरशविशुद्धि भावना भाय...' तीर्थंकरगोत्र बँधे... क्या कुछ कहते हैं? 'परमगुरु होय...' यह तो विकल्प है, राग है।

मुमुक्षु : यह भी लिखा है महाराज! कि पुण्य-पाप का नाश कर, ज्ञानभान परकाश।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है न उसमें। शुभ-अशुभभाव, वह तो क्षणिक है, अनित्य है, नाशवान है, जहर है, विकार है, दु:ख है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ऐसा जानते और मानते हैं। मिथ्यादृष्टि उसको—राग को प्रेम करते हैं। भगवान आत्मा का प्रेम छूट गया उसको! समझ में आया?

छोड़कर, नित्यानन्दमय,... आहाहा! शुभाशुभभाव को छोड़कर... कर्म को छोड़कर कहा, परन्तु उसका अर्थ यह हुआ। **नित्यानन्दमय, सहज, शुद्धचैतन्यरूप...** कैसा है आत्मा? नित्यानन्दमय—नित्य-आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्दमय। **सहज शुद्धचैतन्य...** दो आये—आनन्द और ज्ञान, बस अकेले। भगवान आत्मा तो सहज आनन्दमय है, अतीन्द्रिय आनन्दमय है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। और स्वाभाविक **चैतन्यरूप...** सहज चैतन्यचमत्कार-स्वरूप है वह तो। ऐसे **जीवास्तिकाय...** भाषा देखो! जैनदर्शन में ही है अस्तिकाय। असंख्यप्रदेशी जीव है। यह (बात) वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है नहीं। उसका क्षेत्र बताया, पहले भाव बताया। **नित्यानन्दमय...** भगवान आत्मा नित्यानन्दमय भाव, **सहज शुद्धचैतन्यरूप**—स्वाभाविक ज्ञान-आनन्दरूप भाव, **जीवास्तिकाय**—ऐसा आत्मा अस्ति है असंख्यप्रदेशी (वह) क्षेत्र लिया। यह भाव और क्षेत्र। ऐसे जीवास्तिकाय को पुण्य-पाप का राग छोड़कर अपने ऐसे आत्मा को **प्राप्त करता है...** ओहोहो! टीका तो देखो!

सम्यग्दृष्टि जीव संसार के मूलभूत सर्व पुण्य-पाप को छोड़कर,... दृष्टि में से, अस्थिरता में से छोड़कर... नित्यानन्दमय प्रभु आत्मा, स्वाभाविक चैतन्यरूप और जीव है अस्तिकाय। अस्ति तो दूसरे भी हैं, यह तो काय—असंख्यप्रदेशी है। आहाहा! असंख्यप्रदेशी में नित्य-आनन्द और निज चैतन्यरूप, बस समाप्त। ऐसा भाव और ऐसा

क्षेत्ररूप द्रव्य। ऐसा **जीवास्तिकाय को प्राप्त करता है;...** जो कोई दृष्टि में से और अस्थिरता में से पुण्य-पाप को छोड़ता है अन्तर में, उसको नित्यानन्दमय सहज चैतन्यरूप असंख्यप्रदेशी भगवान आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा प्राप्त होना, वही सामायिक और धर्म है। आहाहा! धर्म की व्याख्या गजब ऐसी, भाई!

वह शुद्ध जीवास्तिकाय में सदा विहरता है... शैली थोड़ी कलश की है न! समयसार.... समझ में आया? क्या कहते हैं? आत्मा शुद्ध आनन्द और चैतन्यरूप असंख्यप्रदेशी जीवास्तिकाय है। सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर ऐसी चीज़ को प्राप्त करता है। ऐसी चीज़ को दृष्टि में, स्थिरता में लाता है, उसका नाम सामायिक कहते हैं। गजब सामायिक भाई! आहाहा! आगे सामायिक का भान भी न हो। शब्दार्थ समझाओ। 'विहुयरयमला पहियजरमरणा चउविसंपि जिणवरा...' 'विसा रोई मळया' आया था न!

शुद्ध जीवास्तिकाय में सदा विहरता है... विहार करता है, रमता है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और शुद्ध चैतन्यरूप ऐसे आत्मा को प्राप्त कर, पुण्य-पाप को छोड़कर ऐसे प्राप्त कर, उसमें रमते हैं, ऐसा। ऐसे प्राप्त कर उसमें रमते हैं, ऐसा। आत्मा प्राप्त किये बिना रमना किसमें? समझ में आया? चारित्र किसमें करना? चारित्र तो रमना है, चरना है, जमना है, आनन्द में रहना है। तो 'चीज़ यह है', (ऐसा) दृष्टि में आये बिना रमना किसमें? आहाहा! बहुत भारी धर्म कठिन! ऐसा धर्म तो किसी से हो, ऐसा कहे, दूसरे से न हो। अरे! सब आत्मा से हो। आत्मा ऐसा ही है। आत्मा हो उससे हो। जैसा है, ऐसा जाने तो उससे होता है। समझ में आया? यह तो सामायिक की बात चलती है, लो! नटुभाई! सामायिक-बामायिक की होगी न सम्प्रदाय में? कभी नहीं की होगी। नये वकील हुए हैं न। वकील हुए वहाँ तो ऐसा मिला दिगम्बर इसलिए फिर कहे....

जीवास्तिकाय में सदा विहरता है और फिर त्रिभुवनजनों से... आहाहा! तीन लोक के मनुष्यों को—जीवों को **अत्यन्त पूजित ऐसा जिन होता है।** वीतराग होता है और तीर्थंकर होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **त्रिभुवनजनों से—**तीन लोक के जीवों से **अत्यन्त पूजित...** ओहोहो! अरबों-करोड़ों देव, करोड़ों मनुष्य... भगवान ऐसा

पुण्य-पाप का भाव छोड़कर अपने स्वरूप की प्राप्ति करके उसमें रमता है (तो) वह त्रिभुवनजन पूज्य होता है और जिन होता है, लो। **ऐसा जिन होता है।** समझ में आया? यह सब (श्लोक) २१५। मुनि ऐसा है, 'जिन होता' का अर्थ। '**सन् जिनः**' अर्थात् तीर्थंकर। ध्वनि ली है।

आया था न पहले यह। ध्वनि ही यह है अन्दर में। तीर्थंकर... गणधर और तीर्थंकर दोनों आये थे। आहाहा! ऐसा भगवान... पुण्य और पाप को छोड़कर अपना स्वरूप चैतन्यमूर्ति को अन्दर दृष्टि में प्राप्त करता है, तब तक तो वह सम्यग्दृष्टि है। पश्चात् स्वरूप में रमता है, विहरता है, चरता है, तब उसको मुनि कहते हैं और चारित्र कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन में चैतन्य को प्राप्त कर उसमें रमते हैं जीवास्तिकाय में, फिर त्रिभुवनजन (पूज्य) होते हैं। तीन लोक के जीवों से पूज्य होते हैं। आहाहा! **अत्यन्त पूजित ऐसा जिन होता है।** उसे फिर देह छूटकर मुक्ति होती है। पुण्य-पाप के प्रेमवाला संसार में रहता है। पुण्य-पाप को छोड़नेवाला सम्यग्दृष्टि केवली होकर पूजनीक होता है, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १४, रविवार, दिनांक - ०३-१०-१९७१
श्लोक-२१६-२१७, प्रवचन-१४३

सामायिक... लोग कहते हैं न कि हम सामायिक करते हैं। वह सामायिक किसको कहते हैं और उसका स्वरूप क्या है और वह सामायिक किसके आश्रय से प्रगट होती है—वह बात चलती है। बात सूक्ष्म है। वीतराग जैन परमेश्वर तीर्थंकरदेव जिसको त्रिकाल ज्ञान था, एक समय में तीन काल—तीन लोक जानते थे, ऐसे जैन परमेश्वर की इच्छा बिना वाणी आयी, उस वाणी को आगम कहा जाता है। उस आगम में नियमसार आगम है। सूक्ष्म बात है थोड़ी। देखो! २१६ कलश है। पृष्ठ २५३।

स्वतः-सिद्धं ज्ञानं दुरघ-सुकृतारण्य-दहनं,
महामोहध्वान्तप्रबलतरतेजोमयमिदम्।
विनिर्मुक्तेर्मूलं निरुपधि-महानन्द-सुखदं,
यजाम्येतन्नित्यं भवपरिभवध्वन्सनिपुणम्॥२१६॥

क्या कहा? सब विशेषण बहुत अलौकिक दिये हैं। क्या कहते हैं? देखो! यह आत्मा, देह में विराजमान चैतन्य, उसका स्वभाव ज्ञान है। समझ में आया? जैसे गुड़ का स्वभाव मिठास है, नमक का स्वभाव खारा है, वैसे भगवान आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। उसमें पुण्य और पाप का राग है नहीं। ऐसी जो चीज़ आत्मा ज्ञान... ज्ञानस्वभाव त्रिकाली आत्मा, ऐसा ज्ञानस्वभाव त्रिकाली। वह **स्वतःसिद्ध** है। वह ज्ञान अपने से अनादि सत् है। उसको कोई बनानेवाला है नहीं। समझ में आया? ऐसा ज्ञानस्वभाव प्रज्ञा... प्रज्ञा... ज्ञानस्वभाव अविनाशी आत्मा का स्वतः अपना स्वतःसिद्ध ज्ञानभाव है। यह ज्ञानभाव **पाप-पुण्यरूपी वन को जलानेवाली अग्नि है,...** आहाहा! यह ज्ञानस्वभाव त्रिकाली अविनाशी स्वभाव, उसमें पुण्य और पाप का भाव है नहीं। समझ में आया?

कौनसा ज्ञान? यह शास्त्र का ज्ञान? अन्दर ज्ञान चैतन्यबिम्ब प्रभु, ज्ञान का प्रकाशपुंज स्वभाव वह ज्ञान अर्थात् वह आत्मा। ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा जैन

परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा, ऐसा आत्मा स्वत:सिद्ध ज्ञान है। अपने से सिद्ध अस्ति धराता है। कोई उसका कर्ता-बर्ता है नहीं। **पाप-पुण्यरूपी वन को...** शुभ और अशुभ जो भाव और उससे बँधा हुआ पुण्य और पाप... जो पुण्य-पापरूपी वन विस्तार उसको जलानेवाली अग्नि है। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप में पुण्य-पाप है नहीं, परन्तु ज्ञानस्वभाव का आश्रय लेकर जो वीतरागता—समभाव प्रगट होता है, वह शुभ-अशुभभाव और पुण्य-पाप का कर्म, उसको नाश करने में समर्थ है। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन वस्तु!

जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा सौ इन्द्र के पूज्य, ऐसे परमात्मा की वाणी में सामायिक का ऐसा स्वरूप आया, ऐसा अन्यत्र कहीं है नहीं। जो ज्ञानस्वभाव आत्मा चिदानन्दस्वरूप त्रिकाल का आश्रय लेता है, उसको वीतरागता, समता, शान्ति, पुण्य-पाप के रागरहित वीतरागी अवस्था प्रगट होती है। यह वीतरागीपर्याय, वह सामायिक। आहाहा! जयन्तीभाई! कितनी बार यह सामायिक तो सुनी होगी बहुत। आहाहा! भाई! वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव उसको धर्म कहते हैं। धर्म कहो या सामायिक कहो, धर्म कहो या मोक्ष का मार्ग गहो, धर्म कहो या वीतरागी निर्विकल्प रागरहित दशा कहो। यह धर्म दशा कैसे उत्पन्न होती है? कि त्रिकाली भगवान ज्ञानस्वभाव शुद्ध चैतन्यपुंज का आश्रय करके वीतरागता, निर्दोषता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्थिरता ऐसी दशा उत्पन्न हो, उसका नाम जैनधर्म, सामायिक धर्म, उसका नाम मोक्ष का मार्गरूपी धर्म कहते हैं। समझ में आया? कहो, पण्डितजी! क्या है?

पुण्य-पाप से सामायिक नहीं होती है। सामायिक पुण्य-पाप को जलानेवाली है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह देह तो जड़ है, मिट्टी, पुद्‌गल है, यह तो अजीव है और अन्दर में शुभ और अशुभभाव होता है, वह तो विकार है। यह विकार तो अपने स्वभाव से विरुद्ध भाव है। तो जिसको धर्म प्रगट हो और शान्ति प्रगट हो, वह तो त्रिकाली भगवान आत्मा का अवलम्बन लेकर, शुद्ध में एकाग्र होकर... भैया! रात्रि को प्रश्न था न तुम्हारा? किसमें लीन होना? अन्तर भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्दघन है। खबर नहीं कि मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, कैसा हूँ। आत्मा ज्ञान और आनन्द का घन पिण्ड है। ऐसे आत्मा में एकाग्रता होना, उसका नाम सामायिक और उसका नाम चारित्र और

सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो पाठ में है न पुण्य-पाप। कहते हैं, पुण्य-पाप तो कर्म है और कर्म का कारण शुभाशुभभाव है। यह शुभाशुभभाव है, वह विषमभाव है, कषायभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभभाव कषायभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव... यहाँ तो, दया-दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव, वह पुण्यरूपी भाव, रागरूपी भाव, विकाररूपी पुण्यभाव है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोगवासना, पापरूपी कषाय अग्नि है। दोनों कषाय अग्नि है।

छहढाला में आता है। छहढाला पाठशाला में बहुत सिखाते हैं। राग... क्या कहते हैं? 'राग आग दहे सदा...' ऐ शान्तिभाई! वह तो विकल्प है, भगवान! तुझे खबर नहीं। तेरी चीज़ में वह है नहीं, नया उत्पन्न किया, वह अग्नि है। भीखाभाई! मार्ग बहुत ऐसा परन्तु गजब! मार्ग तो यह है, प्रभु! तुझे जन्म-मरण का अन्त लाना हो (तो) यह उपाय है, दूसरी कोई चीज़ नहीं। दूसरा कोई बतावे, वह वीतराग का मार्ग नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह भगवान आत्मा... ज्ञान कहो या आत्मा कहो। ज्ञानप्रधान (कथन में) मुख्यरूप से आत्मा को ज्ञान ही कहा है। **पाप-पुण्यरूपी वन...** आहाहा! शुभ-अशुभभाव का वन उगा है सारा। उसको जलानेवाली आत्मा स्वरूप भगवान आत्मा है, उसमें एकाग्र होकर अन्तर में शान्ति और समता, निर्दोष सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट होता है, यह पुण्य-पाप को जलानेवाली अग्नि है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय है,... आहाहा! क्या चीज़ है? जैसे सूर्य प्रकाश का पुंज है, वैसे अन्दर भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञान-दर्शन का पुंज है। सूर्य की किरण तो सफेद होती है। जैसे यह सूर्य है, उसकी किरण सफेद होती है, वैसे भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्दमय स्वरूप है, उसकी दशा शुद्ध आनन्द और ज्ञानमय होती है। उसका नाम सामायिक और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। भारी कठिन काम, भाई! आहाहा! वीतरागमार्ग तो यह है, जिनेन्द्र जिनेश्वर ने कहा वह। समझ में आया? **महामोहान्धकारनाशक...** आहाहा! कैसा है भगवान? जैसे सूर्य... सूर्य है वह अन्धकार का नाशक सूर्य है। सूर्य है वहाँ अन्धकार भटकता नहीं, वैसे भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञानघन, उसका आश्रय लेते हैं वहाँ **महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय**

है,... यह क्या है ? जैसे सूर्य प्रकाशता है तो अन्धकार का नाश होता है, वैसे भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर ज्ञान का तेज जो प्रगट होता है, वह तेज तो त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। प्रगट होता है, वह पर्याय है, वह तो त्रिकाल महामोहान्धकार—मिथ्यात्वरूपी महा-अन्धकार, उसका नाशक अतिप्रबल तेजमय ज्ञानस्वरूप आत्मा है। समझ में आया ?

ऐसा आत्मा अतिप्रबल मोहान्धकार का नाश करनेवाली चीज़ है, उसकी दृष्टि करने से, उसके सन्मुख होकर एकाग्र होने से, मिथ्यात्व और अज्ञान का नाश होकर समता और वीतरागता प्रगट हो, उसका नाम धर्म और सामायिक कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा! कठिन बात, भाई कठोर! **महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय प्रभु है,...** कभी सुना ही नहीं। अन्दर चैतन्य भगवान... आहाहा! सूर्य प्रभु... यह (शरीर) तो मिट्टी, जड़, धूल है और कर्म है अन्दर में, वह तो अजीव-जड़ है, यह वाणी भी जड़ है। और अन्दर में शुभ और अशुभभाव उत्पन्न होता है हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—यह सब भाव अचेतन है, उसमें चैतन्यस्वभाव नहीं है। आहाहा! तो कहते हैं, चैतन्यस्वभाव, वह अचेतन ऐसे पुण्य-पाप का भाव अथवा पुण्य-पाप कर्म, उस महा-अन्धकार को नाश करनेवाली चीज़ है। आहाहा! समझ में आया ? जेठाभाई! ऐसा धर्म कैसा होगा वीतराग का ?

यहाँ तो कहे, ऐसा करो, ऐसा करो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, पूजा करो, भक्ति करो, यात्रा करो, दान करो। भैया! उसको तो भगवान शुभराग कहते हैं। त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा जिनेश्वरदेव विकल्प को तो शुभराग कहते हैं, पुण्य कहते हैं। पाप से बचने को वह भाव आता है, परन्तु है पुण्य और विकार। उसका भी नाशक भगवान आत्मा है, उसका उत्पादक नहीं। समझ में आया ? आहाहा! उसका नाशक, वह उत्पादक कैसे हो ? समझ में आया ? चैतन्यसूर्य... जैसे यह सूर्य अन्धकार का नाशक है, वह सूर्य अन्धकार का उत्पादक होगा ? इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यप्रकाश का पुंज अनादि-अनन्त अविनाशी घन है। उस चीज़ का अवलम्बन लेता है, उसको पुण्य और पाप का विकार और अन्धकार का नाश होता है और वीतरागता और समता उत्पन्न होती है, उसका नाम जैनधर्म, वीतरागधर्म, सामायिकधर्म कहते हैं। गजब व्याख्या ऐसी, भाई! मार्ग तो ऐसा है भगवान का। दूसरा कोई मार्ग है नहीं।

सर्वज्ञदेव जिनपरमेश्वर वीतरागदेव के अतिरिक्त यह चीज़ अन्यत्र कहीं है नहीं। समझ में आया?

कोई ऐसा कहे कि सबमें धर्म है। ऐसा है नहीं। एक सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव जिसने तीन काल—तीन लोक का ज्ञान किया, उसने जो कहा, वह एक ही धर्म सत्य है। समझ में आया? तो कहते हैं, **महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय...** ज्ञान आत्मा। आहाहा! अन्तर त्रिकाली चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, उसके सन्मुख होकर आश्रय लेता है, उसको वीतरागता अर्थात् समता अर्थात् सामायिक उत्पन्न होती है। समझ में आया? आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई! अभी तक तो यह सब सामायिक करते थे, उसमें तो ऐसा सुना नहीं था। कैसी सामायिक है? बालक भी सामायिक कर लेता है। १५-१५ वर्ष का... बालक ऐसे सामायिक लेता है। माला फिरा ले। भगवान! यह चीज़ दूसरी है भगवान की। माला फिराना, वह तो शुभ विकल्प है, राग है, पुण्य है, विकार है। शान्तिभाई! यह मार्ग बहुत कठिन, हों! मार्ग यह है प्रभु का। उसका पहले निर्णय करना पड़ेगा। पहले निर्णय करना पड़ेगा। निर्णय बिना कभी चले नहीं अन्दर एक कदम भी। अन्दर एकाग्रता कभी नहीं होती। समझ में आया?

तीन बोल हुए। क्या? एक तो स्वत:सिद्ध अपने से है भगवान शुद्ध चैतन्यज्ञान। वह पापरूपी... पाप और पुण्य—दोनों वन को जलानेवाली अग्नि है। दो। वस्तु यह। यह पापरूप (वन को) जलानेवाली अग्नि है। **महामोहांधकारनाशक अति प्रबल तेजमय...** वस्तु है। **विमुक्ति का मूल है...** आहाहा! पुण्य-पाप का भाव संसार का मूल है। उससे संसार की, अवतार की उत्पत्ति होती है। भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित सच्चिदानन्दस्वरूप सहजात्मस्वरूप, वह मुक्ति का—विमुक्ति का मूल है। विशेष मुक्ति अर्थात् मोक्ष का मूल आत्मा है। आहाहा! विमुक्ति का मूल है, वह संसार का मूल नहीं। राग का और द्वेष का और मिथ्यात्व की उत्पत्ति का मूल भगवान आत्मा नहीं। आत्मा तो उसको परमात्मा कहते हैं कि आत्मा आनन्द और ज्ञान का घन है। विमुक्ति—मोक्ष की पर्याय की मूल वह चीज़ है। समझ में आया? आहाहा!

लो, यहाँ तो (कहते हैं कि) मुक्ति का मूल पुण्य-पाप का भाव तो नहीं, परन्तु

मोक्ष के मार्ग की पर्याय भी मुक्ति का कारण नहीं। यहाँ तो, मुक्ति का कारण त्रिकाली चीज़ है। आहाहा! यह सब सेठिया को खबर नहीं, ऐसा का ऐसा मार्ग चलाया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। आत्मा कौन है और... आत्मा तो कहीं पड़ा रहा और बातें वर बिना का बारात। वर न हो और बारात जोड़ दी। ऐसे भगवान आत्मा धर्म का करनेवाला कैसा है और वह धर्म क्या चीज़ है, (उसकी) खबर बिना चले गये। चलो करो धर्म। कहाँ धर्म है? समझ में आया? क्रियाकाण्ड में, राग में मिथ्यात्व से रचे-पचे रहते हैं। आहाहा!

परन्तु ऐसा मार्ग तो कोई कर सके। पण्डितजी! मार्ग तो, आत्मा है वह कर सके। सब आत्मा हैं या नहीं? आत्मा तो किसको कहे? ज्ञान के तेजमय को, आनन्द के पुंजमय को आत्मा कहे। इसका आश्रय करने से, इसका अवलम्बन करने से मुक्ति का मूल वह है तो मुक्ति होती है। व्यवहार बीच में आता है, दया-दान-व्रत का विकल्प, परन्तु उससे मुक्ति नहीं होती। वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? कान्तिभाई! अरे! परन्तु ऐसा समाज को सुहावे? लाखों लोग और बाहर में हो-हा... हो-हा हो। जिसे आत्मा की रुचि करना हो और धर्म की दशा प्रगट करना हो, उसको रुचे। समझ में आया? **विमुक्ति का मूल है...**

मुनिराज—दिगम्बर मुनि कहते हैं। ९०० (वर्ष) पहले पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर वनवासी सन्त हुए। उनसे पहले श्लोक बनानेवाले कुन्दकुन्दाचार्य हुए, संवत् ४९ में। दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त भगवान के पास गये थे। भगवान सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकरदेव महाविदेह में वर्तमान में विराजते हैं। ५०० धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। उनके पास गये थे, आठ दिन रहे थे। मुनि दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, उन्होंने यह पुस्तकें बनायी हैं शास्त्र—नियमसार, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़। समझ में आया? यह सब कुन्दकुन्दाचार्य के जो शास्त्र हैं, वे शास्त्र यहाँ (परमागममन्दिर में अंकित) होते हैं संगमरमर पर। भगवान के पास गये थे (और आकर) बनाये हैं। त्रिलोकनाथ सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में जमीन के ऊपर। मोक्ष नहीं, मोक्ष तो सिद्ध(पद)। वे तो अरिहन्तपद में विराजते हैं।

करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष। ऐसे-ऐसे करोड़ पूर्व का आयुष्य है। भक्ति में आता है—पूजा में आता है।

वे कहते हैं, यह भगवान आत्मा तो विमुक्ति का मूल है, अपना स्वरूप, हों! भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द का, वान अर्थात् स्वरूप ऐसा अपना निजानन्द प्रभु, वह विमुक्ति का मूल आत्मा है। आहाहा! अज्ञान अनात्मा वह संसार की उत्पत्ति का मूल है। यह ज्ञान के सामने ऐसे डाला... समझ में आया? अपने स्वरूप का अज्ञान और राग-द्वेष को अपनेपने मानना, यह अज्ञानभाव संसार का मूल है। भगवान आत्मा तो मुक्ति का मूल है। आहाहा! समझ में आया? मूल को पकड़ते हैं तो क्रम-क्रम से उसकी मुक्ति होती है। समझ में आया?

आम होता है न आम—केरी। तोता ऊपर से खाता है। पोपट होता है न? तोता। कीड़ी नीचे थड में से चढ़कर खाती है। उड़ सकती नहीं। कीड़ी... कीड़ी—चींटियाँ। आम के थड से चढ़कर आम तक जाती है। वैसे भगवान कहते हैं, मूल जो चैतन्यभगवान द्रव्यस्वभाव, उस पर सम्यग्दर्शन (होकर) जाते हैं, पीछे स्थिर होकर धीरे-धीरे जाते हैं तो उसे मुक्ति का फल—आनन्द के फल का अनुभव होता है। कोई उग्ररूप से एकदम अनुभव करके क्षण में चारित्र करके केवलज्ञान ले, तोता जैसा एकदम ऊपर से खाये। समझ में आया? वह दोनों खाते हैं आम का फल ही, परन्तु मूल पकड़ना चाहिए। समझ में आया? क्या मूल और क्या द्रव्य—खबर नहीं, भगवान जाने। भगवान तो जानते ही हैं न! यह तो तुझे जानने की बात करते हैं। तुझको बतलाते हैं कि तू क्या है, कहाँ है, कैसा है। आहाहा!

कहते हैं, तेरी चीज अन्दर **विमुक्ति का मूल है...** उसका लक्ष्य कर, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, इतनी मुक्ति हुई। पश्चात् अस्थिरता छूटकर स्थिरता हुई, इतनी मुक्ति हुई, पश्चात् शुक्लध्यान करके सर्वथा रागादि का नाश होकर केवलज्ञान हुआ तो (पूर्ण) मुक्ति हुई। समझ में आया? अरे! ऐसा धर्म कैसा है? मुश्किल-मुश्किल से किसी को समझ में आये। अरे! आत्मा है, सब समझ सके। आत्मा की जाति है या नहीं? आत्मा भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सहजानन्द आत्मा... पक्षी भी समझते हैं,

पशु समझते हैं। आत्मज्ञानी पशु हैं। ढाईद्वीप के बाहर आत्मज्ञानी पशु असंख्य हैं। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य आत्मज्ञानी तिर्यंच पशु हैं मगरमच्छ आदि। और बाघ-सिंह भी समकिती ज्ञानी हैं, कोई हो। असंख्य पशु तो मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया?

लो, यह आता है तियोपण्णत्ति में। यह है न यहाँ। जातिस्मरण हुआ है। रामचन्द्रजी का हाथी था। पहले रावण का हाथी था। वह हाथी (का चित्र) है, देखो! रावण का हाथी था, लंका जीतकर आये तो हाथी लाये अयोध्या। रामचन्द्रजी, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न मुनि के दर्शन करने को जाते हैं। देखो! हाथी। भरत ने दीक्षा ली। भरत ने दीक्षा ली। हाथी उसका पूर्वभव का मित्र था। दीक्षा ली तो (हाथी को) जातिस्मरण हो गया। अरे! यह क्या है? कौन है? ऐसे पूर्व का भान हो गया। सब छोड़ दिया शृंगार, (आहार आदि)। देखो! पन्द्रह-पन्द्रह दिन पीछे आहार लेता है पशु होकर। आत्मज्ञानी, जातिस्मरण हुआ है। ... हाथी ने अपना शृंगार सब छोड़ दिया। आनन्द के भान में हूँ, ऐसा अनुभव हुआ पशु को। पशु क्या? आत्मा पशु होता है? वह तो जड़ शरीर है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान **विमुक्ति का मूल है और निरुपाधि**—उपाधि बिना **महा आनन्दसुख का दायक है।** आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा और प्रगट किया, ऐसा देह के अन्दर भगवान आत्मा **निरुपाधि=छलरहित; सच्चे; वास्तविक। महा आनन्दसुख का दायक है।** महा अतीन्द्रिय आनन्द का दातार आत्मा है। अरे! यह क्या? समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द जो प्राप्त होता है, वह आत्मा से होता है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरा पड़ा है यह। आहाहा! कौन जाने क्या होगा?

महाआनन्द... आनन्द का सुख देखो! उपाधिरहित महा-आनन्दसुख, ऐसा। अतीन्द्रिय आनन्द-सुख का दायक आत्मा है। ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि, अनुभव करके अन्दर में वीतराग पर्याय से स्थिर होना, उसका नाम सामायिक जैनशासन में कहने में आता है। पाठ में (गाथा में) है न वह? '**इति केवलीसासणे।**' भगवान के ज्ञान में, शासन में ऐसी सामायिक कहने में आयी है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात! मस्तिष्क काम करे नहीं, ऐसी बात। न करे ऐसा होगा? यह किसलिए समझाया है?

समझनेवाले समझ सकते हैं, ऐसा धारकर समझाया है। जड़ को बात कहते हैं ? राग को कहते हैं ? तुम ज्ञान का पिण्ड प्रभु हो, उसको कहते हैं कि तू ऐसा है। समझ में आया ? तेरी तुझे खबर नहीं और हमें धर्म हो जायेगा (ऐसा मानता है)। कहाँ से धर्म होता है ?

अपनी चीज़ को अन्दर उपादेय—ग्रहण करे तो राग का त्याग हो जाये, करना पड़े नहीं। और उसमें शान्ति की उत्पत्ति हो, उसका नाम सामायिक और जैनधर्म कहने में आता है। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, जैनधर्म कोई वाडा नहीं, जैनधर्म वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया ? आहाहा ! जैनधर्म अर्थात् वीतरागभाव। वीतरागभाव की दया, वह आत्मा है। उसका आश्रय लेकर वीतरागभाव प्रगट कर, यह जैनधर्म है। जेठाभाई ! बात तो बहुत सीधी है। आहाहा ! समझ में आया ? **महा आनन्दसुख का दायक...** भगवान आत्मा। देखना क्या है ? देखा तो है नहीं उसको। क्रियाकाण्ड, शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप, उसके ऊपर दृष्टि है, आत्मा तो अन्दर गुप्त हो गया। आहाहा ! विकार को गुप्त करना है और आत्मा को प्रसिद्ध करना है। उस काम में आत्मा गुप्त हो गया और विकार प्रसिद्ध हो गया। विपरीत काम हुआ। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

मुनि ने कितनी बात एक कलश में (कही है) ! दिगम्बर सन्त वनवासी थे। सन्त तो पहले वन में ही रहते थे। समझ में आया ? उनको सच्चा आत्मज्ञान था, आत्म-आनन्द था, अन्तर की वीतरागदशा चारित्र प्रगट थी। वे तो वन में ही रहते थे, भिक्षा के लिये गाँव में आये, चले जाये। समझ में आया ? ऐसे वनवासी मुनि थे। उन्होंने यह कलश बनाया है। **निरुपाधि महा आनन्दसुख का दायक...** आहाहा ! यहाँ तो क्या दे ? कोई लक्ष्मी, कोई लड्डू, कोई कपड़ा, कोई गहने। यह आत्मा तो महा आनन्द का दाता है। आहाहा ! अरे ! दाता की ओर तेरी दृष्टि तो कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जिसको कुछ चाहिए तो दाता के घर जाना पड़ता है या नहीं ? या घर में देने आवे दाता ? इसी प्रकार भगवान आत्मा महानिरुपाधि आनन्द का दाता है, उसकी दृष्टि करने उस ओर जा तो तुझे महा आनन्द प्रगट होगा। महा आनन्द का दाता यह आत्मा है। और अतीन्द्रिय आनन्द दशा में प्रगट होना, उसका नाम सामायिक है। सुजानमलजी ! आहाहा ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ?

अरे! **भवभव का ध्वंस करने में निपुण...** आहाहा! भव-भव का ध्वंस... अनन्त-अनन्त भव हुए निगोद के, एकेन्द्रिय के, दो इन्द्रिय के, त्रिइन्द्रिय के, नरक के, पशु के, स्वर्ग के—सब भव दु:खमय है। देह में दु:ख ही है, आकुलता है। सुख की गन्ध नहीं, सुख तो आत्मा में है। समझ में आया? कोई पुण्यक्रिया की और स्वर्ग में गया तो वहाँ आकुलता है। इन्द्राणी में (सुख) माना है, कल्पना में सुख (माना) है। धूल में नहीं है। वह तो परपदार्थ है, उसमें सुख कहाँ से आया? समझ में आया? आहाहा! **भवभव का ध्वंस...** भव-भव क्यों लिये? नारकी, मनुष्य, देव और पशु—चारों भव का नाश। स्वर्ग का उत्पन्न करनेवाला आत्मा है, नरक का नाश करनेवाला है—ऐसा नहीं। चारों गति का—भव का नाश करनेवाला आत्मा है। समझ में आया? अरे! ऐसी धर्मदेशना? ऐसा उपदेश कैसा?

अभी तक तो ऐसा सुना था कि ऐसा धरना, ऐसा करना... ऐसा सुनते थे कि कन्दमूल नहीं खाना, हरितकाय थोड़ी खाना, गर्म पानी पीना, रात्रि को आहार नहीं करना, समझ में आया? जीवदया पालना, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना—ऐसी बात बहुत सुनी थी। यह कहाँ से आया? अरे! सुन तो सही! भगवान के पास से यह (बात) आयी है। समझ में आया? तेरे भगवान के पास से यह बात आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तेरी बात करे वह कुछ नहीं और दूसरी बात। (दूसरी) बात करे वह सब राग की बात है। ऐसा करना, यह तो विकल्प का उत्थान है, वृत्ति उठती है, वह तो राग है। भगवान तो रागरहित चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। ऐसे आत्मा का अवलम्बन लिये बिना भव का—चार गति का नाश कभी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? बहुत सादी भाषा है। कोई संस्कृत और व्याकरण जाने तो समझ में आये, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया?

अन्तर की चीज़ है, भगवान! तेरी चीज़ ही ऐसी है। समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ...' यह छहढाला में आता है। 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ...' छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार...' द्रव्यलिंगी हुआ, पंच महाव्रत की क्रिया की, उसमें क्या हुआ? वह तो राग है। 'मुनिव्रतधार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' नौवें ग्रैवेयक है एक स्वर्ग, वहाँ अनन्त बार गया। 'पै निज आतमज्ञान

बिना सुख लेश न पायो...' आत्मा आनन्दकन्द प्रभु पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है। ऐसी चीज़ के भान बिना आनन्द के एक अंश का अनुभव हुआ नहीं, इसके बिना जन्म-मरण कभी मिटते नहीं। समझ में आया? आहाहा! भारी विशेषण दिये हैं!

भवभव का ध्वंस करने में निपुण ऐसे इस ज्ञान को... मुनिराज कहते हैं, जगत को समझाने के लिये विकल्प करते हैं। मैं, यह ज्ञानस्वरूप भगवान ध्रुव नित्यानन्द भव-भव का नाश करनेवाली चीज़ है, उसको मैं नमता हूँ। उसको **मैं नित्य पूजता हूँ।** देखो! उसकी मैं नित्य पूजा करता हूँ अर्थात् अन्दर वीतरागता प्रगट करता हूँ। यह पूजा उसका नाम वीतरागता और सामायिक है। आहाहा! पूजायोग्य जो वीतरागभाव ऐसी मैंने पूजा की तो वीतरागपर्याय प्रगट हुई। आहाहा! समझ में आया? पूज्यभाव त्रिकाली भगवान अपना वीतरागभाव, पूजक अपनी पर्याय से पूज्य की पूजना की तो वीतरागपर्याय पर्याय में उत्पन्न हुई। वह वीतरागपर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और सामायिक। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से कोई कहता हो तो वीतरागमार्ग से विरुद्ध है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेश्वर के पंथ से दूसरी रीति यदि कहे तो विरुद्ध है। समझ में आया? आहाहा!

लोगों का भला कर दो। कौन कर सके? वह परपदार्थ स्वतन्त्र है। उसकी पर्याय का होना उससे होता है। कोई दूसरा कर सके? एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का कर्ता-हर्ता है? (नहीं)। स्वतन्त्र सब पदार्थ हैं। आहाहा! कौन करे? अपनी पर्याय में विकार और अविकार करे। पर का क्या करे? समझ में आया? कहते हैं, अरे! मुनिराज अपनी बात करके दुनिया को कहते हैं, हों! भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज वीतरागमूर्ति प्रभु, यह पुण्य-पाप के विकल्प और शरीर-कर्म से रहित है, ऐसी चीज़ को मैं पूजता हूँ। मैं राग को पूजता नहीं, निमित्त को पूजता नहीं, पर्याय को पूजता नहीं, त्रिकाली को पूजता हूँ। आहाहा! आत्मा त्रिकाली ध्रुव आनन्दकन्द ऐसा त्रिकाली है, कौन वर्तमान में है— उसकी तो कुछ खबर नहीं और हम धर्म करते हैं। धर्म कहाँ से आया? धर्म की पर्याय करनेवाला कैसा है, इसकी खबर बिना धर्म कहाँ से आया? समझ में आया?

लो। पौन घण्टा तो हुआ एक कलश में। पौन घण्टा हुआ एक कलश में। यह दूसरा कलश आता है। दूसरा कलश। इस ओर देखो! २१७ है न। भावार्थरूप से वह

डाला है—कोष्ठक में डाला है। २१७ कलश। मुनिराज दिगम्बर सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव ने वनवास में रहकर कुन्दकुन्दाचार्य भगवान की गाथा का अर्थ बनाया है। समझ में आया? आता है या नहीं? वह क्या है? 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो..' तीसरे नम्बर पर कुन्दकुन्दाचार्य आते हैं। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलं।' ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य का (बनाया हुआ) यह शास्त्र है। उसका अर्थ करनेवाले दिगम्बर सन्त वनवासी उन्होंने २१७ कलश बनाया है, देखो!

अयं जीवो जीवत्यघकुलवशात् सन्सृतिवधू-
ध्वत्वं सम्प्राप्य स्मरजनितसौख्याकुलमतिः।
क्वचिद् भव्यत्वेन व्रजति तरसा निर्वृतिसुखं,
तदेकं सन्त्यक्त्वा पुनरपि स सिद्धो न चलति॥२१७॥

'**तरसा**' अर्थात् क्या? जल्दी? आहाहा! इस ओर अर्थ है दूसरे पृष्ठ पर। आज तो तुम्हारी हिन्दी ली है भैया! आज तो हिन्दी में समझ में आता है? हमारी गुजराती सादी है। परन्तु कोई हिन्दी (भाषी) आते हैं तो... नहीं तो गुजराती चलती है यहाँ तो। ये इन्दौरवाले आये तो कहा, नहीं समझते हम। इन्दौर में तो थोड़ी-थोड़ी गुजराती चलती है। नहीं चलती? वह श्लोक है, इस ओर।

श्लोकार्थः—यह जीव... यह भगवान आत्मा चैतन्यपुंज आनन्दघन... यह **अघसमूह के वश...** क्या कहते हैं? अघ अर्थात् पुण्य और पाप के आधीन होकर... मूल पुण्य-पाप का अधिकार है न भाई! इसलिए यह भर दिया। पुण्य-पाप के आधीन होकर... पुण्य-पाप को नाश करनेवाली चीज़ आत्मा है, परन्तु वह अनादि से अज्ञान के आधीन हो जाती है। आहाहा! यह जीव—भगवान आत्मा... अघ अर्थात् पुण्य और पाप के असंख्य प्रकार से भाव हैं। शुभ के असंख्य और अशुभ के असंख्य प्रकार हैं। ऐसे असंख्य पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग की वृत्ति, ऐसे समूह के वश... आहाहा! अपने स्वभाव के वश न होकर विकार के वश अनादि से होता है, कहते हैं। समझ में आया?

'**पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि**' है न पाठ में? भाव.... अर्थात् इस भाव के वश होता है, वास्तव में ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा धर्म कैसा होगा? ऐ

भीखाभाई! ऐसी भी लगाई... सम्मेदशिखर की यात्रा एक बार करे। लो, 'एक बार वन्दे जो कोई, नरक पशुगति न होई।' आता है या नहीं? अनन्त बार सम्मेदशिखर की पूजा की, पुण्यभाव है। भगवान तो वहाँ तक कहते हैं परमात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव सन्त—मुनि दिगम्बर (कहते हैं)। 'भवे भवे जिन पूजियो...' परमात्मप्रकाश बड़ा अध्यात्म ग्रन्थ है। योगीन्द्रदेव मुनि हुए हैं, दिगम्बर सन्त वनवासी। उन्होंने कहा, 'भवे भवे जिन पूजियो' परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसकी पूजा नहीं की। समझ में आया? यह परमात्मप्रकाश में है। ओहो! कहते हैं, भगवान ज्ञानस्वभाव शुद्ध अपना-निज स्वभाव, उसमें एकाग्र अर्थात् आधीन होना... (उसे) छोड़कर उसके विरुद्ध जो पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ विकल्प—राग है, उसके वश होता है अनादि से।

संसृतिवधू का पतिपना प्राप्त करके... आहाहा! संसार दुःखरूपी स्त्री, उसका पति... आहाहा! पुण्य-पाप की विभाव परिणति जो संसार परिणति है, ऐसी जो स्त्री, उसका वह पति हुआ। आहाहा! ...स्वामी हुआ। आहाहा! है न अन्दर? जवान व्यक्ति तो (पकड़) सकता है, ध्यान रखे तो। बाहर में कैसी मति लगाता है? समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो सादी भाषा है। कोई ऐसी कड़क नहीं है। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा के सन्त कहते हैं, अरे जीव! तूने क्या किया अभी तक? अनन्त-अनन्त संसार में क्या किया तूने? पुण्य-पाप... अघ अर्थात् पुण्य-पाप का समूह, उसके वश हो गया और संसृतिवधू—संसाररूपी स्त्री... यह संसृत हुआ न। विकारभाव वह संसार है, पुण्य-पापभाव वह संसार है, उस संसारवधू का पति हुआ, मालिक—स्वामी हुआ (और) अपनी चीज़ को छोड़ दिया। आहाहा! कान्तिभाई! इसमें तो सीधी बात है। इसमें कहीं कोई व्याकरण जाने, संस्कृत जाने तो समझ में आये, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया? आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पाती है और हजार योजन का मच्छ स्वयंभूरमण समुद्र में सम्यग्ज्ञान (सहित) पाँचवें गुणस्थान में है। समझ में आया?

आत्मा की तैयारी होनी चाहिए न! आत्मा समझने की, प्रतीति करने की, अनुभव करने की... तो कहते हैं कि अपना अनुभव छोड़कर... अरे! उसने क्या किया अभी तक? जैन का मिथ्यादृष्टि दिगम्बर साधु हुआ, नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु पुण्य-पाप के समूह के वश हुआ। अपना आत्मा आनन्दकन्द ज्ञान का चैतन्यस्वभाव का

आश्रय नहीं लिया। आहाहा! समझ में आया? **पतिपना प्राप्त करके (अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के वश संसाररूपी स्त्री का पति बनकर)...** आहाहा! विभाव परिणति का पति हुआ, ऐसा कहते हैं। अपने में—पर्याय में पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव जो दोनों विभाव हैं, उसका मालिक—स्वामी—धनी—पति होकर, **कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है।** आहाहा! राग में से सुख होगा, ऐसी मतिवाला रहा है। समझ में आया? इच्छा उत्पन्न हुई पुण्य की या पाप की, उसमें से सुख उत्पन्न होगा—ऐसी कामजनित सुख की तृष्णावाला रहा। सुख तो भगवान आत्मा में है, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया?

स्त्री में सुख है, पैसे में सुख है। धूल पाँच-पच्चीस लाख, करोड़-दो करोड़ मिली (तो) सुखी है। मूढ़ जीव ने अपने आनन्दस्वभाव को छोड़कर, पुण्य-पाप के राग के वश होकर, पर में सुखबुद्धि मानकर आकुलता को प्राप्त किया है। आहाहा! इच्छाजनित **सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है।** आहाहा! देखो! अनादि से ऐसा रहा। क्यों? कि अपना आनन्दस्वरूप भगवान और ज्ञानमूर्ति प्रभु की दृष्टि किये बिना, उसका आश्रय लिये बिना, वह 'मेरी चीज़ है' ऐसा स्वामी हुए बिना, पुण्य और पाप का स्वामी होकर, संसारस्त्री का पति होकर आकुलताजन्य दुःख को भोगा। यह सेठिया-बेठीया सब दुःखी हैं। धूल में भी सुख नहीं। मूढ़ मानता है। सुख-दुःख की कल्पना है। मानता है न मूढ़ जीव। पैसे दो-पाँच-दस करोड़ मिले (तो) सुखी है, बँगला मिला, हजीरा अर्थात् मकान, दो-पाँच-दस लाख का मकान बनाया (तो) सुखी है। धूल भी नहीं। दुःखी है, दुःख का कीड़ा है, सुन न!

मुमुक्षु : घर-बिना चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने घर बिना नहीं चलता। यह परघर कहाँ अपना है? व्यवहार बिना चलता नहीं, पर के बिना चलता नहीं, ऐसा कहते हैं न? आहाहा! अरे! उसने अपना निजघर क्या है, (यह देखा नहीं)। समझ में आया?

वह आता है। भजन में नहीं आता? 'अब हम कबहू न निजघर आये...' एक दूसरा। 'अब हम कबहू न निजघर आये, परघर भ्रमत-फिरत नाम अनेक धराये, अब हम कबहू न निजघर आये, परघर भ्रमत-फिरत नाम अनेक धराये।' मैं पुण्य करता हूँ,

मैं पापी हूँ, मैं गरीब हूँ—दीन हूँ, धनवान हूँ—श्रीमन्त हूँ और हरिजन हूँ और ब्राह्मण हूँ, नारकी हूँ, चींटी हूँ और कौआ हूँ—कौआ हूँ। आहाहा! ऐसे अपने निजघर को जाने बिना परघर भ्रमत अनेक प्रकार का नाम धराया। यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! आकुलतावाला रहा। आकुलता में रहा है अभी तक, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन बिना सर्व प्राणी आकुलता में रहे हैं। आहाहा!

कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है। आहाहा! यह तो संसारदशा बताई अभी तक की। निगोद से लेकर... निगोद समझते हो? काई, आलू (आदि) में एक राई जितना टुकड़ा-टुकड़ा लो, उसमें असंख्य शरीर हैं और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। क्या कहा? आलू होता है न, आलू? आलू-बटाटा, मूली, गाजर, प्याज... डुंगळी कहते हैं? प्याज। प्याज, लहसुन के एक टुकड़े... टुकड़ा लो राई जितना तो, परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं कि उसमें ऐसे औदारिक बारीक—सूक्ष्म शरीर असंख्य हैं। इतने राई जितने टुकड़े में असंख्य औदारिकशरीर हैं बारीक—सूक्ष्म। और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए... सिद्धभगवान हुए न... छह महीने आठ समय में ६०८ जीव मुक्ति को प्राप्त होते हैं, ऐसा परमात्मा के ज्ञान में आया है। छह महीने आठ समय में ६०८ मुक्ति को प्राप्त होते हैं। तो अनन्त काल से सिद्ध हुए, उससे भी अनन्त गुने जीव एक शरीर में हैं, उसे निगोद कहते हैं। आहाहा! उसमें अनन्त बार रहा, भान नहीं उसको। वहाँ से निकला तो भी चार गति में आकुलता में रहा है, ऐसा कहते हैं।

कभी भव्यत्व द्वारा शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,... लो। आहाहा! कभी अपनी योग्यता से स्वरूप की दृष्टि, अनुभव करके, शीघ्र... ऐसा क्यों कहा? अनन्त काल तक रुलना पड़ा अनन्त भव में। मुक्ति होने में तो अनन्त भव होते नहीं, असंख्य भव नहीं होते। एक-दो भव में मुक्ति हो जाती है। **शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,...** आहाहा! भव्यत्व योग्यता प्राप्त करके, ऐसा कहा न? अपनी योग्यता समझने की, श्रद्धा करने की, अनुभव करने की... **भव्यत्व द्वारा शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,...** जितना काल रुलने में गया, इतना काल मोक्ष होने में जाता नहीं। अल्प काल में मुक्ति होती है, परन्तु आत्मा आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव करे और आश्रय ले, तब मुक्ति होती है। उसके बिना मुक्ति कभी होती नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १५, सोमवार, दिनांक - ०४-१०-१९७१
श्लोक-२१७, प्रवचन-१४४

नियमसार शास्त्र है, परम-समाधि अधिकार। सामायिक अथवा धर्म का स्वरूप कैसा है (कि) जिससे मुक्ति मिले—वह बात चलती है। २१७ कलश है न, पहले यह बात करते हैं कि **यह जीव...** अनादि से **अघसमूह के वश...** है रतनलालजी ? जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी। आत्मा तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि न करके, उसके वश न होकर, अनादि काल से पुण्य और पाप का भाव जो अघसमूह... अघसमूह के वश (अर्थात्) पुण्य और पाप के भाव के वश होकर मिथ्यादृष्टि होकर... अपने आनन्दस्वरूप को अनादि से भूलकर, पुण्य और पाप का विकल्प दया-दान, व्रत, भक्ति आदि भाव और हिंसा, झूठ, चोरी आदि भाव, ये सब भाव पापसमूह है। समझ में आया ? अपनी पवित्रता... आनन्दघन आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। अनादि से उसका प्रेम और रुचि छोड़कर, पुण्य और पाप जो विकल्प—राग है, उसकी रुचि में वश हुए... समझ में आया ?

ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु, अपना स्वभाव अनादि-अनन्त नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है। उसका प्रेम और रुचि छोड़कर अनादि से एकेन्द्रिय निगोद से लेकर दिगम्बर साधु द्रव्यलिंग धारण करके नौवें ग्रैवेयक तक अनन्त बार गया, परन्तु वह मिथ्यादृष्टि पुण्य और पाप के राग के वश होकर गया। आहाहा ! ऐसा है, भाई ! आधीन हो गया, विभाव के आधीन हो गया। समझते हो न ? आत्मा त्रिकाली स्वभाव... त्रिकाल स्वभाव, शुद्ध ज्ञानानन्द त्रिकाल, उससे (भिन्न) एक समय का पुण्य-पाप का भाव विकार, विभाव है। विभाव कृत्रिम, क्षणिक, अनित्य, उपाधि, दुःखरूप है, उसके आधीन हुए। समझ में आया ? अन्तर चीज़ आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ—गाँठ पूरी... आहाहा ! उस ओर सन्मुख होकर उसका आश्रय करना छोड़ दिया अनादि से। छोड़ दिया अर्थात् पहले किया था और पीछे छोड़ दिया—ऐसा नहीं है। आहाहा !

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं स्वरूप से विराजमान है। आहाहा! उस ओर की रुचि छोड़कर, आश्रय छोड़कर, स्वसन्मुखता छोड़कर, स्वसन्मुख से पतित होकर अघसमूह—पुण्य और पाप का भाव, उसके वश हो गया। वह मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो दिगम्बर मुनि हुआ हो बाह्य से। समझ में आया? परन्तु अन्तर में विभाव के वश, जो पुण्य-विकल्प के वश में है, वह स्वरूप का अनादर करनेवाला मिथ्यादृष्टि अजैन है। आहाहा! समझ में आया?

अघसमूह के वश संसृतिवधू का पतिपना प्राप्त करके... आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है। उसका पति न होकर, उसका स्वामी न बनकर, अनादि से अज्ञानी-मूढ़ पुण्य और पाप के विकल्प (रूपी) संसार जो है, वह संसृतिवधू—विकाररूपी संसृति अर्थात् संसाररूपी स्त्री, उसका पति हुआ, उसका मालिक हुआ। उसका पति हुआ, उसका स्वामी हुआ, वह मूढ़ जीव है। आहाहा! समझ में आया? यह सब दो-पाँच करोड़ पैसे हों या लक्ष्मी आदि कीर्ति हो, वह चीज़ दूसरी और लक्ष्मी आदि छोड़कर नग्न मुनि हुआ हो, वह दूसरी चीज़। उसमें कोई पर का त्याग नहीं। क्योंकि अन्दर में पुण्य और पाप की वृत्ति विभाव जो है, वह स्वभाव के साथ तन्मय... तन्मय है नहीं। फिर भी तन्मय मानकर संसाररूपी स्त्री का अज्ञानी पति—धनी-मालिक हुआ है, वह संसार जन्म-मरण का कारण है। भाई! आहाहा!

यह तुमको सब पैसेवालों को सुखी कहते हैं न! करोड़ोंपति सुखी है, ऐसा कहते हैं। पागल, पागल को भान कब है? 'लोक मूके पोक।' लोक तो शोर मचाता है। भान कब है उसे? ऐ सेठ! पण्डितजी! आहाहा! एक ही श्लोक में संसार और मुक्ति दोनों की बात साथ में की है। संसार में अब तक क्यों परिभ्रमण किया? और निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक गया, वह मिथ्यात्व से गया, तो मिथ्यात्व का अर्थ क्या? कि जो पर में सुख नहीं, पुण्य-पाप के भाव में सुख नहीं, पुण्य-पाप का भाव अपना नहीं, उसे अपना मानकर स्वामी हुआ, वही संसार में भटकने का कारण है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आता है या नहीं? बात ऐसी है।

मुमुक्षु : कर्म ने भ्रमाया है....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म कौन भ्रमावे? 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' कर्म तो जड़ है, मिट्टी है—धूल है। अजीव में ताकत है जीव को परिभ्रमण कराने की? अपना स्वभाव आनन्द और ज्ञानस्वरूपी त्रिकाली चिद्घन, उसका अनादर करके, पुण्य-पाप के वश होकर अज्ञान से परिभ्रमण करता है, कर्म से नहीं। समझ में आया? कर्म तो परवस्तु है। परवस्तु, परवस्तु को छूती है? स्वयं अपने को... यह तो बात चलती है। 'अपने को आप भूलकर आप हैरान हो गया।' अपने को आप भूलके... यह धूल और पैसा और लक्ष्मी या पुण्य और पाप के भाव... जो चीज़ ही नहीं अपने में, उसकी नास्ति है। समझ में आया? भगवान आत्मा में, कर्म, शरीर, लक्ष्मी, इज्जत-कीर्ति और पुण्य-पाप के भाव की आत्मा में नास्ति है। नास्ति न मानकर 'यही मैं हूँ' (-ऐसा माना है)। आहाहा! बात ऐसी है। समझ में आया?

अघसमूह... अघ अर्थात् पाप। पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। आहाहा! गजब बात है! अनादि से अपने आनन्दस्वरूप से पतित होकर—भ्रष्ट होकर, शुभ और अशुभ विकार का भाव, पुण्य-पाप का भाव, वही मैं हूँ, वह मेरा है (-ऐसा) उसका पति होकर... संसार परिभ्रमणरूपी विकारी परिणतिरूपी स्त्री का पति होकर **कामजनित सुख के लिये...** आहाहा! पर में सुख है, पुण्यभाव में सुख है, पाप में दुःख है, पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख है। अरे! पुण्य और पाप, वह भी मन का विषय है, आत्मा का नहीं। पुण्य और पाप के भाव में सुख है, मुझे हितकर है—ऐसी मान्यता (है तो) कामजनित सुख को मानता है। अपने आत्मा में आनन्द है, वह मानता नहीं। मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। आहाहा! वीतरागमार्ग यह है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक जानने में आया, ऐसे परमात्मा की वाणी में यह बात आयी है। समझ में आया? ऐसी बात, सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव के अतिरिक्त अन्यत्र (कहीं) ऐसी बात कभी नहीं होती। समझ में आया? कहो, रतनलालजी! तुमको दुःखी कहते हैं यहाँ। क्योंकि राग और पुण्य-पाप के भाव में ठीक है, लक्ष्मी आदि मिली, उसमें मजा है—ऐसी मिथ्या मान्यता दुःख है। करो निर्णय। इसमें तो सच्ची बात है। समझ में आया?

इसलिये तो कहते हैं कि अहो! **कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर**

जी रहा है। आहाहा! अरेरे! अनाकुल भगवान आत्मा जो आनन्द से तृप्त... तृप्त भरा है प्रभु, उस ओर की दृष्टि किये बिना अनादि से कामजनित सुख—विषयजनित सुख... विषय शब्द से भोग अकेला, ऐसा नहीं, पाँचों इन्द्रिय का। मन, वह साथ में है न, इन्द्रिय में। वह इन्द्रिय है न अन्दर। मन में उत्पन्न हुआ राग-विकल्प, विभाव, उसमें सुख है, वह मेरी चीज़ है, उससे मुझे लाभ होगा—ऐसी दृष्टि (जिसे) है, वह कामजनित सुख को अपना मानता है। आत्मजनित सुख की उसको खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

विपरीत मान्यता का अर्थ कि पुण्य और पाप जो शुभ-अशुभराग है, वह दु:ख है। और उसमें हित मानता है कि मेरा कर्तव्य है, मुझे करनेयोग्य है और उससे मुझे धर्म होगा—ऐसी कामजनित सुखबुद्धि मिथ्यादृष्टि की है। चाहे तो स्त्री छोड़कर ब्रह्मचारी हो—बालब्रह्मचारी हो, हजारों रानियाँ छोड़कर रहा हो, तो कहते हैं कि उसने कुछ छोड़ा नहीं जरा भी। पण्डितजी! क्योंकि वह सब संयोग का कारण बन्ध है और बन्ध का कारण पुण्य-पाप का भाव है। तो जिसे भाव की रुचि और इच्छा है, (उसे) सारी दुनिया की इच्छा पड़ी है अन्दर में। आहाहा! समझ में आया? गजब बात! जगत को तो ऐसा कठिन पड़े न! नेमिचन्दजी! अन्दर आओ, अन्दर। पुस्तक बड़े प्रेम से प्रकाशित की है। बिहार के हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, नेमिचन्दजी! वीतराग का ऐसा मार्ग है।

अपना निजानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि, रुचि अनादि से छोड़कर, जिसकी पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् राग में रुचि और प्रेम है, वह कामजनित सुख की अभिलाषावाला है। उसको आत्माजनित आनन्द का अनादर है। समझ में आया? देखो! दिगम्बर मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले हुए थे। उनके पहले (हुए) कुन्दकुन्दाचार्य का श्लोक है। वह दो हजार वर्ष पहले का है। संवत् ४९। पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर सन्त वनवासी उन्होंने यह कलश बनाया है। समझ में आया? आहाहा! **कामजनित सुख के लिये...** आहाहा! अभिलाषा राग और पुण्य और पाप की है, उसकी इच्छा है, उसे सारे जगत की चीज़ों की इच्छा अन्दर पड़ी है। ऐसा मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव कामजनित सुख के लिये... पर में कुछ ठीक है, पुण्यभाव में ठीक है—ऐसे **कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर...** देखो! उसकी बुद्धि में अकेली आकुलता है। आहाहा!

कहा न वह, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो..' छहढाला में आता है।

मुनिव्रत धार अनन्त बार... पंच महाव्रत का विकल्प, २८ मूलगुण पालन किये, परन्तु कहते हैं कि दु:खी है। धूल भी नहीं। खाने में-पीने में यह सेठियाओं कों बहुत अनुकूल मिले। गर्म-कर्म रोटी सीधे। दु:खी हैं बेचारे यह तो। ऐ रतनलालजी! यहाँ तो ऐसी बात है। आत्मा में आनन्द है, ऐसी जब तक रुचि न हो और अनुभव न हो, तब तक मिथ्यादृष्टि पर में सुख मानता है। यह बात यहाँ तो है। समझ में आया?

आकुल मतिवाला होकर... भाषा कैसी ली है! एकेन्द्रिय से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' पंच महाव्रत पालन किये, २८ मूलगुण पालन किये, वह सुख नहीं, ऐसा कहते हैं, दु:ख है। आहाहा! राग है। अर्थ करना आवे नहीं। ढाल... ढाल... छहढाला कण्ठस्थ बहुत करे पाठशाला में। ऐ पण्डितजी! छहढाला सीखा होगा और दूसरे को सिखावे। परन्तु क्या है उसमें? मुनिव्रतधार... मुनिव्रतधार ग्रैवेयक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना लेश सुख... परन्तु मुनिव्रत धारे, यह दु:ख है। व्रत के परिणाम दु:ख हैं। अव्रत के भाव भी दु:ख हैं, (क्योंकि) विकल्प है—राग है। समझ में आया भैया? ऐसी बात है यहाँ। कठिन पड़े, ऐसी है। राग-विकल्प है। मुनिव्रत धार... मुनिव्रत अर्थात् पंच महाव्रत, २८ मूलगुण। आतमज्ञान बिना लेश सुख न पायो। उसका अर्थ क्या हुआ? राग से रहित अपने अनुभव बिना आनन्द का अंश भी आया नहीं, तो वह दु:ख था। कठिन पड़े जगत को। सुना नहीं कभी कि क्या चीज़ है। ऐसे और ऐसे...

यहाँ तो कहते हैं, अनादि से अज्ञानी जीव **कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है।** उसका जीवन ऐसा है। आहाहा! धन्य रे अवतार! समझ में आया? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, ज्ञान की मूर्ति प्रभु में सुख है—ऐसा सम्यग्दर्शन हुए बिना, पर में सुख मानकर आकुलित मतिवाला होकर जी रहा है। आहाहा! अज्ञानी का आकुलित मतिवाला जीवन है, ऐसा कहते हैं। यह गजब बात है! मुनिव्रत पालन करे तो (भी) आकुलित मतिवाला दु:खी है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि व्रत विकल्प है। उससे रहित आत्मा अनादि-अनन्त आनन्दकन्द प्रभु है, ऐसा आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट न किया तो थोड़ा भी उसको सुख नहीं, परन्तु दु:ख है। वापस सुख भले न हो।

छहढाला में आता है या नहीं? देखा है या नहीं? उदयपुर। छहढाला नहीं

आयी? छहढाला में आता है। दौलतरामजी, नहीं? दौलतरामजी की छहढाला है। नेमिचन्दजी! दौलतरामजी की छहढाला में आता है। 'मुनिव्रतधार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो..' तो भी लेश सुख नहीं पाया तो क्या किया? मुनिव्रत पालन करे, वह सुख नहीं, वह तो राग विकल्प है। आहाहा! अमरचन्दभाई! ...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...का स्थान क्या है, वह तो राग है, बन्ध की चीज़ है। उसको ही धर्म मानकर किया तो आकुलित मतिवाला होकर जी रहा है। पंच महाव्रत का पालनेवाला, २८ मूलगुण पालनेवाला आकुलितमति होकर जी रहा है। उसको आत्मज्ञान... विकल्प से पार अन्दर चिदानन्द भगवान भिन्न है, ऐसा जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक सब प्राणी दुःखी हैं। समझ में आया? सुजानमलजी! इसमें इनकार कौन करे? दो और दो = चार जैसी चीज़ है। दो और दो, चार होते हैं या दो और दो, तीन होते हैं या दो और दो, पाँच?

यहाँ तो एक लाईन में छहढाला में ऐसा लिया है। मुनिव्रतधार, अनन्त बार... अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, आतमज्ञान बिना... मुनिव्रत हो, परन्तु आतमज्ञान नहीं था। समझ में आया? शुभभाव था। शुभभाव से रहित मेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनन्द, ज्ञाता-दृष्टा का भण्डार है, ऐसी दृष्टि के भान बिना, स्पर्श बिना वह पंच महाव्रत पालनेवाला प्राणी भी दुःखी है, आकुलित मतिवाला होकर जी रहा है और यह सेठिया भी आकुलित मतिवाला होकर जी रहा है। दोनों समान हैं। पैसे बिना का ही अनादि का रहा है। सुनो! एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अभाव है तो वह चीज़ टिक रही है। आत्मा की चीज़ में लक्ष्मी की—अजीव की तो नास्ति है। एक में दूसरे का अभाव है तो वह टिक रहा है। तो लक्ष्मी बिना ही आत्मा टिक रहा है। अरे! उसके बिना तो ठीक, परन्तु पुण्य-पाप के विकल्प बिना टिक रहा है। आहा! आत्मा अर्थात् शुद्ध चिदानन्दमूर्ति, अनाकुल आनन्दकन्द। समझ में आया?

पुण्य-पाप का विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। वह आत्मतत्त्व कहाँ हुआ? वह निश्चय से तो अजीवतत्त्व है, जीवतत्त्व नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प, वह जीवतत्त्व नहीं, आस्रवतत्त्व, अजीव है। आहाहा! अरे! वीतराग क्या कहते हैं, यह कभी सुना ही नहीं

और हम जैन हैं। क्या? दिगम्बर जैन हैं। दिगम्बर जैन तो यह कहते हैं। समझ में आया? दिगम्बर जैन का अर्थ क्या? कि जिसमें—आत्मा में पुण्य-पाप की वृत्तिरूपी कपड़ा नहीं, ऐसा दिगम्बर भगवान आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन करना, उसका नाम दिगम्बर जैन है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात गजब करते हैं! यहाँ तो पाप-पुण्य के अघ में लिया है। अपना स्वरूप भगवान अनाकुल आनन्दस्वरूप से बाहर बुद्धि निकलना—परिणाम—बहिर्मुखी परिणाम (होना), वह सब आकुलता, भट्टी है—अग्नि है।

'राग दाह...' क्या है? 'राग आग दहै...' वह भी उसमें है—छहढाला में है। 'राग आग दाह...' तो शुभराग भी आग-दाह है। अशुभराग भी आग-दाह है। छहढाला में बहुत भर दिया है। पहले के (पण्डित) दौलतरामजी। अर्थ समझे नहीं और पहाड़े बोले जाये। नेमिचन्दजी! गम्भीर है। पहले के पण्डित, गृहस्थ, दिगम्बर सन्तों की अलौकिक बात है। यह दिगम्बर धर्म तो अनादि सनातन जैनदर्शन है, वह कोई वाड़ा सम्प्रदाय नहीं है। समझ में आया? उसके साथ दूसरे को मिलाना, तीन काल में नहीं मिल सकता। ऐसी बात की कथनी, पद्धति का भाव कहीं है नहीं। सुजानमालजी! क्या...? श्वेताम्बर में थे न अभी तक। सादड़ी में श्वेताम्बर का जोर है। आहाहा! भगवान... यहाँ तो क्या कहा? गजब बात करते हैं! भाई!....

आत्मा ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव किये बिना, उसकी दृष्टि में सन्मुख होकर पूर्णानन्द का स्वीकार किये बिना, अपने से विमुख—बहिर्मुखी पुण्य और पाप है, वह बहिर्लक्षी, बहिर्मुखीभाव है। उसके करते-करते आकुल मतिवाला होकर जीता है—जीवित है। आहाहा! गजब बात की है। अरे भीखाभाई! है या नहीं उसमें? मर गया है यह, परन्तु जीता है ऐसे आकुलता के भाव में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? न्याय से समझना। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा का वीतरागमार्ग है। यह कोई कल्पित अनुमान से ऐसा हो, ऐसा हो—ऐसी बात नहीं है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमात्मा, जिसने एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक देखे और वाणी आयी इच्छा बिना, उसके आगम में ऐसा कहा है (और) ऐसी बात है। आहाहा! पुण्यभाव जो महाव्रतादि हैं, वह मुझे लाभदायक (है, ऐसा) मानता है, वह भगवान को मानता नहीं, आगम को मानता

नहीं, आत्मा को मानता नहीं और दुःख को मानता है। न्याय से तो लेना पड़ेगा या नहीं कि न्याय से क्या चीज़ है? समझ में आया? आहाहा!

अधिक वजन यहाँ है। **कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला होकर जी रहा है।** आहाहा! दुःख में—पुण्य-पाप के भाव में ठीक है, वह मेरी चीज़ है—ऐसा माननेवाला बाह्य से भले नग्नमुनि हो, वस्त्र का टुकड़ा भी न हो बाहर में, परन्तु अन्दर में पुण्य-पाप का परिणाम अपना है, हितकर है, सुखरूप है—ऐसा माननेवाला आकुलित मतिवाला होकर जीता है। अमरचन्दभाई! वरना करो न्याय। यहाँ कहाँ गुप्त बात है? समझ में आया? यहाँ गुप्त—खानगी बात नहीं (रखी), प्रसिद्ध कर दिया है कुन्दकुन्दाचार्य ने। भगवान का मार्ग ऐसा है। प्रसिद्ध है, सिद्ध प्रसिद्ध हैं, ऐसा मार्ग प्रसिद्ध है। समझ में आया? आहाहा!

पंच महाव्रत परिणाम... पंच महाव्रत तो धर्म है, अव्रत वह अधर्म है। महाव्रत धर्म हो तो अनन्त बार क्यों किया? समझ में आया? ऐसी पंच महाव्रत की क्रिया तो अनन्त बार की है। नौवें ग्रैवेयक ३१ सागर (के लिये) अनन्त बार गया, क्यों सुखी नहीं हुआ? आत्मज्ञान बिना लेश सुख नहीं पाया, ऐसा कहा। बराबर है या नहीं? किया नहीं। आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प के दुःख से भिन्न है, मेरे आनन्दस्वरूप से मैं भरा पड़ा हूँ, ऐसा अनुभव, दृष्टि की नहीं (तो) दुःखी रहा है, दुःख से जीवन व्यतीत कर रहा है। सेठिया पैसे में मौज-मजा मानते हैं, वे दुःखी हैं और त्यागी होकर महाव्रत का परिणाम—राग को अपना मानता है, वह भी दुःखी है। दोनों दुःखी हैं। रतनलालजी! यहाँ तो गुप्त बात नहीं है। दोनों को मिथ्यात्व समान। आहाहा!

कहते हैं, अरे प्रभु! वीतराग सन्त क्या कहते हैं, ऐसी वाणी दिगम्बर जैन के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! हो नहीं सकती। सनातन सत्य, वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग, वह दिगम्बर एक ही सत्य है। परन्तु इस रीति से दिगम्बर, हों, बाह्य दिगम्बर (वेश) हो जाए, वह नहीं। अन्दर में पंच महाव्रत का विकल्प भी राग और दुःखरूप है। मेरी चीज़ उससे भिन्न हो, ऐसा अनुभव करे, सम्यग्दर्शन हो तो वह दिगम्बर जैन—पहले धर्म की शुरुआतवाला होता है। पश्चात् स्वरूप में लीन, आनन्द

प्रगट करके, बहुत आनन्द प्रगट करके, प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द में मस्त होता है, वह मुनि होता है। समझ में आया?

वह मुनि हो तो उसका शरीर नग्न-दिगम्बर ही होता है। उसको वस्त्र-पात्र रहे और मुनि का दिगम्बर भाव रहे, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? कि भाई! मुनिपना तो आया है, परन्तु वस्त्र-पात्र अभी रखते हैं। तीन काल में बनता नहीं ऐसा। समझ में आया? और वस्त्र-पात्र छोड़ दिया, इसलिए दिगम्बर मुनि हुआ—ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अरे! वीतराग का पंथ इन्द्र मानते हैं, गणधर अनुभव करते हैं, सन्त अनुभव करते हैं, समकिती अन्तर में इतने अंश में भी अनुभव करते हैं कि यही मार्ग है। यह कोई दो-पाँच व्यक्तियों का मार्ग है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं?

कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला... आहाहा! अन्दर में अभिप्राय में विपरीत तत्त्वार्थश्रद्धान, वह मिथ्यादर्शन। ऐसा आता है या नहीं? विपरीत श्रद्धा का अभाव, वह सम्यग्दर्शन। यह तो विपरीत श्रद्धा हुई। पुण्य का परिणाम विभाव है, विकृत है, दुःख है, उसको सुख माना और धर्म का कारण माना तो मिथ्यात्वभाव है—विपरीत श्रद्धा है। भारी कठिन पड़े, हों! अधिक लोगों में... यहाँ तो जंगल है। यह मार्ग है। यहाँ कोई पक्ष और वाडा नहीं। वाडा पंथ नहीं, वीतराग का मार्ग यह है। समझ में आया? आहाहा! अरेरे! भगवान आत्मा का जीवन छोड़कर... भगवान आत्माका जीवस्वभाव तो आनन्द और ज्ञान और शान्ति... शान्ति, वीतरागता है। उसका अनुभव किये बिना आकुलता मतिवाला होकर जीवन है। आहाहा!

अरे! निवृत्ति इतनी करते तो हैं? राग पुण्य-परिणाम मेरा है, ऐसा मानता है (तो) निवृत्ति है नहीं जरा—बिल्कुल। प्रवृत्ति को ही आत्मा मानता है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने निजानन्दस्वरूप के भान बिना अज्ञान से अपना स्वभाव त्रिकाली... त्रिकाली... त्रिकाली... त्रिकाली स्वभाव... ओहोहो! त्रिकालपना सिद्ध करते हैं। ऐसा त्रिकाली आनन्द और ज्ञानादि स्वभाव से विपरीत एक क्षण का पुण्य और दया, दान, व्रत भक्ति का परिणाम—एक समय का खण्ड, उसको अपना माना और उससे मुझे धर्म होगा, (ऐसा माना), यह मिथ्यादृष्टि मूढ़ कामजनित आकुलबुद्धिवाला

(होकर) जीवन व्यतीत कर रहा है। उसका धर्मजीवन है नहीं। बिल्कुल नहीं? ईश्वरचन्दजी! क्या है यह? ऐसा मार्ग कठिन! छोड़ो, स्त्री-पुत्र छोड़ दो, व्यापार छोड़ दो, आ जाओ हमारे में। ऐई जेठाभाई!

अभी आया नहीं था वह? माया गरुड़। अभी आया था। कोई साधु है श्वेताम्बर साधु अहमदाबाद में। उसने कहा, भैया! मोक्ष से विरुद्ध माया है, तो माया छोड़ दो। एक यहाँ का परिचयवाला क्षत्रिय बैठा था, खत्री। क्षत्रिय समझते हो? जमींदार, राजपूत। यहाँ का है। कक्षा (शिविर) में आता है। पच्चीस हजार की आमदनी है। यहाँ पढ़ता है, आता है बारम्बार, बहुत रस है यहाँ का। वह बैठा था ... अहमदाबाद में भाषण हुआ। उसने कहा, महाराज! माया तो जड़ है। क्या जड़ आत्मा को रोकती है? ऐसा बोला। यहाँ का परिचयवाला है। गरासिया समझे? गरासदार—जागीरदार। वह बैठा था। परिचय बहुत किया है, वाँचन बहुत है। समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक घर पर पढ़ते हैं।

उसने कहा, मोक्ष से विरुद्ध माया है। माया छोड़ दो, भैया! तो मोक्ष होगा। क्या है महाराज? माया किसको कहते हैं? माया तो अचेतन है, पर है, जड़ है। वह आत्मा को रोकती है? अपने स्वरूप का अज्ञान आत्मा को रोकता है, ऐसा कहा। और जीव और जड़ के भेदज्ञान बिना अज्ञान से आत्मा रुलता है। ऐसे दो बोल कहे वहाँ अहमदाबाद में श्वेताम्बर की सभा में। धंधुका के पास तरवारा का है। यहाँ आता है। क्षत्रिय है, जागीरदार। उसको अभ्यास है। अभ्यास है तो ऐसा बोला साधु को—आचार्य को। क्या माया आत्मा को रोकती है?

वह आता है न चन्द्रप्रभ भगवान (की पूजा की जयमाला में)? 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' नेमिचन्दभाई! आता है न, परन्तु कौन अर्थ करे परन्तु वहाँ? भक्ति आती है न चन्द्रप्रभ भगवान की, उसमें आता है। 'कर्म बिचारे कौन...' जड़ कौन है जगत में? 'भूल मेरी अधिकाई...' मैं ही अनादि से पुण्य को अपना धर्म मानकर मिथ्यात्व से, अज्ञान से रुला हूँ; कर्म-फर्म क्या है? वह तो जड़ है। आता है? कर्म जड़ है। है, वह है, परन्तु उसमें यहाँ क्या आया? कर्म बेचारा कहाँ आत्मा को नुकसान करता है? 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात, लोह की संगति पाई।'

अग्नि अकेली है तो घन नहीं पड़ते। लोहे में जाती है तो (घन) पड़ते हैं। अकेले आत्मा को दु:ख नहीं होता। आत्मा कर्म का संग करता है, कर्म से नहीं कुछ, संग करता है। उससे अज्ञान और राग-द्वेष उत्पन्न करता है तो चार गति में घन—दु:ख सहन करना पड़ता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पैसवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसावाला कौन था? धूल में भी कोई नहीं। पैसावाला... पैसा अर्थात् जड़। जड़वाला? रतनलालजी! चेतन में तो चेतन है, उसमें जड़वाला कहाँ से आया? पैसवाला... पैसा अर्थात् अजीव, अजीववाला जीव ऐसा? वह तो चलता है यहाँ। पुण्य-पाप विकारवाला... विकारवाला जीव, ऐसा है? पुण्य-पाप तो विकार है, विकृत है, उसकावाला जीव? जीव तो, निर्विकारी चिदानन्दस्वभाव, वह जीव है। समझ में आया? परन्तु अब उसकी इच्छा थोड़ी-थोड़ी हुई है। यह कमाने में पुरुषार्थ किया न, ... जैतपुर आये थे। उसके बड़े भाई... अरे! यह करे और लगे... बाकी तो हैरान... हैरान है जगत। व्यापार-व्यापार... आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना का महाव्रत का परिणाम, यह सब व्यापार—दु:ख का व्यापार है। अरे! वीतराग त्रिलोकनाथ का कहा हुआ दिगम्बर सन्त कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो वहाँ तक कहा, भगवान ने वहाँ तक कहा कि भगवान की भक्ति—त्रिलोकनाथ परमात्मा की भक्ति शुभराग है और शुभराग से मुझे लाभ होगा, वह मिथ्यादृष्टि है, आकुलतावाली मति-बुद्धि से जीता है, ऐसा कहते हैं। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव भगवान ऐसा कहते हैं... हमारी भक्ति... हम परद्रव्य हैं। परद्रव्य अनुसार तो राग होगा और यह राग तेरा है और राग से धर्म का लाभ होगा, ऐसी मान्यतावाला जीव आकुलित मतिवाला होकर जीता है दु:खी होकर (जीता है)। कठिन बातें, भाई! धन्धा उठावे तूफान... ऐसा, बापू! तुम्हारे घर में रखो। मार्ग यह है। समझ में आया?

लो, यह लम्बा चला आज। यह भाई आये हैं न रतनलालजी, तो थोड़ा-थोड़ा विस्तार किया इसका। १८ वर्ष में आये हैं, लो। रुपये में वहाँ कलकत्ता प्रतिदिन जाता हो। कहो, समझ में आया? जादवजीभाई! तुम तो पहिचानते होंगे। नहीं? वच्छराजलाल

वहाँ कलकत्ता। बड़ा... वच्छराजलाल अपने। वह भी बड़ा व्यापारी है कलकत्ता। पैसेवाला है, लेन-देन का धन्धा है हुण्डी का। हुण्डी न? यह कौन लेन-देन करे? गजब बात है। विकल्प का धन्धा आत्मा करे ऐसा माने तो दु:खी प्राणी है, ऐसा कहते हैं। पण्डित को यह मान्य है? यह बात पण्डित को मान्य है?

कामजनित सुख के लिये आकुल मतिवाला... आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसमें आड़ मारी उसने। राग का—मन्द कषाय का कण, उसकी जिसे रुचि और प्रीति है, वही आकुलमति से जीनेवाला है। भगवान आत्मा का जीवन नहीं, वह तो अनात्मा का जीवन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! कहो, भीखाभाई! इसमें कहीं इनकार किया जाये ऐसा नहीं है। न्याय से तुलना तो करेगा या नहीं? यहाँ कहाँ बड़ी संस्कृत-व्याकरण की आवश्यकता पड़ती है? वस्तु क्या है? आत्मा चीज़ किसको कहते हैं, भगवान?

आत्मा इसको कहते हैं कि अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञान, अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञान, उसका नाम आत्मा। और दया, दान, व्रत परिणाम, वह आत्मा नहीं; वह तो आस्रवतत्त्व है। शरीर, वाणी, मन, कर्म, वह तो अजीवतत्त्व है। नौ तत्त्व है या नहीं? या नौ एक ही हैं सब? अजीवतत्त्व है, यह शरीर, लक्ष्मी, मिट्टी, यह धूल, यह सब अजीवतत्त्व है और अन्दर दया, दान, व्रत का परिणाम—पुण्यपरिणाम उठे, वह आस्रवतत्त्व है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, काम-क्रोध और वहाँ कमाने के—कमाने का भाव, ब्याज प्राप्त करने का भाव, यह पापतत्त्व है। समझ में आया? और पुण्य-पाप के तत्त्व से भगवान भिन्न तत्त्व है। नहीं तो दोनों एक हो जाते हैं, नौ रहते नहीं। नौ(पने) नौ पृथक् रहे तो नौ कहने में आते हैं। एक हो जाये तो नौ कहाँ से रहे? समझ में आया? कठिन बात, भाई!

प्रभु! तेरा जीवन तो आनन्द से होना चाहिए, कहते हैं। क्योंकि तुझमें आनन्द जीवन्त पड़ा है। आहाहा! जीव का स्वभाव, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द है न तेरे जीवस्वभाव में तो। अतीन्द्रिय आनन्द का आश्रय करके, अतीन्द्रिय आनन्द पर्याय में प्रगट करके जीवन जीना, उसका नाम जैन और जीवन को धर्मजीवन कहने में आता है। समझ में आया? और पुण्य-पाप से—राग से जीवित है, वह दु:खी जीवन है और दु:ख में डूबा

हुआ है। दुःखी कहते हैं तुम सबको। सच्ची बात है ? दुनिया तो ऐसा कहे कि यह अभी...

पन्नालालजी कहते थे वहाँ कलकत्ता में। हमारे पैसे गये और हमारे बाबाजी ने पैसे सम्हाले, इसलिए रह गये। कहाँ गये उल्लासीबेन ? पन्नालाल बहुत कहते थे वहाँ। वहाँ गजराजजी थे। फिर बोले। कलकत्ता में व्याख्यान में बोले, हों! महाराज! यह बाबाजी (दादा) वहाँ पैसा खर्च करते हैं न सोनगढ़ में, तो बाबाजी का पैसा रह गया। वह तो पुण्य था तो रह गया। यहाँ तो पैसा हो या न हो, उसके साथ सम्बन्ध क्या आत्मा का ? वह जड़ की चीज़—अजीव की चीज़ के साथ आत्मा को सम्बन्ध है ही नहीं। सम्बन्ध है तो राग-द्वेष के साथ। आत्मा निमित्त और राग-द्वेष नैमित्तिक। यह सम्बन्ध मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सम्बन्धरहित की चीज़ अबन्ध (स्वभावी) है आत्मा तो। आहाहा! समझ में आया ?

अबद्धस्पृष्ट है न वह। आत्मा तो अबद्धस्पृष्ट है। राग से बन्ध है, ऐसा मानना, वह व्यवहारनय है और वह व्यवहारनय अभूतार्थ है, उसको (भूतार्थ) मानना, मिथ्यात्व है। आहाहा! अब, **कभी...** अब सुलटा आया। **कभी भव्यत्व द्वारा...** अनन्त काल से ऐसा अज्ञान में जी रहा है प्राणी। साधु हो या त्यागी हो, परन्तु आत्मा के भान, ज्ञान बिना—अनन्त आनन्दस्वरूप मैं, ऐसे अनुभव बिना दया, दान, व्रत का, विकल्प का कर्ता होकर, दुःखी होकर जीता है। यह ... निकल जाये ऐसा है। ऐसा कि, विदेहक्षेत्र की यह बात है, ऐसा कहते हैं। **कभी...** ओहोहो! यह अज्ञान से ऐसे जीते हैं (और) जब सम्यग्दर्शन के योग्य हुआ... आहाहा! **भव्यत्व द्वारा...** अपनी पवित्रता प्राप्त करने के योग्य हुआ **शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,...** जितना काल—अनन्त काल संसार में जिया, इतना काल धर्म की प्राप्ति में (जायेगा) नहीं, उसको अल्प काल में मुक्ति होगी ?

जिसको सम्यग्दर्शन हुआ... समझ में आया ? भव्यत्व द्वारा... भव्य परिपाक द्वारा... भव्य जीव है न वह। उसके परिपाक द्वारा भव्यत्व—भव्यपना... उस द्वारा शीघ्र मुक्ति... ओहो! मैं तो आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ऐसी ज्ञान की शक्ति और आनन्द की शक्ति का भण्डार पूर्ण हूँ। मुझमें राग तो नहीं, परन्तु मुझमें वर्तमान एक समय की पर्याय का भी रहितपना है। आहाहा! द्रव्य है न त्रिकाली। त्रिकाली ज्ञायकभाव

में, दया-दान का विकल्प जो आस्रव है, वह तो नहीं। एक समय की पर्याय व्यवहार-आत्मा—अनात्मा है, व्यवहार है, तो वह भी मैं नहीं। मैं तो त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव अनादि-अनन्त सत्त्व हूँ, अन्त:तत्त्व मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया?

भव्यत्व द्वारा शीघ्र मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,... क्योंकि मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप परमात्मा स्वयं—निजस्वरूप, ऐसी जहाँ दृष्टि, अनुभव हुआ, तो मुक्तस्वरूप है, वह पर्याय में अल्प काल में मुक्त हो जायेगा। समझ में आया? और सुख... **मुक्तिसुख को प्राप्त करता है,...** वह (राग) दु:ख है। आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ, अपना पूर्णानन्द का अन्तर स्वीकार हुआ और पुण्य-पाप के विकार का अभाव दृष्टि में हुआ (अर्थात्) उसको हेय जानकर स्वरूप को उपादेय जाना... आहाहा! तब **शीघ्र मुक्तिसुख को...** अल्प काल में अमृतस्वरूप मुक्ति प्राप्त होगी। उसको संसार रहेगा नहीं। उसको मुक्तिसुख का जीवन प्राप्त होगा, ऐसा कहते हैं। गजब बात! समझ में आाय? व्याख्या करते हैं। कभी अर्थात् किसी काल में। अनादि काल से तो यह भटकता है, ऐसा। जब उसकी पात्रता के काल में प्रगट करेगा, ऐसा। अनादि तो यह है न। कभी अर्थात् किसी काल में—कभी, ऐसा। समझ में आया?

अनादि से अज्ञान और दु:खी होकर जीता है। कभी अर्थात् उसकी दृष्टि छोड़कर अपना आत्मा राग से रहित है, पुण्य से रहित है, शरीर-कर्म से रहित है, एक समय की पर्याय से भी वस्तु तो रहित है। ऐसी जहाँ अन्तर्दृष्टि में अनुभव आया, शीघ्र काल में केवलज्ञान लेकर मुक्ति होगी। समझ में आया? **उसके पश्चात्...** सिद्धपद—मुक्तिसुख को प्राप्त हुआ... वह अल्प लिया। भव्यत्व द्वारा, बस इतना। भव्यत्व अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की योग्यता की प्राप्ति हुई, ऐसा। समझ में आया? भव्य जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त है, प्राप्ति के योग्य है। परन्तु 'भव्यत्व' का अर्थ ऐसा लिया (कि) आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु का अनुभव करके सम्यग्दर्शन हुआ, उसका ज्ञान करके आतमज्ञान हुआ, उसमें लीनता करके चारित्र हुआ—तीनों भव्यत्वभाव हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा धर्म किसी को बैठता होगा? वह तो कहे कि अपवास करो, दसलक्षणी पर्व करो, सोलहकारण भावना करो, उसका महोत्सव करो। यह सब शुभभाव

है। पाप से बचने को होता है, परन्तु वह धर्म नहीं है। समझ में आया?

भव्यत्व द्वारा... ओहो! अपने मोक्ष के मार्ग की योग्यता द्वारा... जिसने मोक्षमार्ग प्रगट किया। जिसने निमित्त और राग और पर्यायदृष्टि छोड़कर, वस्तु त्रिकाली की दृष्टि प्रगट की—ऐसा भव्यत्वभाव द्वारा शीघ्र मुक्ति को प्राप्त होता है। असंख्य समय में केवलज्ञान होगा। उसको अनन्त समय लगेगा ही नहीं, ऐसा कहते हैं। पीछे दो-चार-पाँच भव हो, तो भी असंख्य समय (होंगे), अनन्त समय नहीं। स्वर्ग में जाओ ३३ सागर (के लिये) तो भी असंख्य समय हैं। तैतीस सागर अनन्त समय नहीं। समझ में आया? भटकने में तो अनन्त समय गये, अनन्त काल गया और मुक्ति का मार्ग प्राप्त करे तो असंख्य समय में केवलज्ञान प्राप्त होगा, होगा और होगा। दूज उगी वह पूर्णिमा होगी, होगी और होगी। तेरह दिन की देरी है। दूज से पूर्णिमा—तेरह दिन में पूर्णिमा होगी। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा बोधिबीज जहाँ प्रगटा, अन्तर आनन्दकन्द मैं हूँ, मैं पुण्य भी नहीं, पाप भी नहीं, शरीर नहीं, कुछ नहीं—ऐसा दृष्टि में अनुभव हुआ तो बोधिबीज हुआ। बोधिबीज हुआ, (चन्द्र की) दूज उगी, ऐसी दूज उगी। उगी कहते हैं न? क्या कहते हैं? उदय हुआ। दूज का उदय हुआ, तो पूर्णिमा होगी, होगी और होगी। ऐसे केवलज्ञान पूर्ण उसको प्राप्त होगा, होगा और होगा। समझ में आया? कैसा है मुक्तिसुख? **ऐसा अनन्य...** आहाहा! कहीं स्वर्ग के सुख में भी उसकी गन्ध नहीं। अनन्य-अन्य सुख आत्मा। **अनुपम**—उस सुख की कोई उपमा नहीं। यह दुनिया के सुख तो जहर हैं। आत्मा का सुख—मुक्ति के सुख की क्या उपमा? परिपूर्ण है। मोक्ष में ही सुख है, अनन्य सुख है, अनुपम सुख है, परिपूर्ण सुख है। ऐसा **सिद्ध चलित नहीं होता।** समझ में आया?

फिर उस एक को छोड़कर वह सिद्ध चलित नहीं होता। (उसे प्राप्त करके उसमें आत्मा सदाकाल तृप्त-तृप्त रहता है,...) वह दुःखी होकर रहता है? आनन्द में तृप्त होकर रहता है—ऐसी दो बातें हैं। आहाहा! **(उसमें से कभी च्युत होकर...)** मुक्ति प्राप्त की, वह कभी च्युत होकर **(अन्य सुख प्राप्त करने के लिये आकुल नहीं होता)।** अनाकुल आनन्द में कभी आकुलता करता नहीं। उसका नाम मोक्षमार्ग और उसका नाम मार्ग का फल कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १, मंगलवार, दिनांक - ०५-१०-१९७१
गाथा-१३१-१३२, श्लोक-२१८, प्रवचन-१४५

यह नियमसार, परम-समाधि (अधिकार)। सामायिक किसे कहना, इसका अधिकार है। सामायिक अर्थात् समाधि।

मुमुक्षु : समाधि अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : समाधि अर्थात् आनन्द का प्रगट होना। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उस अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होना, इसका नाम समाधि। समाधि अधिकार है न! बात एक बार की थी। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित, वह समाधि। उपाधि अर्थात् संयोगी चीज़ से रहित, व्याधि अर्थात् शरीर में रोग आवे, वह व्याधि, उससे रहित और आधि—संकल्प-विकल्प शुभ और अशुभराग, यह आधि; शरीर की व्याधि; संयोग की उपाधि—तीन से रहित वह समाधि।

मुमुक्षु : आधि हो तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहाँ कहा इसमें? उससे रहित है। व्याधि हो शरीर में, संकल्प-विकल्प हो या उपाधि हो—उससे रहित आत्मा है। उससे रहित आत्मा परम शान्तरस का सरोवर—सागर है वह। आहाहा! उसमें एकाग्र होने से जो अतीन्द्रिय आनन्द आवे, उसे यहाँ सामायिक कहते हैं। सामायिक करो... सामायिक करो, ऐसा नहीं कहते? सामायिक करे न यह सब सवेरे-शाम। समझे बिना की सामायिक कैसी? आत्मा कौन है, किसमें स्थिर होना और स्थिर होने से क्या होता है—इसकी खबर नहीं होती और सामायिक कहाँ से आयी? कहो, भीखाभाई! सामायिक तो की होगी न सब? आहाहा! समाधि कहो या निश्चय मोक्षमार्ग कहो। सच्चा मोक्षमार्ग नियमसार है न। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्दस्वरूप, परिपूर्ण, अनुपम है, अनन्य है—दूसरा ऐसा स्वभाव कहीं नहीं है। ऐसा जो अपना स्वभाव, उसमें एकाग्र होना और दूसरे से उपेक्षा करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग, धर्म की दशा, इसका नाम सामायिक और

समाधि कहते हैं। समझ में आया? १३२-१३२ गाथा।

जो दु हस्सं रई सोगं अरतिं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे ॥१३१॥
जो दुगंछा भयं वेदं सव्वं वज्जेदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे ॥१३२॥

नीचे, हरिगीत नीचे। **जो नित्य वर्जे हास्य को...** यहाँ 'नित्य' पर वजन है।

जो-नित्य वर्जे हास्य, अरु रति, अरति, शोकविरत रहे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१३१॥
जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे।
स्थायी समायिक है उसे, यों केवली शासन कहे ॥१३२॥

टीका:—यह नौ नोकषाय की विजय द्वारा... नौ नोकषाय। नाम आयेंगे नीचे। **प्राप्त होनेवाले सामायिकचारित्र के स्वरूप का कथन है।** देखो! यहाँ चारित्र लिया। अन्यत्र 'सामायिक व्रत' कहा था। यह निश्चय... निश्चय व्रत कहो, चारित्र कहो, समाधि कहो, आहाहा! वीतरागपरिणति कहो, मोक्षमार्ग कहो, प्रायश्चित्त कहो—यह सब एक है। आहाहा! **नौ नोकषाय की विजय द्वारा...** नौ नाम देंगे नीचे। उनकी विजय अर्थात् त्याग द्वारा—अभाव द्वारा **प्राप्त होनेवाले सामायिकचारित्र...** समता... समता... समता।

आत्मा समता का रस है, समता से परिपूर्ण भरपूर पदार्थ है। उसमें एकाग्र होने से जो समता प्रगट हो... सम-आय... सम अर्थात् समता, आय अर्थात् लाभ। सामायिक है न? समता का लाभ। 'इक' प्रत्यय है। वीतरागता का, आनन्द का, शान्ति का, अकषायभाव का लाभ हो, उसका नाम सामायिक कहते हैं। अरे! सामायिक... कहो, धीरुभाई! ऐसी सुनी थी नागनेश में? कभी नहीं? अभी तो भाई आये हैं। लो, वहाँ ब्रजलालभाई वाँचते हैं। आहाहा! यह सामायिक, इसका नाम धर्म, इसका नाम सच्चा मोक्ष का मार्ग। लो, मूलचन्दभाई! ऐसा है।

मोहनीयकर्मजनित... अब वर्णन करते हैं नौ बोल। क्योंकि विकार है, वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं, वह तो मोहकर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ विभावभाव है—

विकारभाव है। कौन? कि **स्त्रीवेद...** वासना **पुरुषवेद...** पुरुष के वेद की विकार की वासना। **नपुंसकवेद...** स्त्री-पुरुष दोनों को इच्छे, ऐसा नपुंसकभाव—वासना। यह पहले लिया है। उसमें अन्तिम था यह। दूसरी गाथा में 'वेदं' यह पहले लिया पूरी गाथा इकट्ठी करके। यह तीन—स्त्री-पुरुष-नपुंसक के वेद की वासना, वह विकार है, वह विषमभाव है, वह दुःखरूप भाव है। आत्मा के आनन्द के आश्रय से प्रगट हुई शान्ति और आनन्द (द्वारा) उसे वह जीते अथवा छोड़े, उसे सामायिक होती है। गजब सामायिक की व्याख्या! समझ में आया?

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद—तीन। **हास्य...** और **रति...** हास्य होता है न? कुतुहलता, मजाक, वह विकार है। **रति**—प्रसन्न होना, वह भी विकार है। **अरति**—खेद होना, वह भी विकार है। **शोक...** पुत्रादि के मरण से अन्दर में होनेवाला शोक। **भय...** त्रास होना, कोई प्रतिकूल भूत आदि के देखने से अन्दर में त्रास हो, कठोर रोगादि आवे, और त्रास हो। **जुगुप्सा**—ग्लानि। इन **नाम के नौ नोकषाय से होनेवाले कलंकपंकस्वरूप...** आहाहा! यह विकार का भाव, स्त्रीवेद का विकारभाव, पुरुषवेद का विकारभाव, नपुंसकवेद का विकारभाव, हास्यादि—यह कलंक-पंकस्वरूप है। वह **(मल-कीचड़स्वरूप)...** है। कलंकपंकस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। वह तो कलंक है और कादवस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे भाव को—जो कलंक और पंकस्वरूपभाव को—मैलभाव, दुःखरूपभाव (जाने)। आहाहा! कहो, समझ में आया? उसे—**समस्त विकारसमूह को...** विभावभाव, शुभ और अशुभ विकल्प विकारीभाव। यह सब अशुभ लिये। और फिर समुच्चय समस्त विकारसमूह को... शुभ का भी विकारसमूह है दूसरा। समझ में आया? **समस्त विकारसमूह को परम समाधि के बल से...** देखो! आहा! काम कठिन भारी जगत को। अभी तो बाहर की निवृत्ति लेकर यह क्या है, इसे समझने का समय नहीं मिलता। दुःख के पंथ में दौड़ गया है। दौड़कर दुर्गति में जाने में पड़ता है अन्दर। आहाहा!

चैतन्य आनन्द का सरोवर भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसमें डुबकी मारने में जो डुबकी मारकर अन्दर पड़ना अर्थात् कि अन्दर में एकाग्र होना, उसका नाम सामायिक और उसका नाम निर्मल मोक्ष का मार्ग (कहते हैं)। आहाहा!

यह सामायिक ऐसी तो सुनी नहीं थी। कितनी सामायिक की थी तुमने? सवेरे-शाम बहुत की थी। इस भव में कितनी की थी? यहाँ आकर सामायिक करके नहीं बैठते थे वे उस दरवाजे पर? खबर है या नहीं? पुण्यबन्ध। उसमें पानी पीवे। वहाँ बैठते सामायिक करके। आहाहा! उसमें राग की मन्दता होवे तो शुभभाव है, परन्तु वह भी दु:खभाव है, असामायिक है। आहाहा! विषमभाव है न!

'प्रभु का मार्ग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' समझ में आया? वीतराग का मार्ग... लोग कहते हैं न अन्यमत में? 'हरि का रे मार्ग है शूरों का, यह कायर का नहीं काम जो ने, हरि का रे मार्ग है शूरों का...' हरि अर्थात् आत्मा। पापं—अघं हरति इति हरि। 'प्रथम पहले मस्तक रखकर, वळतां लेना नाम जोने, हरि का मार्ग है शूरों का...' हरि अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष को हरनेवाला ऐसा भगवान आत्मा, उसका मार्ग शूरवीरों का है। आहाहा! साधारण प्राणी का वह मार्ग नहीं। शूरवीरों का... पर्याय की अपेक्षा से बात है न यहाँ? वस्तु तो असाधारण है सब।

कहते हैं कि भाई! एक क्षण की सामायिक... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल—लबालब भरा हुआ तत्त्व है। अरे! कहाँ परन्तु क्या? वहाँ अन्दर जाकर एकाग्र होने से जो समाधि अर्थात् शान्ति प्रगट हो, उसके द्वारा नोकषाय को जीतना... समझ में आाय? अरे! बात भी भारी कठिन। तुम्हारे नागनेश में तो बहुत सामायिक होती है। पाळियाद, नागनेश। प्रतिक्रमण ले, उपाश्रय में बैठे। गर्मी हो, ठण्डी हवा आवे। पक्का मकान है। और सड़क से आगे है थोड़ा। परन्तु सड़क क्या, गली। गली से आगे है न। एक-दो बार... आहाहा! अरे, भाई! इस गली से, मुहल्ला से दूर आत्मा है। वह कर्म से, पुण्य-पाप के विकल्प से, एक समय की पर्याय से भी दूर है। उसमें बैठने से सामायिक होती है, ऐसा कहते हैं। सुना नहीं? तुम बड़े सेठिया कहलाते हो? कहाँ गये माणिकलालभाई? तुम तो सब सेठिया कहलाते हो दाहोद के। यह भाई कहे, सुना नहीं ऐसा। बात तो ऐसी ही है। बात तो ऐसी है। बापू! यह वस्तु की स्थिति पूरी फेरफार हो गयी है। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमेश्वर परमात्मा... ऐसा कहा न? **केवली शासन में...** यह परमात्मा के शासन में इसे सामायिक कहते हैं। ऐसा आया न?

प्रत्येक गाथा में आता है। '**इदि केवलिसासणे**' सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ के मार्ग में इसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? निश्चय शान्ति और समाधि, वही जैनशासन में धर्म कहा, ऐसा कहते हैं। भाई! यह व्यवहार-फ्यवहार की बात... आहाहा! गजब बात करते हैं न! कितनी शैली से! वीतरागशासन में तो वीतरागी परिणति प्रगट हो (उसे) समाधि कहो, सामायिक कहो, निश्चय मोक्षमार्ग कहो, उसे भगवान ने धर्म, केवली के शासन में उसे धर्म कहा है। आहाहा! जादवजीभाई!

और दूसरा अर्थ लिया। **विकारसमूह को परम समाधि के बल से...** अर्थात् कि उदय के विकल्प—विकार को अन्तर के आनन्द के स्वभाव की लीनता से **जो निश्चय-रत्नत्रयात्मक परम तपोधन छोड़ता है,...** मुख्यरूप से मुनि की बात है न! आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी, सच्चा श्रावक उसे कहते हैं कि जो आत्मा के आनन्द में एकाग्र होकर जितने अंश में विकार को उत्पन्न होने नहीं देता, उतने अंश में उसे धर्म और सामायिक कहा जाता है। यह गृहस्थाश्रम की सामायिक। आहाहा! जितने अंश में आत्मा अपना वीतराग समाधि आनन्दस्वभाव... उसका समाधि स्वभाव ही है। जो यहाँ पर्याय का वर्णन करते हैं, वह सब उसका स्वभाव ही है। समझ में आया? ऐसा त्रिकाली स्वभाव अविनाशी, शाश्वत्, उसमें जो सन्मुख होकर एकाग्र होता है, उसे जैनशासन में धर्म कहा, उसे सामायिक कही, उसे जैनशासन में समता का नौवाँ सच्चा व्रत कहा। समझ में आया?

निश्चयरत्नत्रयात्मक... भाषा देखो! निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मुनि... मुनि तो निश्चयरत्नत्रय-स्वरूप होते हैं। नग्न होते हैं, २८ मूलगुण का विकल्प है—यहाँ बात यह ली ही नहीं। ऐई! आहाहा! समझ में आया? जब व्यवहार का ज्ञान कराना हो, तब यह बात आवे। 'व्यवहार है' ऐसी बात आवे ज्ञान कराने को, परन्तु वस्तुस्थिति... निश्चयरत्नत्रयस्वरूप परम तपोधन... आहाहा! मुनि उसे कहते हैं, श्रावक उसे कहते हैं कि निश्चय अर्थात् आत्मा अपना त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को आंशिक प्रगट किया, वह श्रावक, विशेष प्रगट किया, वह मुनि। आहाहा! कहो, समझ में आया? इसे भगवान ने सामायिक कहा है। आहाहा!

केवली परमात्मा तीर्थंकरदेव सर्वज्ञप्रभु सर्वज्ञ केवली भट्टारक, इन्द्रों के भी

पूज्य, गणधरों के पूज्य ऐसे भगवान ने इसे सामायिक कही है कि जो सामायिक, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप में लीन होकर शान्ति, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन प्रगट हो, उससे विकार जीता जाता है, उसे यहाँ सामायिक कहते हैं। रतनलालजी! कभी नाम सुना नहीं होगा सामायिक का। आहाहा! सवेरे, दोपहर और शाम सामायिक करे न ब्रह्मचारी, त्यागी, मुनि। परन्तु किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। ऐ मोहनभाई! अन्दर आओ अन्दर। कहो, समझ में आया? आहाहा!

देखो न! एक-एक गाथा में सामायिक... **'तस्स समाइगं' 'तस्स समाइगं'** उसे सच्ची सामायिक कहते हैं, ऐसा केवलीशासन में कहा है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भी उनका आश्रय लेकर बात करते हैं। वे स्वयं कहे तो वह भी बराबर है, परन्तु स्वयं भगवान का आश्रय लेकर (कहते हैं)। भगवान तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञ भट्टारक पूज्य सूर्य, सर्वज्ञसूर्य, वे ऐसी सामायिक कहते हैं कि ऐसा उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं कि जिसे आत्मा आनन्दमूर्ति का आश्रय लेकर और आनन्द और शान्ति प्रगट की, अतीन्द्रिय आनन्द का अंश प्रगट किया, उसे आंशिक सामायिक—देशसामायिक कहते हैं और अन्दर उग्र आश्रय लेकर विशेष आनन्द प्रगट किया, उसे सर्वविरति मुनि की सामायिक कहते हैं।

उस **परमसमाधि के बल से...** आहाहा! देखा! इसके बिना नहीं जीता जाता, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप का भाव, शुभ-अशुभभाव, वे आत्मा के अन्तर के समाधि अर्थात् आनन्द के बल से जीते जा सकते हैं। उस दुःख को टाला जा सके (तो) अतीन्द्रिय आनन्द के बल से टाला जा सकता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : टालना किसे कहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : टाले अर्थात् उत्पन्न न हो उसका अर्थ ऐसा। यह कथन की शैली ऐसी है। समझ में आया? परमसमाधि के बल से विकार टले। अशुभ शुभ से टले, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! समझ में आया? अरे! मार्ग ऐसा इसने कभी सुना नहीं और सुने बिना समझे क्या और समझे बिना परिणति करे कहाँ से? यह दुःख का रास्ता, दुःख का जला वापस दुःख में पड़े। समझ में आया?

दृष्टान्त नहीं दिया था एक बार ? ... का। हलवाई। चूड़ा में जैन हलवाई था। वह स्वयं स्थानकवासी पालता था, परिवार मन्दिरमार्गी... अभी तो सब मन्दिरमार्गी हो गये। स्वयं थे स्थानकवासी। कन्दोई... कन्दोई समझे ? हलवाई। ....मिठाई बनावे। तो वे कुछ बनाते थे, भजिया या गांठिया। गांठिया होता है न ? तेल, धगधगता तेल लोहे के कढ़ाई में। एक सर्प ऊपर से निकला सर्प। धुँआ लगा उसको (तो) आधा कड़ाई में और आधा बाहर (गिरा)। यह (हलवाई) जैन बेचारा। हाथ में था तवेथो। तवेथो क्या कहते हैं ? कलछी। लोहे की होती है न। गांठिया बनाने का। उससे एकदम निकाला। आधा पड़ा था तेल में (और) आधा बाहर। ऐसा निकाला।

भान हो। बहुत दाह। एकदम बाहर निकला और चूल्हे में घुस गया। आहाहा ! चूल्हे में घुस गया। वह मानो यहाँ बचाव है... यहाँ बचाव है। कुछ खबर नहीं होती। उस बेचारे को त्रास... त्रास। जैन लोग (थे) न ? नहीं देखा जाये। सब बन्द कर दिया। आहाहा ! बड़ा सर्प ऊपर से निकला, यहाँ से धुँआ लगा, धुँआ। आधा पड़ा उसमें और आधा पड़ा बाहर। ऐसे निकाला। निकाला साथ में चूल समझे न ? अग्नि। धगधगती अग्नि, अन्दर गिर गया। राख (हो गयी)। इसी प्रकार अज्ञानी अनादि से दुःख में पड़ा... पड़ा... राग को, द्वेष को... और राग तथा द्वेष और अज्ञान में प्रविष्ट हो जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! यह कुँवरजीभाई कहते थे। ... अपने यहाँ आते थे। एक वर्ष पहले उन्होंने धर्मादा निकाला था। उन्होंने... एक बार। ... आहाहा !

कहते हैं कि भगवान आनन्द का नाथ, सरोवर प्रभु में से निकलकर बाह्य वृत्तियाँ— पुण्य और पाप की वृत्तियाँ, मिथ्यात्व की वृत्तियाँ, अज्ञान की वृत्ति, उसमें हमें सुख है— ऐसी मिथ्यात्वभावना। गिरा... गिरा है अनादि का। उसमें से निकालने का कहे तो समझे नहीं। उसे ऐसा कहे कि तुम यह राग करो, शुभ करो, शुभ करो। तो वह शुभ की अग्नि में घुसे उल्टा वापस। भीखाभाई ! सबको ऐसा त्रास हो गया था। उसे कुछ खबर पड़ती नहीं (कि) क्या करता हूँ, कहाँ जाता हूँ। आत्मा आनन्द और शीतलस्वरूप, शीतलस्वरूप प्रभु को छोड़कर जितनी पुण्य-पाप की शुभाशुभ वृत्तियाँ—लागणियाँ हों, और वे 'मेरे' ऐसा जो मिथ्यात्वभाव ज्वाजल्यमान... ज्वाजल्यमान अग्नि है। वह अग्नि दिखती नहीं। यह अग्नि दिखती है इसे।

अरे! ऐसी अग्नि में से निकलने का कोई कहे, (तो कहे), नहीं, नहीं। दृष्टान्त दिया है न कहीं। मोक्षमार्ग... कहीं दिया है। ऐसा कि अग्नि ऐसी हो और कोई निकाले, बुझावे तो उसके सामने विवाद करे। ऐसा आता है कहीं। अनुभवप्रकाश में आता है। अग्नि का भड़का मुख में से निकलता हो और कोई बुझावे... आहाहा! ऐसा है वहाँ अन्दर। इसी प्रकार इसे कषाय—अग्नि जलती है, उसे बुझाने का कहे कि स्वरूप का आश्रय ले। (तो कहे), ऐसा मार्ग होगा? अभी नहीं। सेठ कहते हैं। ठीक! अभी नहीं, बहुत से ऐसा कहते हैं। पहले यह नहीं।

वे आये थे न? वे कुन्दकुन्दविजय। रामविजय के शिष्य और शान्तिभाई के भाई सुलोचनविजय। कहाँ गये कान्तिभाई? इनके बड़े भाई। दीक्षा ली थी। वे आये थे। अठारह दिन सुना उन्होंने और उन कुन्दकुन्दकुविजय ने। इनके भाई को शंका हो गयी (कि) मार्ग कुछ दूसरा लगता है, यह नहीं। साधुपना लेकर बैठे हैं। एक कुन्दकुन्दविजय था, वह ऐसा बोला, मार्ग यह है, परन्तु इस भव में हो, ऐसा नहीं है। है अभी वह रामविजय में मन्दिरमार्गी। सुलोचनविजय, बड़ा नहीं तुम्हारे से? उसे कुछ वह हुआ कि बात में अन्तर लगता है। अन्तर इतना। फिर अन्त में तो कुछ व्यवस्थित किये बिना... भाई! यह बात तो ठीक लगती है, परन्तु इस भव में हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी ही है। अमृत का सागर भगवान आत्मा है। स्वयं प्रभु अन्दर अमृत सागर का समुद्र है। आहाहा! उसमें अमृत न हो तो कहाँ होगा? उसमें अज्ञान को टालने की शक्ति न हो तो किसमें होगी? आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय... अतीन्द्रिय की मूर्ति है, स्वरूप है आत्मा। अतीन्द्रिय अमृत की मूर्ति है। उसे बात में, इस प्रकार ऐसा है यह बात बैठना भारी। समझ में आया? यह बाहर की बात बैठी है न अनादि से। आहाहा! भगवान केवली तीर्थंकरदेव इसे सामायिक कहते हैं। जो दया, दान, व्रत के विकल्प हैं—राग, वह तो असमता और विषमभाव है। उसे छोड़कर स्वरूप में लीन होकर आनन्द को वेदे, अतीन्द्रिय आनन्द को वेदे, उसे निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं, उसे सामायिक कहते हैं और उसे धर्म का स्वरूप कहते हैं। आहाहा! जगत

लुटाया है न! वीतरागमार्ग में—वाडा में आने पर भी, वाडा में आये होने पर भी लुटाये हैं बेचारे और लुटेरे मिले इसे। ऐ सुजानमलजी! आहाहा!

दो बोल वर्णन किये। कि जो कोई विकारसमूह को परम आनन्द के बल से... कौन है वह त्यागी? कि निश्चयरत्नत्रयस्वरूप परम तपोधन है। आहाहा! स्वयं तपोधन, निश्चय तपोधन है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा तपरूपी धन जिसे प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया? वह **तजता है...** बस इतनी यहाँ बात ली है। यह पुण्य, विषय-वासना, हास्य, रति, अरति, शुभ-अशुभभाव, उसे छोड़ सकता है। समझ में आया? **परम तपोधन छोड़ता है,...** ऐसा गृहस्थाश्रम में भी अपना भगवान जिसे निर्मलदशा में समीप वर्तता है, जिसका—महाप्रभु का आश्रय लिया है, जिस पर्याय ने महाप्रभु का आश्रय लिया है... आहाहा!

'मोटाने उत्संग बेठाने शी चिंता, तेम प्रभु चरण पसाय, सेवक थया निःचिंता।' 'मोटाने उत्संग...' प्रभु बड़ा महाप्रभु चैतन्यनाथ, आनन्द का सागर जो ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियों का सागर है। उसकी शरण में गया, उसे क्या कमी हो अब? वह किसे न जीते? ऐसा कहते हैं। कठिन दुर्धर विकारभाव, वह आत्मा की शरण में जाकर समाधि बल से तज सकता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, क्रिया करते-करते-करते निश्चय रत्नत्रय प्रगटे। कहो! यहाँ यह इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : न्याय से विरुद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय से... राग से, आकुलता से, वह कहीं निराकुलता होगी? निराकुलता द्वारा आकुलता जीती जाती है, परन्तु आकुलता द्वारा निराकुलता होगी? (नहीं होगी)। आहाहा!

भाई! इसे खबर नहीं। यह क्या कर रहा है और क्या होता है उसमें—(इसकी) खबर नहीं। भगवान आत्मा अपना पूर्णानन्दस्वरूप ऐसा पूर्ण परमात्मा स्वयं परिपूर्ण कृतकृत्य है, अन्यत्र नहीं, ऐसी चीज़ है। वह पर्याय में ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान अपने अन्तर के समाधिबल से, अन्तर की एकाग्रता के जोर से, निश्चय रत्नत्रयस्वरूप ऐसा सन्त, वह वासना का उदय होने नहीं देता। वह वासना को जीतता

है, ऐसा। आहाहा! ऐसा मुनि का (और) ऐसा भगवान के शासन में सामायिक का ऐसा स्वरूप है। सामायिक का कहो या निश्चय रत्नत्रय मोक्षमार्ग कहो। आहाहा! अरे! इसे कान में पड़े नहीं, समझे नहीं (तो) अन्दर सन्मुख जाने का प्रसंग ही बने नहीं। सन्मुख जाने में विमुखता टलती है, ऐसी जिसे खबर नहीं, उसे सामायिक और मोक्षमार्ग कहाँ से होगा? समझ में आया?

यहाँ तो, करो यात्रा भगवान की एक बार। बस जाओ, तुम्हारे बहुत भव के कर्म टल जायेंगे। अब किसलिए बेचारा दूसरा करे? जाओ, चलो शत्रुंजय। वह कहे सम्मेदशिखर।

मुमुक्षु : मोक्ष पाने के असंख्य योग हैं वहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अत्यन्त योग है। सिद्धि कैसा कहलाये? सिद्धगिरि। सिद्धगिरि के समीप में... परन्तु सिद्धगिरि तो पर है। सिद्धगिरि तो यहाँ है? अनन्त सिद्ध की पर्याय प्रगट करनेवाला तो भगवान आत्मा यहाँ है। समझ में आया? 'असंख्य योग' सब गप्प मारे हैं। आता है न! असंख्य योग—प्रकार है मोक्षमार्ग का। असंख्य प्रकार। यहाँ कहे, एक भी प्रकार नहीं। यह प्रकार एक ही है। उसके असंख्य योग आते हैं। वे सब तद्-हेतु न .... अनुनय क्रिया, जहर किया.... ऐसा करके विस्तार कर-करके मार डाला। मूल वस्तु रह गयी है। तद्-हेतु क्रिया आती है न।

मुमुक्षु : तद्-हेतु शब्द तो बहुत प्रयोग करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब करना, तद्-हेतु करना। आत्मा को धर्म के लिये यह सब करना। करना और मरना, वहाँ राग का कर्ता होता है तो मरता है। शान्ति मर जाती है वहाँ तो। आहाहा! वह तद्हेतु होता है। आत्मा की शान्ति का हेतु, वह राग की मन्दता होगी? चढ़ा दिया परन्तु लोगों को। उसको कहे मन्दिर की पूजा करो, मन्दिर बनाओ, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। वह कहे, सामायिक और प्रौषध करो और अपवास करो, कल्याण हो जायेगा। वे कहे, वस्त्र छोड़ दो, नग्न हो जाओ और ऐसा खाना-न खाना, ऐसे विकल्प में रहो, तुम्हारा कल्याण होगा। धूल भी नहीं होगा तीनों का। सुन ना! समझ में आया? आहाहा! टीकाकार ने कितनी टीका को स्पष्ट किया है! आहाहा!

उसे वास्तव में... जिसे भगवान आत्मा के बल से प्रभु पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! उसके आश्रय से अन्तर में जाकर जिसने शान्ति और समाधि प्रकट की है, उस द्वारा सामायिक की प्राप्ति होती है और उस द्वारा विकार को जीता जाता है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि नियमसार मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है, हों! यह आता है न इसमें अन्तिम गाथा में। आहाहा! मेरा भाव अन्दर में घुंटता है, उसके (कारण) यह नियमसार बन गया है। आहाहा! निजभावना—मेरी भावना के निमित्त से... दुनिया के लिये कुछ नहीं, ऐसा कहते हैं। है न (गाथा) १८७। '**णियभावणाणिमित्तं।**' १८७। '**णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।**' आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य जैसे, जिन नहीं, परन्तु जिनसरीखे। वीतराग साक्षात् नहीं, परन्तु वीतराग जैसे। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि तो वीतरागी ही होते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : हों, उसमें कहते हैं, जिन नहीं, परन्तु जिनसरीखे। वे लोग कहते थे तेरापंथी में। उनके आचार्य हों न, 'जिन नहीं, परन्तु जिनसरीखे, खम्मा अन्नदाता' ऐसा कहते थे। ....यह न जानो कि ऐसा सब नहीं। जिनसरीखे। यह तेरापंथी तुलसी है न? खम्मा अन्नदाता, जिन नहीं, परन्तु जिनसरीखे। जिन के विरह में जिनपना जिन्होंने बताया, प्रगट किया, ऐसा कहते हैं। ऐई! जिनविरह में... यह जिन स्वयं भगवान आत्मा जिन है। उसका जिसने समीपपना लिया, उसकी पर्याय में जिनदशा, वस्तु वह जिन और पर्याय, वह जिनदशा प्रगट हुई, उससे विकार को जीता जा सकता है। ऐसा आचार्य कहते हैं, मैंने मेरे भाव के लिये मेरी अन्तर के घूँटन—एकाग्रता के लिये यह शास्त्र बनाया, लो।

यह **वास्तव में केवली भट्टारक के शासन से...** ऐसी सामायिक केवली, **वास्तव में केवली भट्टारक...** सर्वज्ञसूर्य प्रभु तीर्थंकरदेव केवली सर्वज्ञसूर्य भट्टारकसूर्य। यह भट्टारक अभी हैं, वे नहीं, हों! यह केवली ज्ञानसूर्य प्रभु के शासन से **सिद्ध हुआ...** आहाहा! **परम सामायिक नाम का व्रत शाश्वत्‌रूप है,...** लो, वहाँ व्रत नाम दिया। यह चारित्र सामायिक कहो या सामायिक व्रत कहो, उसे निश्चय व्रत कहते हैं। परम

सामायिक नाम का व्रत वीतराग भगवान के शासन में सिद्ध हुआ, ऐसी सामायिक साबित हुई, उसे शाश्वत्‌रूप है। **ऐसा इन दो सूत्रों से कहा है।** आहाहा! समझ में आया?

सामायिक अर्थात् तो समताभाव, तो समताभाव अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्पभाव से रहित भाव। तो रहितभाव कब होगा? कि त्रिकाली समताभाव के पिण्ड के आश्रय से। द्रव्य तो खबर न हो कि द्रव्य कैसा है। आहाहा! समझ में आया? कितने बोल करके विशेषण किये हैं! ओहो! और पुण्य-पाप को कलंक-पंकस्वरूप कहा, पश्चात् उस कलंक को मल कहा। समझ में आया? आहाहा! कलंक-पंकस्वरूप कादव... फँस जाने का कादव है। उसे छूटने का उपाय तो भगवान आत्मा अपने स्वरूप का भान करके अन्दर स्थिर हो, एक ही उपाय संसार को जीतने का है। संसार के भटकने के दुःखभाव को जीतने का यह एक ही उपाय है। समझ में आया?

१३१-१३२ वीं गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—स्वयं कहते हैं।

त्यजाम्येतत्सर्वं ननु नव-कषायात्मक-महं,
मुदा सन्सारस्त्रीजनितसुखदुःखावलिकरम्।
महा-मोहान्धानां सतत-सुलभं दुर्लभ-तरं
समाधौ निष्ठाना-मनवरत-मानन्द-मनसाम्॥२१८॥

संसारस्त्रीजनित सुखदुःखावलिका करनेवाला... संसार अर्थात् संसरण—स्वभाव से हट जाना। ऐसी जो विकार की परिणतिरूपी स्त्री, उससे उत्पन्न हुए सुख-दुःख की श्रेणी... सुख-दुःख अर्थात् कल्पित किया हुआ दुनिया का। **संसारस्त्रीजनित सुखदुःखावलि...** ऐसा कहा न! भगवान आत्मा जनित नहीं। विकार, पुण्य-पाप के विकार से उत्पन्न हुई... विकाररूपी स्त्री से उत्पन्न हुए सुख-दुःख की श्रेणी, सुख-दुःख की धारा, सुख-दुःख की हारमाला, आवलि। है न नीचे अर्थ। **आवलि, पंक्ति, श्रेणी।** लो! आहाहा! कहते हैं, शुभ-अशुभभाव वह संसाररूपी स्त्री, उससे जनित तो सुख-दुःख की श्रेणी है। आहाहा! वह तो सुख-दुःख—कल्पना के सुख जगत के और कल्पना के दुःख, उसे उत्पन्न करनेवाली है। हारमाला का करनेवाला है। धारावाही दुःख की धारा बहती है वहाँ तो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

नौ नोकषायस्वरूप विकारस्वरूप सर्व विकार... सुख-दुःखावलि का करनेवाला है वह तो। अर्थात् नौ नोकषाय वह संसार के सुख की कल्पना और दुःख की कल्पना, उसका करनेवाला है। सुख है नहीं, हों! यह तो अज्ञानी सुख मानता है न! आहाहा! लो, स्त्री विधवा हो (तो) दुनिया कहती है कि दुःखी हुई, ऐसा कहे। दुखियारी। ऐसा कौन कहे? किसने कहा दुखियारी? यह दुखियारी की व्याख्या है? और अपने घर में स्त्री हो, सब साधन हो और पति हो, वह सुखिया कहलाये, ऐसा। उसे (विधवा को) दुखियारी कहा जाये। दोनों मूढ़ता है। समझ में आया? मानते हैं न? बाई भी ऐसा माने। आहाहा!

हमारे गाँव में था। जेठ-जेठानी को पुत्र हो (तो) वह हो, विवाह करावे, तब वह रोवे। अरे! मेरे कुछ नहीं। अब तेरे सब है अन्दर आत्मा, देख न! आहाहा! रूखड़ सेठ थे न। उनका पुत्र.... बड़ा, छोटी उम्र में मर गया। शीतला हो गयी थी। बाई पहले से विधवा और घर में वह हो। जेठ-जेठानी के पुत्र विवाह करे, यह हो, तब उसको याद आवे। अरे! मुझे कुछ नहीं। अरे! तुझे पूरा आत्मा है, अब देख न! उसे भी (पुत्र) कब था? आहाहा! अरे! अच्छी-बुरी बात किससे करना? वात का विश्राम गया, फलाना गया। रोवे मुफ्त में। ऐई मूलचन्दभाई! भगवान आत्मा अन्दर पड़ा है तेरे। उसकी नजर कर तो तू सुख हो और यह सब दुःखी हैं। आहाहा! समझ में आया? पूरा जगत दुःखी है। आहाहा!

अरे! यह सब **मैं वास्तव में प्रमोद से छोड़ता हूँ...** भाषा देखो तो जरा! आनन्द से तजता हूँ, ऐसा। भाषा तो ऐसी ही आवे। मेरा भगवान, उसमें मैं जाता हूँ और मुझे जो आनन्द आता है, ऐसे आनन्द से छोड़ता हूँ। अरे! वासना छोड़नी पड़ेगी, फलाना करना पड़ेगा, ऐसा नहीं। मेरे अतीन्द्रिय आनन्द के पान से, मैं भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसका पेय पीने से मैं आनन्द से विकार को तजता हूँ। अरे! छोड़ना पड़ेगा। लो! दुःखी, मिथ्यात्वी, अज्ञानी है। सुन न! राग का विकार छोड़ना, वह तो आनन्द से छूटता है, कहते हैं। आहाहा! मैं मेरा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर मेरा नाथ, उसके समीप में जो मुझे आनन्द आता है, उस आनन्द से उसे (विकार को) मैं तजता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

मैं वास्तव में प्रमोद से छोड़ता हूँ... विकार आया और गया—टल गया, ऐसा नहीं। मैं छोड़ देता हूँ। मेरा उसमें स्पर्श ही नहीं। आहाहा! ऐई! यह सामायिक ढोंग किये थे सब। साँप गया और लकीर रही, नहीं कहते? लकीर। सर्प होता है न, फिर धूल में रहे न। वह गया सर्प यहाँ गया। परन्तु सर्प अब कहाँ है? लकीर है। उस ओर होगा तुम्हारे? 'साँप गया और लकीर (रही)।' वह लकीर रही। वह बस। यह गाँव-गाँव में कहावत समान ही होती है। लकीर रह गयी। इसी प्रकार सच्ची सामायिक चली गयी, लकीर रह गयी पीटने की अकेली। हम यह सामायिक करते हैं, यह सामायिक.... मुनि को सदा सामायिक होती है। अरे! धूल भी नहीं। मुनि किसे कहा जाये, उसकी तुझे खबर नहीं। जो राग का एक विकल्प का कर्ता नहीं। देह का ज्ञाता और अतीन्द्रिय आनन्द का उफान जहाँ अन्दर बहता है, उसे त्यागी कहा जाता है। तजता हूँ, ऐसा कहते हैं न! आहाहा! समझ में आया?

अरे! **कि जो नौ नोकषायात्मक विकार...** स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि का विकार **महामोहान्ध जीवों को निरन्तर सुलभ है।** महामोहान्ध जीवों को... मिथ्यात्व में पड़े हैं, अज्ञान में, राग की मिठास में। उस वासना में मजा है, वासना लेनेवाले सुखी हैं, वासना के संयोग जिसे बहुत है, वह ठीक है—ऐसा जिसे महामोह मिथ्यात्व से रहता है। ऐसे **महामोहान्ध जीवों को निरन्तर सुलभ है।** विकार निरन्तर अज्ञानी को सुलभ है। आहाहा! समझ में आया? टीका भी किस प्रकार की! आहाहा! **तथा निरन्तर आनन्दित मनवाले...** गुलाँट खायी है। वह महामोहान्ध जीव मिथ्यादृष्टि। मिथ्यादृष्टि को विकार सुलभ है, अनादि विकार के ऊपर ही जिसकी दृष्टि है। आहाहा!

निरन्तर आनन्दित मनवाले... मन अर्थात् आनन्दित परिणतिवाले को। निरन्तर... निरन्तर रहनेवाला तत्त्व, उसका जिसने आश्रय करके निरन्तर आनन्ददशा प्रगट की है। आहाहा! जिसे आनन्द की दशा का एक समय विरह नहीं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप त्रिकाल निरन्तर है, उसका आश्रय लेकर जो आनन्द प्रगट किया, वह भी निरन्तर आनन्द वर्तता है। आहाहा! ऐसे निरन्तर—अन्तर पड़े बिना आनन्दित मनवाले **समाधिनिष्ठ...** अपने आनन्द में रहनेवाले, सामायिक में रहनेवाले, उन **जीवों को अति दुर्लभ है।** वह विकार होना दुर्लभ है उन्हें, अर्थात् विकार नहीं होता। आहाहा!

भाषा देखो! आनन्दित मनवालों को दु:ख उत्पन्न नहीं होता, ऐसा कहते हैं। दुर्लभ है, उन्हें विकार होना दुर्लभ है। अज्ञानी को विकार त्रिकाल सुलभ है। क्योंकि वहाँ विकार के प्रेम में ही फँसा रहता है। आहाहा! निर्विकारी भगवान आत्मा की खबर नहीं होती (ऐसे) महामोहान्ध मिथ्यादृष्टि को विकार सुलभ है। आहाहा! गजब! समाधिवाले को दुर्लभ है। नहीं मिले, हों, ऐसा कहते हैं, वह दु:ख नहीं पाये—आये। अन्तर स्वरूप के आश्रय में, शान्ति में स्थित हैं, ऐसे सामायिकवन्त को अब दु:ख नहीं आता। आहाहा! अज्ञानी को दु:ख तो क्षण-क्षण में लागू पड़ा हुआ है। आहाहा! वीणा बजती होती है राग और द्वेष की, ऐसा कहते हैं। उसे विकार सुलभ है। धर्मात्मा को विकार दुर्लभ है। आहाहा! उसे आनन्द सुलभ है। अज्ञानी को आनन्द दुर्लभ है, उसे विकार सुलभ है। ऐसा कहकर १३१-१३२ गाथा और उसका कलश कहा, लो। अन्तिम गाथा आयी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण २, बुधवार, दिनांक - ०६-१०-१९७१
गाथा-१३३, प्रवचन-१४६

नियमसार, १३३ गाथा चलती है।

जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि णिच्चसो।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलि-सासणे॥१३३॥

१३३ गाथा है, १३३।

जो नित्य उत्तम धर्म-शुक्ल सुध्यान में ही रत रहे।
स्थायी सामायिक है उसे यों केवली शासन कहे॥१३३॥

क्या कहते हैं? **यह परम-समाधि अधिकार के उपसंहार का कथन है।** सामायिक किसको कहते हैं जैनधर्म में? सामायिक कहो या समाधि कहो; समाधि कहो या अपने निश्चय मोक्षमार्ग की दशा कहो—एक ही बात है। सूक्ष्म बात है, भाई! धर्मध्यान और शुक्लध्यान की उसमें आवश्यकता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सामायिक करने में धर्मध्यान और शुक्लध्यान की आवश्यकता है, ऐसा कहते हैं। अन्तिम श्लोक है न! धर्मध्यान किसको होता है और धर्मध्यान की स्थिति क्या है—वह कहते हैं।

जो सकल-विमल केवलज्ञानदर्शन का लोलुप... जो कोई आत्मा पूर्ण केवलज्ञान और पूर्ण केवलदर्शन का अर्थात् मोक्ष का अभिलाषी है। जिसका—मोक्ष का अभिलाषी जीव **सकल-विमल केवलज्ञानदर्शन का लोलुप (सर्वथा निर्मल केवलज्ञान और केवलदर्शन की तीव्र अभिलाषावाला-भावनावाला)...** जिसको मुक्ति चाहिए... मुक्ति में अनन्त सुख है, दूसरे कहीं सुख है नहीं। चार गति में तो दु:ख है। स्वर्ग हो या नरक हो, सेठाई हो या रंकाई हो—वह सब दु:ख है। बराबर है रतनलालजी? दु:ख... दु:ख।

मुमुक्षु : कम-ज्यादा....

पूज्य गुरुदेवश्री : कम-ज्यादा का प्रश्न ही कहाँ है? दु:ख ही है। ऐकडिया वर्ग

में सब लोग ऐकडिया ही हैं, ऐसे सब दु:ख ही है। राग—पुण्य-पाप का भाव वह विकार है, उसमें जिसकी एकत्वबुद्धि है, (ऐसे) सर्व मिथ्यादृष्टि प्राणी, (चाहे) साधु हो तो भी दु:खी है। बाह्य से द्रव्यलिंग धारण किया हो, समझ में आया? अन्दर में भगवान आत्मा पूर्णानन्द चैतन्यस्वभाव से भरा, उसको छोड़कर दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के विकल्प में एकताबुद्धि रखता है और वह मेरा कल्याण का कारण है, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि दु:खी है। समझ में आया?

दु:ख नाश करने का उपाय क्या है, वह कहते हैं कि सकल-विमल केवलज्ञान-दर्शन के लोलुपी जीव, जिसको केवलज्ञान और केवलदर्शन—परिपूर्ण निर्मल पर्याय प्राप्त करने की जिज्ञासा है, उसको क्या होता है? **परम जिनयोगीश्वर स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान द्वारा...** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दसम्पन्न स्वरूप, ऐसा निश्चय स्वात्मा... स्व-आत्मा—अपना आत्मा... जिसमें शरीर-वाणी-मन नहीं, जिसमें दया, दान, व्रत का विकल्प भी नहीं, जिसमें एक समय की वर्तमान प्रगट अवस्था भी नहीं—ऐसा अपना स्व-आत्मा। ग्रीक-लेटिन (अटपटा) जैसा लगे लोगों को। धर्म क्या चीज़ है, यह खबर नहीं। समझ में आया?

धर्मध्यान... सामायिक या धर्मध्यान या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कैसे होता है?—कि स्व-आत्मा आश्रित। अपना आत्मा अखण्ड अभेद शुद्ध चैतन्यध्रुव, नित्यानन्द, सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है। वह स्व-आत्मा, उसका आश्रय, ऐसे आश्रित—उसके आश्रय से, निश्चय धर्मध्यान द्वारा, स्वाश्रय शुद्धता और एकाग्रता द्वारा सामायिक अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कि जो मोक्ष का कारण है, वह उत्पन्न होता है। समझ में आया? स्व-आत्माश्रित होता है, ऐसा कहते हैं। यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि से धर्मध्यान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, काम, क्रोध, यह तो पाप है; परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव भी शुभभाव है, वह भी विकार है। अरे! वह धर्म नहीं और वह धर्म का कारण भी नहीं।

धर्मध्यान का कारण? धर्मध्यान, शुद्ध निर्मल वीतरागी परिणति को धर्मध्यान कहते हैं। उस धर्मध्यान का कारण स्व-आत्मा। समझ में आया? चिद्घन आनन्दकन्द, नित्यानन्द ध्रुवस्वभाव, वह आत्मा, वह अपना आत्मा। उसके आश्रय से, उसके अवलम्बन

से, उसमें एकाग्र होने से निश्चय धर्मध्यान द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। समझ में आया? कहो, रतनलालजी! समझ में आता है? पैसा-बैसा से कुछ नहीं होता है, ऐसा कहते हैं। पैसा से पुण्य भी नहीं होता, पाप भी नहीं होता और धर्म भी नहीं होता। वह तो जड़ परवस्तु है। शरीर से पुण्य नहीं होता है, पाप भी नहीं होता है और धर्म भी नहीं होता है। परलक्ष्य से पुण्य-पाप का भाव होता है, वह धर्म नहीं। अपने आत्मा के आश्रय से जो परिणति—धर्म की दशा उत्पन्न होती है, वह धर्म है और उस निश्चय धर्मध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया?

वह कहते हैं, देखो! **परम जिनयोगीश्वर...** अपना आत्मा नित्यानन्द प्रभु कारणसमयसार भगवान आत्मा, पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय, उसके सन्मुख होकर... निमित्त, राग और वर्तमान पर्याय से विमुख होकर और त्रिकाली ज्ञाता आनन्दकन्द के सन्मुख होकर। आहाहा! समझ में आया? अन्तर में एकाग्रता—ध्यान होती है आनन्द की, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द के सुख की लहर उठती है, उसका नाम धर्मध्यान कहा जाता है। उस धर्मध्यान द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, उसके अतिरिक्त दूसरे कोई क्रियाकाण्ड से केवलज्ञान और मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

और समस्त विकल्पजाल रहित... दूसरा शुक्लध्यान। कहते हैं कि जिसको मुक्ति चाहिए, जिसको धर्मध्यान-शुक्लध्यान की आवश्यकता है और वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान स्व-आत्माश्रय से उत्पन्न होता है। आहाहा! बराबर है?

मुमुक्षु : रोकड़।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोकड़? भगवान की यात्रा, पूजा, दया, दान और व्रत से मुक्ति नहीं होती है, ऐसा कहते हैं, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। पाप से बचने को पुण्यभाव का कारण है। समझ में आया? वह कोई मुक्ति का कारण और धर्मध्यान नहीं है। आहाहा! जिसको केवलज्ञान और मुक्ति चाहिए, उसको धर्मध्यान और शुक्लध्यान की आवश्यकता है—ऐसा कहते हैं। और वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान स्व-आत्माश्रित उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के आश्रय से भी धर्मध्यान उत्पन्न नहीं होता। उसके आश्रय से तो राग उत्पन्न होता है। पण्डितजी! गजब!

वह कहते हैं, केवलज्ञान का लोलुपी है। पहले तो यह सिद्ध किया। जिसको सिद्धपद—मुक्तिपद चाहिए और उस मुक्तिपद की व्याख्या करते हुए, निर्मल केवलज्ञान-केवलदर्शन का लोलुपी, ऐसा कहा। आहाहा! जिसके ज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने में आता है, ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन, वही मुक्ति। उसका लोलुपी—मुक्ति की पूर्ण दशा का कामी—अभिलाषी—जिज्ञासु को धर्मध्यान और शुक्लध्यान की आवश्यकता है। उसको पुण्य-पाप आदि निमित्त की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जिसको केवलज्ञान और केवलदर्शन निर्मल परमात्मदशा, अरिहन्तदशा कहो या सिद्धदशा कहो, ऐसी जिसको प्राप्त करने की जिज्ञासा है, क्योंकि अनन्त सुख तो मुक्ति में ही है। चार गति में सुख-सुख है नहीं। पुण्य और पाप का भाव होता है, उसमें भी सुख नहीं और अपनी पर्याय द्रव्य के आश्रय से होती है, उसमें भी पूर्ण सुख नहीं। समझ में आया? जिसको पूर्ण सुख चाहिए अर्थात् जिसको केवलज्ञान की लोलुपता है... लोलुपता है, भावना है (कि) हमें केवलज्ञान—मुक्ति चाहिए, दूसरी कोई चीज़ हमें नहीं (चाहिए)। ऐसा मोक्षार्थी—ऐसा मोक्ष का अर्थी... राग और पुण्य का अर्थी, वह तो संसारार्थी है। समझ में आया? चार गति में भटकने के योग्य है वह तो। आहाहा! धन्यकुमार नहीं आये? नहीं। ऐसा (समाचार) आया था कि धन्यकुमार आयेंगे। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं... अन्तिम गाथा में बहुत उपसंहार करते हैं....

'जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि' देखो! नित्य, जिसकी दृष्टि ध्रुव चिदानन्द भगवान के ऊपर नित्य पड़ी है, (उसे) धर्मध्यान नित्य होता है, ऐसा कहते हैं, किसी समय हो और किसी समय न हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सहजानन्द की मूर्ति जैसे नित्य है तो उसका आश्रय करनेवाला नित्य आश्रय करता है और नित्य आश्रय जिसका है, उसको धर्मध्यान नित्य वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं, **'णिच्चसो झाएदि तस्स समाइगं ठाइ'** उसको सामायिक होती है। आहाहा! सामायिक की व्याख्या गजब, भाई! यह तो। णमो अरिहंताणं... हो गयी सामायिक दो घड़ी। भाई! सामायिक अलौकिक चीज़ है। दुनिया मानती है सामायिक, वह (सच्ची) सामायिक नहीं। सामायिक में तो सम + आय (अर्थात्) अपनी निर्दोष

वीतराग परिणति समतारूपभाव, उसका आय अर्थात् लाभ हो, उसका नाम सामायिक कहते हैं। और वह सामायिक त्रिकाली स्व-आत्माश्रित प्रगट होती है। कोई पुण्य-पाप की क्रिया से, निमित्त से और बाह्य के सहारे से सामायिक उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भावनावाला... अपने तो पूर्ण आनन्द चाहिए, एक ही बात। हमें तो न चाहिए संसार, न चाहिए पुण्य-पाप, न चाहिए पुण्य-पाप का फल। ऐसी जिज्ञासा सम्यग्दृष्टि की होती है। सम्यग्दृष्टि की जिज्ञासा, वह केवलज्ञान का लोलुपी है, (उसे) केवलज्ञान और पूर्ण मुक्ति की इच्छा और जिज्ञासा है। किसी गति की या पुण्य से मैं चक्रवर्ती होऊँ, स्वर्ग का देव होऊँ पुण्य करके, ऐसा व्रत पालता हूँ तो ऐसी सुगति मिले—ऐसी जिज्ञासा सम्यग्दृष्टि को नहीं होती। सम्यग्दृष्टि की जिज्ञासा पूर्ण केवलज्ञान और मुक्ति पाने की है। और वह मुक्ति धर्मध्यान और शुक्लध्यान के कारण से मिलती है और वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान अपने त्रिकाली भगवान ध्रुव के आश्रय से उत्पन्न होता है। आहाहा! यह तो समझ में आता है? कल तो गुजराती चलता था न। आज तो ये लोग (आये), भाव तो... हिन्दी हो या गुजराती हो, भाव तो जो हो वह आवे न! कहाँ से आयेगा? आहाहा!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य लगभग संवत् ४९ में इस भरतक्षेत्र में थे। उन्होंने यह बनाया। अपनी भावना के लिये बनाया है, देखो! मैंने तो मेरी भावना के लिये नियमसार बनाया है, ऐसा कहते हैं। उस (निमित्त) से दुनिया भी समझ लो कि मार्ग ऐसा है, ऐसा कहते हैं। मेरी भावना तो केवलज्ञान और मुक्ति लेने की है। आहाहा! आत्मा स्वयं कहता है यहाँ तो। और केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति अपने त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु नित्यानन्द के आश्रय से, अवलम्बन से जो धर्मध्यान और शुक्लध्यान हुआ, उस धर्मध्यान और शुक्लध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। निश्चयमोक्षमार्ग से केवलज्ञान होता है। व्यवहारमोक्षमार्ग से केवलज्ञान होता है, ऐसा निषेध किया है यहाँ तो। भाई! व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा!

कहते हैं न कि निश्चय भी मोक्षमार्ग है और व्यवहार भी मोक्षमार्ग है। यहाँ मना करते हैं कि व्यवहार, मोक्षमार्ग है ही नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्ग तो

दो फल उसके होंगे। एक का निश्चय मोक्ष... निश्चय मोक्ष (मार्ग) का निश्चय मोक्ष। निश्चयमोक्षमार्ग का निश्चय मोक्ष, व्यवहारमोक्षमार्ग का व्यवहार मोक्ष—उसका अर्थ क्या? समझ में आया?

यह यहाँ एकदम सिद्ध करते हैं। समाधि, आत्मशान्ति। शुभ-अशुभ विकल्प के भाव, शुभाशुभ योग, वह तो बन्ध का कारण है। व्यवहारमोक्षमार्ग कहा, वह तो निमित्त का उपचार करके कहा। है तो वह बन्ध का कारण, वह केवलज्ञान का कारण नहीं है। केवलज्ञान और केवल(दर्शन) निर्मल, जिसकी पूर्ण दशा में तीन काल-तीन लोक एक समय में जानने में आये और उसके साथ अनन्त आनन्द का वेदन हो। ऐसा केवलज्ञान और अनन्त आनन्द का अभिलाषी जीव-मोक्षार्थी जीव को अपना मोक्ष करने में कारण धर्मध्यान, शुक्लध्यान है। दोनों बात की है। धर्मध्यान निचली श्रेणी में होता है, शुक्लध्यान ऊँची श्रेणी में होता है, परन्तु है तो दोनों ही द्रव्य के आश्रय से। आहाहा! समझ में आया?

भगवान परमानन्दमूर्ति प्रभु जिसमें से अनन्त केवलज्ञान और अनन्त आनन्द आता है, ऐसी चीज़ आत्मा, वह त्रिकाली सहजानन्द की मूर्ति है। उसका आश्रय करने से, द्रव्य को दृष्टि में लेने से, द्रव्य-वस्तु को वर्तमान... यह द्रव्य वही, अपनी निज लक्ष्मी है। यह पैसा-बैसा द्रव्य, वह तो धूल का है। रतनलालजी! वह तुम्हारा बिल्कुल नहीं है। नाम भी रतनलाल है और पैसा भी रतन है। दोनों आत्मा का नहीं है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! प्रभु! तुम हो या नहीं? है तो कैसे हो तुम? वह तो अनन्त-आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल—अनन्त वीर्य का पिण्ड एकरूप ध्रुव नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति है। आहाहा! मोक्ष के कारण की पर्याय में उस द्रव्य का आश्रय लेना पड़ता है, आवश्यकता उसकी है। मोक्ष में धर्मध्यान और शुक्लध्यान की जरूरत—आवश्यकता है और धर्मध्यान और शुक्लध्यान में जरूरत—आवश्यकता आत्मा के आश्रय की है। आहाहा! कहो, भीखाभाई!

इसमें देव-गुरु का आश्रय करने की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। बराबर कहा? आहाहा! पहले समझण में समझनेवाला आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दूसरे से समझ में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव

परमेश्वर सौ इन्द्रों के पूज्य प्रभु, उनकी इच्छा बिना वाणी आयी, उस वाणी को परमागम कहा जाता है। उस परमागम में यह नियमसार। नियमसार का अर्थ मोक्ष का मार्ग। तो मोक्ष का मार्ग कहो या सामायिक कहो; सामायिक कहो या समाधि कहो; समाधि कहो या निर्दोष वीतरागीदशा कहो। तो सम्यग्दर्शन भी वीतरागी दृष्टि है। आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूपी मूर्ति वीतराग की मूर्ति आत्मा है और उसकी दृष्टि भी वीतरागी है। वीतरागी दृष्टि में पूरे (आत्मा को) वीतराग आश्रय में लेते हैं, ऐसा कहते हैं और सम्यग्ज्ञान भी वीतरागी पर्याय है। वह वीतरागी स्वसंवेदनपर्याय सारा वीतराग का आश्रय लेती है। और चारित्र भी वीतरागी पर्याय को चारित्र कहते हैं। पंच महाव्रत का विकल्प, वह चारित्र नहीं, वह तो अचारित्र है, राग है। आहाहा! समझ में आया?

बड़ी सूक्ष्म बात है। अभी तो गड़बड़ चलती है कि ऐसा होता है, ऐसा होता है—फैसा होता है। धूल में नहीं होता, सुन तो सही! अपना भगवान भण्डार आनन्दकन्द का नाथ, उसका आश्रय लिये बिना कभी आत्मा की शुद्धि उत्पन्न होती नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की निर्मल पर्याय, त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न होती है। साक्षात् भगवान, प्रतिमा या सम्मेदशिखर या समवसरण के आश्रय से सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता। ऐई, चिमनभाई! यहाँ कहाँ गुप्त रखते हैं? खुल्ली बात है। मार्ग यह है, ऐसा उसको पहले निर्णय करना पड़ेगा। निर्णय करना पड़ेगा। जरूरत सच्चे निर्णय की है। उसको पहली आवश्यकता—जरूरत सत्य निर्णय की है। तो सत्य निर्णय में ऐसा आना चाहिए। समझ में आया?

भाई! हमेशा श्रावक को छह आवश्यक करना (चाहिए), देवदर्शन, देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, दान, तप आदि आते हैं न छह आवश्यक? वह तो सब शुभ विकल्प है, अशुभ से बचने की बात है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। क्योंकि छह आवश्यक भी विकल्प है—राग है। आहाहा! वह अपने आश्रय से उत्पन्न नहीं हुआ। वह विकल्प पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ है। अपने में उत्पन्न हुआ है, परन्तु पर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। पर के आश्रय से उत्पन्न हो, वह बन्ध का ही कारण है। '**परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई**' लो। ओहोहो! कहाँ आया? मोक्षपाहुड़ (गाथा १६) में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं कि भगवान... यहाँ तो सब भगवान आत्मा ही हैं। स्वभाव

से तो भगवान ही हैं सब। द्रव्यस्वभाव से तो सब परमात्मा हैं। भूल है पर्याय में—अवस्था में।

तो कहते हैं कि 'भगवान' कहकर बुलाया है। समझ में आया? अरे, भगवान आत्मा! तू तो निर्मलानन्द है न! पूर्ण वीतराग की मूर्ति है न! सिद्धपद की जो पर्याय प्राप्त होती है, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का पिण्ड तुम हो। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा स्वात्माश्रित... देखो न! यहाँ वह कहते हैं कि धर्मध्यान शुभभाव और शुद्धभाव, वह शुक्लध्यान। ऐसा (वे लोग) कहते हैं। सुना है? सुना है। पण्डित ने तो सुना ही हो न बहुत।

मुमुक्षु : वे तो सबको सुनाते हैं महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको सुनाते हैं। विपरीत बात है सब। यहाँ तो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव तीर्थंकरदेव परमेश्वर जिसको एक समय में तीन काल, तीन लोक देखने में आया। ऐसे परमात्मा की वाणी—इच्छा बिना दिव्यध्वनि—प्रवचन हुआ। प्र—अर्थात् उत्कृष्ट, वचन अर्थात् दिव्यध्वनि। भगवान की ओमकार दिव्यध्वनि में ऐसे मोक्ष के मार्ग की व्याख्या आयी थी, ये कुन्दकुन्दाचार्य अपने शास्त्र द्वारा अपनी भावना द्वारा कहते हैं। समझ में आया?

स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान द्वारा और समस्त विकल्पजाल रहित निश्चय-शुक्लध्यान द्वारा... आहाहा! संसार में रुलने में आर्त और रौद्रध्यान की आवश्यकता है। चार गति में भटकने में आर्तध्यान, रौद्रध्यान कारण है और मुक्ति में धर्मध्यान और शुक्लध्यान कारण है। वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान वीतरागी निर्मलपर्याय को कहते हैं। वह निर्मलपर्याय पर्यायवान त्रिकाली भगवान के आश्रय से उत्पन्न होती है। समझ में आया? लो, **शुक्लध्यान द्वारा—स्वात्मनिष्ठ...** आहाहा! स्वात्मनिष्ठ.... स्व-आत्माश्रित धर्मध्यान हुआ, परन्तु शुक्लध्यान में तो विशेष स्व-आत्मनिष्ठ है, ऐसा कहते हैं। स्व-आत्मनिष्ठ... अतीन्द्रिय आनन्द का ध्रुवस्वरूप उसमें—स्व-आत्मा में निष्ठ है—लीन है। शुक्लध्यान की पर्याय अन्दर लीन (है, उसको) मोक्ष का कारण कहने में आता है। अरे! गजब व्याख्या!

अब ऐसा निश्चय... निश्चय... फिर व्यवहार होगा या नहीं कहीं? कहा न व्यवहार। सुने, विकल्प आवे, वह सब बन्ध के कारण हैं। ऐसा (विकल्प) बीच में आता है। समझ में आया? सुनने में भी विकल्प आता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, समझाने में भी विकल्प उठता है, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है, भगवान की यात्रा और नामस्मरण आदि 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' यह सब शुभविकल्प और पुण्य-राग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसी स्पष्टता आपने की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी स्पष्टता भगवान ने अनादि से की है। समझ में आया? 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' (सत्य) एक ही होता है, सत्य दो नहीं (होते)।

अनन्त काल से परमेश्वर वीतराग तीर्थंकर होते आये हैं। अनन्त काल से तीर्थंकर (होते आये हैं)। कभी तीन काल में तीन काल के जाननेवाले का विरह नहीं होता। क्या कहा? तीन काल में तीन काल के जाननेवाला... वस्तु है न ज्ञेय? तीन काल का जाननेवाला कभी न हो, ऐसा तीन काल में होता नहीं। आहाहा! लॉजिक से—न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं उसको? तीन काल जो ज्ञेयरूप है, तो तीन काल का जाननेवाला ज्ञाता भी अनादि से है। आहाहा! (न हो तो) तीन काल है, ऐसा जाना किसने? समझ में आया? आहाहा! अनन्त काल से भगवान सर्वज्ञ ऐसा कहते आये हैं। वर्तमान में महाविदेह में भगवान श्री सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकरपद में विराजते हैं। 'णमो अरिहंताणं' पद में विराजते हैं। भगवान महावीर आदि तो 'णमो सिद्धाणं' पद में चले गये। वे तो 'णमो सिद्धाणं' में आ गये। सीमन्धर परमात्मा अभी विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, वर्तमान में महाविदेह में मनुष्यपने हैं, अरिहन्तपद में हैं, उनकी दिव्यध्वनि में यह आया है।

उस दिव्यध्वनि सुनने को कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में पौन्नूरहिल से गये थे। तुम्हारे वहाँ है न? मद्रास से ८० मील (दूर) पौन्नूरहिल है। वन्देवास गाँव है। दस हजार लोगों की बस्ती है। वहाँ से पाँच मील दूर है। वहाँ ध्यान में रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। सदेह महाविदेह की यात्रा की। वहाँ जाकर आये, पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य ने यह बनाया। आहाहा! भाई! यहाँ तो कहा न, मेरी भावना

के लिये मैंने बनाया है। आहाहा! मेरा स्वरूप, एक क्षण में—समय में पूर्ण आनन्द ध्रुव है, उसके आश्रय में मैं पड़ा हूँ। उसकी एकाग्रता के लिये मैंने यह शास्त्र बनाया है। समझ में आया? यह तो अमृतचन्द्राचार्य में आया था कि अपनी शुद्धि के लिये बनाया है। इस टीका का फल हमको शुद्धि हो। उसका अर्थ कि उस काल में मेरी एकाग्रता वर्तती है तो शुद्धि हो जाये, ऐसा। (समयसार कलश ३)। समझ में आया? आहाहा!

स्व-आत्म—**(निज आत्मा में लीन ऐसी) निर्विकल्प परम समाधिरूप सम्पत्ति के कारणभूत...** आहाहा! क्या कहते हैं? परम समाधि वर्तमान सम्पत्ति—लक्ष्मी आनन्द... लो, यह सम्पत्ति आयी। तुम्हारी धूल की सम्पत्ति नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ। करोड़ों, दो करोड़, तीन करोड़, चार करोड़ की धूल। यह सम्पत्ति, यह पर्याय की सम्पत्ति की बात करते हैं, हों! देखो! **निर्विकल्प परम समाधिरूप सम्पत्ति के कारणभूत ऐसे उन धर्म-शुक्ल ध्यानों द्वारा,...** ऐसा। धर्मध्यान और शुक्लध्यान द्वारा अपनी सम्पत्ति पर्याय में प्रगट होती है। आहाहा! फिर से। आत्मा में तो अनन्त आनन्द और अनन्त (ज्ञानरूप) लक्ष्मी है। भगवान—भग अर्थात् अनन्त ज्ञान और आनन्दरूपी लक्ष्मी, वान—उसका स्वरूप है। आत्मा का स्वरूप त्रिकाली भगवान ही है। उस भगवान के अवलम्बन से जो परम सम्पत्ति मोक्ष के मार्ग (रूप) समाधि प्रगट हुई, उसका कारण धर्मध्यान, शुक्लध्यान है। समझ में आया? आहाहा!

सम्पत्ति के कारणभूत ऐसे उन धर्म-शुक्ल ध्यानों द्वारा,... आहाहा! एक-एक गाथा में बहुत भर दिया है! हाँ, पूरा। भगवान की दिव्यध्वनि में भी पूरा आवे—पूरा आता है। भगवान आत्मा पूरा, उसकी पूरी पर्याय प्रगट करने में वाणी भी पूरी आती है। समझ में आया? कहते हैं कि **धर्म-शुक्लध्यानों द्वारा, अखण्ड अद्वैत-सहज-चिद्विलासलक्षण अक्षय आनन्दसागर में मग्न होनेवाले...** आहाहा! कैसे हैं आत्मा? **अखण्ड अद्वैत-सहज-चिद्विलासलक्षण...** अखण्ड-अद्वैत आत्मा, स्वाभाविक चैतन्यविलास जिसका लक्षण है। **अक्षय आनन्दसागर में मग्न होनेवाले...** अपने अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होनेवाले... आहाहा!

सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख,... विकल्प की क्रिया से विमुख और त्रिकाली भगवान के सन्मुख की निर्मल क्रिया में सन्मुख अथवा निर्मलस्वभाव में सन्मुख। समझ

में आया ? आहाहा ! **अक्षय आनन्दसागर में मग्न होनेवाले...** नाश न हो, समझ में आया ? ऐसे स्वाभाविक चैतन्यविलास जिसका त्रिकाली लक्षण, ऐसा आनन्दसागर भगवान... आहाहा ! हंस तो सागर में डूबकर मोती का चारा चरते हैं, अनन्त आनन्द को चरते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! हंस अर्थात् जीव, राग और स्वभाव का विवेक जिसको हुआ है, वे अपने अनन्त आनन्दसागर में डुबकी लगाते हैं। आहाहा ! उसका स्वाद लेते हैं। **सकल बाह्यक्रिया से पराङ्मुख,...** भक्ति और व्रत, तप और बाह्य का विकल्प और बाह्य का नामस्मरण सब विकल्प-राग है। उस बाह्यक्रिया से पराङ्मुख....

शाश्वत्रूप से (सदा) अन्त:क्रिया के अधिकरणभूत,... भगवान आत्मा शाश्वत् सदा अन्त:क्रिया का आधार है। वीतरागी पर्याय निर्मलदशा धर्मध्यान, शुक्लध्यान, ऐसी क्रिया का आधार **सदाशिवस्वरूप—** सदा मोक्षस्वरूप... आहाहा ! मुनि को शब्द कितने कम पड़ते हैं ! क्या कहना ? भगवान आत्मा... आहाहा ! जिसका मूल्यांकन नहीं (ऐसी) अमूल्य चीज़ ऐसा भगवान सदाशिवस्वरूप आत्मा... देखो ! मोक्षस्वरूपी आत्मा सदा त्रिकाल ऐसे को **निरन्तर ध्याता है...** ऐसे को निरन्तर ध्याता है। आहाहा ! हिम्मतभाई गये ? आया होगा, फोन आया होगा। समझ में आया ? शब्द भी याद रहना मुश्किल इसमें तो। अखण्ड, अद्वैतस्वरूप में डुबकी लगाने से जो एकाग्रता होती है, ऐसी एकाग्रता शिवस्वरूप भगवान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होती है। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : अकेले आत्मा के ही गीत गाये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ....किसके गीत गाये ? राग और पुण्य के गीत तो अनन्त काल से गाये हैं। पुण्य और पाप के भाव की—जहर की मिठास तो अनादि से है। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव—दोनों जहर हैं, आत्मा के अमृत से विरुद्धभाव हैं। उसकी—जहर की मिठास तो अनादि से ली है। जहर का पेय पीया है और चार गति में रुला है। आहाहा ! समझ में आया ? साधारण प्राणी को तो ऐसा लगे कि क्या कहते हैं। ग्रीक-लेटिन (अटपटा) जैसा लगे। भगवान ! तेरे घर की बात है, भाई ! तूने सुनी नहीं। तेरे समझ में आयी नहीं, परन्तु तेरे घर की यही बात है। समझ में आया ? आहाहा ! भजन में नहीं आया ?

अब हम कबहू न निजघर आये, अब हम कबहू न निजघर आये,
परघर भ्रमत फिरत नाम अनेक धराये, अब हम कबहू न निजघर आये।

अपना निजघर आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा उस घर में कभी एक समय भी आया नहीं और पुण्य-पाप परघर... आहाहा! विकल्प की वृत्ति परघर में भ्रमत-फिरत अनेक नाम धराये। हम स्वर्ग में देव हुए, हम सेठ हुए, हम रंक हुए। सब धूलधाणी है। आहाहा! हमें दो अरब-पाँच अरब की मूड़ी-पूँजी है। धूल की पूँजी है तुझे? धूल का स्वामी तो जड़ है। समझ में आया? आहाहा! भैंस का स्वामी तो पाडा होता है। पाडा कहते हैं? क्या कहते हैं? भैंसा। भैंसा... भैंसा। उसी प्रकार जड़लक्ष्मी का स्वामी तो जड़ होता है। यहाँ तो, सहजानन्दमूर्ति का स्वामी, वही चेतन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

निरन्तर ऐसा सदा शिवरूप आत्मा... आहाहा! शिव अर्थात् निरुपद्रव, सदा कल्याणमूर्ति प्रभु है, त्रिकाल कल्याणमूर्ति भगवान आत्मा है। आहाहा! सदा मोक्षतत्त्वरूप आत्मा को... क्योंकि पहले ऐसा लिया था न? कि जिसको केवलज्ञान की लोलुपता है अर्थात् जिसको मोक्षपर्याय—मोक्ष चाहिए, उसको सदा शिव—मोक्षरूप (आत्मा) का आश्रय लेना चाहिए। आहाहा! टीका भी गजब बनायी है न! गजब हुई, ऐसा एक आया था कल। नहीं आया था? चार बोल आये थे। कल गजब हुआ। कन्या कॉलेज में पढ़ती थी। वहाँ उसका सगाई (मँगनी) खोजते थे। वहाँ कन्या आकर कहे, बापूजी! मैं विवाह नहीं करूँगी। गजब किया! ऐसी-ऐसी 'गजब हुई' के चार बोल रखे हैं उसमें आये हैं। अखबार था न। क्या कहलाता है? जैनप्रकाश। उसमें थे, तीन-चार बोल थे, नहीं? शाम को लिये थे। गजब हुई, कहे। नाक कटा, गाँव में बातें चलीं। पूछने आये कि कैसे कटा? कि भारी हुई। ऐसे सब बोल थे, लो। तीन-चार बोल लिखे थे। गजब हुआ। आहाहा!

इसी प्रकार अनादि से अज्ञान और भारी भटकने की दशा हुई। समझ में आया? आहाहा! वह आया था कल। तीन-चार बोल आये थे। ऊपर बड़ा लिखा था 'गजब हुआ'। चार बोल रखे थे। कन्या कॉलेज में पढ़ती थी और खोजते थे सगाई। वहाँ (कहे), बापूजी! मैं विवाह कर चुकी हूँ। गजब हुआ, कहे भाई! गुप्त चलता है न अभी तो ऐसा

सब। आहाहा! वोट का कुछ डाला था। बड़ा प्रधानपद लेना था। वहाँ निकला शून्य उसके नाम में—उस वोट के कागज में। शून्य। हाय, हाय! गजब हुआ। मुझे बड़ा होना था, उसमें यह शून्य निकला। गजब हुआ, कहे। ऐसे-ऐसे 'गजब हुआ' के बोल रखे थे। आहाहा! अरे बापू! गजब हुआ यह तो तू। आहाहा!

यहाँ भगवान आत्मा शिवस्वरूप प्रभु मुक्तस्वरूप ही त्रिकाल है। पर्याय में मुक्ति जिसको चाहिए, उसको शिवस्वरूप का आश्रय लेना पड़ेगा। उसकी आवश्यकता उसको यह है। अवश्य क्रिया करनेयोग्य आवश्यकता यह है। एक ही आवश्यक... भाई ने लिखा है न? 'छह आवश्यक की अपेक्षा एक आवश्यक' जहाँ आत्मधर्म में (पढ़ा) वहाँ तो... द्रव्यदृष्टिप्रकाश। सोगानी... सोगानी, कलकत्ता, द्रव्यदृष्टिप्रकाश। 'एक आवश्यक' (पढ़ा)। आहाहा! आत्मधर्म में ऐसा लिखा कि एक ही आवश्यक है। छह आवश्यक में कितने तो विकल्प और कितने यह... यह.. यह... एक आवश्यक, अपने स्वभाव का आश्रय लेना, यह एक आवश्यक है, आवश्यकता उसकी है। ऐसे आवश्यक की आवश्यकता है। आहाहा! कहो! .....

प्रिय जीव पात्र था न! एकदम एक रात्रि में समकित। यहाँ (समिति)। गृहस्थ हैं। जानते हो? कलकत्ता में। कलकत्ता, सोगानी। यहाँ आये, (संवत्) २००२ के वर्ष में आये। बहुत वाँचन। बहुत लाखोंपति गृहस्थ हैं, बड़ी कपड़े की दुकान है। बहुत लाखोंपति है। बहुत वाँचन था। वाँचन करते-करते यहाँ आये। पहले आत्मधर्म देखा था कि एक ही आवश्यक है। वहाँ तो उनको ऐसा हुआ कि ओहो! यह क्या? यह क्या कहते हैं? चलो भाई वहाँ! यहाँ कहा कि भैया! ज्ञान और राग भिन्न है। भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप और दया-दान का विकल्प—राग, दोनों चीज़ भिन्न हैं। दोनों चीज़ एक नहीं। आहाहा! ऐसा जहाँ सुना... कमरे में... अपने समिति में ठहरे हो न तुम? कमरे में चले गये। शाम से सवेरे तक ध्यान में बैठे रहे। बस, सवेरे से पहले निर्विकल्प ध्यान, सम्यग्दर्शन, आत्मा का स्वाद लेकर उठ गये। समझ में आया? बहुत पात्र प्रिय जीव है। संसार का किनारा आ गया। संसार के किनारे आ गये थे। कपड़े की दुकान है वहाँ। बहुत बार आये न! फिर यहाँ बहुत बार आये।

यहाँ कहते हैं कि आहा! यहाँ तो आवश्यक के ऊपर से ख्याल आया। यह

सामायिक आवश्यक है न ? सामायिक, चौबीसंथो, कायोत्सर्ग आदि छह आवश्यक। वे छह आवश्यक और अलग। देवपूजा, गुरुसेवा और वे छह आवश्यक। परन्तु यह सामायिक, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान (आदि) छह आवश्यक। वे तो आते हैं। उसमें सामायिक आवश्यक की बात चलती है। सामायिक अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निश्चय वीतरागीपरिणाम, उसको सामायिक कहते हैं। उस सामायिक का आश्रय त्रिकाली द्रव्य है। त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से सामायिक उत्पन्न होती है। सामायिक कोई निमित्त से, 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' के विकल्प से सामायिक उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! आया ?

उसे वास्तव में जिनेश्वर के शासन से... देखो! मुनिराज दिगम्बर सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले हुए, उनकी यह टीका है। कुन्दकुन्दाचार्य ने नियमसार बनाया, उसकी यह टीका है। **जिनेश्वर के शासन से निष्पन्न हुआ, नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा गुप्त...** अन्दर मन-वचन-काया के विकल्प से रहित, अन्तर भगवान के आश्रय से त्रिगुप्ति (रूप) निर्विकल्प परिणति उत्पन्न हुई। **ऐसी परम समाधि जिसका लक्षण है,...** परम शान्ति... परम शान्ति... परम आनन्द जिसका लक्षण है, **ऐसा शाश्वत सामायिकव्रत है।** उसको भगवान ने सच्ची सामायिक कही है। आहाहा! कहो, समझ में आया ?

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने... पाठ में है या नहीं ? '**तस्स समाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे**' केवलज्ञानी परमात्मा तीर्थंकरदेव के शासन में उसे सामायिक कहा जाता है। शाश्वत् अर्थात् सच्ची, ऐसा। सच्ची। सामायिक है तो पर्याय, परन्तु वह शाश्वत् के आश्रय से उत्पन्न हुई, उसका फल भी शाश्वत् रहेगा, उसका फल शाश्वत् पर्याय ऐसी की ऐसी रहेगी। इसलिए वह सामायिक, पर्याय होने पर भी... सामायिक, पर्याय है; द्रव्य तो त्रिकाली है। आहाहा! **नित्यशुद्ध, त्रिगुप्ति द्वारा...** मन-वचन-काया के लक्ष्य से छूटकर... तीन का संसर्ग नहीं, परिचय नहीं। अपने त्रिकाली भगवान का जहाँ संसर्ग और परिचय (हुआ), उसमें जो त्रिगुप्तिरूप पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसी परमसमाधि जिसका लक्षण... आहाहा! यह मुनि की मुख्यता से बात है। श्रावक को भी उसके अंश में गिन लेना। मुनि ऐसे होते हैं, देखो! आहाहा! अकेला नग्नपना लिया और पंच महाव्रत के विकल्प कदाचित् हो तो वह सामायिक है और मुनि है—ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

परम समाधि जिसका लक्षण... देखो! परम आनन्द जिसका लक्षण, ऐसी सामायिक है। सामायिक में तो परम अतीन्द्रिय आनन्द आता है, उसका नाम सामायिक है। 'णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं' करके पूरा किया, हो गयी सामायिक। वह तो विसामायिक है, विषमभाव है, विकारभाव है, दु:खभाव है, आनन्द का अभावभाव है। क्या किया इतने वर्ष से? इसका नाम भगवान के शासन में सामायिक कहा जाता है—कहने में आता है। अभी गुजराती आ गया न बीच में। समझ में आया? आहाहा! गजब! एक टीका की, वह कितना...! **ऐसा शाश्वत सामायिकव्रत है।** पहले चारित्र कहा था (अर्थात्) स्वरूप में रमणता। आनन्दनाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का गंज—पिण्ड प्रभु... ढगला अर्थात् पिण्ड—ढ़ेर। उसमें लीनता, अतीन्द्रिय आनन्द समाधि के लक्षणवाली सामायिक कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो सामायिक में बैठे और पुण्यभाव—शुभभाव का भी ठिकाना न हो। दुकान के विचार में चला जाये, कपड़े में चला जाये, ढींकणा में चला जाये। अभी कोई पूछने आयेगा लड़का, बापूजी! आज क्या सब्जी लाना? शाक समझे? क्या कहते हैं? सब्जी। क्या लाना है अभी? अभी मुझे कहा जाये ऐसा नहीं। कल लाये, वह लाना जाओ। कल लाये, वह लाना। ऐसे दूसरी लाना। मुझे अभी बोला जाये, ऐसा नहीं। यह बिना ठिकाने की ऐसी सामायिक। आहाहा! शुभभाव का ठिकाना न हो, धर्म तो कहाँ है? आहाहा! ऐसा बनता है, हों! बहुत कितनों को। खबर नहीं? मुझसे कहा जाये यह? खबर नहीं? कल लाये ऐसा नहीं लाया जाता। प्रतिदिन (एक की एक) नहीं लायी जाती। ठीक जाओ, कह दिया। भीखाभाई! आहाहा! अरर!

भाई! यहाँ कदाचित् शुभराग के विकल्प में व्यतीत करे दो घड़ी तो भी वह सामायिक नहीं। वह तो विषमभाव, पुण्यबन्ध का कारण है। कहो, सुजानमलजी! यह तो तुम्हारे श्वेताम्बर में भी है, स्थानकवासी में भी है, दिगम्बर में—तीनों में यह सामायिक कहने में आती है।

मुमुक्षु : सब खोटी सामायिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी सामायिक? आहाहा! यही सत्य वस्तु है। मार्ग की पद्धति

ही यह है। क्योंकि वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वस्तु का स्वरूप समता का पिण्ड वीतराग के आश्रय से वीतरागी परिणति हो, वही मार्ग एक ही है। बस समाप्त। तीन काल, तीन लोक में दूसरी कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

इसमें कहते हैं, थोड़ा ऐसा भी करो, ऐसा भी करो, उसको भी सच्चा मानो, उसको भी सच्चा मानो। ऐसा वीतराग का मार्ग नहीं है। वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ कहते हैं, वह एक ही मार्ग सत्य है। उसमें भी सत्य है, तीसरे में भी सत्य है, सब धर्म का समन्वय करो, (ऐसा) नहीं होता। सर्व धर्म विश्वधर्म का समन्वय करो, यह जैनधर्म है—ऐसा है नहीं। यहाँ तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा जाना, कहा, ऐसा जानकर अन्दर एकाग्र हो, उसको धर्म होता है, दूसरे को धर्म होता नहीं। उसका नाम जैनधर्म है। समझ में आया? यह जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, वह कोई वाड़ा नहीं। 'जिन सो ही आत्मा...' उसके आश्रय से प्रगट दशा हो, वह जैनधर्म। समझ में आया? जिन आत्मा... त्रिकाली वस्तु जिन, उसको आत्मा कहते हैं। त्रिकाली आत्मा को जिन कहते हैं। भगवान ने देखा वह आत्मा, हों! सर्वज्ञ के सिवाय दूसरा कहे ऐसा आत्मा—फैसा आत्मा—वह आत्मा नहीं।

यहाँ तो त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिनेश्वर परमात्मा ने केवलज्ञान में जो अनन्त आत्मा देखे, वह आत्मा एक समय में परिपूर्ण आनन्दकन्द भगवान ने देखा है। आहाहा! क्योंकि भगवान को भी केवलज्ञान और अनन्त आनन्द पर्याय में आया, वह कहाँ से आया? पर्याय में से आया? राग में से आया? वस्तु अन्दर में से (आया)। आहाहा! ऐसा नित्यानन्द भगवान... भगवान ने कहा, वही एक वीतरागमार्ग का आत्मा, उसके अवलम्बन से शान्ति की प्राप्ति, निर्विकल्प समाधि, आनन्द की प्राप्ति हो, उसको भगवान के शासन में मोक्ष के मार्गरूप सामायिक कहने में आयी है। दूसरी सामायिक दूसरे में कहते हैं, वह सामायिक है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ७, रविवार, दिनांक - १०-१०-१९७१
श्लोक-२१९, गाथा-१३४, प्रवचन-१४७

(नियमसार) सिद्धान्त है, समाधि अधिकार। सामायिक की व्याख्या है। सामायिक किसे होती है और सामायिक कैसी होती है? सामायिक अर्थात् धर्म। वह धर्म कैसा होता है और धर्म कैसे होता है—उसकी व्याख्या है। २१९ कलश।

शुक्लध्याने परिणत-मतिः शुद्धरत्नत्रयात्मा,
धर्मध्यानेऽप्यनघपरमानन्दतत्त्वाश्रितेऽस्मिन्।
प्राप्नोत्युच्चै-रपगत-महद्दुःखजालं विशालं,
भेदाभावात् किमपि भविनां वाङ्मनोमार्गदूरम्॥२१९॥

अरे! इस संसार में—चौरासी लाख के अवतार में दुःखी होकर जीव भटकता है। आकुलता का पार नहीं होता। चाहे तो लक्ष्मीवन्त हो या निर्धन हो, देव हो या नारकी हो, कुंजर—हाथी या कीड़ा हो—सब आत्मा के भान बिना—आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा के भान बिना दुःखी हैं, चौरासी के अवतार में दुःखी हैं। कहते हैं कि वह दुःख टालने का उपाय क्या? **निर्दोष परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित धर्मध्यान...** भगवान आत्मा परमानन्दमय तत्त्व है। संसार में शुभ और अशुभभाव, वह दुःखरूप है। संयोग दुःखरूप नहीं तथा स्वभाव दुःखरूप नहीं। उसमें आकुलता (कि) यह मुझे ऐसा हुआ, यह मुझे ऐसा हुआ, मुझे कुछ ठीक है, अनुकूल है या मुझे कुछ ठीक नहीं—ऐसे विकल्प—पुण्य और पाप के भाव, वे सब अघ हैं, अघ। है न **'अनघ'?** वे सब अघ हैं, अग्नि हैं। आहाहा! अग्नि में वह अनादि से दुःखी है, सिंकता है। भान नहीं उसे (कि) मैं कहाँ हूँ, मुझे क्या होता है?

कहते हैं, अघ... ऐसे जो पुण्य और पाप के भाव, वे अघ हैं, पाप हैं, दुःख हैं, दावानल सुलगता है, उसकी पर्याय में। आहाहा! समझ में आया? कुछ ऐसे पैसे हों, ५-२५ लाख, इज्जत ठीक हो तो हम सुखी हैं। मूढ़ है। दुःखी... दुःखी... दुःखी है। सौ

में सौ प्रतिशत दु:खी है। समझ में आया? आहाहा! परसों अभी गये थे तीन पहले वहाँ। चिल्लाहट मचाते थे। ओ माँ! ओ माँ! करते थे। सात-आठ लाख रुपये हैं, बँगला, पैसे हैं। धूल क्या करे उस मिट्टी में? पेट में केन्सर और उसकी अन्तिम पीड़ा मरने की। आहाहा! सुन सके नहीं। पति-पत्नी—दोनों। पति-पत्नी दोनों। पैसे थे सात-आठ लाख-दस लाख। रोवे... रोवे नहीं, चिल्लाहट मचाये। ओ माँ! ओ माँ! माँ अर्थात् ऐसा नहीं, परन्तु दु:ख के कारण ओ माँ! ऐसा। आहाहा! कौन शरण है, इसकी खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं कि वे दु:ख के भाव, शुभ और अशुभ के विकल्प—राग, वह दु:खमय है। उसे अपना माननेवाला प्राणी दु:खी है। तब तत्त्व कैसा है, यह भगवान आत्मा अन्दर? **अनघ (निर्दोष) परमानन्दमय तत्त्व...** है। प्रभु आत्मा, जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो परमानन्दमय आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्दमय उसका स्वरूप है। अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप उसका है। आहाहा! कभी उसकी नजर की नहीं और जहाँ नजर की है, वहाँ वह नहीं। समझ में आया? **निर्दोष परमानन्दमय तत्त्व के...** भगवान परमानन्दस्वरूप है, ऐसा जो तत्त्व, उसके **आश्रित...** उसका जिसने अवलम्बन लिया, ऐसे परमानन्दतत्त्व की नजर जिसने की, उसका जिसने आश्रय किया, ऐसा धर्मध्यान... उसे धर्मध्यान कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—यह सब भाव राग और दु:खमय है। समझ में आया? आता है, होता है, परन्तु है वह अग्नि।

भगवान आत्मा, वह आकुलतारहित—अनाकुल परमानन्दतत्त्व परमानन्दमय है। परमानन्द, परम अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसका आश्रय करके जो धर्मध्यान प्रगटे, उसकी बुद्धि निर्मलदशा में—शुद्ध परिणति में परिणमती है, उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? बातें तो करने लगे कितने ही। वापस योगफल ऐसा ले कि शुद्धस्वरूप तो है, उसका आश्रय करे तो ही संवर-निर्जरा होती है, परन्तु उसे प्राप्ति करने के लिये उस शुभभाव की आवश्यकता है। आज आया था जैनसन्देश में। जैन-उपदेश... समझ में आया? अशुभ है, वह तो बहुत विरुद्ध है जीव को, इसलिए शुभ में आना, वह आत्मा को हितकारी है। जिसे हितकारी माने, उसकी रुचि छोड़े कैसे? समझ में आया? उसका लक्ष्य तो वहँ शुभराग (के ऊपर) है, वह पुण्य है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, यात्रा—यह सब भाव राग की मन्दता का पुण्य है, धर्म नहीं।

धर्म तो उसे कहते हैं कि भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा परमानन्दमय कहा, जाना और कहा, ऐसा जो परमानन्दमय प्रभु, उसका आश्रय लेकर, उसका अवलम्बन लेकर, उस ओर ढलाव—झुकाव से; निमित्त, राग और वर्तमान एक समय की पर्याय से विमुख होकर, त्रिकाली परमानन्द भगवान (के) सन्मुख होकर जो दशा धर्मध्यान की प्रगट हो, उसमें परम आनन्द आता है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय परम आनन्द आवे, वह धर्मध्यान। संसार के दुःख से मुक्त होने का यह उपाय है। समझ में आया?

धर्मध्यान में और शुक्लध्यान में... परन्तु बात यह कि परमानन्दमय तत्त्व के आश्रित दोनों (होते हैं)। धर्मध्यान कहो, सामायिक कहो, सत्य प्रतिक्रमण कहो, सत्य प्रायश्चित्त कहो, सत्य प्रत्याख्यान कहो—सब एक चीज़ है। जगत को कठिन पड़े। अनन्त काल से कभी... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय परमानन्द का पिण्ड है। आहाहा! उसका आश्रय अन्तर्मुख होकर, वस्तु में स्थ होकर... वस्तु तो परमानन्दमय है, उसमें स्थ होकर... स्थ हो, उसका आश्रय करे तो स्थ हो। ऐसा जो धर्मध्यान अर्थात् कि सामायिक, वह सामायिक। समझ में आया? ऐसी सामायिक, वह आत्मा के आश्रित प्रगट हुई दशा और उग्ररूप से आश्रय लेकर जो प्रगट हुई परमानन्द की अभेद दशा... **जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है,...** जिसकी वर्तमान ज्ञानदशा आनन्दरूप से और शुद्धरूप से हुई है। पुण्य और पाप के भाव, वे तो अशुद्ध हैं। कठिन बात है इसे। क्योंकि बाहर की अनुकूलता की मिठास है तो उसके कारण (रूप) पुण्य की उसे मिठास हो गयी है। आहाहा! कोई धूल भी नहीं था तेरा। अनुकूलता तो, आत्मा आनन्दस्वरूप का आश्रय करना, वह अनुकूलता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे तत्त्व के आश्रित **जिसकी बुद्धि परिणमित हुई है,...** अर्थात् क्या कहते हैं? कि यह विकल्प से जो धारा है कि यह आत्मा ऐसा है, ऐसा नहीं। ज्ञान का पुंज प्रभु... सम्यग्दर्शन की प्राप्ति उसे होती है और उसे परिणमन होता है कि जो त्रिकाली आनन्द का आश्रय लेकर बुद्धि परिणमित हुई, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें भारी कठिन। यह तो कहे ऊँची श्रेणी की बात है। नीची श्रेणी की कुछ है या नहीं? ऊँची कहे या नीची कहे, यह एक ही है।

मुमुक्षु : भटकने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने का... लिखते हैं... दोनों। विद्यानन्दजी ने ऐसी पहले महिमा की है कि आत्मा के आश्रय से संवर-निर्जरा होती है, ढींकणा होता है। परन्तु सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये व्रत, संयम, पूजा, भक्ति, स्मरण, वह सम्यग्दर्शन प्राप्ति का कारण है। जरा वहाँ गड़बड़ की है। पहले ठीक बात की। मैंने कहा....

उसमें यह कैलाशचन्दजी (कहे), अभी दो दशायें चलती हैं। एक शुभ को ही धर्म मनाती है, तब एक शुभ को उड़ाती है। अरे, भाई! उड़ाने का कारण, वह शुभराग तो परलक्ष्यी, बहिरात्मबुद्धि है। वह बुद्धि इसे जहाँ तक रुचती है, वहाँ तक अधर्म है। आहाहा! अरे! कुछ अन्दर चैतन्य के स्वभाव का इसे माहात्म्य नहीं आता। देखा नहीं, जाना नहीं, ख्याल में आया नहीं। प्रथम अभी सम्यग्दर्शन प्राप्ति की बात है यह तो। प्रथम... और सर्म्यदर्शन हो, वहाँ सम्यग्ज्ञान हो और सम्यग्ज्ञानपूर्वक स्वरूप में लीनता हो, रमे आनन्द में, उसे चारित्र कहा जाता है। यह क्रियाकाण्ड और नग्नपना या पंच महाव्रत के विकल्प, वह चारित्र नहीं, वह तो राग है। समझ में आया?

परमानन्दमय... यहाँ से शुरु किया है। ऐसा जो भगवान आत्मा... अरे! जहाँ स्थिर होने का ठिकाना है, उसे देखने को निवृत्त नहीं और जिसमें स्थिर होकर रहा है (उसमें) अकेला दुःख का दावानल सुलगता है। समझ में आया? पैसा पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, शरीर सफेद-रूपवान, स्त्री—यह सब दुःख के निमित्त और दुःख में सुलग रहे हैं। आहाहा! पण्डितजी! अरे! तुम भगवान का नाम लो, भाई! भगवान का नाम लो। भगवान का नाम ले, वह शुभराग है; वह धर्म नहीं, वह भी कषाय की अग्नि है। पाप से बचने के लिये होता अवश्य है, परन्तु वह धर्म है और उससे जन्म-मरण का अन्त आवे, यह वीतरागमार्ग में नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं। आहाहा! अघ को नाश करने का उपाय... अघ अर्थात् पुण्य-पाप दोनों। अनघ ऐसा जो परमानन्द तत्त्व, उसका आश्रय लेना, अन्तर का अवलम्बन लेकर जो धर्मध्यान की बुद्धि परिणमे, वह दुःख को नाश करने का उपाय है। समझ में आया?

ऐसा शुद्धरत्नत्रयात्मक जीव... आहाहा! भगवान... ध्रुव... ध्रुव... अविनाशी तत्त्व

जिसकी पर्याय—अवस्था नाशवान... बातें तो करने लगे हैं, हों! पर्याय नाशवान, ऐसा आया है आज... सुनते हैं न सब। वापस कहे, उपाय कौनसा? आहाहा! अरेरे! आहाहा! भाई! तुझे आत्मा में क्या कमी है और क्या अपूर्णता है कि उसे पर का आश्रय लेना पड़े? पर का आश्रय जितना ले, उतना सब दु:ख है। '**परदव्वादो दुग्गई**' ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। जितना परद्रव्य के आश्रय से भाव हो, वह सब दु:खरूप है, दुर्गति है। पुण्यभाव, वह दुर्गति है, ऐसा कहते हैं। वह चैतन्य की गति है? आहाहा! अरे! कभी देखा नहीं, उसे सत्य का शरण मिला नहीं, ऐसा का ऐसा हैरान हो... होकर...

यहाँ कहते हैं कि जिसकी बुद्धि परिणमी है, ऐसा शुद्धरत्नत्रयस्वरूप जीव... अभेद करके बात की है। आहा! पुण्य-पाप के विकल्प के भाव से भिन्न पड़कर जिसने परमानन्द प्रभु का—स्वयं अपना—निजतत्त्व का आश्रय लिया, ऐसा शुद्धरत्नत्रयस्वरूप जीव अन्तर के पूर्णानन्द की प्रतीति—सम्यग्दर्शन, पूर्णानन्द का स्वसंवेदन ज्ञान और पूर्णानन्द में लीनतारूप चारित्र, इन तीनरूप से जो परिणमित हुआ, ऐसा जीव शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप, ऐसा कहा। इसका अर्थ यह कि अशुद्धरत्नत्रय(रूप) दूसरे विकल्प होते हैं। आहाहा! व्यवहार मोक्षमार्ग जो कहलाता है, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के परिणाम का विकल्प, शास्त्र का ज्ञान आदि पर के ज्ञान का विकल्प—वह सब अशुद्ध रत्नत्रय है, बन्ध के कारण हैं, वह मोक्ष का कारण है नहीं। आहाहा!

शुद्धरत्नत्रयस्वरूप... देखो! दिगम्बर मुनि ९०० वर्ष पहले पद्मप्रभमलधारिदेव हुए। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य का २००० वर्ष पहले का है। इन्होंने किये हुए श्लोकों की पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि ने टीका की। कहते हैं कि जो जीव शरीर, वाणी, मन से तो रुचि छोड़े, परन्तु पुण्य-पाप के भाव की रुचि छोड़े और एक समय की अवस्था के ऊपर का जोर छोड़े। त्रिकाली वस्तु का आश्रय लेकर जो पर्याय प्रगट हुई, ऐसा शुद्धरत्नत्रयस्वरूप जीव, ऐसा। समझ में आया? आहा! गजब! ऐसा जीव **ऐसे किसी विशाल तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है...** ऐसा कोई विशाल तत्त्व... एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा भगवान आत्मा, एक समय में अनन्त-अनन्त अमृत के सागर को डोलावे, आनन्द को प्राप्त करे, ऐसा यह भगवान आत्मा। **ऐसे किसी विशाल**

तत्त्व को अत्यन्त प्राप्त करता है... अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि को उसके अनुभव में पूरा तत्त्व आ जाता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कोई विशाल सच्चिदानन्द प्रभु (अर्थात्) सत्—शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द ऐसा तत्त्व, उसे स्व के आश्रय से परिणति होती है, वह ऐसे तत्त्व को पाता है। कहो, समझ में आया? यह सामायिक कहलाती है। समझ में आया? जिन्दगी में सामायिक करके आसन फटे कितने ही, परन्तु सामायिक कहना किसे, इसकी खबर नहीं होती। सामायिक करे सवेरे-दोपहर-शाम। आहा! बापू! सामायिक के मुख बड़ा है। समझ में आया? भाई! तुझे खबर नहीं। यह शरीर माँस का, हड्डियों का पिण्ड है। यह तो बिखर जायेगा। यह तो श्मशान की राख है। आहाहा! अन्दर कर्म हैं, वे जड़ हैं। वे कहीं तुझमें नहीं है, तुझे नहीं है और तू उनमें नहीं है। आहाहा! और पुण्य और पाप के भाव, वे वास्तव में तुझमें नहीं है और तू उनमें नहीं है। आहाहा! वह तो विशाल तत्त्व आनन्द का धाम प्रभु, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह विशाल तत्त्व को प्राप्त करता है अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करता है। समझ में आया?

अरे! **जिसमें से (-जिस तत्त्व में से) महा दुःखसमूह नष्ट हुआ है...** अर्थात् कि उसमें है ही नहीं, ऐसा। कहो, समझ में आया? जो तत्त्व अर्थात् भगवान आत्मा—अविनाशी अनादि-अनन्त ऐसा आनन्दमय तत्त्व आत्मा, उसमें से महा दुःखसमूह नष्ट हुआ है। संसार के दुःख की जिसमें गन्ध नहीं। चौरासी के अवतार के भाव नहीं और अवतार का भाव, वह दुःख, ऐसा दुःख नहीं। आहाहा! गजब बात! ऐसा धर्म भारी महँगा, कहे। **जिसमें से महा दुःखसमूह नष्ट हुआ है और जो (तत्त्व) भेदों के अभाव के कारण...** आहाहा! कैसा तत्त्व है? ज्ञान और आनन्दमय प्रभु आत्मा कि जिसमें भेद का अभाव है। यह गुणी है और गुण है—ऐसा भेद उसमें है नहीं। आहाहा! शरीर, कर्म वह तो नहीं, पुण्य और पाप उसमें नहीं, परन्तु भेद का उसमें अभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इन भेदों के अभाव के कारण... भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु... भव्यों को **जीवों को वचन तथा मन के मार्ग से दूर है।** भव्य शब्द से 'जीवों को' कहा। 'जीवों को' यहाँ सुधारा है। यह **जीवों को वचन तथा मन...** वचन, वह तो जड़-मिट्टी है। मन भी यहाँ एक जड़ परमाणु है। उसके विकल्प से भी पार चीज़ है। आहाहा! समझ में

आया? जिसकी समझण में अभी ठिकाना नहीं, उसे आत्म-सन्मुख के झुकाव का वीर्य स्फुरित नहीं होता। आहाहा! वीर्य तो वहाँ अटक गया है अनादि से। धर्म के बहाने भी व्रत, नियम और अपवास करके 'यह धर्म है' ऐसा माना है। समझ में आया? धर्म तो, भगवान आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर शान्ति और आनन्द प्रगटे, उसका नाम धर्म है। समझ में आया?

भव्यों को अर्थात् जीवों को वचन के मार्ग से दूर है। यह वाणी में प्ररूपणा करे, इसलिए वहाँ मार्ग आ जाये, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! **मन के मार्ग से दूर है।** यहाँ मन है, उससे चैतन्य का मार्ग भिन्न है। वस्तु तो भिन्न है, परन्तु उसका (मोक्ष) मार्ग वचन और मन के मार्ग से भिन्न है। कहो, समझ में आया? वह मन द्वारा भी प्राप्त हो, ऐसा मार्ग नहीं है। आहाहा! भारी कठिन लगे लोगों को, हों! उसमें तो व्यवहार का नाश हो जाता है। अरे, भगवान! व्यवहार अर्थात् राग; राग अर्थात् दुःख। उसका नाश करने की तो यह बात चलती है। आहाहा! परन्तु उसके तत्त्व की खबर नहीं होती अन्दर। सामायिक उसे होती है कि जो शुभ-अशुभराग से हटकर त्रिकाल भगवान का—अन्तर निजतत्त्व का आश्रय ले, उसे समता और समरस ऐसी वीतरागी निर्विकल्पभाव—दशा प्रगट हो, उसे सामायिक कहते हैं और वह सामायिक मुक्ति का उपाय है। समझ में आया? यह परम-समाधि अधिकार पूरा हुआ।

अब, दसवाँ परम-भक्ति अधिकार। परम-भक्ति। यह देव-गुरु-शास्त्र और यात्रा, भक्ति आदि तो शुभराग है, वह पुण्य है, शुभ उपयोग है, वह सच्ची भक्ति नहीं है। आहाहा! एक यात्रा कर आवे बारह महीने में पूर्णिमा की। कार्तिक शुक्ल पूनम। जाओ! बाबूभाई! हो गये—पाप धुल गये। धूल भी नहीं, सुन न! सम्मेदशिखर की एक यात्रा करे। 'एक बार वन्दे जो कोई, नरक पशु गति नहीं होई।' प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! अरे! सम्मेदशिखर की ऐसी यात्रायें अनन्त बार की है। भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर समवसरण में विराजते हैं, उनके समीप में उनकी भक्ति में अनन्त बार आया है, भगवान कहते हैं कि परन्तु तूने तेरी भक्ति नहीं की। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन, वह आत्मा की भक्ति है, जिसमें आत्मा का भजन है। निमित्त का नहीं, राग का नहीं, एक समय की पर्याय का नहीं। भजन, भगवान पूर्णानन्द का नाथ

अविनाशी, उसकी एकाग्रता, वह भजन है, वह निश्चय-भक्ति कही जाती है। (निश्चय) अर्थात् सच्ची। व्यवहार भक्ति अर्थात् झूठी। व्यवहार अभूतार्थ है। ऐसा बोले कि व्यवहार झूठा है। कठिन काम, भाई! वह सम्प्रदाय में न रह सके। उससे रहता होगा धर्म? धर्म तो वीतरागभाव से रहता है। आहाहा! भगवान का कहा हुआ सत्य दुनिया को मिला नहीं। तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव, जिन्हें सौ इन्द्र पूजते हैं, सौ इन्द्र के पूज्य उनकी वाणी में यह आया है। समझ में आया? आहाहा!

अशरण... अशरण... अशरण... परसों अभी थे, लो। ३.२० उठ गये। तीन और बीस में उठ गये। चिल्लाहट मचाते थे... घर में डेढ़ लाख के बँगले में सोती थी बाई। ढाई लाख के दो बँगले थे। ढाई-ढाई = पाँच लाख। ओ माँ! ओ माँ! पति-पत्नी दो थे। ... श्मशान में शरीर गया, आत्मा तो कहीं चला गया दूसरी गति में। आहाहा! यह संसार .... जाँच करे ... वहाँ तो भाईसाहेब उतर गये कहीं। आहाहा! ऐसे (नब्ज) हाथ नहीं आती, डॉक्टर ऐसा कहता है। ऐ हरिभाई! ऐसा कहे न?

मुमुक्षु : नाड़ी हाथ में आती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : (नाड़ी) हाथ में नहीं आती। वहाँ तो मरकर कहीं चला गया। आहाहा! अरे! तेरे यह सब स्वभाव को छोड़कर वनवास में भटकता है, कहते हैं। समझ में आया? अरे! तेरा घर क्या है और तेरे घर में क्या है—उसकी खबर नहीं। खबर बिना रुचि नहीं और रुचि बिना स्थिरता नहीं। यहाँ यह निश्चय-भक्ति का अधिकार है। वह निश्चय-सामायिक का अधिकार था। सामायिक कहो या समाधि कहो, सुख की प्राप्ति का उपाय कहो (सब एकार्थ है)।

— १० —
परम-भक्ति अधिकार

अब भक्ति अधिकार कहा जाता है। देखो!

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं॥१३४॥
सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र की श्रावक श्रमण भक्ति करे।
उसको कहें निर्वाण-भक्ति परम जिनवर देव रे॥१३४॥

'**जिणेहि पण्णत्तं**' जिनेश्वरदेव त्रिलोक के नाथ जिनेन्द्र, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक जानते हुए वर्तते हैं। ऐसे जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते हैं कि... **अन्वयार्थः—श्रावक अथवा श्रमण...** श्रावक हो या श्रमण हो, वह **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भक्ति करता है,...** श्रावक भी, अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भक्ति करे, उसे श्रावक कहते हैं। यह वाडा में बैठे, उन्हें श्रावक नहीं कहा जाता। समझ में आया? थैली में चिरायता भरा हो और ऊपर लिखे शक्कर, इससे कहीं चिरायता मीठा हो जायेगा? इसी प्रकार हम श्रावक हैं, जैन हैं। बापू! जैन और श्रावक का मुख अलग है। आहाहा! समझ में आया? भाई! तुझे खबर नहीं, तुझे उभरने का अवसर क्या है, इसकी तुझे खबर नहीं, भाई!

कहते हैं कि **श्रावक अथवा श्रमण...** सच्चे श्रावक हों या सच्चे साधु हों, वे **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भक्ति करता है,...** आहाहा! वह तो आनन्दस्वरूप भगवान की दृष्टि, एकाग्रता करता है, यह उसकी भक्ति। श्रावक की यह भक्ति, ऐसा कहते हैं। देखो! नाम श्रावक का दिया। वे कहें, श्रावक को छह आवश्यक कर्तव्य हैं। मुनि के लिये यह होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक ही आवश्यक।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'एक ही आवश्यक है' ऐसा आया है अभी। (द्रव्यदृष्टि

प्रकाश के) तीसरे भाग में है। आहाहा! भगवान कहते हैं कि तुझे आवश्यकता आत्मा के आश्रय की है, प्रभु! तुझे आवश्यकता हो और आवश्यक हो तो यह आवश्यकता का आवश्यक आत्मा, उसका आश्रय होना चाहिए। समझ में आया? अरे! जिसने सुना ही नहीं, ख्याल में भी नहीं और हम धर्म करते हैं, ऐसे अभिमान में और अभिमान में जिन्दगियाँ चली जाती हैं। समझ में आया?

श्रावक और श्रमण उसे कहते हैं, साधु उसे कहते हैं। वस्त्र बदलकर बैठे और नग्न हो इसलिए साधु, ऐसा नहीं है। आहाहा! श्रावक अथवा श्रमण (कि जिसे) सम्यग्दर्शन—आत्मदर्शन (अर्थात्) अखण्ड आनन्द का तेज ऐसा प्रभु, उसकी जिसे प्रतीति अन्दर वस्तु के भानसहित हुई है, उसका सम्यग्ज्ञान और उसका सम्यक्-चारित्र... 'सम्यक्' शब्द है न तीनों में? भक्ति करते हैं। **उसे निर्वृत्तिभक्ति (निर्वाण की भक्ति) है ऐसा जिनों ने कहा है।** उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है और उसे निर्वाण की भक्ति कहा जाता है। आहाहा! ऐसा स्पष्ट! भगवान की भक्ति हो, अशुभभाव से बचने के काल में ऐसा भाव होता है, परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! आत्मा की शान्ति का कारण नहीं। है?

ऐसा जिनों ने कहा है। त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव सीमन्धर भगवान वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। अनन्त तीर्थंकर मोक्ष पधारे, अनन्त होंगे, वह सब इसे भक्ति कहते हैं। कहो, पण्डितजी! श्रावक होंगे या नहीं उसमें? या साधु को ही है? आहाहा! बापू! साधु तो किसे कहा जाये, यह बात बहुत सूक्ष्म है। समझ में आया? 'साध्यति इति साधु।' तब उसे क्या? कि समकित प्राप्त करने के लिये पूजा और भक्ति, यम और नियम, ऐसी शुद्धि में आना, नहीं तो स्वच्छन्दी हो जायेगा। अरे भगवान! बापू! स्वच्छन्द की व्याख्या क्या? भाई! पुण्य को धर्म मानना, वह स्वच्छन्दी है। समझ में आया? आहाहा! .... परन्तु अन्धी—अज्ञानी अन्धी, ऐसा सच्चा खोजने देती नहीं।

शरणभूत ऐसा भगवान आत्मा, 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' आता है न मांगलिक में? वह क्या? कि यह पर की दया पालना, व्रत करना, अपवास करना यह। किसने कहा तुझे? वह तो राग है। धर्म तो आत्मा पूर्णानन्द का स्वरूप, उसमें गिरकर—गहरा

उतरकर—अन्तर्मुख तत्त्व में अन्तर में जाकर, आहाहा! बहिर्भूत तत्त्वों को दृष्टि में से छोड़कर... यह दया, दान, व्रत भक्ति के परिणाम बहि:तत्त्व है। आहाहा! वह अन्तर में यह चीज़ नहीं। ऐसा अन्त:तत्त्व, निर्विकल्प आनन्द और अभेदस्वरूप अन्त:तत्त्व में अन्तर उतरकर... अरे, यह क्या होगा? 'अन्त:तत्त्व और अन्तर में उतरकर' अटपटा जैसा लगे। व्यवहारनय के आग्रही पड़े हों, उन्हें तो (ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं? ऐसा धर्म होगा? वीतराग का ऐसा मार्ग होगा? यह तो कहते हैं कि जिन का मार्ग यही है। समझ में आया?

अरे! नौवें ग्रैवेयक में दिगम्बर नग्न साधु होकर अनन्त बार गया है। आता है या नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! यह दु:ख है, कहते हैं। पंच महाव्रत, २८ मूलगुण, वह सब दु:ख है। क्योंकि ऐसा पालकर गया, तथापि लेश सुख नहीं पाया। तो इसका अर्थ यह कि उसे दु:ख मिला। यह गजब कठिन बात। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ऐसा जो पंच महाव्रत का विकल्प—राग, वह दु:ख है। दु:ख न हो तो ऐसा कहना चाहिए कि अनन्त बार ऐसा पालन किया और किंचित् सुख मिला। जरा भी सुख नहीं मिला, ऐसा कहा वहाँ छहढाला में। बाबूभाई! आता है? कौन वाँचता है? पहाड़े बोलते जाते हैं। उसमें ऐसा है और इसमें ऐसा है। आहाहा!

बीस वर्ष का जवान, ऐसे दो वर्ष का विवाहित वाला और वह जब मरता हो और उसकी बहू रोवे। आहाहा! छातीफाट रोवे तो दूसरे को ऐसा दु:ख हो जाये। बापू! तुझे वह दु:ख लगा है, परन्तु तुझे पुण्य-पाप के भाव का दु:ख नहीं लगा। समझ में आया? यह शरीर, वाणी, मन, यह तो मिट्टी जड़—अजीव है। वह तो उसकी अवधि होगी, तब तक रहेंगे, बाकी छूट जायेंगे एकदम। छूटे हुए ही हैं, परन्तु क्षेत्र से पृथक् पड़ेंगे इसलिए इसे ऐसा होगा... आहाहा! परसों अभी थे। .... आहाहा! नेमिदास बेचारा रोता था। उठकर भागकर... ओ माँ! जिसे ऐसे रखी थी। दो व्यक्ति और सात-आठ लाख रुपये। खा-पीकर पोषण किया हुआ। जितना राग—एकताबुद्धि... हाय! हाय! कहो, भीखाभाई!

पति-पत्नी दो और पैसे इतने। ३५-४० हजार की तो आमदनी है किराये की। आहाहा! दूसरे भी होंगे। लाख रुपये हैं, उनका ब्याज आता है। १४ हजार लिखाये—दिये यहाँ।... सही न! तार आया था। प्रार्थना करे... १४ हजार दिये। दूसरा एक व्यक्ति कहे, बहुत किया, हों! बहुत की व्याख्या क्या? तुम्हारे पास पैसा है, इसलिए थोड़े दो तब बहुत मनवाने हैं, ऐसा है तुम्हारे? साथ में थे न... बाहर निकले। दस हजार परसों कहे थे, परसों दोपहर में आहार के समय। .... तुम्हारे क्या कहना है? बनियागिरी करनी है तुम्हारे? इतनी पूँजी वाले इतना दे तो बहुत कहलाये अर्थात् तुम्हारी अधिक पूँजी में भी कुछ थोड़ा दो तो बहुत कहलवाना है, ऐसा तुम्हारे कहना है? फिर दाँत निकाले (हँसे)।

चार व्यक्ति, दो-दो करोड़ रुपये तुम्हारे एक करोड़... २०-२० लाख की आमदनी वर्ष की। एक वर्ष की बीस लाख की (आमदनी)। आहाहा! भिखारी है परन्तु सब। रंक... रंक है। ऐ मलूकचन्दभाई! इन भाई को कहा तो दाँत निकाले। पति-पत्नी दो व्यक्ति, इतने रुपये डालना कहाँ? क्या करेंगे? उसमें चौदह हजार में बहुत हो गये तुमको? तुम्हारे भी थोड़े खर्च करके बहुत मनवाना है? थे या नहीं तुम? बैठे थे। मोटर में... बहुत-बहुत की बात रहने दो। पूरी चीज़ ही इसकी नहीं फिर तो दे-ले कौन? यह तो इतने से इसने सन्तोष कर लिया, ऐसा कहता हूँ। आहाहा! वह यहाँ नहीं होता, कहा। आहाहा!

यहाँ तो पूरी लक्ष्मी क्या (परन्तु) शरीर, वाणी, मन की क्रियायें भी मेरी नहीं और अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वह भी मेरी क्रिया नहीं। वह सब अचेतन क्रिया है। आहाहा! भारी कठिन परन्तु, हों! यह इन्जेक्शन कठोर पड़ता है। हरिभाई! सच्चा होगा यह। आहाहा! भाई! तू कौन है भाई? बापू! यह तो मिट्टी के... आया है। यह तो मिट्टी होकर रहा है। कहीं तेरा होकर नहीं रहा। आत्मा का होकर रहा है? यह तो अजीव होकर यह शरीर रहा है। इसी प्रकार लक्ष्मी अजीव होकर अजीवरूप से रही है। उसमें पुण्य और पाप के भाव आस्रवतत्त्व होकर रहे हुए हैं। कहीं तेरे होकर रहे नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम! जिनेन्द्रदेव का तत्त्व, भगवान का कहा हुआ मार्ग समझना (इसके लिये) बहुत पुरुषार्थ चाहिए। आहाहा! ऐसे दिशा ऐसी है, उसे ऐसे

कर डालना, यह वह कहीं कम पुरुषार्थ है ? बहिर्मुखी वृत्तियों में से पुरुषार्थ को उठाकर यह अन्तर्मुख तत्त्व में जोड़ देना, बस, यह मोक्ष का मार्ग है। उसे सच्ची भक्ति कहा जाता है। आहाहा!

टीका:—यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। रत्नत्रय अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। व्यवहाररत्नत्रय, वह कहीं सच्ची चीज़ नहीं है, झूठी चीज़ है, वह सब। उसमें भी यह आया है। लेख आया है। एक दूसरे कहे, ऐ! व्यवहार झूठा ? तब व्यवहार झूठा तो कुन्दकुन्दाचार्य व्यवहार झूठा कहते हैं, लिखा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने व्यवहार झूठा कहा है। तुम्हारे क्या स्थापित करना है। और ऐसा सब कहकर फिर वापस स्थापित करते हैं। अशुभ है, वह पूर्ण विरुद्ध है, इसलिए शुभ में आना आत्मा को हितकर है। ले! और वापस। विद्यानन्दजी ने ऐसा पहले कहा कि आत्मा के चिन्तवन बिना और आत्मा के ज्ञान बिना संवर-निर्जरा नहीं होते। परन्तु अब पाता कैसे है ? कि यह सब होता है तो। व्रत, नियम, संयम, पूजा, भक्ति इसे करना। आहाहा! अरे! वापस गड़बड़ की। आहाहा! भाई! जिसमें है, उसमें से आवे। कहीं पुण्य-पाप में आत्मा है और संवर-निर्जरा है उसमें ? यहाँ कहते हैं कि भजन कर तेरा। भगवान कहते हैं कि मेरा भजन करने में तेरी सच्ची भक्ति नहीं है। आहाहा! भजन अर्थात् सम्यग्दर्शन में पूरा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ श्रद्धा में—प्रतीति में लेना, वह आत्मा की भक्ति है, वह भक्ति मुक्ति का कारण है। समझ में आया ?

चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत... अरेरे! चौरासी के अवतार में... चतुर्गति में देव आये ? स्वर्ग के देव दुःखी हैं। आहाहा! ऐसे झपट्टे मारते हैं। इन्द्राणी में सुख है, यहाँ सुख है। यहाँ, यहाँ सुख है नहीं, वहाँ है। वे देव मूढ़ हैं। समझ में आया ? वह देव भी पापी है, कहते हैं। आहाहा! जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप में सुख है, ऐसा भान नहीं, दूसरे में सुख है, यह मानता है उसे महामिथ्यादृष्टि का पाप लगता है, कहते हैं। आहाहा! कसाईखाना की अपेक्षा मिथ्यात्व का पाप अनन्तगुणा कठोर है, उसकी लोगों को सूझ नहीं पड़ती। समझ में आया ? कहते हैं कि चार गति **संसार में परिभ्रमण के कारणभूत...** देव में भटकने में भी कारणभूत, ऐसा सिद्ध करते हैं, भाई!

तीव्र मिथ्यात्वकर्म की प्रकृति... लो। प्रकृति अर्थात् उसके निमित्त से होता उपाधिभाव मिथ्यात्व आदि। उससे **प्रतिपक्ष (विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-अवबोध-आचरणस्वरूपशुद्ध-रत्नत्रय-परिणामों का जो भजन वह भक्ति...** भगवान जिनेन्द्रों ने जिनवरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने यह सच्ची भक्ति कही है कि चार गति के भटकने का कारण जो मिथ्यात्व, उससे विरुद्ध निज परमात्मतत्त्व... देखो! अपना भगवान परमस्वरूप आत्मा परमात्मतत्त्व। वस्तु है, वह परमात्मतत्त्व है। परमात्मतत्त्व है, उसमें से परमात्मा की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? चार गति में भटकने का कारण मिथ्यात्व, पुण्य-पाप के भाव मेरे, यह मिथ्यात्व। उस मिथ्यात्व से विरुद्ध निजपरमात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान... अनाकुल आनन्दमय प्रभु अकेला शान्तरस का पिण्ड ऐसा प्रभु अपना, हों! दूसरे का प्रभु—भगवान का भगवान के पास रहा। वह कहीं लेते-देते नहीं। वीतराग हैं, वे कहीं किसी को कुछ देते नहीं और किसी को दे नहीं। समझ में आया?

ऐसा **निज परमात्मतत्त्व...** परन्तु नियमसार में तो प्रत्येक गाथा में निज... निज... अरिहन्त-सिद्ध वे पर परमात्मत्त्व है। शुद्धस्वरूप नित्यानन्द भगवान अपना अविनाशी स्वभाव, वह निज परमस्वरूप है। परमतत्त्व अर्थात् परमस्वरूप वह है। उसका सम्यक् श्रद्धान (अर्थात्) उसके अन्तर्मुख होकर, उसे स्पर्शकर जो सम्यक् श्रद्धा होती है, उसे समकित कहा जाता है। बाकी सब थोथा कहे जाते हैं। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने देखने में तुझे विकल्प और राग होगा। भाई! तेरे भगवान के सामने तू अन्दर देख। आहाहा! यह तो एक जिनेन्द्रदेव कहे। हमारी भक्ति से भी तुझे पुण्य होगा, बन्धन होगा, ऐसा तीन लोक के नाथ वीतराग कहते हैं। समझ में आया?

दूसरे कहें, हमको दो, हमारी भक्ति करो, जाओ कल्याण होगा। जाओ तुम स्वर्ग में जाओगे और फिर मनुष्य होओगे और मुक्ति (होगी), ऐसा। धूल में भी मुक्ति नहीं, सुन न! अभी यहाँ आत्मा मुक्तस्वरूप है, वह रुचता नहीं तो मुक्ति कहाँ से होती थी तेरी? समझ में आया? मार्ग ऐसा है तो दुनिया को ऐसा लगे कि यह तो भाई! बहुत यह तो सच्ची, अकेली सच्ची बात कहते हैं। निश्चय कहते हैं। निश्चय अर्थात् सच्ची, ऐसा। खोटी-व्यवहार की बात तो साथ में है नहीं। बतलाया नहीं व्यवहार? परन्तु वास्तव में

तो यह मोक्ष का मार्ग स्वयं व्यवहार है, ले न। आहाहा! भगवान त्रिकाली जो ध्रुव चैतन्यप्रभु, उसका नाम निश्चय है। उसकी पर्याय ऐसी प्रगट हो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही आत्मा का व्यवहार है। समझ में आया? भारी कठिन काम है, बापू! यह वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता और वह भी दिगम्बर जैनदर्शन— वीतराग दिगम्बर जैनदर्शन, इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं यह बात नहीं हो सकती। आहाहा!

बापू! तिरने का उपाय प्रभु! तेरे पास है। तुझे खबर नहीं। समझ में आया? बाहर की नजर करने से प्रभु! तुझे शान्ति नहीं मिलेगी। समझ में आया? अन्तर्मुख प्रभु निजपरमात्मतत्त्व आत्मा अनादि-अनन्त ध्रुव, उसकी सम्यक्-श्रद्धान, वह पर्याय। निज परमात्मतत्त्व, वह ध्रुव। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।' सूत्र है न उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र का। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, सत् द्रव्य लक्षणं।' भगवान आत्मा अविनाशी ध्रुव, वह परमात्मतत्त्व, वह ध्रुव द्रव्य, उसकी सम्यक् श्रद्धा, वह पर्याय। समझ में आया? पर्याय सुनी न हो। द्रव्य, गुण, पर्याय। क्या होगी यह पर्याय? ऐसा होता होगा। आहाहा! जैन में जन्मे और जैन परमेश्वर को क्या कहना है, यह समझण में हो नहीं, गोता खाया करे, अजैन को जैन माने।

उसे जैन कहते हैं कि जिसे निज परमात्मतत्त्व की अन्दर सम्यक्श्रद्धा, वह आत्मा का भजन, वह आत्मा की भक्ति, वह आत्मा में एकाग्रता, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। जिनेन्द्रदेव के मार्ग में उसे मोक्षमार्ग कहा है। सच्चा, निश्चय अर्थात् सच्चा। व्यवहार अर्थात् खोटा। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार व्यवहार से सच्चा, ऐसा हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : 'व्यवहार सच्चा' इसका अर्थ कि खोटे से खोटा सच्चा। खोटा रुपया खोटेरूप से सच्चा। यह बराबर है या नहीं? खोटा रुपया नहीं होता? पहले लकड़ी में जड़ देते थे। चलने न दे साहूकार। ले नहीं और चलने दे नहीं। जड़ दे यहाँ। नहीं तो फौजदार को कहूँगा। खोटा रुपया खोटे रूप से सच्चा ही है (अर्थात् कि) खोटा ही है, ऐसा। वह सच्चा नहीं होता, इसका नाम 'खोटा' वह सच्चा। समझ में आया? तेरा मार्ग अलग, प्रभु! आहाहा!

भाई! दुनिया माने, न माने या दुनिया को कुछ दूसरा लगे कि ऐसा क्या मार्ग? चाहे जो लगे, परन्तु मार्ग तो यह है, हों! इस मार्ग को समझे बिना, आश्रय लिये बिना भगवान चौरासी के अवतार... आहाहा! २५ वर्ष की उम्र, ऐसे विवाह किये हुए छह महीने हुए हों और....

'एक रे दिन ऐसा आयेगा, मानो जन्मा ही नहीं था', जन्मा नहीं था।

'निकालो निकालो रे इसे सब कहे।' निकालो, देखो! एक मुर्दा....

सगी रे नारी तेरी कामिनी ऐसे टगटग देखे रे,
अरे रे! इस काया में अब कुछ नहीं, ऐसे सुबक-सुबक कर रोवे रे,'

भगवान! ऐसा तेरा स्वरूप (है और) उल्टे तू गया, उसमें ऐसी दशा हो गयी तेरी। मनुष्य के भव में तो भव के अभाव का काल आया यह तो। उसमें भव का अभाव नहीं किया, भाई! अन्यत्र सुनने को नहीं मिलेगा। भाई! अन्यत्र समझने को नहीं मिलेगा। इसे भगवान ने भजन और भक्ति कही है, लो। आहाहा! **आराधना ऐसा उसका अर्थ है।** वापस। आत्मा का पूर्ण आनन्दस्वरूप, शुद्ध चेतन्य का सेवन करना, उसका नाम आराधना, उसका नाम भक्ति, उसका नाम निर्वाण का मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ८, सोमवार, दिनांक - ११-१०-१९७१
गाथा-१३४, प्रवचन-१४८

भक्ति किसको कहते हैं अर्थात् धर्म किसको कहते हैं ? कि **निज-परमात्मतत्त्व...** जो अपना परमात्मस्वरूप शुद्ध ध्रुव है, उसका सम्यक्-श्रद्धान, अन्तर में पूर्ण शुद्धस्वभाव के सन्मुख होकर सम्यक्-प्रतीति करना, वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग का प्रथम अवयव है। समझ में आया ? **निज-परमात्मतत्त्व...** भगवान परमात्मा हैं, वे तो पर हैं। पर की भक्ति का भाव, वह तो शुभ है, पुण्य है; धर्म नहीं। धर्म की भक्ति... धर्म की भक्ति... है न धर्म की भक्ति ? शुद्धरत्नत्रय परिणामों का भजन। परिणामों का भजन, ऐसा है। क्या कहते हैं ? सूक्ष्म बात है, भाई ! सम्यक्-श्रद्धान अर्थात् आत्मा त्रिकाली परम आनन्द ध्रुव चैतन्य के सन्मुख होकर स्वभाव की प्रतीति होना, यह सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन आत्मा का परिणाम है, पर्याय है, पर्याय। निज परमात्मतत्त्व, वह द्रव्य है। आहा ! त्रिकाली भगवान शुद्ध निज त्रिकाली ध्रुव नित्य द्रव्य के अन्तर सन्मुख होकर श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन पर्याय है—अवस्था है। उस अवस्था का भजन करना... उस अवस्था का भजन अथवा उस अवस्थारूप से परिणमना, उसका नाम आत्मा की सम्यग्दर्शन भक्ति कहते हैं। समझ में आया ?

और निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् अवबोध... अपना शुद्ध चैतन्य 'अप्पा सो परम-अप्पा।' आत्मा, वही अपना परमात्मा है। उसका अवबोध... अवबोध अर्थात् निश्चय ज्ञान। निश्चय ज्ञान की बात है न यहाँ ? अन्तर ज्ञायकस्वरूप का अन्तर में स्वसंवेदन ज्ञान, वह ज्ञान, यह आत्मा की भक्ति है। परिणाम का भजन करना, उसका नाम भक्ति। आहाहा ! उसका नाम धर्म। सूक्ष्म बात है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव वीतराग परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का पुंज है। उसका ज्ञान करना, उस ओर के झुकाव से स्वसंवेदन ज्ञान—अपना ज्ञान, उसका भजन (अर्थात्) उसरूप परिणमन करना, वह आत्मा की सम्यग्ज्ञानरूपी धर्मदशा या भक्ति कहते हैं। समझ में आया ?

सिद्ध भगवान और अरिहन्त परमात्मा की भक्ति, वह तो पुण्यभाव, शुभभावरूप व्यवहारभक्ति है। समझ में आया? उससे संवर-निर्जरा और धर्म नहीं होता। धर्म, अपना आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन का अवबोध, उस ओर का लक्ष्य करके जो ज्ञान होता है, उस ज्ञान को भक्ति—आत्मा की सच्ची भक्ति कहते हैं और वह भक्ति मुक्ति का कारण है। परमात्मा सिद्ध, अरिहन्त की और पंच परमेष्ठी की भक्ति, वह शुभभाव है, पुण्यभाव है। वह धर्मभाव नहीं। समझ में आया?

और **आचरण...** सम्यक् आचरणस्वरूप... भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव में आचरण—अन्तर रमना, आत्मा आनन्दस्वरूप में लीन होना, रमना, एकाग्र होना, यह आत्मा का चारित्ररूप आचरण, वह आत्मा की भक्ति है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा **शुद्धरत्नत्रय...** यह शुद्धरत्नत्रय है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, भक्ति, पंच महाव्रत का परिणाम, शास्त्र का ज्ञान—यह व्यवहाररत्नत्रय, पुण्यपरिणाम, विकल्प-राग है, यह धर्म नहीं। समझ में आया? अपना निजप्रभु जिसमें अनन्त आनन्द और अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान है और अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय स्वभाव से भरा पड़ा ऐसा निज आत्मा, उसमें लीनता करना, उसका नाम चारित्र कहो, आत्मा का आचरण कहो, आत्मा की भक्ति कहो, मोक्ष का मार्ग कहो। यह मार्ग है।

यह **शुद्धरत्नत्रय परिणाम...** यह शुद्धरत्नत्रय परिणाम है—पर्याय है, द्रव्य-गुण नहीं। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन चीज़ में आत्मा है। उसमें द्रव्य और गुण तो त्रिकाली है। द्रव्य अर्थात् वस्तु और उसकी शक्तियाँ—गुण, वे तो त्रिकाल हैं। त्रिकाली में एकाग्रता होना, आनन्द में मग्न होना और उसमें प्रतीति, ज्ञान और रमणता वह निश्चय परम-भक्ति है। **परिणामों का जो भजन वह भक्ति है;...** ऐसा कहा यहाँ तो। परिणामों का जो भजन या भक्ति... उसका अर्थ कि परिणामी स्वभाव भगवान आत्मा सहजानन्द की मूर्ति प्रभु है, उसका परिणाम... उसका परिणाम... उसका भजन अर्थात् परिणामरूप से होना, होना, उसका नाम आत्मा की—आत्मा की भक्ति कहा जाता है। वह भक्ति मोक्ष का कारण है। अलग प्रकार है।

मुमुक्षु : निरन्तर करनी चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : निरन्तर द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि पड़ी है, निरन्तर द्रव्यस्वभाव का ज्ञान है और उसमें निरन्तर लीनता है—वह आत्मा का परिणाम, यह परिणाम का भजन, परिणाम को भजना अर्थात् परिणाम को परिणमाना। गजब मार्ग है, भाई! जिनेन्द्रदेव का मार्ग, ऐसा कहीं दूसरे (में) है नहीं।

जिनेन्द्रप्रभु वीतराग जिसको एक समय में तीन काल, तीन लोक देखने में आया, उसके ज्ञान में जो लोकालोक और मोक्षमार्ग आदि जानने में आये, ऐसा वाणी में कहने में आया। भगवान! तू तो परिपूर्ण आनन्द नाथ है न! आहाहा! तेरा शरण तो तू ही है। हम भी तेरे शरण नहीं, ऐसा परमात्मा कहते हैं। समझ में आया? तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। भगवान! 'भगवान' रूप से तो बुलाते हैं। आहाहा! प्रभु! तू भगवान है। तेरा परिपूर्ण वस्तुस्वरूप है। उसका भजन करना, वह मुक्ति का मार्ग है। आहाहा! अर्थात् उसका परिणाम—निर्मलदशा प्रगट करना, वह भजन है। वह तुझे शरण है, वह मुक्ति का कारण है। हम भी तुझे मुक्ति का कारण नहीं हैं। त्रिलोकनाथ वीतराग ऐसा कहते हैं।

'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं...' आता है न मांगालिक में? 'साहू शरणं, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं...' कहते हैं कि अरिहन्त-सिद्ध और साधू शरण, वह तो व्यवहार, विकल्प और राग है, वह आत्मा का शरण नहीं। अपना शरण तो अपना आत्मा है, उस आत्मा को शरणभूत करके जो परिणाम हुआ, उस परिणाम को यहाँ आत्मा की निश्चय-सच्ची भक्ति कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? यह परिणामों का जो भजन, वह भक्ति है। यहाँ परिणामों का भजन कहा। वह परिणाम का बारम्बार होना... त्रिकाली भगवान आत्मा को दृष्टि में लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्पदशा—वीतरागी परिणति—शुद्धदशा, उसकी भक्ति अर्थात् उसका परिणमना, वह आत्मा की भक्ति है। आहाहा!

दुनिया जाने कि यह सम्मेदशिखर की भक्ति करते हैं, शत्रुंजय की करते हैं, पाँच परमेष्ठी की करते हैं तो मुक्ति होगी, तो ऐसा इनकार करते हैं। वह शुभभाव है। अशुभभाव—पाप से बचने को ऐसा भाव हो, आता है, परन्तु वह धर्म नहीं। समझ में आया? वह नव

तत्त्व में संवर-निर्जरा नहीं, वह तो आस्रव है। इन परिणामों का जो भजन... ओहोहो! त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर जो परिणाम हुआ, वह परिणामों का भजन है अथवा वह परिणाम होना, वह भक्ति है। आहाहा! पण्डितजी! यहाँ तो मानो भगवान की भक्ति मोक्ष देगी, यात्रा-बात्रा सम्मेदशिखर की करे तो मोक्ष होगा, जाओ। 'एक बार वन्दे जो कोई...' अरे! अनन्त बार वन्दन किया परद्रव्य का, कहते हैं। उसमें पुण्यभाव हुआ, शुभभाव है; धर्म नहीं, वह मुक्ति का उपाय नहीं। समझ में आया? आहाहा! आता है बीच में, परन्तु वह शुभभाव है। यह आयेगा दूसरी गाथा में। यहाँ परम-भक्ति का वर्णन है। दूसरी गाथा में व्यवहार-भक्ति का वर्णन है। आहाहा!

जागती ज्योति प्रभु चैतन्यस्वभावी आत्मा, उसमें कोई पुण्य-पाप का विकल्प—राग है नहीं अन्दर में। संसारमात्र जीवस्वभाव में नहीं। जितना उदयभाव कहने में आता है, चार गति और क्रोध, मान, माया, लोभ, लेश्या—पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या (आदि)—यह सब आत्मा में नहीं है। आत्मा तो परमानन्द की मूर्ति अखण्डानन्द भगवान है। ऐसे आत्मा में... ओहोहो! दशा पलटने के लिये दिशा बदलना पड़ेगी तुझे, कहते हैं। पर के ऊपर जो तेरी दृष्टि है, वह दशा मिथ्यात्व है, उससे धर्म होगा, (ऐसी मान्यता) वह दशा मिथ्यात्व की है। दशा पलटने में दिशा पलटनी होगी। भगवान आत्मा सन्मुख देखना पड़ेगा। परसन्मुख देखकर जो राग आता है, वह शरण नहीं, वह आत्मा की मुक्ति का उपाय नहीं। आहाहा!

तेरी दशा—तेरी रुचि जो राग और पुण्य और पाप के ऊपर पड़ी है, वह दशा बदलने के लिये दिशा गुलाँट (-पलटी) खायेगी। ओहो! मैं ही आत्मा परमात्मा हूँ। मेरी चीज़ में अनन्त आत्मा परमात्मा—सिद्ध परमात्मा स्थित हैं। जो सिद्धपर्याय होनेवाली है, ऐसी अनन्त सिद्ध अवस्था... सिद्ध भी अवस्था है, कोई गुण नहीं है। अनन्त केवलज्ञानादि पर्याय—अवस्था—हालत ऐसी एक के बाद एक सिद्ध की अनन्त अवस्था होती है। सब दशा का पिण्ड प्रभु आत्मा है। ऐसी अनन्त सिद्ध की दशा भगवान आत्मा में पड़ी है। आहाहा! कैसे यह माहात्म्य आवे कि क्या चीज़ है? यह बाहर में झपट्टे मारे, यहाँ कोई दो, कोई यह मदद करे, कोई शरण करे। भगवान का नाम स्मरण करो, प्रभु! भगवान का स्मरण करो। कहते हैं कि यह राग है। वह शरण नहीं है। आहाहा!

गजब बात है। समझ में आया? 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं...' गिनो। कहते हैं कि 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं...' वह भी विकल्प है—राग है, पुण्य है। आहाहा! उससे हटकर अपना निजानन्द भगवान निज प्रभु, उस ओर का परिणाम होना, उस परिणाम को यहाँ भक्ति कहते हैं।

आराधना ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा! क्या कहते हैं? आत्मा का सेवन करना अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सेवा करना। आहाहा! समझ में आया? पर की सेवा तो कोई कर सकता नहीं। भगवान तीन लोक के नाथ की सेवा, वह भी शुभभाव है। आहाहा! मार्ग ऐसा है भगवान! प्राण छूटे और देह अपना मानकर रखा हो, आहाहा! तड़पड़ाहट... तड़पड़ाहट... तड़पड़ाहट... क्या है भगवान! क्या तुझमें यह चीज़ है? दु:ख और राग तुझमें है? नया विभाव होकर (-करके) दु:खी होता है। आहाहा! भगवान निज खान-खानी अनन्त आनन्द, अनन्त अनन्त ज्ञान, शान्ति (आदि) अनन्त शक्तियों का भण्डार है। राग की एकता है, वहाँ भण्डार बन्द है। और विकल्प से एकता तोड़कर यदि भण्डार को खोल दिया तो अन्तर में से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम प्रगट हुआ। आहाहा! उस परिणाम को **आराधना ऐसा उसका अर्थ है।** यह आराधना। भगवान का नाम आराधो, सेवन करो, यह करो। बापू! वह सब तो पुण्यभाव है। हो, पाप से बचने को, परन्तु वह (त्रिकाली) वस्तु नहीं है। समझ में आया?

आराधना ऐसा उसका अर्थ है। आहाहा! **एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं,...** अब जो सच्चा श्रावक होता है, (उसे) सम्यग्दर्शनपूर्वक ग्यारह प्रतिमा—गुणानुसार भूमिका (होती है)। श्रावक पंचम गुणस्थान में होते हैं, वे श्रावक भी आत्मा की भक्ति करते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एकादशपद—ग्यारह भूमिकायें नीचे हैं। **जिनके ग्यारह पद (गुणानुसार भूमिकाएँ) हैं ऐसे। (श्रावकों के निम्नानुसार ग्यारह पद हैं—)** है न? **श्रावकों में जघन्य छह हैं,...** ग्यारह प्रतिमा हैं न, उसमें छह (तक) तो जघन्य (पद) है। **मध्यम तीन हैं,...** सात, आठ, नौ (प्रतिमा)। और दस और ग्यारह (प्रतिमा) **उत्तम दो हैं।—यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** देखो! आहाहा! उसका नाम श्रावक है। सम्प्रदाय में जन्मे और भगवान का पक्ष लिया, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की, तो यह श्रावक है—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अपना आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप सहजानन्द की मूर्ति, उसके अनुभव में एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन प्रगट किया, इस सम्यग्दर्शनपूर्वक विशेष स्वरूप का आश्रय करके शान्ति का अंश विशेष बढ़ा, वह प्रतिमा है। यह निश्चय प्रतिमा है। समझ में आया? **(१) दर्शन...** प्रतिमा। नीचे है, नीचे नोट में। दर्शन प्रतिमा अर्थात् निर्मल सम्यग्दर्शन। आत्मा का अनुभव करके निर्मल सम्यग्दर्शन रखना, यहाँ बारह अणुव्रतादि होते हैं, परन्तु निर्मल नहीं, इसलिए उसको दर्शन प्रतिमा कहा गया है। यह पंचम गुणस्थान की बात है। दर्शन प्रतिमा पंचम गुणस्थान में होती है। सर्वार्थसिद्धि के देव एकावतारी—भवतारी हैं (उसमें) कितने तो क्षायिक समकिती हैं, उससे भी विशेष पंचम गुणस्थान में श्रावक की दशा अन्तर के आश्रय से शान्ति की वृद्धि हो गयी है। समझ में आया? उसको जैनदर्शन में श्रावक कहा जाता है।

पहला पद तो **(१) दर्शन...** प्रतिमा है। जिसमें तो निर्मल सम्यग्दर्शन और बारह व्रतादि के भाव हों, उसको दर्शन प्रतिमा कहा जाता है, परन्तु सम्यग्दर्शन हो तो यह प्रतिमा होती है। आत्मा का अनुभव—सम्यग्दर्शन बिना जो कोई यह प्रतिमा नाम धराता है, वह प्रतिमा (सच्ची) प्रतिमा है नहीं। समझ में आया? जहाँ आत्मा की भेंट न हुई, अन्दर में, भगवान की भेंट हुई नहीं, तब तक उसकी प्रतिमा और व्रतादि सब व्यर्थ है—अंक बिना के शून्य हैं। समझ में आया? आहाहा! यह दर्शन प्रतिमा है, पंचम गुणस्थान की बात है। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में होता है। आत्मा का अनुभव होकर आत्मा को अनुसरकर परिणाम होकर उसमें प्रतीति (होना) कि यह भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध है—ऐसी अन्दर प्रतीति—निर्विकल्प श्रद्धा—निश्चय सम्यग्दर्शन, वह चौथा गुणस्थान है। निश्चय—सच्चा सम्यग्दर्शन, यह चौथी भूमिका—चौथा गुणस्थान है।

(२) व्रत... प्रतिमा। बारह व्रत निरतिचार और शान्ति की वृद्धि हुई है अन्दर में। आत्मा की शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... जो सम्यग्दर्शन में शान्ति आयी थी, उससे भी शान्ति—अकषाय परिणाम बढ़ गये, ऐसी दशा को व्रत प्रतिमा कहा जाता है। समझ में आया? यह सब सम्यग्दर्शनपूर्वक है। सम्यग्दर्शन (अर्थात्) आत्मा का साक्षात्कार—अनुभव हुए बिना जितना व्रत और नियम आदि तपादि करता है, वह सब संसार के खाते में है, धर्म नहीं। समझ में आया? अनन्त आनन्द से भरा अपना

परमात्मा... अरे! कैसे बैठे? एक अनुकूलता जरा बीड़ी की मिले तो प्रसन्न हो जाता है। ओहो! कपड़ा अच्छा मिले तो प्रसन्न... अरे भगवान! यह तो दुःख की दशा में सुखीपना माना है। यह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

पर की किसी भी चीज़ में साधारण अनुकूलता को देखकर प्रसन्न होना कि मैं उसमें ठीक हूँ, यह सब मिथ्यात्व का लक्षण है। जैनधर्म का यह लक्षण नहीं। समझ में आया? धर्म—जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं है, यह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? परमानन्द की मूर्ति प्रभु वीतरागमूर्ति अनादि-अनन्त सनातन आत्मा है, वही वस्तु है, उसका अनुभव करना—पर्याय में वीतरागता प्रगट करना, वह जैनधर्म। जैनधर्म कोई बाहर नहीं रहता, जैनधर्म कोई दूसरी चीज़ नहीं है। आहाहा! शरीर में जैनधर्म रहे कि नग्नपना, वह जैनधर्म है—ऐसा नहीं है। श्रावक की लंगोटी पहनी, वह जैनधर्म है—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

जैनधर्म तो, अन्तर वीतरागी प्रभु अपना निजानन्दस्वभाव पूर्ण वीतराग, उसमें अन्तर्मुख होकर वीतराग परिणति—निर्दोष दशा का होना, वह जैनधर्म है। समझ में आया? ऐसे आत्मा की भेंट हुए बिना जितने व्रत-तप आदि हैं, वे सब अज्ञान-तप और अज्ञान-व्रत हैं। अपने अनुभव में—आनन्द के वेदन में विशेष शान्ति बढ़ती है, उसको निश्चयव्रत, निश्चयप्रतिमा कहते हैं।

(३) सामायिक। सम्यक् अनुभवपूर्वक आत्मा में समता, वीतरागता, निर्विकल्पता, अरागता—ऐसा परिणाम प्रगट करना, उसका नाम तीसरी सामायिक प्रतिमा पंचम गुणस्थान में श्रावक को कहने में आती है। भारी बातें ऐसी, भाई! यह कहे, ऐसा धर्म कैसा कठोर? समझ में आया?

और **(४)** प्रौषध व्रत—**प्रौषधोपवास...** चतुर्दशी, अष्टमी के दिन आत्मा के आनन्द का पौषण करने को बाहर से निवृत्ति लेकर... बाहर से तो निवृत्ति ही है, परन्तु परसन्मुख के विकल्प के झुकाव में था, उसे भी छोड़कर स्वरूप में विशेष पूर्णानन्द का पोषण करना—पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा को पुष्ट करना, पुष्ट करना, आनन्द से पुष्ट करना, उसका नाम प्रौषध उपवास प्रतिमा कहने में आती है। समझ में आया? यह

प्रौषधसहित उपवास है। अन्तर आनन्द में पोषण... जैसे चना... चना होता है न, वह पानी में भिगोने से पोढा (-पुष्ट) होता है, वैसे भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरा है, उसमें लीन होने से पर्याय में आनन्द की पुष्टि होती है। उस समय उपवास अर्थात् स्वरूप में, उप (अर्थात्) समीप में—स्वरूप के समीप में बसना, उसका नाम प्रौषधोपवास कहा जाता है। जैनदर्शन में ऐसी व्याख्या है। समझ में आया? आत्मा का भान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, अनुभव नहीं और यह प्रौषध-उपवास करे और सामायिक करे और (माने कि) हमें धर्म होता है, (तो) जिन्दगी चली जायेगी, तेरे आत्मा के साथ ठगाई होगी। आहाहा!

(५) सचित्तत्याग। पाँचवीं प्रतिमा। आगे उसकी शान्ति की वृद्धि हो और उसमें सचित्त का त्याग (अर्थात्) एकेन्द्रियादि जीव (है ऐसा) सचित्त न खाये (ऐसा) उसका त्याग हो। ऐसी शान्ति थोड़ी बढ़ी है। उस शान्ति की बढ़वारी के ग्यारह भाग हैं। विकल्प का भाग व्यवहार है, यह तो निश्चय का भाग है। आहाहा! यह पाँचवीं प्रतिमा। सम्यग्दर्शनसहित आत्मा के आनन्द के अनुभव की भूमिका में आत्मा का विशेष आश्रय लेकर शान्ति का अंश बढ़ा, उसका नाम प्रतिमा ऊँची हुई, ऐसा कहने में आता है।

(६) रात्रिभोजनत्याग। उसे रात्रिभोजनत्याग छठवीं प्रतिमा (होती है)। रात्रिभोजन न करे इतनी अन्दर कषाय की अभावदशा उत्पन्न हुई है। आहाहा! रात्रि भोजन करने का विकल्प भी उसको नहीं आता। आहाहा! अकेला रात्रिभोजन त्याग, ऐसा नहीं; आत्मा में शान्ति की वृद्धि होकर जो रात्रिभोजन का त्याग है, उसमें अकषायपरिणाम बढ़ा है, उसका नाम प्रतिमा है।

मुमुक्षु : आता था पहले?

पूज्य गुरुदेवश्री : आता था पहले। ऐसा कहते हैं कि छठवीं प्रतिमा तक रात्रिभोजन का राग आता था या नहीं? ऐसा पूछते हैं। आवे, वह विकल्प आता है। ऐसे तो पहले से जैन को रात्रिभोजन तो होता ही नहीं। यह तो रात्रिभोजन में कोई दोषादि रहा हो, उसका त्याग, वह बात यहाँ है। प्रतिमा है न! रात्रिभोजन तो पहले से मुनि, श्रावक को होता ही नहीं। रात्रिभोजन तो महा हिंसा है। समझ में आया? समकिती को

ऐसा होता नहीं। समझ में आया? यह तो निरतिचार की बात है। कोई दूसरे को रात्रिभोजन करे-करावे, ऐसी बात होती नहीं। (उसका) त्याग है।

(७) ब्रह्मचर्य। सातवीं प्रतिमा। निरतिचार ब्रह्मचर्य पालते हैं। रात्रि में भी अब्रह्म का त्याग हो। समझ में आया? ब्रह्म अर्थात् आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द भगवान में चरना—उसमें रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। शरीर से अकेला ब्रह्मचर्य पालना, वह तो व्यवहार ब्रह्मचर्य, शुभराग, पुण्य है। वह सच्चा ब्रह्मचर्य नहीं। समझ में आया? वह झूठा ब्रह्मचर्य है। आहाहा! शरीर से ब्रह्मचर्य, मन-वचन-काया से ब्रह्मचर्य पालना, वह तो शुभभाव है। वह सच्चा ब्रह्मचर्य नहीं। ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव हुआ और उसमें विशेष शान्ति का, आनन्द का उत्पन्न होना, ऐसी सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा होती है।

(८) आरम्भत्याग। आरम्भ का त्याग। अति आरम्भ करे नहीं। सचित्त को अचित्त स्वयं न करे। आठवीं प्रतिमावाला जीव सचेत एकेन्द्रिय जीव (जिसमें हो ऐसा) पानी स्वयं गर्म न करे। सातवीं तक करे, आठवीं में फिर न करे। समझ में आया? ऐसा उसमें राग मन्द पड़ जाता है और अरागी परिणति अंश में बढ़ती है। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

(९) परिग्रहत्याग। कोई थोड़ा पैसा रखता था आठवीं प्रतिमा तक, इतनी ममता थी, उस ममता का त्याग। आत्मा के आनन्दपूर्वक ममता का त्याग। अरे! हमें छोड़ना पड़े, हमें यह पालना पड़े—वह तो बेगारी है। समझ में आया? वह तो हठ है। हठ की बेगारी है। अन्दर सहज आनन्दस्वरूप में शान्ति बढ़ती है, उतना-उतना राग का त्याग अन्दर हो जाता है। राग का त्याग होता है तो उसका निमित्त का भी अभाव हो जाता है। समझ में आया? लो।

(१०) अनुमतित्याग। कोई भी करे, उसे अनुमोदन नहीं दे। आहार-पानी उसके लिये बनाया हो, अनुमोदन—अनुमति न दे।

और (११) उद्दिष्टआहारत्याग। क्षुल्लक होता है ग्यारहवीं प्रतिमावाला या ऐलक, उसके लिये आहार-पानी बनाया हो तो वह ले नहीं। उतना राग घट गया है। समझ में

आया ? अभी तो कोई ठिकाना नहीं है। दो जगह चलती है। क्षुल्लक नाम धरावे, उसके लिये चौका करके भोजन बने, (वह) बिल्कुल जैनदर्शन से विरुद्ध है। समझ में आया ? यह कोई पक्ष नहीं है, यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। ग्यारह प्रतिमा का परिणाम जिसको हुआ, उसे उसके लिये बनाया (आहार लेने का) भाव का त्याग है। समझ में आया ?

उनमें छठवें पद तक (छठवीं प्रतिमा तक) जघन्य श्रावक हैं, नौवें पद तक मध्यम है। सात-आठ और नौ। सात (वीं प्रतिमा) एकदम ले लेते हैं न लोग। वह मध्यम होने के लिये एकदम ले लेते हैं। आहाहा! मध्यम तो गिने जायेंगे। अभी सम्यग्दर्शन का भान नहीं होता (वहाँ) वह प्रतिमा कैसी ? देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ और राग—पुण्य का मैं कर्ता हूँ—ऐसी जब तक मान्यता है तो बड़ा मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया ? अन्दर शुभभाव आवे, उसका कर्ता होना, वह मिथ्यात्वभाव है। वह जैन है ही नहीं। समझ में आया ? क्योंकि राग को जीतनेवाला जैन होता है। राग का करनेवाला जैन नहीं होता। समझ में आया ? जैन क्या ? यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया ? जिन... 'जीते सो जिन' ऐसा नास्ति से शब्द है। सब व्यवहार से कथन... राग को जीतना। जीते क्या ? स्वरूप में स्थिरता होना (और) राग उत्पन्न न हो, उसका नाम 'राग जीता'—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! मार्ग बहुत बापू! अनन्त आनन्द को देनेवाला मार्ग तो... दुनिया को वीतराग परमेश्वर का मार्ग लक्ष्य में है नहीं, हों! आहा!

यह सब पद सम्यक्त्वपूर्वक, हठ रहित... लो। आत्मा... निर्विकल्प अनुभवपूर्वक यह ग्यारह प्रतिमा का भाव होता है। **हठ रहित सहज दशा...** हठ नहीं कि मुझे करना पड़ता है, क्या करें ? इतना पालना पड़े, वह तो हठ है। सहज दशा की बात है, **यह ध्यान में रखनेयोग्य हैं।** समझ में आया ? अन्दर (टीका)। **यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** श्रावक। लो, भीखाभाई! यह श्रावक हो अभी। गृहस्थाश्रम में ऐसी भक्ति करते हैं, ऐसा कहते हैं। तीनों बोल लिये हैं गृहस्थाश्रम में। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों बोल हैं श्रावक को। चारित्र नहीं है... नहीं है... नहीं है—ऐसा नहीं

है, चारित्र का अंश है। पूर्ण चारित्र सच्चे मुनि को होता है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। यह श्रावक की बात हुई। सच्चे सम्यग्दर्शनपूर्वक अनुभव की भूमिकासहित आगे बढ़ती शान्तिवाले सच्चे श्रावक के पद ग्यारह कहने में—गिनने में आये हैं। कहने में, गिनने में आये हैं। आहाहा! ऐसा धर्म कैसा? भाई! आहाहा! इस शरीर में रोग हो, ईयळ पड़े, कीड़ा पड़े, अन्दर पेट में सड़ान हो, पेट में, हों! आहाहा! सिर में फोड़े में अन्दर जीव पड़े। जीवडा समझते हो? कीड़ा, कीटाणु।... यह शरीर तो माँस का है भगवान! कीड़े में जब चिल्लाहट मचाता हो अन्दर, आहाहा... क्या करे भगवान? वह तो जड़ की दशा है। तुझमें है नहीं, तुझमें हुई नहीं, तुझसे हुई नहीं। तू तो भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु भिन्न है। आहाहा! (पहले) कभी शरण लिया नहीं तो उस समय कैसे शरण ले सकेगा? तड़प-तड़पकर देह छूटे, चला जाये।

जितने प्रमाण में बाह्य की अनुकूलता में (राग) का भाव किया हो, उतने प्रमाण में प्रतिकूलता में द्वेष का भाव आता है—होता है। क्योंकि भगवान आत्मा तो वीतरागमूर्ति है। उससे च्युत होकर थोड़ी भी अनुकूलता में हर्ष हो, तो उतना ही प्रतिकूलता में द्वेष आ गया उसे। ६७ करोड़ ६८ लाख ९० हजार ५८४ रोग शरीर में हैं। मेरा शरीर सुन्दर है और मैं लड्डू खाता हूँ। अरे मूर्ख! कहाँ शरीर तेरा है? सुन तो सही! आहाहा! समझ में आया? अपनी चीज़ की सम्हाल नहीं और पर की सम्हाल में सारी शक्ति खो बैठा। ऐसे करना, ऐसे खाना... अरे प्रभु! तुम क्या हो?

यहाँ कहते हैं, तेरी भक्ति तूने (नहीं की), पर की भक्ति की। आहाहा! शरीर की सेवा के लिये तूने आत्मा का काल गँवाया। एक बार आत्मा की सेवा के लिये सब कुछ छोड़। पर मेरी चीज़ ही नहीं है। आहाहा! वहाँ मरते थे और कहाँ... ५-५० लाख पूँजी हो, शरीर सोने की अँगूठी जैसा दिखाई दे। बिच्छू काटे अन्दर बिच्छू। आहाहा! भाई! वह तो जड़ है, प्रभु! वह तो वेदना का घर है। प्रभु! उसमें शान्ति और सुख है नहीं। समझ में आया? आहाहा! जहाँ शान्ति और सुख है, वहाँ नजर करता नहीं। नजर ऐसे बाहर और बाहर। कोई सुनाना, भाई! मरते समय। सुनावे क्या? सुनावे वह तो राग है। उसका अपना आत्मा जिसने सुना नहीं, (अर्थात्) आनन्द और ज्ञान ऐसी शान्ति की

दृष्टि की नहीं, उसको कोई प्रतिमा भी नहीं होती और मुनिपना भी नहीं होता। समझ में आया?

तो और कितने ही ऐसा कहते हैं कि ऐसा सम्यग्दर्शन पाने को व्रत, संयम, नियम, तप, पूजा, भक्ति करो। अरे भगवान! वह सब तो राग है। समझ में आया? समकित पाने को ऐसा करो, अशुभ को छोड़ो, शुभ करो। यह बात अत्यन्त विपरीत—झूठी है। समझ में आया? आहाहा! दुनिया में मान मिले, दुनिया प्रसन्न हो, ओहोहो! कैसा महाराज ... है। सब धर्म समान और सबमें मिलेगा, सबमें कुछ है। धूल भी है नहीं। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र ने जो आत्मा कहा, ऐसा आत्मा दूसरे (में) है नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ में अनुभव करना, वह भक्ति है। वह श्रावक की (भक्ति) कही, अब मुनि की।

भवभयभीरु... ओहो! मुनि तो भव के भय से डरते हैं। अरे! भव... न जाये, भव न हो, भव मेरी चीज़ ही नहीं है। आहाहा! **भवभयभीरु...** भव के भय से मुनि डरते हैं। अरे! भव धारण करना, यह कलंक है। अमृत का सागर भगवान आत्मा, उसको, भव—जन्म करना, (वह) कलंक है। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द का तो निजघर है। उस निजघर को छोड़कर भव धारण करना, (यह) कलंक है। मुनि और श्रावक दोनों को भवभयभीरु कहा जाता है। यहाँ तो विशेष मुनि की चारित्रदशा का वर्णन करना है न।

परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले... मुनि कैसे होते हैं? परमनैष्कर्म्यवृत्ति... राग का परिणाम रहित वीतरागी परमवृत्ति होती है उनकी। आहाहा! अरे, भाई! 'मनुष्य होना मुश्किल है, साधू कहाँ से होय, साधू हुआ तो सिद्ध हुआ...' साधू किसको कहते हैं? आहाहा! जिसको गणधर नमस्कार करें। समझ में आया? 'णमो लोए सव्व साहूणं।' चार ज्ञान (धारी) और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करनेवाले तीर्थंकर के वजीर—दीवान, वे भी शास्त्र रचना के काल में 'णमो लोए सव्वसाहूणं' (स्मरण करते हैं)। अहो! ढाईद्वीप में (जितने भी) सन्त-साधु हों, उनको मेरा नमस्कार। गणधर का नमस्कार पहुँचे, ऐसा साधु कैसा होना चाहिए? समझ में आया?

यह तो 'णमो लोए सव्वसाहूणं' (अर्थात्) एक व्यक्ति ऐसा कहे कि उसमें कहाँ जैन के साधु को कहा है ? प्रत्येक साधु को 'णमो लोए...' अरे भगवान! साधु ही होता नहीं। जैनदर्शन के अनुभव बिना साधु हो नहीं सकता। समझ में आया ? यह वस्तु का स्वभाव है। वीतरागप्रभु आत्मा निर्दोष आनन्दकन्द, उसका अन्तर का आश्रय लेकर वीतरागता का स्वीकार न किया और दूसरे क्रियाकाण्ड में घुस गये, वे कोई साधु-बाधु है नहीं। समझ में आया ?

परमनैष्कर्म्यवृत्ति... आहाहा! **(परम निष्कर्म परिणतिवाले)...** उसको—मुनि को वीतरागी परिणति उत्कृष्ट होती है। ऐसा तीन कषाय का अभाव—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय। आहाहा! धन्य अवतार! जिसे तीन कषाय का अभाव है, आनन्दकन्द में झूलते हैं, प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। प्रचुर स्वसंवेदन... आत्मा के आनन्द की उत्कृष्टता वेदन में आयी है। आहाहा! गजब ऐसी व्याख्या! वस्त्र छोड़कर नग्न हुए और पंच महाव्रत पाले तो साधु—ऐसा साधु है ही नहीं। पंच महाव्रत विकल्प है—राग है, नग्नपना तो जड़ की दशा है। यह राग और शरीर से भिन्न भगवान आत्मा निरंजन निराकार शुद्ध भगवान परमानन्द की मूर्ति की भेंट होकर, अनुभव होकर विशेष निष्कर्मदशा प्रगट हुई। वीतराग... वीतराग... वीतराग... अल्प काल में केवलज्ञान लेने की जिसकी सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया ? यह हिन्दी तुम्हारे लिये लिया, हों! नहीं तो गुजराती चलता है। पुस्तक हिन्दी है न ? आहाहा!

परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले परम तपोधन... ओहो! वीतरागता के भावरूपी तपरूपी धन जिसको प्रगट हुआ है, अपनी निज लक्ष्मी अन्दर प्रगट हुई है, अनन्त ज्ञान-आनन्द आदि का स्वभाव के अनुभव में एकाग्र होकर जिसकी दशा में—हालत में—वर्तमान पर्याय में अनन्त आनन्द और अनन्त... भले अनन्त आनन्द केवली जैसा नहीं, परन्तु आनन्द और अनन्त ज्ञान का अंश जो साधन ऐसा प्रगट हुआ है, वह तपोधन है। तपरूपी लक्ष्मी जिसको प्रगट हुई है। यह तप, हों! वह उपवास करे और तप, यह सब आत्मा के भान बिना के लंघन हैं। समझ में आया ?

तपोधन भी... अर्थात् ? श्रावक तो रत्नत्रय की भक्ति करते हैं, परन्तु मुनि भी करते

हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! रत्नत्रय और आत्मा सुना भी न हो कभी, सुना ही नहीं। वस्त्र बदले और ऐसा किया, ऐसा किया। हो गया साधू, हो गया श्रावक। आहाहा! भगवान! तेरा मार्ग कोई अलौकिक है। तेरा स्वभाव, स्वभाव से ही जानने में आये, ऐसा तेरा स्वभाव है। तेरा स्वभाव, स्वभाव से ही जानने में आये, ऐसा स्वभाव है। राग से, निमित्त से जानने में आये, ऐसा तेरा स्वभाव ही नहीं अर्थात् व्यवहार की क्रिया से स्वभाव जानने में आये, ऐसा आत्मा नहीं। समझ में आया? अपने स्वभाव से जानने में आये, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। शुद्ध आनन्द और शुद्ध ज्ञान (ऐसा) अपना त्रिकाल निर्मलस्वभाव, वह अपनी निर्मलपरिणति से जानने में आता है। व्यवहार दया-दान विकल्प या व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान (आदि) व्यवहाररत्नत्रय से जानने में आये, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

(शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उसको मुनि कहते हैं। आत्मा के आश्रय से अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... सर्वज्ञ वीतरागदेव ने कहा, वह आत्मा, हों! उसके अतिरिक्त दुनिया कहे आत्मा, ऐसा आत्मा है नहीं। वह आत्मा जाने बिना कहने में आता है। जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर, जिसने एक समय में तीन काल, तीन लोक देखा, उसने आत्मा जो कहा, ऐसा आत्मा जो अनुभव में लेता है, वह रत्नत्रय की भक्ति करता है।

उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को... वे वाडा के श्रावक और वाडा के साधु नहीं, ऐसा। **परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई...** जिनवरों की कही हुई **निर्वाणभक्ति—अपुनर्भवरूपी स्त्री की सेवा—वर्तती है।** लो। मोक्ष का मार्ग उसको वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाकी आत्मा के भान बिना, सम्यग्दर्शन अनुभव बिना अकेला अपवास, तप और क्रिया पंच महाव्रत करे—वह सब लंघन है, अज्ञान है, उससे आत्मा का भवभ्रमण बढ़ता है, घटता नहीं। अन्तर स्वभाव की भक्ति करता है, वह निर्वाण की भक्ति करता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ९, मंगलवार, दिनांक - १२-१०-१९७१
श्लोक-२२०, गाथा-१३५, प्रवचन-१४९

यह नियमसार, परम-भक्ति अधिकार। २२० वाँ कलश है।

सम्यक्त्वेऽस्मिन् भव-भयहरे शुद्धबोधे चरित्रे,
भक्तिं कुर्यादनिशमतुलां यो भवच्छेददक्षाम्।
कामः-क्रोधाद्यखिल-दुरघव्रात-निर्मुक्तचेताः,
भक्तो भक्तो भवति सततं श्रावकः संयमी वा॥२२०॥

क्या कहते हैं? **जो जीव...** जो कोई आत्मा **भवभय के हरनेवाले...** सम्यग्दर्शन, शुद्ध ज्ञान और चारित्र—आत्मा के आश्रय से होनेवाली निर्मलदशा, वह भवभय के हरनेवाले हैं। समझ में आया? **जो जीव भवभय के हरनेवाले...** चौरासी लाख के अवतार ऐसे जो भव, उसका भय, उसे टालनेवाले **इस सम्यक्त्व की...** अर्थात् भगवान आत्मा परिपूर्ण शुद्ध आनन्द, उसका समकित, उसके आश्रय से होनेवाली दशा **शुद्ध ज्ञान की...** वह जीव भवभय के हरनेवाले, ऐसे शुद्धज्ञान की... शुद्धज्ञान अर्थात् आत्मा के ज्ञान का वेदन, स्वसंवेदन ऐसा जो शुद्धज्ञान, उसकी भक्ति—**अतुल भक्ति, भवछेदक...** भक्ति, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

और **चारित्र की...** आत्मा आनन्दस्वरूप, उसमें रमना, अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता का चारित्र, उसकी **भवछेदक अतुल भक्ति...** आहाहा! भव को छेदनेवाली अनुपम—जिसे तुलना, उपमा नहीं, ऐसी शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र जो आत्मा त्रिकाली के आश्रय से प्रगट होती पर्याय, उसकी निरन्तर भक्ति करता है। परिणाम की निरन्तर भक्ति करता है अर्थात् कि निरन्तर परिणाम को परिणमाता है। आहाहा! उसका नाम सच्ची—सत्य—निश्चय भक्ति कहा जाता है। ऐसी **भवछेदक...** पहला पद लिया न, भवभय के हरनेवाली यह पर्यायें। और वह भक्ति फिर कहा। भक्ति, कैसी है उसकी भक्ति? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कैसे हैं? कि भवभय के हरनेवाले।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कैसे हैं? कि स्वरूप के आश्रय से होती प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वह भवभय के हरनेवाले हैं। व्यवहारभक्ति, वह परम्परा कारण कहेंगे। समझ में आया? वह सम्यग्दृष्टि की सिद्धभक्ति। मूल कारण तो यह है।

आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें एकाग्रता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—तीनों वस्तु के त्रिकाली आनन्दस्वभाव की एकाग्रता है। उस एकाग्रता की **भवछेदक अतुल भक्ति...** आहाहा! जिसमें भव का छेद हो, भव रहे नहीं—ऐसी **अतुल भक्ति निरन्तर करता है,...** जिसे नित्य ध्रुव आनन्दस्वभाव, नित्य दृष्टि में, ज्ञान में, चारित्र में—रमणता में वह ध्येय उसका वर्तता है। इसलिए उसके परिणाम निरन्तर वीतरागी होते हैं, ऐसा कहते हैं। गजब बात! ऐसी बात पकड़ना कठिन और उसे अब... आहाहा! बाहर का करना भक्ति, पूजा, व्रत और तप, उसमें से कल्याण होगा, ऐसा कहता है। यह बात एकदम मिथ्या है। आहाहा! निश्चय भक्ति करनेवाले को व्यवहार का विकल्प सिद्धभक्ति आदि का आता है, परन्तु वह वास्तव में तो बन्ध का कारण है। परम्परा से मुक्ति का कारण कहेंगे। क्योंकि उसे टालकर निर्विकल्प वीतरागता प्रगट करेगा, वही मुक्ति का कारण है। गजब बात, बापू! यह बात लोगों को एकान्त लगती है। एकान्त ही है, यह सम्यक् एकान्त है।

वह जीव **कामक्रोधादि समस्त दुष्ट पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव...** लो। देखो! श्रावक भी ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। मुनि और श्रावक ऐसे होते हैं कि जिनके चित्त में से काम अर्थात् राग, क्रोध, अर्थात् द्वेष, राग-द्वेषादि, विषयवासना आदि **समस्त दुष्ट पापसमूह...** पुण्य और पाप के भाव, वे दुष्ट पापसमूह हैं। आहाहा! उनसे **मुक्त चित्तवाला जीव...** क्या कहा? यहाँ तो कहते हैं कि जो धर्मात्मा सच्चा श्रावक हो, वह तो अन्तर आत्मा आनन्दस्वभाव की एकाग्रतारूपी वीतराग परिणाम की भक्ति करनेवाला है और उसका चित्त विकल्प और राग से मुक्त है, ऐसा कहते हैं। ऐसी भक्तिसहित है और विकल्प-रागादि से वह विमुक्त है। लो, श्रावक को कहा यह। समझ में आया? प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में तो ऐसा आता है कि श्रावक को शुभ उपयोग, वह शुद्ध की प्राप्ति का हेतु है। लो, ऐसा आता है।

यह प्रश्न उठे थे। मोरबी में, राजकोट, दूसरी जगह चला था। यह प्रवचनसार में कहा है न कि श्रावक को तो शुभ उपयोग ही मुक्ति का कारण है। यहाँ श्रावक को यह

मुक्ति का कारण कहा है। समझ में आया? दोनों के बीच में मतभेद कुछ नहीं। मात्र सच्चा श्रावक उसे कहते हैं कि जिसने वस्तु का श्रवण करके, राग से विवेक करके, अन्तर स्थिरता का कार्य किया है। समझ में आया? गजब निश्चय बात ऐसी! उसे जो वीतरागता प्रगट हुई है, उसकी जो भक्ति—भजन (अर्थात्) बारम्बार वीतरागपना होना, वह राग-द्वेष से मुक्त चित्तवाला जीव श्रावक हो या मुनि हो, भगवान कहते हैं कि वह भक्त है। भक्त है, भक्त है, वह भक्त है। आहाहा! मेरी भक्ति करनेवाला भक्त है... भक्त है, ऐसा जोर नहीं दिया। बाद की गाथा में विकल्प आता है, उसकी बात करेंगे। समझ में आया? उसकी मर्यादा (यह कि) वीतरागता की पूर्णता नहीं, इसलिए उन सिद्ध भगवान आदि पंच परमेष्ठी (आदि के प्रति) भक्ति का राग उसे होता है, ऐसा ज्ञान कराया है। समझ में आया?

उस **पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव...** आहाहा! भगवान आत्मा पुण्य-पाप से रहित है, उसकी दृष्टि-ज्ञान-रमणता का अंश प्रगट हुआ है, वह श्रावक या मुनि, वह भी पुण्य-पाप के भाव से पर्याय में मुक्त है। द्रव्य तो त्रिकाल पुण्य-पाप से मुक्त ही है। समझ में आया? वस्तु है, वह तो शुभ-अशुभभाव से रहित ही है, परन्तु उस वस्तु की दृष्टि, ज्ञान और लीनतावाला पर्याय में पुण्य-पाप के भाव से मुक्त है। समझ में आया? कहो, पण्डितजी! हो गया? श्रावक पाप से मुक्त हो गया एकदम? आहाहा! यह तो चारित्र के अंशवाला लिया है, परन्तु स्वरूपाचरणवाला, दृष्टिवाला हो, वह भी राग और पुण्य-पाप से मुक्त ही है। वस्तु मुक्त है और वस्तु की दृष्टि का भान हुआ, वह पर्याय में वह भी मुक्त है। कठिन बात! समझ में आया? उसे भव एकाध-दो बीच में हो तो भी वह भव और भव के भाव से उसकी पर्याय मुक्त है। आहाहा! वह भव और भव का भाव जहाँ वस्तु में—द्रव्य में—वस्तुस्वभाव में नहीं, तो उसके आश्रय से दृष्टि और ज्ञान से उसकी पर्याय में भी भव नहीं, भव का भाव नहीं। आहाहा!

प्रवचनसार में आता है, वह श्रावक देवलोक में जाये पल्योपम आदि की स्थिति में। शास्त्र ऐसा बोलता हैं, शास्त्र तो ऐसा कहते हैं, लो। श्रावक बारहवें देवलोक तक जाये, मुनि ऐसे जाये, फलाना ऐसे जाये। उसकी दशा में राग बाकी है, इससे... जीव तो मुक्त ही है पर्याय से भी, परन्तु उसे जरा वह राग आवे, उसका ज्ञान वह करता है।

वास्तव में तो भव और भव का भाव बाकी रहा, उसका वह ज्ञान करता है। पर्याय से मुक्त है। आहाहा! यह बात कठिन पड़े लोगों को। ऐसा ही उसका स्वभाव है। भगवान को भव कैसा? इसी तरह भगवान की भक्ति की अन्दर की एकाग्रता से, उसे भव कैसा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? संसार ही जहाँ आत्मा में नहीं, ऐसे आत्मा का जहाँ भान हो, तो उसकी पर्याय में भी संसार नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक ओर, चौदहवें गुणस्थान तक संसारस्थ (है, ऐसा कहे)। ऐई! आहाहा! एक ओर (कहे कि) सम्यग्दर्शन हुआ तो पर्याय में वह संसार है ही नहीं। संसार तो परज्ञेय हो गया। समझ में आया? अपेक्षा से समझना चाहिए न।

कहते हैं कि वह **श्रावक हो अथवा संयमी हो—निरन्तर भक्त है, भक्त है**। ऐसा कहा है। निश्चय भक्तिवाला, वह भक्त है... भक्त है, ऐसा कहा है। व्यवहारभक्तिवाला व्यवहार से है, ऐसा कहेंगे। आहाहा! अरे! भगवान निर्विकल्प चैतन्यघन है। वह तो पूर्ण ज्ञान, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण परमेश्वरता, उसका वह स्वरूप ही ऐसा है। पूर्णता में अपूर्णता और विपरीतता कहाँ से होगी? समझ में आया? ऐसे पूर्ण परमात्मा स्वयं निजस्वरूप पूर्ण की प्रतीति, ज्ञान और रमणता की पर्याय में भी संसार के विकल्पों का, भव के भाव का अभाव है। समझ में आया? ओहोहो! बात तो यह है, भाई! क्या हो? जगत पीड़ित-पीड़ित होकर देह छोड़े। यह आत्मा के आनन्द से देह छूटे। छोड़े नहीं, छूटे। आहाहा! समझ में आया?

अज्ञानी भी सब छोड़ता है और उसे कहते हैं कि छूटता है। अकेला चला जाता है ऐसे। आहाहा! अज्ञान लेकर, स्वरूप का अभान लेकर, बेभान होकर चला जाता है। समझ में आया? उसके साथ यह कुछ आता नहीं। शरीर आता नहीं, कर्म आते नहीं। वह कर्म नहीं आते। दूसरे समय की पर्याय में कर्म कर्म के साथ, कर्म कर्म के कारण से आते हैं। वे आत्मा के कारण से साथ में नहीं आते। आहाहा! समझ में आया? वहाँ वजन यहाँ है कि **पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव...** वजन यहाँ है। समझ में आया? आहाहा! वापस कामक्रोधादि समस्त, ऐसा। राग-द्वेष। काम अर्थात् राग, क्रोध अर्थात् द्वेष। उदयभाव के भाव से, श्रावक और समकिती उनसे रहित चित्तवाला होता है। कहो, समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो, वह समकिती, श्रावक और मुनि दु:ख की दशा से रहित है। समझ में आया? दु:ख के चित्तवाले से रहित है। जिसके चित्त में दु:ख ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्ममार्ग होगा? आहाहा! भगवान की पूजा करो, शान्तिविधान और, क्या कहलाता है? वह स्नात्रपूजा। कल एक पत्र आया था किसी ब्रह्मचारी का—प्रज्ञाचक्षु का। तुम थे? यह क्या करना पंच कल्याणक में यह अंकुरारोपण और मृतिका, नयन? मृतिका-आयन... नयन... मृतिका नयन और यह होम, तिल होमना, धुँआ निकले और जीव मरे। ऐसा कैसे है इसमें? ऐसा लिखा है। प्रज्ञाचक्षु है कोई ब्रह्मचारी राजमल। यह व्यवहार ऐसे हैं भाई! अन्तर वस्तु में कुछ नहीं है।

मुमुक्षु : कोई ऐसा पूछता है कि यह व्यवहार सच्चा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं। यह तो पूछा है। उसमें लेख आते हैं। देखा था एक बार। वसुनन्दी में देखा था। यह तो बहुत समय से चर्चित है न। उसमें से निकला था थोड़ा। कहीं का डाला हो और किसी ने डाला होगा, वह क्या खबर पड़े? यह जनेऊ... उठाकर स्पष्टीकरण ऐसा दिया है माणेकचन्दजी ने। भाई! उस समय में ब्राह्मण का ऐसा था, वह उस प्रकार की बात उसमें आ गयी है, जनेऊ बनाना (आदि)। बाकी जैनदर्शन में वह वस्तु नहीं है। कोई ऐसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के कारण...

मुमुक्षु : परन्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के कारण जैनधर्म.... होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह... होता नहीं, उस प्रकार का ऐसा हो जाये, ऐसा समय... लोगों को ऐसा लगे और प्रभावित हो जाये। जरा ऐसा होता है व्यवहार से। डाला है न यहाँ। यहाँ संयम कहा है, हों! शास्त्र का आग्रही है न। माणेकचनद, कैसे? फिरोजाबादवाले। फिरोजाबाद न? उन्होंने कहा है। पूछा था किसी ने, उसका जवाब दिया, बहुत दिया है। भाई! वह तो बीच में ब्राह्मणों की बहुत शैली थी, इसलिए आचार्य ने जरा डाला लगता है। ऐसा लिखा है। बात तो बहुत वर्ष से चर्चित थी। यह बात पहले से उसमें आयी थी, उसी प्रमाण आयी थी। परन्तु आचार्यों ने इस कारण से लिया या क्यों लिया होगा? डाला है। जनेऊ तो यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के तीन ताने उसे जनेऊ कहते हैं। तीन डोरे होते हैं न एक-एक के। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उन तीन डोरेवाले का समकित—मोक्ष का मार्ग, वह जीव को जनेऊ है। आहाहा!

यहाँ मुनिराज कितना जोर देते हैं! समकिती, श्रावक हो या मुनि हो, वह तो विकल्प के भाव से मुक्त चित्तवाला है। आहाहा! समझ में आया? जिसके ज्ञान की पर्याय में, भगवान तीन लोक के नाथ आत्मा की जिसे भेंट हुई और उस पर्याय ने परमात्मा को देखा, उस पर्याय में अब, कहते हैं कि परमात्मा को हो तो उसकी पर्याय में भी हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परमात्मा स्वयं त्रिकाली स्वरूप, उसमें वह नहीं, इसलिए उसकी पर्याय में भी नहीं। क्योंकि उसके आश्रय से प्रगट हुई दशा, उसके अवलम्बन में एकाग्र होकर हुई दशा, उसमें वह नहीं। ऐसे श्रावक को और मुनि को... आहाहा! अरे! सच्ची बात भी सुनने को मिले नहीं। उसे समझने में भी दिक्कत और वाद-विवाद। आहाहा! अन्तर्मुखतत्त्व को अन्तर्मुख भाव से ही प्राप्त किया जाता है। वह अन्तर्मुखभाव जो पर्याय, उसमें बहिर्मुखभाव का अभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्तुस्थिति तो यही है। समझ में आया? वह तो जैसी स्थिति है, वैसा जानकर वर्णन हुआ है। कहीं कल्पित और ऐसा हो, ऐसा तुम्हारे, ऐसा नहीं है।

देखो! यह निश्चयभक्ति। आत्मा के परिणाम की भक्ति। वापस आत्मा की, ऐसा नहीं। कठिन, भाई! ऐसा का ऐसा वीतरागी परिणाम चालू रहे... आहाहा! इसका अर्थ हुआ या नहीं कि वह के वे परिणाम हैं? भजन है न इसलिए। भजना है, अर्थात् भजना है ऐसे, उसे सेवन करना। 'आराधना' ऐसा उसका अर्थ था न। इसका अर्थ कि सेवन करना, वह का वह भाव। बढ़ता जाये वह अलग बात है, परन्तु सेवन करना वह भाव। राग को सेवन करना, व्यवहार को सेवन करना। उस व्यवहार से मुक्त है, फिर व्यवहार को सेवन करना, यह बात रही नहीं। बराबर है? तो यह कहते हैं कि खींचतानकर अर्थ करते हैं, ऐसा कितने ही कहते हैं। अरे, भगवान! भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! शरणभूत भगवान आत्मा, उसके परिणाम वे शरणभूत और भक्ति है। ऐसा अर्थ उसका है। 'आराधना' इसका अर्थ ऐसा कहा न! आहाहा! यह शैली ली न प्रवचनसार में। चारित्र, इसका अर्थ है, करण इसका अर्थ है। आहाहा! कैसी शैली!

शुद्धज्ञानघन वस्तु के आश्रय से और उसका अवलम्बन लेकर, उसकी भेंट होकर जो परिणाम होते हैं, वे तो वीतरागी परिणाम और वीतरागी शासन, वह जैनशासन। वह जैनशासन की पर्याय राग से मुक्त है। समझ में आया? अभी समझ का ठिकाना,

जिसका व्यवहार समझ का ठिकाना नहीं, उसे यह अन्तर में उतरना (कठिन है)। अन्तर में उतरना वही मार्ग है, व्यवहार का मार्ग नहीं, ऐसा निर्णय किये बिना बाहर से भ्रमना रुकेगा नहीं इसका। समझ में आया? ओहो! सन्तों ने मार्ग को सरल करके रखा है। उसमें है, उसकी स्पष्टता होती है न! पापसमूह से, दुष्ट पापसमूह... आहाहा! समस्त पुण्य और पाप सब दुष्ट पापसमूह है। भगवान पवित्रता का पिण्ड अकेला, उसकी जहाँ पवित्र पर्याय—परिणति प्रगट हुई, वह पवित्र पर्याय तो मुक्ति का मार्ग है, वह भक्ति है, आराधन है, वह सेवना है। उस भाव में, राग के विकल्प का, जिसे व्यवहार कहे, उससे चित्त—धर्मी का चित्त मुक्त है। वह व्यवहार रागवाला जीव को कहना, वे सब व्यवहार के कथन हैं। व्यवहाररत्नत्रयवाला जीव को कहना, वह सब व्यवहार के कथन हैं, अभूतार्थदृष्टि के कथन हैं। आहाहा! गजब बात की है।

वह श्रावक हो या संयमी... कोई कहे कि यह तो सब संयमी के लिये बात है, मुनि के लिये यह सब बात है। यहाँ स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने डाला है कि श्रावक और मुनि दोनों की यह बात है। पाठ में है या नहीं? पाठ में है, देखो! श्रावक ही ले न पहला। पहला नित्य का... भले किसी को न आवे, तथापि श्रावक हो, मुनि हो, उसे ऐसा होता है, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो श्रावक हो या मुनि हो... ऐसा है न? **संयमी हो—निरन्तर भक्त है,...** श्रावक हो या संयमी हो, ऐसा है न? कथन की शैली अलौकिक (प्रकार) की है। श्रावक हो। न हो, उसे कुछ नहीं, एकदम मुनिपना आ जाये। समझ में आया? परन्तु श्रावक हो और संयमी हो, पंचम गुणस्थान में हो या छठवें गुणस्थान में हो, कहते हैं, परन्तु उस गुणस्थान में रागादि है, उनसे वह मुक्त है। आहाहा! समझ में आया? पाँचवें गुणस्थान में दो कषाय का भाव है, छठवें में एक कषाय का भाव है। हो, उसकी पर्याय में नहीं। बाहर से जैसे जगत है, वैसे वह है।

मुमुक्षु : अभिप्राय में.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय की पर्याय में नहीं वह। वह पर्याय उसकी नहीं, उस पर्याय में नहीं। उस पर्याय के आधार से राग हुआ है, ऐसा नहीं। व्यवहार उस पर्याय के आधार से हुआ है, ऐसा नहीं है। ज्ञानी व्यवहार का स्वामी नहीं। समझ में आया? आहाहा! कितना स्पष्ट है!

यह तो वस्तु की स्थिति का ही वर्णन है। परन्तु लोगों ने सुना न हो, (इसलिए उन्हें) ऐसा लगे कि अरे! यह तो अकेली निश्चय की बात है। परन्तु इसका साधन? साधन-फाधन यह आत्मा स्वयं। सुन न! इस पर्याय का साधन पर्याय। पर नहीं। भक्ति का साधन द्रव्य को—गुण को कहना, वह भी अपेक्षित है। उस पर्याय का साधन पर्याय। व्यवहार नहीं, द्रव्य-गुण नहीं। भाई! वह तो अभी वस्तु की स्थिति ऐसी है वहाँ। समझ में आया? चिद्विलास में आया है न! पर्याय का कारण पर्याय। ३२० गाथा में नहीं आया? मोक्ष और मोक्ष के मार्ग का कारण द्रव्य नहीं। भाई! यह पर्याय को किसलिए डालते हो? द्रव्य को डालो न? समझ न! द्रव्य का कार्य तो पर्याय में होता है न। समझ में आया? 'यह द्रव्य है', यह निर्णय कौन करता है? अनित्य करता है। अनित्य करता है। अनित्य द्वारा नित्य का निर्णय होता है। नित्य द्वारा नित्य का निर्णय होता है? यह सब बात समझनेयोग्य है। उसके आधार से और कारण से भी कहा जाता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं... यहाँ वजन कहाँ आया? कि **दुष्ट पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव...** वह जीव, यह श्रावक हो या मुनि हो, **वह निरन्तर भक्त है, भक्त है।** आहाहा! टीका भी गजब की है न! यह बात व्यवहार के पक्षवालों को नहीं सुहाती, ऐसा कहे। यहाँ भूल निकाली, फिर निकाली, डाला है या नहीं, उसमें—टीका में अन्तर है। अन्तर है तेरे चार गति में घूमने का। यहाँ तो, भव का अभाव होता है, उस परिणाम को यहाँ तो भक्ति कहा है। आहाहा! जिसमें भव का अभाव होता है और भव का भाव जिसमें नहीं, उसे यहाँ भक्ति कहा है। वे कहें, भगवान की भक्ति करते-करते मेरा कल्याण होगा। आहाहा! गजब बात, भाई! इनकार करते हैं न फिर वापस भक्ति करे, वहाँ जाकर। भाई! वह तो भाव हो, तब वह सब देखने में आता है। ऐसी बात है। क्या हो? जगत को सत्य के पहलू सुनने को मिले नहीं, इसलिए उसे ऐसा लगे कि यह तो एकान्त... एकान्त है। अरे! यह तो जैनशासन के व्यवहार का लोप होता है। जैनशासन का व्यवहार ही यह है। यह संयमी और मुनिपना, यही जैनशासन का व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा! लो, यह २२० कलश हुआ।

(अब) १३५ गाथा। व्यवहारभक्ति।

मोक्खंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि।
जो कुणदि परमभत्तिं ववहारणयेण परिकहियं॥१३५॥

यहाँ भी 'परमभक्ति' (शब्द) प्रयोग किया है वापस। यहाँ परमभक्ति है न। व्यवहार को परमभक्ति का आरोप दिया है। सच्ची बात है। यह तो व्यवहार का आरोप दिया है।

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुष की भक्ति जो गुणभेद से।
करता, वही व्यवहार से निर्वाणभक्ति वेद रे॥१३५॥

आहाहा! **टीकाः—यह, व्यवहारनयप्रधान सिद्धभक्ति के स्वरूप का कथन है।** यहाँ पहले तो कहा कि व्यवहार के विकल्प से मुक्त है। परन्तु उसे व्यवहार व्यवहारनय से आता है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? जब तक (पूर्ण) सर्वज्ञ और वीतराग न हो, तब तक उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय में राग और व्यवहार तो है ही नहीं उसकी दशा में। द्रव्य में हो तो उसकी पर्याय में हो। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय—तीनों में नहीं। परन्तु जब पूर्ण नहीं, इसलिए ऐसा एक सिद्धभक्ति का विकल्प उठता है, इससे व्यवहार से व्यवहारभक्ति को करनेवाला है, ऐसा कहने में आता है। ऐसा... क्या हो परन्तु यह? आहाहा! मुक्त है उसे, वह सिद्धभक्ति करता है, ऐसा कहते हैं। ...गजब बात है न! ऐई! बापू! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

उसका—कंचनबेन का पुकार याद आया आज। तब नहीं? शुक्रवार को। आहाहा! ओ माँ! ओ माँ! गजब है, कहा, देखो दशा! तीन लोक का नाथ कहाँ अटका है? आहाहा! यह बँगला और यह पैसा और धनी, सात-आठ लाख रुपये, अकेला धनी (पति) रहा। फिर रोवे। यह चिल्लाहट मचाये तो वह रोवे। बाहर भाग गये। प्रेम सही न, देख न सके। आहाहा! अरेरे! उसमें से निकलना... ऐसा घर अपना है, ऐसा माना है न! राग अपना माना, शरीर, घर अपना माना और यह बँगला धूल का। जो इसमें नहीं, उसे माना, उसमें से निकलना भारी कठिन पड़ेगा। आहाहा! कोई शरण नहीं। डॉक्टरों ने स्पष्ट कर दिया। बिल्कुल, इस रोग का इलाज अब जरा भी नहीं। यह रोग से ही अब देह छूटनेवाली है। असाध्य है। अरे जगत! आहाहा!

पैसे इतने अधिक, दो व्यक्ति। इतना क्या, तेरे करोड़ और अरब हों तो क्या, वह तो धूल है। आहाहा! शरणभूत प्रभु स्वयं अन्दर है। उसकी नजर की खबर नहीं होती और बाहर से नजर हटाने की आवश्यकता है, उसकी भी खबर नहीं। आहाहा! जहाँ राग के साथ एकत्वबुद्धि है... धर्मी राग से पृथक् हो गया है, विभक्त है। समझ में आया? यह तो तीसरी गाथा से वर्णन किया है। हाँ, एकत्व-विभक्त। आहाहा! वस्तु एकत्व-विभक्त है। भगवान आत्मा स्वभाव से एकत्व है और विभाव से विभक्त है तीनों काल। उसे—विभक्त को सहित मानना, वही मिथ्याभ्रम संसार का कारण है। आहाहा! यह जगत को कठिन पड़े, इसलिए कहीं मार्ग दूसरा शोधे। भगवान की धुन लगाओ, भाई! क्या भगवान की परन्तु? पर-भगवान की धुन लगाने जायेगा तो राग आयेगा। और राग में एकत्व हो जायेगा तो आत्मा से पृथक् पड़ जायेगा। राग से पृथक् पड़ने का है, उसके बदले स्वभाव से पृथक् पड़ेगा। आहाहा!

लोगों को वैराग्य हो जाये ऐस दूसरे को देखकर। यह दशा! आनन्द के नाथ को ऐसी पीड़ा में दब जाना, पीड़ा मेरी मानकर। आहाहा! शरीरादि नहीं, परन्तु आकुलता मेरी मानी है, तब उसे दुःख होता है न! आकुलता ही मेरी चीज़ में नहीं। मेरी चीज़ में नहीं, मेरी शक्ति में नहीं। चीज़ अर्थात् शक्तिवान और शक्ति के आश्रय से हुई दशा, उसमें आकुलता-फाकुलता है ही नहीं। कहीं आकुलता धूल भी नहीं। मानता है। आकुलता कैसी? अनाकुल ऐसा उसका द्रव्य का स्वभाव, उसका गुण का और उसकी पर्याय का अनाकुल स्वभाव है। वस्तु की यह मर्यादा है। अब मर्यादा उल्लंघकर आकुलता मेरी माने, वह तो तत्त्व को जाना नहीं, माना नहीं, पहिचाना नहीं। समझ में आया? आहाहा! आकुलता है मुझमें, इसका अर्थ हुआ कि विकार है मुझमें। इसका अर्थ हुआ कि विकारसहित मैं हूँ। इसका अर्थ हुआ कि मैं एक आत्मा आस्त्रवतत्त्वसहित हूँ। आस्त्रवतत्त्व-रहित हूँ, ऐसा आया नहीं। समझ में आया? मार्ग ऐसा भिन्न, भगवान! तेरा निरालम्बी मार्ग कोई अलग है। जिसे व्यवहार की भी अपेक्षा नहीं। चलेगा उसमें। समझ में आया? उसके ही अर्थ में आयेगा। देखो!

टीकाः—यह, व्यवहारनयप्रधान सिद्धभक्ति के स्वरूप का कथन है। तथापि उसके पहले बात यह करेंगे कि मुक्ति को प्राप्त कैसे हुए? जो सिद्धों की भक्ति-विकल्प

तू करता है, वह सिद्धपना पाये कैसे? **जो पुराण पुरुष समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत... जो पुराण पुरुष...** अनादि सनातन आत्मायें **समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतु...** कर्मक्षय का उपाय, उसका हेतु। कर्मक्षय के उपाय का हेतु **कारणपरमात्मा की...** कर्मक्षय का हेतु मोक्ष का मार्ग और मोक्षमार्ग का हेतु कारणपरमात्मा। आहाहा! समझ में आया? जो सनातन आत्मायें समस्त कर्मक्षय का कारण... कर्मक्षय का कारण कौन? निश्चय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष का कारण है, कर्मक्षय का कारण है। उसका हेतु कौन? मोक्ष का मार्ग, उसका कारण कौन? उसका कारण, कारणपरमात्मा। आहाहा! है न सामने देखो न! वह लोग कहते हैं कि इन्होंने स्वयं अर्थ बहुत कर डाले हैं। जैनसंस्कृति बिखेर डाली। अरे, भगवान! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! खबर नहीं। ऐसा तू स्वामी होने जाये, जोखिम है, बापू! समझ में आया? आहाहा!

जो पुराण पुरुष समस्त कर्मक्षय के उपाय के हेतुभूत... 'मोक्खंगयपुरिसाणं' है न पहला शब्द? मोक्ष प्राप्त पुरुषों का, ऐसा। तब उसकी व्याख्या की। कि मोक्ष कैसे पायें? कि मोक्ष का जो उपाय, उसका कारण कारणपरमात्मा है, त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्य ध्रुव, वह कारण (और) मोक्ष उसका कार्य। और उसका कारण मोक्ष का मार्ग, उस मोक्षमार्ग का कारण, कारणपरमात्मा। आहाहा! समझ में आया? है न उसमें देखो न! है या नहीं? **समस्त कर्म...** है न? आठों कर्म के क्षय का कारण अर्थात् उपाय, उसका हेतुभूत भगवान आत्मा—कारणपरमात्मा त्रिकाली नित्यानन्द भगवान। वह कारणपरमात्मा तो था, परन्तु जब पर्याय प्रगट की, तब उसे कारणपरमात्मा कहा जाता है। समझ में आया? पर्याय प्रगट किये बिना कारणपरमात्मा किस प्रकार हो? वह तो है, परन्तु उसके अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी निर्विकल्प समाधि, आनन्द... आनन्द जो निर्विकल्प, वह मोक्ष का कारण और वह आनन्द प्रगट हुआ, उसका कारण यह आत्मा है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

निश्चय की बात वह सत्य है, उसे लोगों ने साधारण कर दिया है। व्यवहार की बात झूठी है, उपचार से है, उसे वर में चढ़ा दिया मुख्य में। वह वरराजा। अणवर को वर ठहराया।

मुमुक्षु : उसे .... कहाँ से आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से मिले ? धूल में मिले ? आहाहा ! परन्तु वही सत्य बात है। उसे कहते हैं कि ऊँची बात है, ऊँची बात है। परन्तु भगवान ! तू कितना ऊँचा है ? तेरे ऊँचे का पार नहीं। उस ऊँचे का मार्ग ऊँचा ही होगा। आहाहा ! यह जन्म-मरण के भव, उसे टालने का उपाय, बापू ! भारी अलौकिक है, भाई ! उसे समझण में और श्रद्धा में भी लाता नहीं और गड़बड़ करे कि ऐसे से होता है, इससे होता है और ढींकणे से होता है। भाई ! इसमें यह गड़बड़ नहीं चलती।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुलाम हूँ, दास का दास, वही मैं। दास का दास भी नहीं। वही मैं, राग ही मैं। फिर प्रश्न कहाँ आया उसमें ? समझ में आया ?

ऐसे **कारणपरमात्मा को...** गुलांट मारकर कितनी बात करते हैं गाथा में ! जितने पुराणपुरुष समस्त कर्मक्षय का कारण सेवन कर और उसके कारणभूत **कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति से सम्यक्रूप से आराधना करके...** लो, ठीक। यह उपाय जो कहा था, वह उपाय यह। ऐसे **कारणपरमात्मा की अभेद-अनुपचार...** अभेद और अनुपचार... वस्तु के स्वभाव में अन्तर्मुख एकाग्रता... अनुपचार (अर्थात्) उपचार नहीं, आरोप नहीं, एकरूपता। यह रत्नत्रयपरिणति, लो। ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (रूप) रत्नत्रय की परिणति अर्थात् अवस्था। यहाँ तो स्पष्ट (बात) ली है कि यह परिणति अवस्था है। कहे, नहीं, सम्यग्दर्शन गुण है। सिद्धभगवान के गुण कहे हैं। अरे भगवान ! सुन न ! भाई ! कहेंगे यहाँ इसमें। आयेगा उसमें। आवे न।

अष्टगुणरूप... (कलश) २२१। **अष्टगुणरूप ऐश्वर्य...** यह व्यवहार है और ... पर्याय है। आहाहा ! अभी तक जितने आत्मायें मुक्ति को प्राप्त हुए, सिद्धपने को प्राप्त हुए, वह सिद्धपना अभेदरत्नत्रयरूपी परिणति सम्यक्पने आराधकर प्राप्त हुए हैं। **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति...** भगवान आत्मा में एकाग्र होकर... स्वसन्मुख में एकाग्र होकर अर्थात् परसन्मुख से विमुखता हो गयी उसमें। ऐसा जो उपचार बिना का अभेद निश्चयरतनत्रय, उसे सम्यक्पने **आराधना करके सिद्ध हुए,...** लो, कारणपरमात्मा को

इस प्रकार से आराधकर **सिद्ध हुए।** त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव ध्येय नित्य, उसे अभेद अनुपचार परिणति से आराधकर... 'उसे आराधकर' ऐसा कहा है। किसे आराधकर? कारणभगवान को, त्रिकाली ध्रुव को आराधकर। आराधना तो पर्याय है। 'त्रिकाली को आराधकर' इसका अर्थ कि त्रिकाली सन्मुख होकर आराधा अर्थात् त्रिकाली को आराधा। समझ में आया?

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति से सम्यक्‌रूप से आराधना करके सिद्ध हुए,... लो, यह सिद्ध हुए। तब, कहते हैं कि इन सिद्ध भगवान का विकल्प व्यवहार आयेगा, परन्तु उसे जाननेयोग्य है। उससे सिद्धपद होता है, ऐसा नहीं, ऐसा साथ में बतलाया है। समझ में आया? सिद्धपद है, वह तो अभेद रत्नत्रय उपचार परिणति ऐसे कारणपरमात्मा को सम्यक्‌पने... ऐसी परिणति से सम्यक्‌पने आराधकर... त्रिकाली भगवान को आराधकर, हों! आहाहा! गजब! बस, इतनी सिद्ध की व्याख्या की। सिद्ध की भक्ति कहना है न? सिद्ध कैसे? कि ऐसे, ऐसा। सिद्ध हुए कैसे? कि इस प्रकार से। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहते हों सिद्ध, तो वह सिद्ध को पहिचानते नहीं। समझ में आया? यह तो क्षय हुआ उसमें। क्षय के उपाय का हेतुभूत... क्षय हुआ, वहाँ बतलाया नास्ति से। वस्तु क्या कहना?

जिन... जिन... जीतना... जीतना किसे? अज्ञान और राग को। उसे जीतना है? यहाँ स्थिर होता है तो वे उदय नहीं होते, उसे जीता, ऐसा कहा जाता है। जिन शब्द का अर्थ ही यहाँ से उठा नास्ति से। आहाहा! क्या हो? वाद-विवाद से कहीं पार पड़े, ऐसा नहीं है। सत्य का आशय और अभिप्राय क्या है, वह शोधे तो उसे प्राप्त हो, ऐसा है। अकेला कथन और... उसमें वाद करने जाये कि उसमें यह आया देखो! आयेगा।

ऐसे सिद्ध हुए। **उनके केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर...** ऐसे सिद्ध के केवलज्ञानादि गुणों—पर्याय... उस पर्याय को गुण कहा। उनके केवलज्ञानादि शुद्ध गुण अर्थात् पर्यायें, उसके **भेद को जानकर...** भेद को जानना, वह विकल्प हुआ। आहाहा! वह अभेद कहा था न अन्दर, उससे मुक्ति होती है। उसके सामने यहाँ डाला है। यह केवलज्ञान—गुणी के गुण का भेद जानना, वह विकल्प है। आहाहा! वह राग है। नये व्यक्ति को ऐसा लगे। जयन्तीभाई! नया व्यक्ति आया हो... नया पहले आया था

न, देखो न! क्या कहते हैं यह? राम जाने। आहाहा! सिद्ध के **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर...** देखा! सिद्ध को नहीं लिया। सिद्ध के केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों के भेद को जानकर... वास्तव में तो सिद्ध को जानना, वह भी एक विकल्प है। गुणभेद को सिद्ध करने को विकल्प सिद्ध किया।

निर्वाण की परम्पराहेतुभूत... लो, यह मोक्ष की परम्परा हेतुभूत... यहाँ सब मुड़ गये। देखो! व्यवहार मोक्ष का परम्परा हेतु है। उसका अर्थ ऐसा होता है। अर्थात् उसका अभाव करके करेगा, ऐसा। साक्षात् कारण नहीं, साक्षात् तो निश्चयकारण है, परन्तु व्यवहार वर्तता है, उसका अभाव करके करेगा फिर, इसलिए परम्परा हेतु कहा गया है। आहाहा! अभाव हुआ। परम्परा का अर्थ ही व्यवहार है। साक्षात्, वह निश्चय और परम्परा, वह व्यवहार। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह लोग कहते हैं बेचारे, हों! अभी बहुत आया है कल। सब अर्थ बदले, ऐसा किया और ऐसा किया। सोमचन्दभाई ऐसा कहते थे। भाई! अर्थ की रीति की खबर नहीं न, भाई! इसलिए तुझे ऐसा लगता है। भाई! अर्थ तो यह ही है, ऐसा ही है। दूसरे प्रकार से है ही नहीं। समझ में आया? यह डाला।

परन्तु यह वह समकिती की बात है वापस। बीच में (आये हुए) राग को अपना माने, सिद्ध की भक्ति परम्परा हेतु है, ऐसा नहीं। वह तो अनर्थ है, नुकसान है, उसे तो। आहाहा! यह तो सम्यग्दृष्टि को—अभेदरत्नत्रयवाले को ऐसा जो विकल्प है, वह परम्परा हेतु, ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा माननेवाले की यहाँ बात ही नहीं। यह तो आत्मा के आश्रय से भक्ति हो, ऐसे जीव को जो ऐसा विकल्प आवे, उसे परम्परा हेतु निमित्त कहा जाता है। **ऐसी परम भक्ति जो आसन्नभव्य जीव करता है,...** देखो! आसन्नभव्य जीव करता है। वह विकल्प करता है... परिणमन है, इसलिए करता है, ऐसा कहा जाता है। क्या हो? **उस मुमुक्षु को व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति है।** लो। **उस मुमुक्षु को...** देखा! लिया न? आहाहा! मोक्ष का कामी, अभेद अनुपचार, उसे मोक्ष का कारण माननेवाला, व्यवहार से मुक्तवाला जीव, उसे इस व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति कहने में आती है। वर्तमान शुभभाव है, फिर उसे छोड़ेगा, तब शुद्ध होगा, इस अपेक्षा से व्यवहार कहा है। उससे होगा, ऐसा नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १२, शुक्रवार, दिनांक - १५-१०-१९७१
श्लोक-२२१-२२६, प्रवचन-१५०

परम-भक्ति अधिकार, २२१ कलश है।

उद्धूत-कर्मसन्दोहान् सिद्धान् सिद्धि-वधूधवान्।
सम्प्राप्ताष्टगुणैश्वर्यान् नित्यं वन्दे शिवालयान्॥२२१॥

व्यवहारनय से सिद्ध की भक्ति का स्वरूप है। सिद्ध भगवान, वे पर हैं न? उनकी स्तुति का स्वरूप, वह व्यवहारभक्ति कहलाती है और आत्मा की भक्ति निश्चयभक्ति है। यह बात तो आ गयी है पहली। १३४ में था पहले। ....१३६ में भी वही आयेगा। लक्ष्य से... रहित कहलाता है। इस गाथा में अधिकार तो व्यवहार का है, परन्तु उसके साथ नास्ति करेंगे। गाथा व्यवहार की है। सिद्ध की भक्ति आती है सही न बीच में! पूर्ण परमात्मदशा प्राप्त न हो, वहाँ तक ऐसा भाव आता है। भक्ति का शुभभाव, वह पुण्यबन्ध का कारण है, वह व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आता ही है या किसी को नहीं भी आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, आता ही है। साधारण अन्तर्मुहूर्त में आवे... वह भी सहज बहुमान का विकल्प तो आवे न! छठवें गुणस्थान में आवे, तब व्यवहारनय से विकल्प आ जाता है। समझ में आया?

श्लोकार्थः—सिद्ध भगवान **जिन्होंने कर्मसमूह को खिरा दिया है,...** समूह को खिरा डाला है। कर्म का ढ़ेर है न! सिद्ध भगवान ने कर्मसमूह को खिरा डाला है, झटक दिया है। अपने आनन्दस्वरूप अमृत के अनुभव की दशा से आठों कर्म के समूह को जिन्होंने नाश किया है, खिरा डाला है। **जो सिद्धिवधू के (मुक्तिरूपी स्त्री के) पति हैं,...** मुक्तिरूपी शुद्ध परिणति के वे स्वामी हैं। वे जगत के स्वामी नहीं। ऐसे सिद्ध भगवान **जिन्होंने अष्ट गुणरूप ऐश्वर्य को संप्राप्त किया है...** आठ कर्म का नाश होकर

जिन्होंने आठ गुणों अर्थात् पर्याय, ऐसी आठ गुणरूपी पर्याय की **ऐश्वर्य**—शक्ति, उसे **सम्प्राप्त किया है।**

तथा जो कल्याण के धाम हैं,... सिद्ध भगवान तो अकेले कल्याण का धाम हैं। कहते हैं न, फलाने धाम में ऐसे जाओ और तीर्थधाम में जाओ। कल्याण का धाम, वह आत्मा स्वयं ही कल्याण का धाम है। सिद्ध का कल्याण का स्थान—क्षेत्र अकेला निरुपद्रव शिवस्वरूप ऐसा वह आत्मा है। उसे (स्वयं के) के लिये कल्याण का धाम है, हों! दूसरे के लिये कल्याण का धाम व्यवहार से-विकल्प से (कहा जाता है)। उसका आत्मा ही कल्याण का धाम है। अकेली निर्विकल्प आनन्ददशा पूर्ण गुण की परिणति जिसे अत्यन्त शुद्ध हो गयी है, साधकपना मिटकर अकेला सिद्धपना जिन्हें प्रगट हुआ है—उन सिद्ध को ध्येय कहा है न पर्याय में—पर्यायदृष्टि से? सिद्धपद, वह ध्येय है, साधक का साध्य। साधकपना, वह मोक्ष का मार्ग, वह कारण, साधक है।

ऐसे सिद्ध, **कल्याण के धाम हैं, उन सिद्धों को...** इस प्रकार से उन सिद्धों को पहिचानकर 'ऐसे सिद्ध हैं' उन्हें जानकर **मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** है यह व्यवहारभक्ति, परन्तु ऐसा भाव आता है, तब 'मैं वन्दन करता हूँ' ऐसा कहा जाता है। समकिती साधक निश्चय से तो स्वयं को नित्य वन्दन करता है, परन्तु व्यवहार से ऐसा विकल्प निश्चय के साथ होता है, इसलिए उसे 'मैं नित्य वन्दता हूँ' (ऐसा कहने में आता है)। इस प्रकार सिद्ध की दशा का स्वरूप जानकर, ऐसी उनकी दशा है, वह दशा मुझे साध्य है, (ऐसा ज्ञानी जानता है)। साधक को वह दशा प्रगट हुए बिना छुटकारा नहीं। दशा प्रगटेगी ही, ऐसा। इससे उसे—सिद्ध को नित्य वन्दन करता हूँ, आदर करता हूँ। २२१ (कलश हुआ)। अब, २२२।

व्यवहारनयस्येत्थं निर्वृत्तिभक्तिर्जिनोत्तमैः प्रोक्ता।
निश्चय-निर्वृति-भक्ती रत्नत्रय-भक्ति-रित्युक्ता॥२२२॥

साथ में डाला है यह तो। कहते हैं, **श्लोकार्थः—इस प्रकार (सिद्धभगवन्तों की भक्ति को) व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कहा है;...** यह जिनवर ने कही है (अर्थात्) उसे ऐसा भाव आता है, ऐसा बतलाया है। जिनवर तीर्थंकरदेव ने बतलाया है।

समझ में आया? सिद्धभगवन्तों की इस प्रकार भक्ति को व्यवहार ... पर है। पराश्रित, वह व्यवहार और स्वाश्रित, वह निश्चय। ऐसे **व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति...** व्यवहारनय से मोक्ष की भक्ति, ऐसा कहते हैं। उपचार से है न? मोक्ष की भक्ति जिनवरों ने कही है। व्यवहारनय से कही न? मोक्ष का मार्ग दो कहा है न? कथन-निरूपण दो हैं न? यहाँ तो यह कहा है, देखो! निर्वाण की भक्ति व्यवहारनय से कही है। भगवान की भक्ति से भी निर्वाण होता है, ऐसा जिनवरों ने कहा है। किस अपेक्षा से? व्यवहार... आहाहा! आवे तब ऐसा ही आवे न! दो कथन आवे। दोनों मोक्षमार्ग और दोनों मोक्षमार्ग का फल एक मोक्ष। इसका (व्यवहार का) फल बन्धन है। आहाहा! परम्परा....

निश्चय-निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है। वास्तव में तो निर्वाणभक्ति, मोक्ष का कारण भक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है। आत्मा की भक्ति ऐसा न कहकर, रत्नत्रयभक्ति (कहा है)। सम्यग्दर्शन-निर्विकल्प आनन्द की प्रतीति, निर्विकल्पज्ञान और निर्विकल्प—रागरहित की लीनता—ऐसा निश्चयरत्नत्रय, वह निश्चय निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कहा है। समझ में आया? व्यवहार और निश्चय दोनों वर्णन किये हैं। उसमें ऐसा कहा है कि जिनवरों ने कहा है, यहाँ कहा कि रत्नत्रयभक्ति को भगवान ने कहा है। ऐसा है न? आता है न परन्तु। आहाहा! '**निश्चय-निर्वृति-भक्ती रत्नत्रय-भक्ति-रित्युक्ता**' उसमें **प्रोक्ता....**

व्यवहारनय है या नहीं? आता है या नहीं? व्यवहार से भी मुक्ति है या नहीं? वह तो कथनरूप से आता है। आता है, ऐसा बतलाया है। ऐसा विनय का मोहभाव आता है। जिसकी मुनिदशा सार्थक हुई है और अपने को भी ऐसा स्वाद साधकदशा में आया है, उसे स्वयं से गुण में अधिक है, उसका बहुमान आये बिना नहीं रहता, जब तक रागी है तब तक। समझ में आया? पूर्ण वीतराग होने के पश्चात् कुछ नहीं होता, व्यवहार नहीं होता। निश्चय अपना स्वरूप... है। दोनों बात की। व्यवहारनय से निर्वाणभक्ति जिनवरों ने कही है, निश्चय से निर्वाणभक्ति रत्नत्रयभक्ति को कही है। दोनों कही है। कथन में दो प्रकार से आती है। वास्तविक भक्ति तो निश्चय है, वही यथार्थभक्ति है। समझ में आया? यह व्यवहार की भक्ति तो राग है, विकल्प है। है सही, परन्तु पुण्यबन्ध

का कारण है। परन्तु आरोप से... निश्चय निर्वाणभक्ति आत्मा की तो रत्नत्रय की है, उसके साथ ऐसा विकल्प है, इसलिए उसे आरोप से कहने में आता है। २२३।

निःशेष-दोषदूरं केवल-बोधादि-शुद्धगुण-निलयम्।
शुद्धोपयोग-फल-मिति सिद्धत्वं प्राहु-राचार्याः॥२२३॥

श्लोकार्थः—आचार्यों ने सिद्धत्व को निःशेष (समस्त) दोष से दूर,... सिद्ध भगवान समस्त दोष से दूर हैं, अकेले गुण की पूर्ण परिणति(रूप) उनकी दशा है। **केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का धाम है...** भगवान में तो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द आदि अनन्त गुण की परिणति, उनका वह धाम है। **और शुद्धोपयोग का फल कहा है।** सिद्ध भगवान शुद्धोपयोग के फलरूप से प्राप्त करते हैं। व्यवहारनय से प्राप्त नहीं करते, ऐसा अन्दर वापस सिद्ध किया है। यह कहा है न। व्यवहारनय से भक्ति.... **शुद्ध उपयोग का फल...** आत्मा तो अत्यन्त शुद्ध है, उसका शुद्धोपयोग ग्रहण करके उससे मुक्ति होती है। शुद्धोपयोग से मुक्ति होती है। शुभ-उपयोग से मुक्ति नहीं। पहले कहा था, शुभ-उपयोग से मुक्ति नहीं, शुद्ध-उपयोग से है। व्यवहार को कहा है सही न! तो स्पष्टीकरण किया।

शुद्धोपयोग का फल कहा है। आत्मा अत्यन्त शुद्ध निर्मल जिसे शुद्धोपयोग के स्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता, चैतन्य के शुद्ध उपयोग का परिणमन, उसका फल सिद्ध (पद) कहा है। पुण्य के परिणाम व्यवहार आदि का फल शुद्धपना है नहीं। **शुद्धोपयोग का फल कहा है।** एक-एक गाथा में बात सब स्पष्ट करते हैं। तथापि व्यवहार के बोल आवे न! व्यवहार होता है सही। इसलिए उसमें कहते हैं देखो! यह व्यवहार से भी मुक्ति होती है। देखो! पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा है। दो मोक्ष के मार्ग (हैं और) दो से मुक्ति होती है। यह तो आरोपित कथन है। दूसरा क्या? ऐसा उसमें निमित्त होता है, विकल्प उस जाति का होता है, ऐसा बतलाया है। २२४। बहुत छोटे-छोटे कलश है न। अन्दर....

ये लोकाग्र-निवासिनो भवभवक्लेशार्णवान्तं गता,
ये निर्वाणवधूटिकास्तनभराश्लेषोत्थसौख्याकराः।

ये शुद्धात्म-विभावनोद्भव-महा-कैवल्य-सम्पद्गुणाः,
तान् सिद्धानभिनौम्यहं प्रतिदिनं पापाटवीपावकान्॥२२४॥

श्लोकार्थः—जो लोकाग्र में वास करते हैं,... सिद्ध भगवान लोक के अग्र में रहते हैं। क्षेत्र नहीं कहा (ऐसा नहीं है)। यह व्यवहार निश्चित किया न। **जो भवभव के क्लेशरूपी समुद्र के पार को प्राप्त हुए हैं,...** आहाहा! **भवभव के क्लेश...** सिद्ध के अतिरिक्त चार गति में भव-भव का क्लेश है। नारकी, मनुष्य, ढोर और देव भव-भव के क्लेश हैं। संयोग प्रतिकूल हो और दुःखी है, वह अलग बात है, परन्तु उसमें क्लेश—आकुलता का भाव है, वही भव-भव का क्लेश है। अनुकूलता हो और ऐसा माने कि हम सुखी हैं—ऐसा नहीं, उस समय भी दुःखी है। आत्मा के आनन्द से चार गति का विपरीत भाव, वह सब क्लेशकारक है, दुःखदाता है। उनके क्लेश से....

भवभव के क्लेशरूपी समुद्र... अपार क्लेश... ऐसी जरा-सी प्रतिकूलता हो तो चिल्लाहट मचाये। अनुकूलता आवे तब (दुःख) नहीं (मानता), परन्तु अनुकूलता के समय भी दुःख है। भव-भव का क्लेश ही है सर्वत्र। आहाहा! प्रतिकूलता आवे, ... हो जाये अन्दर में, हों! उसका सम्बन्ध नहीं। उसका मूल जो अन्दर राग है, उसका उसे दुःख है। यहाँ कहते हैं, भव-भव का क्लेश ही है सर्वत्र। ऐसा जो समुद्र, उसके पार को प्राप्त हैं (अर्थात्) क्लेश का अन्त लिया है जहाँ। अकेले आनन्द को साध्य किया है। आहाहा!

जो निर्वाणवधू के पुष्ट स्तन के आलिंगन से उत्पन्न सौख्य की खान हैं... जो मुक्तिरूपी स्त्री, उसका पुष्ट आनन्द, उसके आलिंगन (अर्थात्) उसका अनुभव करना—आनन्द का अनुभव, उससे उत्पन्न सौख्य की खान है वह तो। अकेले आनन्द की खान है। पुष्ट सुख हुआ है, पर्याय में, हों! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द सिद्ध भगवान की पर्याय में पुष्ट... पुष्ट—पूर्ण हुआ है। **जो शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न...** लो, **कैवल्यसम्पदा के (-मोक्षसम्पदा के) महा गुणोंवाले हैं,...** कैसे हैं भगवान? आहा! **जो शुद्धात्मा की भावना...** देखो! यहाँ अर्थ आया। भावना अर्थात् चिन्तवना, कल्पना—ऐसा नहीं। शुद्धात्मप्रभु पूर्ण शुद्ध निर्मल ऐसा जो आत्मा, उसकी एकाग्रता, भावना अर्थात् सन्मुख

की एकाग्रता। उससे उत्पन्न... देखो! केवलज्ञान उससे उत्पन्न हुआ है। शुभभाव की क्रिया और व्यवहार से नहीं। आहाहा!

शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न कैवल्यसम्पदा... अकेली मोक्ष की सम्पदा... परिपूर्ण पर्याय में केवलज्ञान आया, कैवल्य अर्थात् सम्पूर्ण। केवल अर्थात् अकेली सम्पदा आत्मा की, मोक्ष की सम्पदा, ऐसा। ऐसी पर्याय अर्थात् गुणवाला... यहाँ पर्याय को गुण कहा है। इतने शब्द में तो मोक्ष का कारण, मोक्ष दोनों रखे हैं। शुद्धात्मा की भावना कहो, शुद्ध उपयोग कहो, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहो—सभी एक बात है। यह बात सामान्य व्यक्ति को ऐसी लगे कि यह सब व्यवहार उड़ जाता है, एकान्त है, ऐसा कहते हैं। उपाय, वह तोड़ेगा तब उपाय समझेगा।

....आया था। मक्खनलाल का बहुत लेख है। नागपुर गया था, जबलपुर गया था। सिवनी, वहाँ मुमुक्षु है, सात-आठ सज्जन होंगे। सुनने आते थे। उनके साथ शिक्षा की कि स्थानक ... उनका छोड़ दो। गाँव में गये होंगे पर्यूषण में। ... के पास अकेला सिवनी.... नागपुरी, जबलपुर। सात-आठ सज्जन समयसार वाँचते हैं अकेला। व्याख्यान में कहा था, कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय को मानते हैं। इसका अर्थ कि सोनगढ़वाले कहते हैं, वह कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय से विरुद्ध है। वे कहते हैं कि व्यवहार से, निमित्त से लाभ हुआ है, यह कहाँ है? ...कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय में... श्रद्धा करो और यह श्रद्धा छोड़ दो, ऐसा। कहो, कोमलजी! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य यह क्या कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसका मुनि अर्थ करते हैं। आहाहा!

शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न कैवल्य... ऐसा तो यहाँ कहते हैं। अब क्या उससे दूसरा मानना? शुद्धोपयोग का फल केवलज्ञान कहते हैं। राग का फल वीतरागता अपूर्ण और अपूर्ण वीतरागता का फल पूर्ण वीतरागता है। खबर नहीं कुछ उसे। अपनी शक्ति से विरुद्ध जो भाव आते हैं, वे मुक्ति—आत्मा की शान्ति को कैसे बढ़ावे? वे स्वयं दुःखरूप है। आहाहा! उसे यहाँ व्यवहार से भक्ति कहा जाता है। भाई! व्यवहार के कथन ही ऐसे हैं। ऐसा कि भगवान भी ऐसा कहते हैं व्यवहार को कि व्यवहार से भी होता है, निश्चय से....

शुद्धात्मा की भावना से... बहुत संक्षिप्त बात। अपना आत्मस्वभाव शुद्ध है, आत्मा त्रिकाल पवित्र है, उसकी भावना—उसकी एकाग्रता। वह तो स्वसन्मुख हो तो एकाग्र हो और परसन्मुखता से विमुख होता है। देव-गुरु-शास्त्र की ओर का झुकाव, वह परसन्मुखता है। वह कहीं स्व-सन्मुखता नहीं। भारी सूक्ष्म! यह पाप के परिणाम बाहर के चारित्रमोह के, हों! दर्शनमोह के पाप के परिणाम तो उग्र, वही महापाप है। परन्तु अशुभ परिणाम का पाप छुड़ाने के लिये उससे—(शुभ से) लाभ होगा, ऐसा कहकर मिथ्यात्व की पुष्टि करे और ऐसा माने कि मिथ्यात्व का उससे नाश होगा। स्वभाव से स्वभाव को लाभ होगा या विभाव से स्वभाव को लाभ होगा? आहाहा!

जिसे **शुद्धात्मा की भावना...** पूर्ण पवित्र भगवान आत्मा, वह स्वयं परमेश्वर ही है, उसे आत्मा कहा जाता है। अपूर्ण अवस्था, राग, वह वास्तव में आत्मा नहीं। राग तो आत्मा नहीं, परन्तु अपूर्ण अवस्था, वह भी पूरा आत्मा नहीं। आहाहा! इससे कहते हैं, **शुद्धात्मा की भावना...** (अर्थात्) उसकी एकाग्रता। ध्रुवस्वरूप का ज्ञान, उससे उत्पन्न कैवल्यसम्पदा, वे सब **महागुणोंवाले हैं।** किस दशा से केवल (ज्ञान) पावे, वह भी साथ की साथ बात करते हैं। अकेले सिद्ध के गुणगान करे 'सिद्धासिद्धि मम दिसंतु...' परन्तु सिद्ध हुए कैसे? उसका उपाय क्या? उस उपाय को साथ में वर्णन करते जाते हैं। आहाहा!

एक व्यक्ति ने चेतावनी दी, चेतो... चेतो अब, नहीं तो यह दूसरा पंथ खड़ा हो जायेगा। आहाहा! भगवान! परन्तु यह ... है? बापू! यह पंथ किसका है? तेरा पंथ तेरे भाव से—स्वभाव से प्रगट होता है, यह बात है। उसमें कहाँ... ? रास्ता उसकी जाति का रास्ता हो न। उसकी जाति जहाँ जाना है, उसके सन्मुख होकर जाये न! वहाँ पीठ देकर जाता होगा? जिस ओर जाना हो, उसके सन्मुख होकर जाये, इसी प्रकार आत्मा की पूर्ण पवित्रता की ओर जाना है, उसे पवित्रता के सन्मुख में—पूर्ण पवित्रता की सन्मुखता की पर्याय से ही वहाँ जाया जाता है। उसके साथ विकल्प को कुछ सम्बन्ध नहीं है। वह वास्तव में तो परद्रव्य है। परद्रव्य और उसके आत्मा को स्वभावसम्बन्ध क्या है? आहाहा! बहुत गड़बड़ बहुत चली है।

उन पापाटवीपावक (-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान)... पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान। और वापस यहाँ पाप में पुण्य और पाप डालना? पापरूपी वन को जलाने में निमित्त अग्नि समान है।—ऐसे **सिद्धों को मैं प्रतिदिन नमन करता हूँ।** लो, ठीक। मुनि स्वयं कहते हैं, हों! मुझमें मेरे स्वभाव की सन्मुखता का जो भाव है, उसके साथ ऐसा विकल्प का भाव वर्तता है। विकल्प का आश्रय पर है, इससे प्रतिदिन ऐसे विकल्प से उन्हें बन्धन (होता है)। प्रतिदिन मैं... मैं अर्थात् आत्मा। नमता हूँ, उसकी ओर, वह तो विकल्प है। आहाहा! जैन की शब्दों की... मैं अर्थात् तो आत्मा, ध्रुव चिदानन्द, वह मैं। समझ में आया? वह तो पर्याय में आता नहीं। क्या करे परन्तु कथनी?

पापाटवीपावक सिद्धों को... (-पापरूपी वन को जलाने में अग्नि समान) सिद्धों को मैं... इसका अर्थ कि मुझमें—पर्याय में उस जाति का व्यवहार का विकल्प उठता है। मैं अर्थात् त्रिकाल में वह नहीं। समझ में आया? जिसके आश्रय से निर्मलता प्रगटे, वही मैं। जिसके आश्रय से प्रगटे परिणति, जिस आश्रय से प्रगटे, वह मैं। वास्तव में तो वह परिणति भी मैं पूरा नहीं। परन्तु कथन क्या करना? व्यवहारनय का विषय है सिद्ध भगवान। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध के सन्मुख के परिणमन में ऐसा एक विकल्प साथ में खड़ा होता है। है, होता है, करते हैं—ऐसा भी (उसे) व्यवहारनय से कहा जाता है। बाकी तो सहज उस प्रकार के परिणामों का रागभाव होता है।

उसे **प्रतिदिन नमन करता हूँ।** लो। उसमें था **नित्य वन्दन करता हूँ।** २२१ (कलश)। प्रतिदिन (अर्थात्) प्रत्येक काल में। मेरा पूर्ण स्वरूप, जिसकी ओर मेरा झुकाव है, तथापि पूर्णता नहीं, इसलिए मेरा झुकाव सिद्ध भगवान के प्रति भी जाता है। उन्हें मैं नमता हूँ। 'नमता हूँ' यह तो विकल्प है। ऐ पण्डितजी! प्रतिदिन विकल्प है। प्रतिदिन मेरा आश्रय तो त्रिकाली है। मेरा आश्रय त्रिकाली का है, परन्तु पर्याय में जो नम्रता आयी है, उसमें ऐसा भाव, पूर्णता नहीं तो बीच में आ जाता है। अर्थ खोटा करे, ऐसा कहते हैं। परन्तु इसमें क्या करे तब? आत्मद्रव्य है, वह पर्याय में आता है? द्रव्य, वह पर को नमता है? केवलज्ञानादि अनन्त पर्याय प्रगटी हो तो भी द्रव्य को कुछ लाभ है?

जिसे 'मैं' कहते हैं। वास्तव में 'मैं' आया था न? वास्तव में आत्मा यह है,

नहीं ? शुद्ध-उपयोग (भाव) अधिकार। वास्तव में आत्मा उसे कहते हैं कि जो संवर-निर्जरा-मोक्ष और आस्रव-बन्ध से भिन्न है, उसे आत्मा कहते हैं। (समयसार) छठवीं गाथा में उसे—ज्ञायक को आत्मा कहा। प्रमत्त-अप्रमत्त में कोई पर्याय बाकी नहीं रखी। सभी पर्याय से भिन्न है। भीखाभाई! सब पर्याय से भिन्न है। तथापि यहाँ कहते हैं कि **मैं प्रतिदिन...** उस प्रकार का बहुमान का विकल्प बाहर से है, होता है। निश्चय को तो प्रतिदिन (नमन) है, परन्तु व्यवहार को प्रतिदिन नमता हूँ, ऐसा कहा है। विवाद करे, ऐसा कहकर खोटा विवाद। **प्रतिदिन वन्दन करता हूँ।** २४ घण्टे ? २४ घण्टे तो अन्दर एकाकार चलता है। वही वास्तविक परिणति तो अन्दर की शुद्ध है, नित्य है, परन्तु यहाँ पर्याय में किसी समय विकल्प आवे, तथापि उसे नित्य का आरोप करके कहा है। ऐसी बात है। समझ में आया ?

शास्त्रार्थ करो, ऐसा करो। उसे कहाँ पार पड़े यह ? अनुभव की बातें... अन्दर में निजघर की बात। वह कहीं परघर को साथ लेकर निजघर चलाता होगा ? ऐसा गाय या बैल होते हैं न तूफानी ? लकड़ियाँ नहीं डालते ? उसे देड़ो कहते हैं हमारे (गुजराती में)। गाय या बैल होता है न, गाय-बैल नहीं होते ? लकड़ी डाले यहाँ बाँधकर। बहुत तूफान करते हों, एकदम चला जाये... ऐसे लकड़ी मारे न, दो पैर के बीच बड़ी लकड़ी। अपनी भाषा में देडो कहते हैं। इनकी दूसरी भाषा होगी। बहुत दौड़ न सके, लकड़ी दो पैर के बीच अटके और बहुत न दौड़ सके। धीरे-धीरे चले ऐसे। बीच में लकड़ी आवे ऐसे।

नित्य—प्रतिदिन आत्मा में नमित मैं, उसे विकल्प में भी मैं प्रतिदिन नमता हूँ। साथ का साथ लकड़ी इकट्ठी है। यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने भी 'वंदितु सव्वसिद्धे' लिया है न ? वह तो व्यवहार से कहा है। तथापि उस व्यवहार का अर्थ निश्चय में डाला स्वयं ने—टीकाकार ने। सर्व सिद्धों को मेरे ज्ञान में स्थापित करता हूँ। सर्व सिद्धों को मेरे हृदय में स्थापित कर, श्रोता के हृदय में भी स्थापित करता हूँ, ऐसा कहते हैं। तू भी सिद्ध समान है, ऐसा निर्णय कर। ऐसे लक्ष्य से सुन, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

केवली की वाणी से लाभ न हो तो फिर केवली की वाणी सुनना किसलिए ?

भाई! भाव ऐसा है। ऐसा विकल्प बहुमान का, असंगपना जिसे पूर्ण प्रगट हुआ है और आत्मा का असंगपना जिसे अनुभव में आया, उसे असंगपना पूर्ण प्रगट हुआ, उसका बहुमान आये बिना रहता नहीं। वस्तु की स्थिति है, परन्तु तो भी है तो पुण्यबन्ध का कारण। यहाँ तो, प्रतिदिन नमता हूँ, ऐसा है न? निश्चय में प्रतिदिन और व्यवहार में भी प्रतिदिन। क्या कहा यह? भगवान आत्मा, ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसमें मेरा नित्य... नित्य—कायम झुकाव है। उस झुकाव का विकल्प में आरोप करके नित्य—प्रतिदिन वन्दन करता हूँ, ऐसा कहा है। समझ में आया? २२४ (हुआ। अब) २२५।

त्रैलोक्याग्रनिकेतनान् गुणगुरून् ज्ञेयाब्धिपारङ्गतान्,
मुक्तिश्रीवनितामुखाम्बुजरवीन् स्वाधीनसौख्यार्णवान्।
सिद्धान् सिद्धगुणाष्टकान् भवहरान् नष्टाष्टकर्मोत्करान्,
नित्यान् तान् शरणं व्रजामि सततं पापाटवीपावकान्॥२२५॥

श्लोकार्थः—जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं,... सिद्ध भगवान तीन लोक के ऊपर सिरछत्र हैं। विकल्प है न? **जो तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, जो गुण में भारी हैं,...** यह भाव लिया। वह क्षेत्र लिया पहला। सिद्ध भगवान का क्षेत्र कहाँ? कि तीन लोक के अग्र में अन्तिम। यह बात केवलज्ञानी सिवाय—जैन के अतिरिक्त अन्यत्र यह बात नहीं है। क्षेत्र बतलाते हुए लोक का अग्र, ऐसा। मोक्ष हो जाये तो ऐसे फैल जायें, यहाँ व्यापक हो जाये—ऐसा नहीं है। **तीन लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, जो गुण में भारी हैं,...** जगत के प्राणी से—चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धारक से—भी पर्याय में बड़े हैं। यह भाव लिया। वह द्रव्य लिया बाह्यक्षेत्र। **जो गुण में भारी हैं,...** क्या कहा, समझ में आया? उसकी पर्याय परिपूर्ण है। पूरी दुनिया में नहीं, ऐसी उसकी पर्याय है। परिपूर्ण... परिपूर्ण... परिपूर्ण...

जो ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हुए हैं,... 'ज्ञेयाब्धिपारंगतान्' आहाहा! अनन्त-अनन्त लोक-अलोक आदि इकट्ठा होकर अनन्त प्रदेश, अनन्त काल ऐसे सर्व ज्ञेय को पारंगत हो गये हैं। **ज्ञेयरूपी महासागर...** ओहोहो! जाननेयोग्य ऐसे जो ज्ञेय, उनका तो महा समुद्र है, कहते हैं। लोकालोक जिसका क्षेत्र; तीन काल जितना काल; एक-एक द्रव्य के अनन्त भाव—गुण; एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त पर्याय होने की

शक्ति—ऐसे सबको पारंगत हो गये हैं। आहाहा! सब ज्ञात हो गया है, ऐसा कहते हैं। **ज्ञेयरूपी महासागर...** भाषा प्रयोग की है न! लोक कितना? अलोक कितना? अनन्त द्रव्य, अनन्त उनके भाव, अनन्त उसकी पर्यायें, एक-एक पर्याय में अनन्त-अनन्त अविभागशक्ति है दशा। प्रत्येक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। सूक्ष्म है। ऐसा जो ज्ञेयरूपी महासागर, उसके पार को प्राप्त हैं (अर्थात्) अनन्त को अनन्त रीति से जान लिया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कितने ही कहे, अनन्त को जान ले तो अन्त आ गया। सर्वज्ञ तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसा नहीं।

ज्ञेयरूपी महासागर के पार को प्राप्त हुए हैं, जो मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के... मुक्ति अर्थात् पूर्ण आनन्द, उसरूप जो दशा ऐसी जो स्त्री... उसे उपमा दी। **मुखकमल के सूर्य हैं,...** सूर्य उगे और जैसे कमल खिले, वैसे सिद्ध भगवान का ध्यान करनेवाले को मुखकमल के सूर्य समान हैं। यह आत्मा का कमल—ज्ञानरूपी कमल खिल जाये। भगवान का ध्यान करे... यह वास्तविक ध्यान तो अपना है। भगवान लक्ष्य में पहले आते होंगे, (इसलिए सूर्य) कहने में आता है। **मुक्तिलक्ष्मीरूपी स्त्री के मुखकमल के सूर्य हैं,...** मुखरूपी कमल... मुक्तिरूपी लक्ष्मी... यह पैसारूपी लक्ष्मी नहीं, ऐसा कहते हैं। दो प्रकार की नहीं, एक ही प्रकार की है यह। आहाहा! यह मुम्बई में तो ऐसा लगे यह .... कहीं क्षण (जितनी भी) शान्ति नहीं मिलती। ऐसे मोटरें चलें, बेचारे खड़े रहें, बीच में थोड़ा अन्तर हो तो एकदम चले। और खड़े रहें फिर एकदम चले। आहाहा! कुत्ते जैसा अवतार। ... बड़े मकान में खड़े हों और पंखा चले... धूल भी नहीं। आहाहा! लक्ष्मी, पर की लक्ष्मी में तो स्वयं लुट जाता है। आहाहा! बड़ा सेठिया... आहाहा... करोड़ों रुपये, मकान, सिर पर पंखा....

उसके मुखकमल के सूर्य हैं, ऐसा। आहाहा! (मुक्ति) लक्ष्मीरूपी (स्त्री के) मुखकमल, ऐसा। उसकी दशा को खिलाते हैं। **जो स्वाधीन सुख के सागर हैं,...** अन्तर आनन्द प्रभु पूर्णानन्द के सागर के स्वामी हैं। **स्वाधीन सुख के सागर हैं,...** (सिद्ध) आगे नहीं जा सकते, इतना दु:ख होगा या नहीं? धर्मास्तिकाय नहीं तो सिद्ध आगे नहीं जा सकते। जाते हैं? इतनी पराधीनता है या नहीं? कहीं जाना नहीं। जाये कहाँ? वहाँ ही रहना है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि महा सुख के, स्वाधीन सुख के सागर हैं।

तीन शब्द हैं। स्वाधीन—स, सुख—स, सागर—स। **स्वाधीन सुख के सागर हैं,...** आहाहा! यह पैसेवाले और स्त्री-पुत्र अनुकूल हों तो सुखी हैं। धूल में भी नहीं, दुःखी हैं बेचारे। समझ में आया?

जिन्होंने अष्टगुणों को सिद्ध (-प्राप्त) किया है,... व्यवहार से कहे न! निश्चय से सब गुण परिणतिरूप हो गये हैं। जिन्हें अष्ट गुण अर्थात् आठ पर्याय, उसने सिद्ध नाम प्राप्त किया है। आहाहा! पूर्ण पर्याय जिसे प्राप्त हुई, वह उसकी लक्ष्मी है। आहाहा! **जो भव का नाश करनेवाले हैं...** भव का नाश कर डाला है। 'करनेवाले हैं' का अर्थ कि भव का नाश ही हो जाता है। यह आगे आयेगा श्लोक में। आ गया न अपने कि भव का परिचय नहीं। आ गया पहले। वस्तुस्वभाव—त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को भव का परिचय नहीं। भव है या नहीं—इसकी परिचय की दशा की जिसे खबर नहीं। शक्तिरूप से खबर है कि मैं जाननेवाला-देखनेवाला मुक्तस्वरूप हूँ। समझ में आया? परन्तु उसे चार गति का भटकना उसका द्रव्य को परिचय ही नहीं। आहाहा! गजब बात है न! पर्याय में परिचय है, परन्तु पर्याय उसकी चीज़ नहीं। त्रिकाली ज्ञायक भगवान ध्रुव समुद्र... वह '**ण वि होदि अपम्मत्तो ण पम्मत्तो**' आता है न? ज्ञायकभाव... वहाँ प्रमत्त-अप्रमत्त सब निकाल दिया है। कौन सा भाव बाकी रखा? चौदहवाँ गुणस्थान निकाल दिया। सब पर्यायें निकाल दी। आहाहा!

ऐसा महासागर चैतन्यसमुद्र, उसके स्वाधीनसुख के वे भोगनेवाले हैं। सागर हैं। **जिन्होंने अष्टगुणों को सिद्ध किया है,...** आठ गुणपर्याय को प्राप्त (अर्थात्) आठ गुण है न, उन्हें प्राप्त किया है, ऐसा कहते हैं। **जो भव का नाश करनेवाले हैं...** आहाहा! जिन्होंने भव का नाश ही किया है। भव है नहीं। तो आत्मा में भी भव का नाश करने का स्वभाव है। नाश करना, वह भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? भव और भव के भाव—इस बिना का... भव बिना का यह भाव, इस भव में कर्म का तो नाश करनेवाले हैं। **तथा जिन्होंने आठ कर्मों के समूह को नष्ट किया है,...** आठ कर्म का समूह है, उसे तो जलाकर राख (किया)। राख अर्थात् परपरिणति हो गयी है, ऐसा। कर्म की पर्याय रही नहीं।

समूह को नष्ट किया है, उन पापाटवीपावक (-पापरूपी अटवी को जलाने में

अग्नि समान) नित्य (अविनाशी)... वह नित्य है। आहाहा! भगवान तो नित्य है, इस अपेक्षा से पर्याय हट जानेवाली नहीं है। नित्य कायम रहनेवाली है। पूर्ण निर्मल परिणति प्रगट हुई, वह नित्य—कायम सादि-अनन्त रहनेवाली है। जो भव का नाश करनेवाले हैं। करनेवाले हैं अर्थात् अब भव है और भव का नाश करनेवाले—ऐसा नहीं। **तथा जिन्होंने आठ कर्मों के समूह को नष्ट किया है,...** और कहते हैं कि राग का नाश हो नहीं सकता। अरेरे! (समयसार) ३४वीं गाथा आया या नहीं? राग के नाश का कर्ता आत्मा में नाममात्र से है। यहाँ कहते हैं, सिद्ध भगवान ने आठ कर्म का नाश कर दिया है। आहा! यह कहा है। निमित्त से बात है यहाँ। पर्याय के सम्बन्ध में राग और पर्याय के सम्बन्ध था, वह सम्बन्ध तोड़ा है। था उसकी बात की है। पर्याय को राग के साथ सम्बन्ध था, द्रव्य के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। वस्तु जो द्रव्य त्रिकाल, उसे तो राग का सम्बन्ध है नहीं।

अष्टगुणों को... नित्य **सिद्ध (-प्राप्त) किया है, जो भव का नाश करनेवाले हैं तथा जिन्होंने आठ कर्मों के समूह को नष्ट किया है,...** आठ कर्म के समूह को नष्ट किया है... नष्ट किया है। नाश करनेवाले हैं, इसका अर्थ कि उनमें है नहीं। वे **पापाटवीपावक (-पापरूपी अटवी को जलाने में...)** पाप-पुण्य का तो ... है सब। उसे जलाने में अग्नि समान हैं। **नित्य सिद्धभगवन्तों की...** वे सिद्ध भगवान नित्य हैं, ऐसा कहते हैं। है तो उनकी पर्याय, परन्तु वह कायम—नित्य रहती है। द्रव्य-गुण से तो नित्य है, पर्याय से भी नित्य हो गये। ऐसी की ऐसी कायम रहनेवाली है। पलटन भले हो, परन्तु वापस पड़नेवाली या अपूर्ण होनेवाली नहीं है।

ऐसे **नित्य (अविनाशी) सिद्धभगवन्तों की...** ऐसे सिद्ध भगवन्तों का **मैं निरंतर शरण लेता हूँ।** लो, भीखाभाई! यह व्यवहार आया। 'सिद्धा शरणं' आता है न मांगलिक में? शरण ग्रहण करता हूँ। 'मेरी शरण ग्रहण करता हूँ' यह उनका शब्द है। निश्चय से तो ऐसा है। केवली की स्तुति अर्थात् अपनी स्तुति, वह केवली की स्तुति, ऐसा लिया है न? यहाँ तो व्यवहार बताना है। सामने सिद्ध भगवान हैं न दूसरे। दूसरे द्रव्य हैं, उत्कृष्टगुणे परिणमन है, अपने को—साधक जीव को बहुमान का प्रसंग है। इसलिए कहते हैं कि पापरूपी अटवी... पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान हैं। **नित्य**

सिद्धभगवन्तों की मैं निरंतर शरण लेता हूँ। निरन्तर मेरे सर्व गुणों के शरण से सिद्ध भगवन्त का शरण है। ऐसा विकल्प आवे... ऐसा जब निरन्तर है अर्थात् ऐसा भी निरन्तर का आरोप आता है। **मैं निरंतर शरण लेता हूँ।**

'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं' आता है न? 'साहू शरणं, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं।' यह शरण यदि हो तो दूसरे शरण व्यवहार से कहलाते हैं। **मैं निरंतर शरण लेता हूँ।** सिद्ध भगवान का शरण ग्रहण करता हूँ। भगवान तो बहुत दूर रहे। अपना आत्मा है न, उसकी शरण ग्रहण करता हूँ, ऐसा विकल्प है तो 'उसे ग्रहण करता हूँ', ऐसा कहलाता है। **निरंतर शरण लेता हूँ।** आहाहा! व्यवहार और उसके कथनों में व्यवहार आये बिना रहता नहीं। व्यवहार आवे, उसे ऐसा माने कि यह भी धर्म का साधन है, (तो मिथ्यात्व है)। पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान सिद्ध भगवन्तों का मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ, ऐसा। २२६ (कलश)।

ये मर्त्य-दैव-निकुरम्ब-परोक्ष-भक्ति-
योग्याः सदा शिवमयाः प्रवराः प्रसिद्धाः।
सिद्धाः सुसिद्धि-रमणी-रमणीय-वक्त्र-
पङ्केरुहोरु-मकरन्द-मधु-व्रताः स्युः॥२२६॥

श्लोकार्थः—जो मनुष्यों के तथा देवों के समूह की परोक्ष भक्ति के योग्य हैं,... अरिहन्त थे तब (उनकी) प्रत्यक्ष भक्ति करते थे, ऐसा कहते हैं। सिद्ध हुए, इसलिए अब परोक्षभक्ति है। देवों के और मनुष्यों के समूह की परोक्षभक्ति के योग्य है। परोक्ष का अर्थ 'दूर' है न। वाणी नहीं। नजदीक का समूह... होवे तो वह व्यवहार से प्रत्यक्षभक्ति कहलाये। व्यवहार से प्रत्यक्षभक्ति... अपनी भक्ति है, वह निश्चयभक्ति है। हम तो यह मुनि कैसे हैं, यह स्पष्ट करते हैं। हमेशा, श्रावक के छह आवश्यक में आता है न? यह भी कहते हैं कि पुण्य का कारण है, संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा! सिद्ध भगवन्तों को मैं... ....हो गये कि मैं तो वास्तव में द्रव्यस्वभाव हूँ। संवर-निर्जरा-मोक्ष भी मैं नहीं। 'मैं नहीं' ऐसा जाननेवाला कौन है? पर्याय। मैं यह नहीं... मैं यह नहीं। 'मैं यह नहीं' यह जाने कौन? यह तो पर्याय हुई। पर्याय कहती है कि मैं यह नहीं, इसलिए यह मैं (ध्रुव)। यह मैं... स्वयं 'पर्याय' यह मैं नहीं। आहाहा! अन्तर अध्यात्म का मार्ग

समझने के लिये जरा सा... अकेले शब्दों को पकड़ने से पार नहीं आता। उसका आशय क्या है?

मनुष्यों के तथा देवों के समूह... अर्थात् करोड़ों मनुष्यों और करोड़ों देवों के समूह की परोक्षभक्ति के योग्य है। वहाँ रहे सिद्ध भगवान और स्वयं यहाँ। प्रत्यक्ष तो है नहीं। आहाहा! **जो सदा शिवमय हैं,...** सिद्धभगवान सदा कल्याणमूर्ति है। आहाहा! शिवस्वरूप अर्थात् कल्याण की मूर्ति, कल्याण का पिण्ड। उसे कल्याण बाकी नहीं। साधक को बाकी है, उसे (बाकी) है नहीं। जो सदा शिवमय... **जो श्रेष्ठ हैं...** लो। अन्तर में... सदा श्रेष्ठ ऐसी दशा हो गयी है। **तथा जो प्रसिद्ध हैं,...** लो। यहाँ तो ऐसा कहा, वे सिद्ध भगवान प्रसिद्ध हैं। अनन्त सिद्ध हो गये। यह शरीर छूटकर अनन्त सिद्ध हो गये। वे तो सिद्ध-प्रसिद्ध हैं। साधारण में डाले नहीं... संसारी... उसमें से मुक्ति पाये, वे तो सिद्ध हैं। समझ में आया? एक ओर संसार और एक ओर मुक्ति, दो प्रसिद्ध है। उसमें यह प्रसिद्ध अधिक है। उनका ज्ञान हुआ, तब संसार कैसा है, उसका ज्ञान होता है। आहाहा!

वे सिद्धभगवन्त सुसिद्धिरूपी रमणी के... सिद्ध भगवन्त सुसिद्धिरूपी आनन्द की परिणति, ऐसी रमणी अर्थात् स्त्री। उसके **रमणीय मुखकमल के महा मकरन्द के भ्रमर हैं...** मुखकमल के महा (मकरन्द अर्थात्) वह फूल का रस—फूल की पराग... आहाहा! **(अर्थात्) अनुपम मुक्तिसुख का निरन्तर अनुभव करते हैं।** अनुभवना रहा? सिद्ध को ऐसा बाकी रहा? भेद रहा ऐसा अनुभव का? ऐसा। द्रव्य और पर्याय का अनुभव तो सदा त्रिकाल होता है। 'परिणमना, वह कहीं कष्ट नहीं है।' नहीं आया प्रवचनसार में? प्रवचनसार। ज्ञान का परिणमना, वह कहीं कष्ट, वह कहीं दूसरी चीज़ नहीं...। अपनी शुद्धपरिणति से परिणमते हैं, वे तो आनन्ददायक हैं। आहाहा! ऐसे सिद्धभगवान मकरन्द के भ्रमर हैं। फूल की पराग अथवा फूल का रस भंवरा चूसता है न फूल में जाकर।

वे **अनुपम मुक्तिसुख का निरन्तर अनुभव करते हैं।** यह उनका माहात्म्य और महादशा है। तीन लोक को जानते हैं, इसलिए सुखी हैं—ऐसा नहीं है। वह तो अपना

स्वभाव, अपना अनुपम मुक्तिसुख, उसे निरन्तर वेदते हैं। अज्ञानी को संसार में निरन्तर विकार का वेदन है। चाहे तो मिथ्यादृष्टि साधु हो... उसकी भी बड़ी दरार पड़ी है। अभी कहते हैं कि द्रव्यलिंग पहला, भावलिंग बाद में। ऐसा नहीं होता। पहले द्रव्यलिंग आवे, फिर भावलिंग आवे। परन्तु यहाँ भावलिंग की व्याख्या पहले समकित हो, पश्चात् वेश हो साधु का बाहर का... बड़ी चर्चा चलती है। जैन गजट में आया है।

निरन्तर अनुपम मुक्तिसुख को... आहाहा! जिसकी उपमा क्या करे? साधारण भोजन की उपमा भी दूसरे के साथ तुलना नहीं की जा सकती। दूध की मिठास लो। किसके जैसी? शक्कर जैसी? गुड़ जैसी? केला जैसी? मिठास अलग प्रकार की है। दूध की दूध जैसी। ऐसे उपमारहित मुक्ति के आनन्द को अनुभव करते हैं, ऐसे सिद्ध को मैं नमन करता हूँ। व्यवहारभक्ति का वर्णन किया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक - १६-१०-१९७१
गाथा-१३६, प्रवचन-१५१

परम-भक्ति अधिकार। परमभक्ति कहो या निश्चयमोक्षमार्ग कहो—यह तो शब्द के अन्तर से बात है। परमभक्ति। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति है, वह भाव हो, परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। मोक्षमार्ग तो आत्मा की परमभक्ति। यह (गाथा) १३६।

मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ असहाय-गुणं णियप्पाणं॥१३६॥

रे! जोडु निज को मुक्ति पथ में भक्ति निर्वृति की करे।
अतएव वह असहाय-गुण-सम्पन्न निज आत्मा वरे॥१३६॥

इसकी **टीका:—यह, निज परमात्मा...** पर परमात्मा—अरिहन्त-सिद्धादि हैं, उनकी भक्ति व्यवहारभक्ति है। यह पहले १३५ (गाथा) में आ गयी है। व्यवहार अर्थात् पराश्रयभक्ति, उसमें शुभभाव होता है, परन्तु वह कहीं निश्चयमोक्षमार्ग नहीं है। आत्मा की मुक्ति अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति, उसका कारण वह नहीं है। इसलिए कहते हैं कि **यह, निज परमात्मा...** यह अर्थात् अपना प्रत्यक्ष निज आत्मा। स्वभाव पूर्णस्वरूप ऐसा जो अपना निजपद, उसे यहाँ 'यह' ऐसा कहकर यह प्रत्यक्ष प्रगट परमात्मा विराजता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'यह' प्रत्यक्ष... ज्ञान की पर्याय से प्रत्यक्ष है, ऐसा यह आत्मा है। ऐसा निज परमात्मा—अपना परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप ऐसा त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द, उसकी भक्ति, वह पर्याय है। यह निजात्मा, वह द्रव्य-वस्तु है। उसकी भक्ति (अर्थात्) उसके स्वरूप में अन्तर सन्मुख में एकाग्रता। उसके **स्वरूप का (यह) कथन है।**

अब कहते हैं, जो जीव **निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत पान करने में अभिमुख...** ऐसा उठाकर बात ली है। सूक्ष्म बात है, भाई! निरंजन जो वस्तु है भगवान

आत्मा, वह तो अंजन अर्थात् कर्म और राग के मैल से रहित है। **निरंजन निज परमात्मा...** अपना त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्दस्वरूप वह परम आत्मा, यह द्रव्य हुआ। उसका **आनन्दामृत पान करने में अभिमुख...** अनादि से पुण्य और पाप और विकल्प-रागादि उसे—जहर को पीता था... समझ में आया? अनादि का तो पुण्य और पाप, राग और द्वेष—ऐसा जो विकार, उस जहर का पेय पीता था। अनादि संसार में दिगम्बर द्रव्यलिंगी धारण करके नौवें ग्रैवेयक में गया। ऐसा कथन आया है। द्रव्यलिंग की बात है, वह तो अभव्य के लिये है, भव्य के लिये नहीं। क्या हो? ऐसी... अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक भव्य जीव, अभव्य तो गया परन्तु भव्य (भी गया)। निजात्मा के अमृत के अनुभव बिना महाव्रत, २८ मूलगुण आदि के परिणाम, वे सब परिणाम दु:खरूप परिणाम को सेवन करता था। समझ में आया?

वह जीव जब अपना निज निरंजन परमात्मा के सन्मुख होकर... मिथ्यादृष्टि अनादि का राग में सन्मुख था और स्वभाव से विमुख था। वह स्वभाव से सन्मुख हुआ जीव आनन्दामृत पीने में... आत्मा का जो अनन्त आनन्द और सुख स्वरूप, उसे पीना अर्थात् अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग। समझ में आया? **निरंजन निज परमात्मा का आनन्दामृत...** आनन्दरूपी अमृत को अनुभव करने में, पीने में अर्थात् अनुभव करने में, वेदन करने में **अभिमुख जीव भेद-कल्पनानिरपेक्ष...** दो लाईन में बहुत डाला है। जिसे भेद की कल्पना भी नहीं, ऐसा निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। है उसमें? गुण-गुणी का भेद—ऐसी जो कल्पना, उसकी भी जिसे निश्चय मोक्षमार्ग में अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा ही मोक्षमार्ग का स्वभाव है और ऐसा ही आत्मा का स्वभाव है।

भेद-कल्पनानिरपेक्ष... देखो! व्यवहाररत्नत्रय और भेदकल्पना—गुण-गुणी का भेद, आहाहा! उसकी भी अपेक्षारहित मार्ग... ऐसा भेद और व्यवहार हो तो वह निश्चय-वेदन पावे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है, ऐसा कहते हैं। भारी सूक्ष्म। भेदकल्पना रहित... पहले उसकी समझण में उसकी वस्तुस्थिति क्या है, ऐसा तो ले। समझण का जहाँ ठिकाना नहीं, वह अन्तर्मुख नहीं झुक सकेगा। उसका बीज अमृत—आनन्दरूपी अमृत, उसका अनुभव करना, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! इसका नाम आत्मा की सच्ची भक्ति है। लोगों को ऐसा लगे... बापू! मार्ग ही यह है, भाई! ...आनन्दामृत

से भरपूर, उसके सन्मुख होकर आनन्दामृत का अनुभव करना, निर्विकल्प आनन्द के सुख को अनुभव करना, वही मोक्ष का मार्ग है। कठिन काम, भाई! साधारण लोगों के लिये कुछ दूसरा रास्ता होगा? भेदकल्पना-निरपेक्ष... यह टीका साधारण को तो सुहावे, ऐसी नहीं, हों! यह मुम्बई में चली थी परसों तीन से चार। यह आयी थी...

मार्ग तो पहले समझण में और व्यवहारश्रद्धा में लेना पड़ेगा, इसके बिना यहाँ कोई रास्ता नहीं है। रास्ता ही यह है। पूर्व में जाना हो और पश्चिम में जाये और फिर पूर्व में जाये—ऐसा होगा? पश्चिम में जाने की जिसे अपेक्षा ही नहीं और सीधे पूर्व में जाना, ऐसा उसका मार्ग है। वजुभाई! ऐसा गजब मार्ग! लो। सम्प्रदाय में तो अकेले अपवास और तप। मुम्बई में कितने अपवास और तप, आहा! मानो अधिक अपवास और तप किये, वह चातुर्मास अधिक दीप्त कहलाये। चार महीने रहे, कितनी सेठियाओं की बहुएँ आठ-आठ अपवास, पन्द्रह-पन्द्रह अपवास... आहाहा! फिर उनकी शोभायात्रा निकले। आहाहा!

भगवान! तेरा मार्ग अलग है। यह सब लंघन के रास्ते हैं। जिद्द करना है जिद्द। यह मार्ग नहीं, भाई! उप अर्थात् आत्मा—निज परमात्मा के समीप में... समीप में जाये, उसे अमृत का अनुभव होता है, उसे उपवास कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा... देखो न! दुःखी प्राणी बेचारे प्रतिकूलता जरा सी आवे, तब रोवे, चिल्लाहट मचाये... आहा! अभी और अभी पोरबन्दर देखा और मुम्बई देखा। भाई रतिभाई वोरा बेचारे... धड़कमदार... भाई ने कहा था। हिम्मतभाई कहे, अरे रतिभाई! तुम महा होशियार धड़कमदार थे और यह भाषा बन्द हो गयी। केन्सर... होंश में, हों! होंश में रोने लगे। आहाहा! मुम्बई में अभी कहाँ से यह? मुम्बई में... अन्तर में शान्ति है, बाहर में कहीं नहीं। आहाहा! पैसा, पुत्र, मकान क्या है, इसके बिना?

मलूकचन्दभाई का छोटा दामाद, उसकी ३८ वर्ष की उम्र और यह। खार। यह पैसा क्या करना वहाँ? मलूकचन्दभाई का पुत्र मोटर लेकर आया था। लाख रुपये की मोटर थी। दूसरी थी, वह लम्बी नहीं। छोटी दूसरी। लाल नहीं। लाल तो उससे लम्बी बड़ी। बहुत बड़ी है। अपने को नाम भी आते नहीं। कोई पूछता था। चले वहाँ... एक लाख रुपये की मोटर एक छोटी। उसकी मशीन बहुत ऊँची... उसके लिये आये थे।

वह बुआ होती है न वह। उसमें कुछ नहीं होता। यह मोटर उसकी ही थी। उसकी थी। वह विलायत गया था न वहाँ से लाया। .... मार डाले। लाख की मोटर, उसमें बैठे। आहाहा! भाई! यह श्मशान के लड्डू हैं, बापू!

भगवान आत्मा अमृत का सागर जहाँ डोलता है अन्दर, छलाछल अमृत से भरपूर भगवान है। आहाहा! वह तेरी चीज़ है और वह तू है—उसकी खबर नहीं। ऐसा भगवान आत्मा अपने आनन्द के अमृत को पीने में, वेदने में, अनुभवने में अभिमुख अर्थात् स्वभाव-सन्मुख है, उसे आनन्द के अमृत का अनुभव होता है। ऐसा मार्ग भेद की अपेक्षा बिना का है। **निरुपचार-रत्नत्रय...** इतना सिद्ध किया है। भेदरत्नत्रय नहीं, भेदकल्पना भी नहीं, ... परन्तु निरुपचार रत्नत्रय। उपचार रत्नत्रय व्यवहार, वह नहीं। निरुपचार रत्नत्रयस्वरूप—यथार्थ रत्नत्रयस्वरूप... भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द के अन्तरसन्मुख होकर प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वह निरुपचार रत्नत्रयस्वरूप... आहाहा! **निरुपराग मोक्षमार्ग...** कितनी स्पष्टता की है! ओहोहो! गणधरों ने तो मार्ग को हथेली में रखकर बताया है ऐसे। बापू! तू देख न! उसमें यह है न!

निरुपचार रत्नत्रयात्मक ऐसा कहकर उपचार नहीं और राग भी नहीं, ऐसा। **निरुपराग मोक्षमार्ग में...** उपरागरहित, निर्विकार, निर्मल और शुद्ध। शुद्ध मोक्षमार्ग में... तब दूसरा एक अशुद्ध मोक्षमार्ग व्यवहार है, परन्तु उसकी अपेक्षा निश्चयमोक्षमार्ग में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसे मार्ग को इसने अनन्त काल में लक्ष्य में लिया नहीं और उस मार्ग का लक्ष्य, किसका लक्ष्य करने से वह मार्ग होगा, उसकी इसे खबर नहीं। ऐसे का ऐसा बाहर में प्रवृत्ति के कारण... मुम्बई की बाहर की प्रवृत्ति के कारण व्यवहार से भी शान्ति नहीं। धर्म नाम धराकर बाह्य की प्रवृत्ति अर्थात् विकल्प... शुभराग, उसकी प्रवृत्ति, वही सब सर्वस्व है मानो। भगवान तो उससे निवृत्तस्वरूप है। विकल्प की प्रवृत्ति से निवृत्तस्वरूप है। क्योंकि वह निरुपराग है। वह मोक्ष का मार्ग तो मलिन और अशुद्धतारहित है।

लो, यह धनतेरस है। आहाहा! धन ऐसा निजस्वरूप लक्ष्मी, उसके सन्मुख होकर उसके आनन्द का वेदन, वह धनलक्ष्मी—धनतेरस है। स्वरूप की लक्ष्मी का वेदना, वह

धनतेरस है। आहाहा! इस धूल और पैसे को क्या करे? पूजे (जिससे) पैसा बढ़े, पैसा आवे। आहाहा! अग्नि ज्वाला आवे, प्रसन्न हो। कोई इनकार करे कि भाई! यह नहीं, यह लक्ष्मी नहीं, पुण्य-पाप के परिणाम (लक्ष्मी) नहीं, वह तो अग्नि की ज्वाला है। उसे बुझाने का कहे तो, नहीं, मुझे इसे सुलगाना है। ऐसा **निरुपराग मोक्षमार्ग में अपने आत्मा को...** ऐसा कहते हैं। यहाँ, मार्ग में आत्मा को स्थापित करते हैं, ऐसा कहते हैं। वह तो इसका अर्थ वह का वह है। वस्तु की ओर की एकाग्रता हुई, तो आत्मा राग में था, वह निर्विकार में आया, (तो) 'स्थापित किया' ऐसा कहने में आता है। ऐसा निरपेक्षमार्ग कठिन लगता है।

कोई साधन? यह श्रीमद् में ऐसा बना है। व्याख्यान हुआ था, रात्रि में एक मारवाड़ी आया। मार्ग यह, परन्तु इसका साधन? ऐसा कि फोटो रखकर गुरु की भक्ति करना, मूर्ति की यह करना, वाँचन, श्रवण, मनन करना—ऐसा कुछ साधन तो होगा या नहीं? ऐई! ले! कुछ नहीं तो फिर सीधे प्रगटे किस प्रकार? आहाहा! उसका साधन स्वभाव तो अन्दर में पड़ा है। ऐसे साधन स्वभाव को पर्याय में साधनरूप से प्रगट करे, उसने आत्मा को साधन में स्थापित किया कहलाये। साधन (रूप से) राग में स्थापित किया था, वह (स्वभाव) साधन में स्थापित किया, वह यह है। आहाहा! अरे! इस जगत की आँधी सूझे नहीं। वहाँ हो न जयपुर। आँधी... आँधी... दिशा सूझे नहीं, मकान सूझे नहीं, रेत उड़े बारीक... बारीक... यह लोगों को बहुत डर। जाया नहीं जायेगा, ऐसा होगा, वैसा होगा। यह आँधी चढ़ने में उसे भान नहीं कि यह क्या आँधी चढ़ती है। पुण्य-पाप की घटा उठती है आँधी की। उसकी आड़ में भगवान पूरा पड़ा है, उसकी इसे खबर नहीं।

यहाँ तो, मोक्षमार्ग एक है, ऐसा कहा। दो है, ऐसा नहीं कहा। दूसरे की तो निश्चय को अपेक्षा नहीं, ऐसा कहा है। भीखाभाई! आहाहा! निरुपराग निर्विकारी शुद्ध मोक्षमार्ग... क्योंकि भगवान स्वयं शुद्ध आनन्द का अमृत का स्वरूप है। उसकी पर्याय में शुद्ध आनन्द के अमृत का वेदन (हो), उसे यहाँ सच्चा मोक्षमार्ग कहते हैं और वह एक ही मोक्षमार्ग है, ऐसा वापस दूसरा नहीं। आहाहा! ऐसे मार्ग में अपने आत्मा को... ठीक! ऐसे मार्ग में अपना... जो पहले कहा था निज परमात्मा, ऐसे **आत्मा को सम्यक्**

प्रकार से स्थापित करके... अर्थात् आत्मा को निर्मल पर्याय में रखकर। अगम्य बातें हैं, भाई! समझ में आया?

अपने आत्मा को सम्यक् प्रकार से स्थापित करके... ऐसा जो निरुपराग निर्विकार शुद्ध रत्नत्रय आनन्द के अभिलाषी जीवों को, आनन्द के अभिलाषी—पीनेवाले जीवों को आत्मा को वहाँ रखना, ऐसा कहते हैं। पहले तो आत्मा का स्वरूप कहा 'निरंजन निजपरमात्मा'। यह आत्मा कैसा है, यह कहा। फिर मोक्ष के मार्ग में, आनन्द-अमृत पीने में वह 'मोक्षमार्ग' कहा। उसके सन्मुख वापस, पीने में सन्मुख। ऐसा जीव व्यवहार की अपेक्षा बिना का—उपचार बिना का ऐसा रत्नत्रयस्वरूप और शुभ-अशुभ बिना का मोक्षमार्ग, उसमें अपने आत्मा को... आहाहा! दो लाईन में कितना कहा! वे ३२ या ४५ (सूत्र) वाँचे तो एक भी (बात) हाथ आवे, ऐसा नहीं है। ऐसा है ही नहीं उसमें। कथन नहीं, लाईन नहीं, लाईन का रास्ता नहीं। आहाहा! उसमें तो उसकी सच्ची समझ को लाना चाहिए, ऐसा लेना चाहिए। उसमें कुछ नहीं, इसका अर्थ उसे दु:ख हो, ऐसा नहीं लेना चाहिए। बापू! मार्ग तो यह है न, भाई! ऐसी शैली जहाँ शास्त्र में जिसे न हो, वह कहाँ से निकाले और कहाँ से समझे? समझ में आया?

यहाँ तो एक कड़ी, दो ही लाईन। उसमें तो आत्मा, उसका मोक्ष का मार्ग, निर्विकल्प मोक्षमार्ग अर्थात् निर्विकल्प आनन्द का वेदन, वह शुद्ध मोक्ष का मार्ग, निरुपचार—उपचार और व्यवहार की अपेक्षा बिना का मोक्ष का मार्ग। आहाहा! कहो, चेतनजी! नहीं। उसे दु:ख लगे कि ऐसा हो? हमारे शास्त्र भगवान के कहे हुए... बापू! भाई! भगवान! ठगा जाता है, भाई! आहाहा! अरे! आवे अनन्त काल में भव में से निकलने का भव (मिला)। वह बाहर आया निगोद और एकेन्द्रिय में से, वह तो भव का अभाव करने के लिये है। आहाहा! दुनिया माने—न माने, पूजे—न पूजे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। परद्रव्य के साथ स्वद्रव्य को क्या सम्बन्ध है? तीन लोक के नाथ के साथ भी आत्मा को क्या सम्बन्ध है? आहाहा! समझ में आाय? क्योंकि प्रत्येक सत्ता अपनी द्रव्य-गुण-पर्याय में वर्त रही है। उसका परसत्ता में जाना कभी होता नहीं, इसलिए पर का सम्बन्ध व्यर्थ (-खोटा) है। आहाहा! पर का सम्बन्ध—तीन लोक के नाथ का करने जाये तो, कहते हैं कि राग आता है। आहाहा!

यह शरीर सोने की अँगूठी जैसा लगता हो और उसमें यह केंसर (हो)। आहाहा! उसमें यह गले में हुआ तो पानी उतरने पर आहा... चिल्लाहट मचाये। यह जरा गर्म करके देते। ... सौंफवाला नहीं, एकदम ठण्डा नहीं। शरीर छूते ही दर्दीला हो गया हो न! आहाहा! वह उसकी पीड़ा नहीं, उसे राग में एकताबुद्धि की पीड़ा है। राग की एकता में पीड़ा है, तो राग की पृथकता में आनन्द है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग तो यह है। दूसरा मार्ग भले लोग कहे अथवा शास्त्र भी कहे कि व्यवहार साधन है, व्यवहार हेतु है। आता है न? कारण है, 'नियत हेतु।' बहुत डाला है। यह कारण पहले आवे, फिर कार्य हो, ऐसा कहते हैं। साधक हो, वह साधकपना पहले आवे, साध्य बाद में आवे। यह तो सब व्यवहार की बातें हैं, भाई!

यहाँ तो (कहते हैं कि), भगवान आत्मा को अपने सन्मुख होने में पर की कुछ अपेक्षा नहीं है। भाई! इतना जानना हुआ हो तो उसकी अपेक्षा से अन्तर्मुख हुआ जाये, ऐसी भी जिसे अपेक्षा नहीं। आहाहा! गजब बात है न! सुना भगवान या सन्तों के निकट कि मोक्ष का मार्ग यह है, ऐसा जो ज्ञान में—ख्याल में आया, उसकी भी जिसे अपेक्षा स्व के सन्मुख में नहीं। क्योंकि पर-सन्मुख के भाव में स्वसन्मुख की अपेक्ष है नहीं। आहाहा! समझ में आया? स्वसन्मुख के भाव में परसन्मुख के भाव की—दिशाफेर की अपेक्षा क्या होगी? पूर्व में जाना हो, वह थोड़ा पश्चिम में चले तो पूर्व में जाये, ऐसा होगा? आहाहा! ऐसा आत्मा है कि जिसे मोक्षमार्ग में व्यवहार की अपेक्षा नहीं। ऐसा तो उसका पर्यायधर्म है। क्या कहा? उसका निश्चयमोक्षमार्ग पर्याय का ऐसा स्वभाव है कि जिसे व्यवहार रागादि की अपेक्षा नहीं। ऐसा तो उसका पर्यायस्वभाव है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

त्रिकाली की तो क्या बात करना! सहजानन्दमूर्ति प्रभु अनादि-अनन्त सहज स्वाभाविक वस्तु तो ऐसी की ऐसी पड़ी है, परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग है, उसे भी पर के, व्यवहार के, परसन्मुख के ज्ञान के... परसन्मुख का ज्ञान (अर्थात्) यह भगवान ने कहा इस प्रकार ऐसा सुना, जाना, वह जाना स्वयं से, वाणी से नहीं, ऐसा स्वयं से जाना, उसकी भी अपेक्षा इसे नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है न! समझ में आया? आहा! **अपने आत्मा को सम्यक् प्रकार से...** सच्चा (अर्थात्) वापस सम्यक्

प्रकार से अच्छा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बात बहुत ही परम सत्य। जाना है, ज्ञान में आया, वीतराग ने कहा, (ऐसा) आया अपने ज्ञान में अपने से कि यह मार्ग है। ऐसा जो ज्ञान, उसकी भी जिसे स्वसन्मुख में अपेक्षा नहीं। आहाहा! गजब मार्ग है न! गजब! समझ में आया? ऐसा पर की अपेक्षा बिना का निरुपराग मोक्षमार्ग, उसके अन्दर आत्मा को स्थापित करता है अर्थात् आत्मसन्मुख होता है, वह आत्मा को इसमें स्थापित करता है, ऐसा कहने में आता है।

निर्वृत्ति के—मुक्तिरूपी स्त्री के—चरणकमल की परम भक्ति करता है,.. लो। आहाहा! ऐसा जिसे अन्तर में... ऐसा सुनकर कितनों को ऐसा (हो जाये कि) तो फिर मन्दिर के, मूर्ति के और यह सब ताला लग जायेगा। समझ में आया? उसकी पर्याय तो उसके कारण से वहाँ होती है। मन्दिर की पर्याय किसी से होती है? और जीव को ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। जब तक वीतरागता न हो, ऐसा शुभभाव आवे, उसमें वह निमित्त कहा जाता है। निमित्त का अर्थ, कुछ उससे शुभ हुआ नहीं। परन्तु ऐसे शुभ की भी जिसे (अपेक्षा नहीं)। इसकी अपेक्षा ऐसे जाने के लिये होगी? ऐसा कहते हैं। क्या कहा? बहिर्मुख लक्ष्य की अपेक्षा अन्तर्मुख लक्ष्य जाने के लिये होगी? वह तो सीधी बात है। समझ में आया? ऐसे गयी हुई वृत्ति को ऐसे जाने में उसकी अपेक्षा कैसे हो?

पण्डितजी! यह पण्डितों में बड़ी गड़बड़ उठी है। ऐ... मक्खनलालजी तो सोनगढ़ का तोड़ डालने के लिये लिखते हैं। जहाँ हो वहाँ... सोनगढ़ के... थे। मैंने तो सबको बात की, बापू! बदल डालो, कुन्दकुन्दाचार्य की श्रद्धा करो। यह किसकी बात चलती है? आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य की कथन से विरुद्ध श्रद्धा है, इनकी—सोनगढ़वालों की। उन्हें जो बैठा हो, उस प्रकार का कहे न! क्योंकि वही देखा है, बाहर का ही वजन दिया है अनादि से। बहिरात्मारूप से वजन बाहर का ही दिया है। आहाहा! पूरी दिशाफेर मार्ग है। जिसे परलक्ष्यी ज्ञान की आवश्यकता नहीं, परलक्ष्यी व्यवहाररत्नत्रय की आवश्यकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, हमारे गुरु ने हमको शुद्धात्मा का उपदेश दिया। लो, बात तो बतलायी। और यहाँ कहते हैं कि मैंने जो जाना परलक्ष्यी पर्याय से, उसकी स्वभाव सन्मुख जाने में कोई अपेक्षा है नहीं। वह होता है। आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा अपनी निर्मल स्वसन्मुख की निर्विकल्प आनन्द की वेदनदशा में आत्मा को रोकता है और राग में रोकता नहीं। परलक्ष्यी ज्ञान में भी रोकता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वलक्षी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति में उसे रोकता है। अभी श्रद्धा में तो निर्णय करे कि मार्ग यह है। इसके बिना अन्तर्मुख किस प्रकार हो सकेगा? समझ में आया? तथापि यह (बाह्य) श्रद्धा में लक्ष्य करे, उसकी अपेक्षा भी अन्तर (में) जाने के लिये नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग भारी कठिन! समझ में आया? ऐसा **निवृत्ति के...** निवृत्ति अर्थात् मुक्तिरूपी स्त्री, ऐसा। मुक्तिरूपी स्त्री अर्थात् परमानन्दरूपी पूर्ण दशा। उसकी चरणकमल की परमभक्ति... मोक्षमार्ग की भक्ति अर्थात् उसके चरणकमल की भक्ति।

मुक्तिरूपी स्त्री के—चरणकमल की परम भक्ति करता है,... मोक्ष की पूर्ण पर्याय का कारण जो मोक्षमार्ग, उसकी जो भक्ति—परम भक्ति करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनि ने तो टीका की है! केवलज्ञान के पेट (अभिप्राय) खोलकर रखे हैं। लोग शान्ति से, धीरज से मध्यस्थता से सुनें तो उन्हें बात पकड़ में आये। मार्ग तो यह है। समझ में आया? चारों ओर दुःख का दावानल सुलगता है, बापू! विषयभोग, मान, इज्जत-कीर्ति का लक्ष्य (है तो) दावानल सुलगता है। उसके बदले शुभभाव (होवे तो) वह भी कषाय-अग्नि है। अकषाय—शान्तरस से वह विरुद्ध है। 'प्रशान्ति अनन्त सुधामय जो...' श्रीमद् में आता है न अन्तिम? 'प्रशान्ति अनन्त सुधामय जो...' अनन्त अमृतमय प्रशान्ति। 'प्रणमुं पद ते वरते जयते।' आहाहा! अन्तिम कड़ी है। अन्तिम एक कड़ी लिख गयी है। बस, फिर देह छूट गया।

सुखधाम अनन्त सुसन्त चही, दिन-रात रहे तद्ध्यान महीं;
प्रशान्ति अनन्त सुधामय जो, प्रणमुं पद ते वरते जयते।

वर... वर प्रदान। ऐसे पद को जय हो। सिद्ध के... प्रशान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्ति। प्रशान्ति अनन्त... अनन्त शान्ति... सुधामय—अमृतमय। अमृत आया न? आनन्दामृत। प्रशान्ति सुधामय... 'अनन्त सुधामय जो, प्रणमुं पद ते...' उस पद को प्रणाम करता हूँ, ऐसा कहते हैं। 'वरते जयते।' उसका फल हमको मिलो और उसकी जय होओ। जय होओ मोक्ष की पर्याय की, यह कहते हैं। संसार की पर्याय का नाश होओ, पराजय होओ। जय के सामने पराजय शब्द। पराजय यहाँ नहीं लिया। जय

होओ। 'पराजय' नास्ति से बात है। मोक्ष के मार्ग के फलरूप से मुक्ति है, उसकी जय होओ। समझ में आया?

अरे! मुक्तिरूपी निवृत्ति परम परिणति... मुक्ति की पर्याय के चरणकमल की परमभक्ति करता है। लो, मोक्षमार्ग की भक्ति... मोक्षमार्ग की भक्ति यहाँ कहना है। वह मुक्ति के चरणकमल की परम भक्ति। उसके पैर पकड़े। आहाहा! **उस कारण से वह भव्य जीव...** इस कारण से—इस कारण से, ऐसा कहते हैं। **परम भक्ति करता है, उस कारण से वह भव्य जीव...** आहाहा! **भक्तिगुण द्वारा...** ऐसे भक्तिगुण द्वारा, लो। अधिक स्पष्ट किया। वह जीव निश्चय परमभक्ति गुण द्वारा अर्थात् पर्याय। मोक्ष के मार्ग द्वारा **निज आत्मा को...** अर्थात् पूर्ण पद आत्मा का लब्धि का पूर्ण पद मुक्ति। ऐसी भक्ति द्वारा मुक्ति को पाता है। यह फिर व्याख्या करते हैं।

निज आत्मा को—कि जो निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से... आत्मा को पाता है, ऐसा कहना है न। यह आत्मा को प्राप्त करता है, ऐसा कहना है। ऐसी निश्चयभक्ति द्वारा आत्मा को प्राप्त करता है अर्थात् पूर्ण दशा को प्राप्त करता है, वह आत्मा को प्राप्त किया कहलाता है। समझ में आया? अब वह आत्मा को प्राप्त करता है, परन्तु वह आत्मा है कैसा? ऐसा कहते हैं। **कि जो निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से...** उसके सब गुण निरावरण... वह आत्मा को कहा था 'निरंजन निज परमात्मा' पहली लाईन में, अब ऐसे गुणों को सिद्ध किया है। आहाहा! गजब चीज़ है, हों! **कि जो आत्मा निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला होने से...** आवरणरहित, सहज ज्ञानगुणवाला होने से **असहायगुणात्मक है...** उसके गुण को किसी की सहायता नहीं। आहाहा! द्रव्य को नहीं, पर्याय को पर की अपेक्षा नहीं, इस गुण को किसी की अपेक्षा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

टीका भी यह टीका है न! अकेले अमृत का टंकोत्कीर्ण है ऐसे। भाई! मार्ग तो ऐसा है। अन्तर्मुख हुए बिना तेरा मार्ग कहीं निकले, ऐसा नहीं। ऐसी परम निजभक्ति, आनन्दामृत पीना, निरपेक्ष निरुपचार रत्नत्रय विकाररहित मोक्षमार्ग, उसे परमभक्ति कहते हैं। आहाहा! यह बहुत भक्ति में परमार्थ माना हो न, इसलिए स्पष्ट कर दिया यहाँ। लोग,

जैनदर्शन के तत्त्व की स्थिति कैसी है, (उसे जानते नहीं)। आगे कहेंगे। जैन के कहे हुए तत्त्वों को जानना, अन्य के तीर्थ के कहे हुए तत्त्वों को छोड़ दे।

यहाँ दूसरे में ऐसा मीठा लगे, लो। वह एक जयन्ती है न, शान्ति का भाई। रजनीश का बहुत मीठा लगे, ऐसा कहता था। गुणवन्तभाई कहता था। आया था यहाँ। वह सब उछल गये। रजनीश का... रजनीश कहाँ और जैन का मार्ग कहाँ? लोगों को जब फिर जाता है न, फिर कुछ ठिकाना नहीं रहता। जयन्तीभाई! जयन्तीभाई आये थे एक बार झपट में। यह मार्ग कहीं... अब रजनीश-फजनीश तो कहाँ, परन्तु जैन के सम्प्रदाय दूसरे हैं, उनमें भी यह कहाँ है? और यह दिगम्बर सम्प्रदाय, उसमें भी यह कहाँ है? समझ में आया? आहाहा! यह सम्प्रदाय ही कहाँ है? यह तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? वे और विद्यानन्दजी (कहे), जान... जिन... जैन... ये तीनों आयेंगे अभी अपने। इसमें आते हैं। है न उसमें, नहीं? 'तीर्थनाथ ने कहा हुआ' आता है न। १३९ में आयेगा, देखो! 'जन, जैन और जिन' तीनों आयेंगे। यह शब्द कहते हैं न तीन। १३९ गाथा।

जैनों ने कहे हुए... ऐसा है, देखा! **सकल जिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के उपजीव को...** है? जैनों ने कहे हुए... जैनों अर्थात् भगवान तीर्थंकर के गणधरों ने... जैनों अर्थात् गणधर। जिन अर्थात् तीर्थंकर। है न? उसमें तीनों हैं। उसका कलश है न, उसमें तीनों डाले हैं। **जैन मुनिनाथों के मुखारविन्द...** जैन अर्थात् गणधर। **भव्य जनों के भव का नाश करनेवाले...** है? यह जन। और **जिनयोगीनाथ (जैन मुनिवर) निज भाव को साक्षात् जोड़ते हैं...** लो। वे तीन कहे, वे तीनों इसमें आये हैं। कलश में है। तीन शब्द वे कलश में हैं। जैन मुनिनाथ अर्थात् गुणधर और **भव्यजनों के भव का नाश करनेवाले तत्त्वों में जो जिनयोगीनाथ...** अर्थात् जो दूसरे (गणधर के अतिरिक्त) मुनि, ऐसा। जो अर्थात् मुनि **निजभाव को साक्षात् जोड़ते हैं, उनका वह निजभाव, योग है।** इसमें कितनी बात है! सब बात.... पूर्णता भरी है।

जन, जिन और जैन। यहाँ तो भव्यजन (अर्थात्) जो भवों का नाश करने में तत्पर, उसे भव्यजन कहा और जैन गणधरों ने कहे हुए तत्त्व हैं। और गणधरों ने कहे हुए... सकल जिने कहे हुए, वे कहे हैं, ऐसा। यह जिन कहे। तीर्थंकर को जिन, गणधर

को जैन और भव्य को जन। समझ में आया? ऐ चेतनजी! कोई कहे ऐसा वापस अपने इसमें मिलाना चाहिए न। यह ही है सच्चा। दूसरा है कहाँ सच्चा? आहाहा! सबने गप्प मारी है। बेचारे ठगा जाते हैं। अरे! पूरी उल्टी लाईन है, उसके फलरूप से संसार है अर्थात् नरक और निगोद में प्राणी दुःखी होता है। उसके भाव सेवन करे, उसके ऊपर तिरस्कार भी कैसे हो? समझ में आया? विपरीत मान्यता का सेवन करनेवाला महाविपरीत फल चार गति के घाणी के दुःख में पिलता है, उसका तिरस्कार भी कैसे हो? अरेरे! यह क्या करते हैं? समझ में आया?

भगवान! मार्ग तो यह है, भाई! 'जिन' सकल जिन (अर्थात्) पूर्ण जिन, ऐसा। गणधर 'जैन'। गणधर, वे जैन, उन्हें समझनेवाले भव्य 'जन'। आहाहा! ऐसा भगवानस्वरूप... लो, यह धनतेरस की... आज धनतेरस की है, कल चौदस, परसों दिवाली करेंगे। ...वार रखा बीच में। लोक में डण्डा कहा जाता है इसे। अपने मंगलवार को लेना है। दो चतुर्दशी हैं न। आहाहा! भगवान निरंजन—उसे अंजनरहित द्रव्य कहा। यहाँ उसके गुणात्मक... जीव—आत्मा कैसे गुण से गुणात्मक है? कि असहायगुणात्मक। निरावरण सहज असहायात्मक ज्ञान, ऐसे सब गुण लेना। आहाहा! ज्ञानगुण असहाय-गुणात्मक है, देखा! निरावरण सहज ज्ञानगुणवाला कहकर असहायगुणात्मक है, (ऐसा कहा)। यह गुण, उसे किसी की सहायता नहीं। वह स्वतन्त्र अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु ऐसे आत्मा को ऐसी अन्तर में स्वसन्मुख भक्ति करनेवाले प्राप्त करते हैं। ऐसे आत्मा को **प्राप्त करते हैं।** आत्मा ऐसा है, ऐसा कहते हैं। रागवाला और व्यवहारवाला और संसारवाला, वह आत्मा नहीं। आहाहा! है पण्डितजी! इसमें इतना भरा है, देखो! आहाहा!

पद्मप्रभमलधारि मुनि का टीका करते हुए आनन्द में हृदय उल्लसित हो गया है। उसमें यह बात आ गयी है। मार्ग यह है। तेरे दुःख के आँसू पोंछना हो... जग के वेदने के आँसू.... कौन दे? बापू! तेरे दुःख के आँसू, पीड़ा को नाश करना हो तो, यह एक भगवान निरंजन निराकार प्रभु परमात्मा असहायगुणस्वरूप, उसकी भक्ति करने से असहायगुणात्मक पूर्ण दशा को प्राप्त करता है अर्थात् वह आत्मा को प्राप्त करता है, ऐसा। कहो, मुक्ति होना अर्थात् आत्मा को प्राप्त करता है, ऐसा कहा। संसार को प्राप्त करे वह अनात्मा को प्राप्त करता है। समझ में आया? स्वर्ग जाये या निगोद जाये, वह तो

अणात्मक हुआ। रागादि की गति हुई। राग और गति को पावे, वह तो अनात्मा है। संसार स्वयं राग है और मिथ्यात्व है, वह अनात्मा है। उसके फलरूप से यह गति मिले, वह अनात्मा है। वह आत्मा को पाता है, ऐसा। अर्थात् जो गति को पाता नहीं।

पूर्णानन्द का अमृतसागर से भरपूर... यह हंस मोती को चरते हैं, वे दाना को नहीं चरते। आहाहा! ऐसे परम हंस, राग से भिन्न पड़ा हुआ आत्मा, ऐसा विवेकी हंस, वह अमृत का पेय पीता है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! राग के, पुण्य के पेय उसे नहीं होते। आहाहा! ऐसी बात कहते हैं, परन्तु भूला पड़ा वह बड़ा जहर का पेय पीता है। समझ में आया? वह मानता हे कि हम सुखी हैं, बादशाही है, लाख-लाख की मोटरें चालीस-चालीस घर में, उसको और करोड़ों-करोड़ों की। लाख-लाख की... साढ़े तीन लाख की। समुद्र में जानेवाला जहाज शान्तिलाल खुशाल को। .... माल भेजने का छोटा स्टीमर होगा। .... साढ़े तीन सौ ऐसे कुछ हैं, कहते हैं। एक-एक लाख-लाख का। लोहे की मोटर हो न। छोटी, छोटी....

अरे! दुनिया पूरी पड़ी है। यह दुनिया कहाँ तेरी है और तू कहाँ दुनिया का है? आहाहा! तू तो अनन्त गुणात्मकस्वरूप है। ऐसा भगवान आत्मा अपने सन्मुख के अमृत के पेय की भक्ति करने से... अनन्त गुणात्मकस्वरूप वह निरावरण ज्ञान लिया वहाँ। ज्ञान की प्रधानता से बात की है। निरावरण सहजज्ञानवाला आत्मा अर्थात् कि निरावरण सब गुणोंवाला आत्मा, उसकी पर्याय की पूर्णता को प्राप्त करता है। मार्ग भी कहा और मार्ग का फल भी कहा। मोक्षमार्ग है न यह। नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग के यह (प्रकार) सब वर्णन किये। निश्चयभक्ति वह मोक्षमार्ग, निश्चय प्रतिक्रमण वह मोक्षमार्ग, निश्चय प्रत्याख्यान, वह मोक्षमार्ग—वह सब मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

नीचे कहा है। **असहायगुणवाला=जिसे किसी की सहायता नहीं है, ऐसे गुणवाला।** हों! **(आत्मा स्वत:सिद्ध सहज स्वतन्त्र गुणवाला...)** यह गुण का विशेषण है, हों! आत्मा स्वत:सिद्ध... क्या स्वत:सिद्ध? आत्मा स्वत:सिद्ध, ऐसा नहीं, (परन्तु) गुण। **(आत्मा स्वत:सिद्ध सहज स्वतन्त्र गुणवाला होने से असहायगुणवाला है।)** उसकी पर्याय असहायपर्यायवाला है। आहाहा! कहो, समझ में आया? उसे धर्मास्तिकाय की सहायता की आवश्यकता नहीं, अधर्मास्तिकाय की सहायता की आवश्यकता नहीं,

ऐसा कहते हैं। जहाँ टिकने में भी अधर्मास्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं। सिद्ध जहाँ रहे हैं, वे असहाय पर्यायवाले हैं। उन्हें पर की पर्याय की सहायता नहीं। आहाहा!

जैसे (निश्चय) मोक्षमार्ग को व्यवहार की अपेक्षा नहीं, ऐसे पूर्ण पर्याय को किसी की अपेक्षा नहीं, किसी की सहायता ही नहीं। आहाहा! बहुत बात की हो, परन्तु। १३६। कितना समाहित किया इसमें! द्रव्य, गुण, पर्याय, मार्ग, मार्ग का पूरा फल। आहाहा! (कोई कहे), इतना अधिक स्वतन्त्र नहीं, इतना अधिक स्वतन्त्र नहीं, कर्म के आधीन है। परन्तु कर्म के आधीन तू होता है, वह भी स्वतन्त्र है। कर्म कहाँ तुझे आधीन करते हैं? स्वतन्त्ररूप से भूल करके आधीन होता है, वैसे स्वतन्त्ररूप से पर की अपेक्षा बिना अपने आधीन होता है (अर्थात्) अपने में सन्मुख होता है। बस, सन्मुख (होना), यह उपाय—मोक्ष का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १४, रविवार, दिनांक - १७-१०-१९७१
श्लोक-२२७, गाथा-१३७, प्रवचन-१५२

यह नियमसार, २२७ कलश है। नियमसार अर्थात् सच्चा मोक्ष का मार्ग। खोटा एक है न साथ में व्यवहाररत्नत्रय। वह खोटा है, यह सच्चा है। अभूतार्थ कहो या खोटा कहो या व्यवहार (कहो)। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान—उसे मोक्षमार्ग कहना, वह झूठी दृष्टि से है। अभूतार्थदृष्टि से कहो या झूठी दृष्टि से—दोनों एक ही बात है। सच्चा मोक्षमार्ग तो आत्मा की वीतरागी पर्याय है। यहाँ तो मोक्ष का कारण द्रव्यस्वभाव कहेंगे। समझ में आया? सूक्ष्म मार्ग है न, भाई! वस्तु क्या है, उसके सन्मुख देखने का इसने अनन्त काल में प्रयत्न किया नहीं। यह करूँ... यह करूँ, दया पालन करूँ, व्रत पालन करूँ, अपवास करूँ, तप करूँ, पूजा करूँ, भक्ति करूँ, करूँ... करूँ—यह सब विकल्प और राग है; यह धर्म नहीं, तथा यह धर्म का कारण भी नहीं। मोक्षमार्ग का कारण तो यह आत्मा कहेंगे। समझ में आया? महाप्रभु... आत्मा, श्लोक।

आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलितमहाशुद्धरत्नत्रयेऽस्मिन्,
नित्ये निर्मुक्ति-हेतौ निरुपम-सहज-ज्ञान-दृक्शीलरूपे।
सन्स्थाप्यानन्दभास्वन्निरतिशयगृहं चिच्चमत्कारभक्त्या,
प्राप्नोत्युच्चैरयं यं विगलितविपदं सिद्धिसीमन्तिनीशः ॥२२७॥

श्लोकार्थः—यह अविचलित... भगवान आत्मा में सहज स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन-चारित्र स्वभाव नित्य जो है, वह अविचलित है। यहाँ तीन है न मोक्ष का मार्ग, तो उसका कारण भी अन्दर शुद्ध रत्नत्रय है, ऐसा सिद्ध करना है। धीरे से समझ में आये, ऐसी बात है, भाई! उसकी शैली ऐसी है न! प्रायश्चित, तो कहे आत्मा प्रायश्चित्त; प्रतिक्रमण, तो कहे आत्मा प्रतिक्रमण। इसी प्रकार जहाँ मोक्ष का मार्ग शुद्धरत्नत्रय अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो पर्याय है, परन्तु उसका कारण है, वह

त्रिकाल शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? **यह अविचलित...** अविचलित—चलित नहीं ऐसा।

महा-शुद्ध-रत्नत्रयवाले... भगवान आत्मा महा-शुद्ध रत्नत्रयवाला है। समझ में आया? क्योंकि जो पर्याय प्रगट करनी है, उसका गुण यदि न हो तो प्रगट हो कहाँ से? समझ में आया? सम्यग्दर्शन, आत्मा के आश्रय से, सन्मुख से उत्पन्न होती सम्यग्दर्शन दशा, परन्तु वह दशा अन्दर दर्शन—अविचल नित्यदर्शन न हो तो यह सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होगी नहीं। आहाहा! कहते हैं कि यह अविचलित (अर्थात्) विचलित नहीं, एकरूप त्रिकाल। **महा शुद्ध रत्नत्रयवाला...** महा शुद्धरत्नत्रयस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! उसकी खान में—उसके नित्य स्वभाव—ध्रुवस्वभाव में महा शुद्ध रत्नत्रयवाला ही आत्मा है। प्रगट करना, वह तो पर्याय है, परन्तु स्वयं ही महा शुद्ध रत्नत्रयवाला है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे **मुक्ति के हेतुभूत...** मोक्ष जो परम आनन्द, आत्मा की सिद्धदशा का हेतु वह शुद्ध—महा-शुद्ध रत्नत्रयवाला आत्मा है। समझ में आया? यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग, वह भी हेतु नहीं गिना (क्योंकि) वह पर्याय है। भगवान आत्मा अविचलित है। पर्याय तो पलटती है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की। वह शुद्ध रत्नत्रय है, परन्तु वह महा शुद्ध रत्नत्रय है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्धता का जनक।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धपर्याय का जनक नहीं, यह तो शुद्धस्वरूप ही है। त्रिकाल ऐसा है, ऐसा कहते हैं। 'अविचलित महा शुद्धरत्नत्रय' शब्द प्रयोग किया है न। महा शुद्ध रत्नत्रय अर्थात् त्रिकाली स्वभाव। उसे निज स्वभाव का माहात्म्य ही आया नहीं। यह दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, तप करो—यह सब विकल्प और राग है, उसका माहात्म्य अनादि से है। वह जीव मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? महीने-महीने के अपवास करे, दया पाले, व्रत करे, अपवास, उनोदर, रसपरित्याग, कायक्लेश, बाह्य का विनय, वैयावृत्य इत्यादि... आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का विनय, वैयावृत्य इत्यादि, वह सब विकल्प और राग है। वह धर्म नहीं। आहाहा!

धर्म तो त्रिकाली भगवान के अवलम्बन से प्रगट हुई निर्विकारी पर्याय है, उस पर्याय का कारण त्रिकाली द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कहकर यह सिद्ध करना है कि व्यवहाररत्नत्रय जो है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह कारण तो नहीं, परन्तु निश्चयरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग, वह भी मुक्ति का कारण वास्तव में नहीं है। आहाहा! जयन्तीभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! तेरे सुख के पंथ (छोड़कर) यह दुःख के पंथ में दौड़ गया है। पुण्य-पाप के भाव, वे सब दुःख के पंथ हैं। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, वह सब भाव दुःख का पंथ है। आहाहा! गजब बात है। क्योंकि उसमें सुख नहीं, वह तो दुःखरूप दशा है। जिसे सुख के पंथ में मुड़ना है, वह पंथ का तो ठीक, परन्तु पंथ का फल ऐसी जो मुक्ति का कारण तो शुद्धरत्नत्रयवाला भगवान आत्मा है। समझ में आया?

उसकी—धर्मी की दृष्टि, त्रिकाल शुद्ध महा-रत्नत्रयवाला भगवान, उसमें दृष्टि पड़ना चाहिए। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि वह दृष्टि, ज्ञान और चारित्र पर्याय, ऐसा महा शुद्ध रत्नत्रयवाला आत्मा कहाँ स्थिर होता है? कहाँ उसे स्थापित करना? ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ स्थापित करना। संयमी लेते हैं न? वहाँ अन्त में ऐसा कि आत्मा, आत्मा को आत्मा के साथ अर्थात् निर्विकल्प पर्याय... आत्मा आत्मा को आत्मा के साथ निरन्तर जोड़ता है। निर्मल पर्याय में जोड़ता है। वह आत्मा है न निर्मल पर्याय। आहाहा! भाई! चौरासी के अवतार में, वह दुःखी-दुःखी होकर डोल रहा है। दुःख है, दावानल है। विकल्प जो उठता है—दया, दान, व्रत, भक्ति के और काम, क्रोध, भोग, विषय आदि के, वह दावानल सुलगता है। वह कषायरूपी दावानल है। समझ में आया? उसे बुझाने का उपाय मोक्ष का मार्ग और उस मोक्षमार्ग का फल मोक्ष और उस मोक्ष का कारण द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

यह दुनिया के दुःख देखे न जायें, ऐसे दुःखी हैं बेचारे। अरेरे! देखो न! अभी तो यह केंसर की व्याधि ओहोहो! नेमिदासभाई की बहू को केंसर है। पेट तो बड़ा ऐसा हो गया है, जलोदर। दोपहर में चिल्लाहट मचाये एक बजे। दस लाख, सात-आठ लाख तो रुपये पड़े हैं। दो व्यक्ति पत्नी और पति। उसमें एक गयी, अब अकेले रहे। ८६ वर्ष की उम्र शरीर की और उसकी ९१ वर्ष की। दोपहर में चिल्लाहट मचाये, वह सुन सके

नहीं। नेमिदास बैठा हो नीचे, उसे सुनाने के लिये। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन...' कौन सुनता है परन्तु? 'स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें, कर विचार तो पाम।' आहाहा! उस पीड़ा के कारण वहाँ... आहाहा! मैं बैठा था, बहिन खड़ी थीं, परन्तु उसे बेचारे को पीड़ा में... आहाहा! वह पीड़ा उसके शरीर के रोग के कारण से नहीं है। उसमें आकुलता खड़ी करता है कि 'यह मुझे होता है' ऐसी जो मिथ्याश्रद्धा उसमें जो आकुलता, उसका उसे दुःख है। समझ में आया?

ऐसे मुख फाड़कर खड़े रहे सब। पैसा, पैसे के ठिकाने। बड़े तीन बँगला हैं। ढाई-ढाई लाख के दो बँगले और एक डेढ़ लाख का रहते हैं वह। बँगला क्या धूल करे वहाँ? आहाहा! ओ... आँख मिंच जायेंगी, भाई! ऐसे तेरे दुःख तूने (भोगे), भगवान ने जाने, बापू! आहाहा! ऐसे दुःख से मुक्त होने को... 'मुक्त' शब्द है न मोक्ष। अस्ति से नहीं, नास्ति है। मोक्ष अर्थात् छूटना। इस प्रकार से शब्द है न! दुःख से मुक्त होना, नास्ति से अर्थ है। और आत्मा के पूर्ण आनन्द की प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति। उस मुक्ति का कारण—मोक्ष का हेतु, **मुक्ति के हेतुभूत निरुपम-सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप,...** भगवान आत्मा का अन्तरदर्शन, अन्तरज्ञान और अन्तरचारित्र निरूपण... उसकी उपमा क्या कहना! आहाहा! जिसके मार्ग को कोई उपमा नहीं, उसके मार्ग के कारण(रूप) वस्तु की क्या उपमा कहना! कहते हैं। समझ में आया?

मुक्ति के हेतुभूत निरुपम-सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप,... जिसे उपमा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा, उसमें स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक ज्ञान शक्ति-गुण ध्रुव और चारित्ररूप ऐसे **नित्य आत्मा में...** लो। आहाहा! ऐसा जो नित्य आत्मा—ध्रुव आत्मा, **आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके,..** ऐसे आत्मा को, **आत्मा में आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके,...** कहो, समझ में आया? ऐसे आत्मा में आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके... आहाहा! निर्मल वीतरागी निर्दोषदशा को द्रव्य-वस्तु में स्थापित करके... जो वस्तु है त्रिकाली भगवान, वह अनादि का राग और पुण्य के विकल्प में और पाप के विकल्प में रुका हुआ था, उसमें स्थापित था आत्मा को। आहाहा! मिथ्याश्रद्धा द्वारा... वह मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और राग में वह स्थापित था। उसे, कहते हैं कि निर्मल वीतरागी पर्याय में आत्मा को स्थापित

कर। अभी पर्याय इसे टाल और इसे स्थापित कर। (परन्तु) यह (वीतरागीपर्याय) तो है नहीं। इसका अर्थ यह कि द्रव्यस्वभाव में है, उसका आश्रय लेकर प्रगट हुई, उसमें द्रव्य रुका—स्थापित करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। बात ही ऐसी वीतराग की अचिन्त्य बात है।

लोग बेचारे ऐसे के ऐसे जीते-जी मर गये हैं। यह अपवास किये, व्रत किये, शोभायात्रा निकाली। मर गये हैं बेचारे। यह सब विकल्प की वृत्तियों की बातें हैं। आहाहा! उसमें हर्ष माना है, दु:ख में हर्ष माना है। यहाँ कहते हैं कि जो आनन्दस्वरूप त्रिकाली शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप ऐसा नित्य भगवान, उसमें **आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके,...** अर्थात् कि अन्दर में निर्मलदशा प्रगट करके, उसमें रुका हुआ आत्मा, उसने आत्मा की पर्याय में आत्मा को स्थापित किया। आहाहा! रागादि दया, दान, व्रत के परिणाम तो अनात्मा हैं। आहाहा! उसे—आत्मा को अनात्मा में स्थापित करना, वह तो मिथ्यादृष्टि, अज्ञान है। जयन्तीभाई! काम बहुत कठिन। यह पर्यूषण में तो लोगों में चिल्लाहट... आहाहा! एक ने महीना किया, एक ने पन्द्रह किये और एक ने आठ किये, उसमें शोभायात्रा निकाले, सबको जीमण दे और धर्म हो गया। आहाहा! बापू! यह सब शोभायात्रा यह चार गति में जाकर फलेगा इसका फल। यह शोभायात्रा वहाँ जाकर खड़ी रहेगी। समझ में आया? आहाहा!

भगवान निरुपम—जिसे उपमा नहीं, ऐसा सहजज्ञान, ऐसा लिया था पहले। पहले सहजज्ञान लिया है। सहजदर्शन, सहजचारित्ररूप... **सहज-ज्ञानदर्शनचारित्ररूप, नित्य आत्मा में...** ऐसा जो नित्य ध्रुव भगवान, उसमें आत्मा को वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित कर अर्थात् आत्मा को निर्विकल्प परिणति में स्थापित कर, ऐसा। **यह आत्मा...** भाषा वापस देखो! **चैतन्यचमत्कार की भक्ति द्वारा...** आहाहा! परमेश्वर की भक्ति, तीर्थंकर की भक्ति, वह तो शुभराग है; वह धर्म नहीं। जैसे व्रत और अपवास का विकल्प, वह राग है; वैसे यह भी एक शुभराग है। यह धर्म नहीं। आहाहा!

आत्मा चैतन्यचमत्कार... संक्षिप्त लिया वापस उसमें। कैसा है आत्मा? वह तो चैतन्य के चमत्कारवाला है। जिसकी शक्ति में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हों, उस शक्ति

के अनन्तवें भाग में एक समय में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हों, ऐसा जो चैतन्य चमत्कार आत्मा... चैतन्य चमत्कार आत्मा... ज्ञाता-दृष्टा के चमत्कार से भरपूर भगवान। किसी का करे राग का, दया का, पर का करे, ऐसा उसके स्वरूप में ही नहीं। उसका स्वरूप तो चैतन्य-चमत्कार आत्मा है। राग से लेकर पूरी दुनिया को स्पर्श किये बिना, उसकी प्रतीति नहीं, उसका ज्ञान नहीं। परन्तु अपने ज्ञान को... जहाँ स्व-परप्रकाश स्वभाव, उसमें स्वयं भरा हुआ ही है। आहाहा! ऐसा चैतन्य-चमत्कार आत्मा, उसकी भक्ति द्वारा... यह पर्याय है। समझ में आया?

ऐसा भगवान चैतन्य-चमत्कार... जिसका ज्ञानचमत्कार तीन काल, तीन लोक (जाने)। जिस काल का आदि और अन्त नहीं। उसके एक समय में आदि-अन्त बिना के त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय को अपनी पर्याय में जाने, ऐसी अनन्त पर्याय का चमत्कार ज्ञान—आत्मा उसकी जो भक्ति करे। **भक्ति द्वारा निरतिशय घर को...** लो, जिससे कोई उत्कृष्ट नहीं, ऐसा, ऐसा। निरतिशय (अर्थात्) निः-अतिशय ऐसा नहीं। नहीं तो अतिशय ... हो।

मुमुक्षु : जिससे कोई अतिशय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे कोई विशेष नहीं, ऐसा। **जिससे कोई बढ़कर नहीं है ऐसे; अनुत्तम;..** अनुत्तम अर्थात् पूर्ण... पूर्ण, ऐसा। नहीं तो अनुत्तम अर्थात् उत्तम नहीं। उसके जैसा कोई उत्तम नहीं, ऐसा। उसका अर्थ करे तब हो न। **श्रेष्ठ; अद्वितीय।**

ऐसा जो भगवान आत्मा, उसकी पर्याय... अब यह सब पर्याय की बात चलती है। ऐसे **चैतन्यचमत्कार की भक्ति द्वारा निरतिशय घर को...** अर्थात् सिद्धपर्याय को—मुक्तिरूपी दशा को वह आत्मा के चैतन्य-चमत्कार की भक्ति द्वारा प्राप्त करता है। यह तो कितने सब व्रत और तप, उपवास में जैसे धर्म मान बैठे हैं, वैसे कोई भगवान की भक्ति और गुरु की भक्ति में धर्म मानकर बैठे, उसके लिये यह बात है। समझ में आया? अपने तो गुरु की भक्ति करो, कल्याण हो जायेगा। यह गुरु कौनसा? तू। महा-शुद्धमहारत्नत्रय से भरपूर तू, आहाहा! फिर बाहर में गुरु को निमित्त से कहा जाता है। बाहर देव को भी, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर को देवरूप से भी..., दिव्य शक्तिवाला तू,

ऐसी शक्ति की भक्ति करने से जो दशा प्रगट होती है, उसके फलरूप से मुक्ति होती है। तब निमित्त में देवरूप से कहा जाता है। आहाहा! गजब मार्ग। समझ में आया?

जिसमें से विपदाएँ दूर हुई हैं... मुक्ति की दशा, उसमें विपदा कैसी? कारण कि विपदा को टालने का मार्ग तो जिसने ग्रहण किया है और उस मार्ग का आधार तो भगवान त्रिलोकनाथ है। उसके आधार से विपदा-रहित मोक्षमार्ग की दशा प्रगट की, उसके फलरूप से मुक्ति में विपदा का अभाव है। किसी प्रकार की अकस्मात्, विपदा आवे या दुःखादि आ पड़े, ऐसा वहाँ है नहीं। **तथा जो आनन्द से भव्य (शोभायमान) है...** टीकाकार ने 'घर' की व्याख्या की न? जो आनन्द से शोभित घर है। आहाहा! वह निजघर। वह सिद्ध की पर्याय, वह निजघर। आहाहा! और उस पर्याय का कारण त्रिकाली निजघर। आहाहा! बाकी सब परघर। समझ में आया? यह मेरे बँगले और यह मेरे घर। धूल भी नहीं तेरा। तेरा घर तो यहाँ अन्दर है। उस घर की खबर नहीं होती और परघर में भटके, व्यभिचारी होकर परघर में भटकता है। आहाहा!

कहते हैं कि **आनन्द से शोभायमान है उसे—अत्यन्त प्राप्त करता है...** अत्यन्त प्राप्त करता है। जो पर्याय प्राप्त हुई, वह अब छूटेगी नहीं। **अर्थात् सिद्धरूपी स्त्री का स्वामी होता है।** लो। समझ में आया? एक कलश में तो कितना डाला है! आत्मा कैसा? वह आत्मा मुक्ति का कारण और मुक्ति कैसी? और मुक्ति का मार्ग कैसा? वह सब उसमें आ गया। मुक्ति का कारण कहा न! चैतन्य चमत्कार की भक्ति। वह व्यवहारमार्ग। बाकी मुक्ति का पहला हेतु तो द्रव्य लिया। मुक्ति का हेतु द्रव्य लिया। फिर लिया, (चैतन्य)-चमत्कार की भक्ति द्वारा... वर्तमान निर्मल पर्याय, वीतरागी पर्याय को लिया। समझ में आया? आहाहा! निरतिशय घर (अर्थात्) उसके जैसा कोई नहीं, ऐसी मुक्तिस्त्री—मुक्तिरूपी परिणति। (तो) उस भगवान का क्या कहना! कहते हैं। वह तो महा... महा निरतिशय घर है। आहाहा!

ध्रुव वस्तु नित्य अनादि-अनन्त वस्तु स्वयं वर्तमान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वह तो महा... महा निरतिशय घर है। आहाहा! उसे तो किसी की—मोक्षमार्ग की पर्याय की भी उपमा नहीं हो सकती। आहाहा! समझ में आया? **सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है।**

लो। '**सिद्धिसीमन्तिनीशः**' यह कलश वाँचा था वहाँ राजकोट। दोपहर में व्याख्यान था। १३७ गाथा। एक कलश समझे, एक गाथा समझे और एक पद समझे तो पूरा बारह अंग का सार है उसमें। भगवान की वाणी—त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि—ओमध्वनि, ऐसे बारह अंग का सार यह है। आहाहा! समझ में आया? न पकड़ में आये झट (तो) इसका अभ्यास करना चाहिए। एकदम ऐसी ऊँची बात है। ऊँची नहीं, बापू! यही वस्तु है। इसे ऊँची या नीची जो कहे, वह यह है। समझ में आया?

१३७ (गाथा)।

रायादी-परिहारे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो॥१३७॥

नीचे हरिगीत।

रागादि के परिहार में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३७॥

आहाहा! अरे! बाहर में... बाहर के विकल्प और बाहर में सुख माननेवाले... अरे! उसे यह कैसे हो? ऐसा कहते हैं। अरे! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह राग है, उसका तो यहाँ परिहार करना है। समझ में आया? उसके परिहार द्वारा, आनन्द की स्थिरता में स्थापित करे, आत्मा को जोड़े, उसे सच्ची भक्ति और सच्चा योग है। कहो, समझ में आया? योगभक्ति—स्वरूप में एकाग्रतारूपी योगभक्ति। यह बाबा-बाबा समाधि लगावे, ऐसा लगावे। वह सब अज्ञानी जीव जहाँ जाना चाहिए, उसकी खबर नहीं होती, वह चीज़ क्या है, उसकी खबर नहीं होती। बाहर में समाधि लगावे और ऐसा लगावे, सब मूढ़ जीव है। समझ में आया? योगभक्ति... भगवान आत्मा पूर्णानन्द और शुद्धरत्नत्रय से भरपूर, उसकी एकाग्रता, उसका नाम योगभक्ति। अरे! बाहरवाले को यह कैसे हो? ऐसा कहते हैं। अरे! निमित्तों में और राग-पुण्य परिणाम में जिसे उत्साहित वीर्य होकर उसमें मजा आता है, ठीक लगता है, ऐसे अज्ञानियों को यह कैसे (हो)? समझ में आया?

शुभविकल्प उठावे और देव-गुरु-शास्त्र (आदि) अच्छे निमित्त मिलें, वह तो पर के निमित्त में दूसरा निमित्त बदला। कहते हैं कि ऐसे निमित्त में जिसकी दृष्टि है और

राग में जो रुका हुआ है, उसे यह योगभक्ति कहाँ से होगी ? उसे स्वसन्मुख की एकाग्रता कहाँ से होगी ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अरे ! मार्ग, वह मार्ग कोई पूरा अलग है और दुनिया कहीं मानकर (बैठी है)। इसलिए कहा है, '**इदरस्स य किह हवे जोगो**' अरे दुनिया ! ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द ध्रुव, उसका अवलम्बन करना, उसका आश्रय करके एकाग्र होना, उस एकाग्रता में आत्मा को रोकना—ऐसा जो योगभक्ति का मोक्ष का मार्ग, वह इससे विपरीत दृष्टिवाले को—इस भाव से विपरीतभाववाले को वह कहाँ से होगा ? समझ में आया ? इस रंक को रत्न के दर्शन कहाँ से होंगे ? ऐसा कहते हैं। आहाहा ! लोग नहीं कहते ? कि भाई, इस गरीब मनुष्य ने कभी रत्न देखा नहीं। घर में तो नहीं, परन्तु देखा भी नहीं कि रत्न जगत में ऐसे होते हैं। अरेरे ! राग और पुण्य और निमित्त में रुक गये, कहीं मजा है, सुख है, आह्लाद है—ऐसे जो रुके हुए, ऐसे रंक को ऐसे चैतन्य के रत्न की भक्ति कहाँ से होगी ? ऐसा कहते हैं। यह वीतराग का अमृतमार्ग है। आहाहा ! समझ में आया ?

टीका : यह निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है। उसमें था, परमात्मा की भक्ति के स्वरूप का कथन। यह, निश्चययोगभक्ति का स्वरूप है। विशेष स्पष्ट (करते हैं)। योगी को योग... कहते नहीं ? यह योगी है, योगीश्वर है। परन्तु योगी और योगीश्वर कहना किसे ? बाबा जटा को मूँडे, योग करके बैठे, महीने-महीने के अपवास करे, वह योगी ? नहीं, नहीं, वह तो ढोंगी। क्योंकि वह तो राग का विकल्प परलक्ष्यवाले भाव में पड़ा है, उसका भोग उसे है। समझ में आया ? यह तो आत्मा की शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय की भक्ति... आहाहा ! उसका भजन, शुद्धस्वरूप-सन्मुख की एकाग्रता का भजन, उसे योगभक्ति कहा जाता है। परन्तु अब शुद्धस्वरूप कहना किसे ? उसकी अस्तित्व की मेरी अस्ति कितनी, कैसी बड़ी है ? मेरी अस्ति का होनापना—मेरी सत्ता का होनापना कितना बड़ा है, उसकी अभी खबर नहीं होती, उसे योग अर्थात् धर्म की भक्ति नहीं हो सकती। समझ में आया ?

मेरी शक्तियुक्त सत्ता राग से तो पर है, निमित्त से तो पर है, तीन लोक के नाथ से भी पर मैं हूँ और तीन लोक के नाथ की भक्ति का राग होता है, उससे मैं पर हूँ। अरे ! राग को जानने की ज्ञान की एक समय की पर्याय, उससे भी मैं पर हूँ। आहाहा ! ऐसा

आत्मा, उसकी एकाग्रता... एकाग्रता, वह पर्याय है। उसकी भक्ति, वह योग की भक्ति, एकाग्रता की भक्ति। आहाहा! समझ में आया? यह तो सम्मेदशिखर जाये, एकाध-दो भक्ति करे, जाओ। 'एकबार वन्दे जो कोई, नरक पशु न होई...' ....जाओ, बारह महीने में एक बार कर आओ सम्मेदशिखर की यात्रा, तो यह लोग सिद्धगिरि की या शत्रुंजय की। अरे! सिद्धगिरि और शत्रुंजय तो यहाँ है। वहाँ कहा था? वह तो व्यवहार है। समझ में आया?

तीन लोक का नाथ चैतन्य-चमत्कार भगवान, वह स्वयं शत्रु को जय करनेवाला है और वह सम्मेदशिखर है। समझ में आया? नहीं था उसको? उसके भक्त... वाले को कहते। केशरिया की भक्ति करो, जाओ। केशरियाजी जाते हैं न? केशर चढ़ावे, थोकड़ा का थोकड़ा केशर। ले जाये फिर पण्डे ऐसे... पागलपन चला है न, पागल है, धर्म के नाम में पागल है। समझ में आया? हाँ, प्रतिमा की भक्ति हो, परन्तु उसकी मर्यादा पुण्य जितनी है। अशुभभाव न हो, तब ऐसा भाव आवे, इतनी उसकी मर्यादा है। उसे धर्म के कारण में खतौनी कर डाले, ऐसा बने? ऐसा वीतरागमार्ग में नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

टीका : यह निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है। निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार... क्या कहते हैं? कि आत्मा अन्तर्मुख त्रिकाल है, उसकी परिणति— समाधि सर्वथा अन्तर्मुख है। क्या कहा? आत्मा, वह पूरी अन्तर्मुख ध्रुववस्तु है। उसकी समाधि अर्थात् मोक्षमार्ग, वह पूर्ण अन्तर्मुखाकार स्वरूप है। उसका समाधिभाव अर्थात् मोक्षमार्गभाव पूर्ण अन्तर्मुखाकार है। बहिर्मुख की वृत्ति का जहाँ सम्बन्ध नहीं। क्या कहा? **अन्तर्मुखाकार परम समाधि द्वारा...** अर्थात्? कि एकदम जो आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसके ऊपर अन्तर्मुख हुआ है, सर्वथा अन्तर्मुख हुआ है। कहीं बहिर्मुख और थोड़ा अन्तर्मुख, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब! नियमसार में तो प्रत्येक गाथा में परमात्मा को गाया है। कारणपरमात्मा तीन लोक का नाथ भगवान, तेरी बात पर्याय में पूरी न आवे, ऐसा तू है। बात में तो न आवे, परन्तु एक समय की सिद्ध की पर्याय में भी पूरा तू न आवे... आहाहा! समझ में आया? बात में तो न आवे, यह तो

वाणी जड़ है, परन्तु एक समय की सिद्ध की पर्याय में पूरा न आवे, इतना बड़ा प्रभु, वह अन्तर्मुख चीज़ है और उसे पकड़नेवाली पर्याय भी सर्वथा अन्तर्मुख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बहिर्मुख की वृत्ति का जिसे लेश नहीं... आहाहा! भाई! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, भगवान की मान्यता का विकल्प, भगवान तीन लोक के नाथ सच्चे—ऐसे विकल्प की कोई अपेक्षा अन्तर्मुख आकार में है नहीं। आहाहा! यह श्वेताम्बर में विधि करो, विधि से करो, अविधि से नहीं करना। है सब अविधि। विकल्प, वह स्वयं अविधि है। आहाहा! आयंबिल करो और ओळी करो और... अभी गया था न इस वर्ष का। आसोज शुक्ल सप्तमी से लेकर पूर्णिमा, यह ओळी के दिन। बहुत ओळी गाँव-गाँव में हुई। इतनी ओळी हुई, इतनी ओळी हुई। सब होली हुई है। आत्मा क्या चीज़ है, आत्मा क्या है—उसकी तो खबर नहीं होती। समझ में आया? बापू! दुनिया को तो—सम्प्रदाय की दृष्टिवाले को तो—यह धक्का लगे ऐसा है। मार्ग ही ऐसा तीन लोक के नाथ का है। अनादि तीर्थंकर का कहा हुआ और तीन लोक का नाथ तू तेरा ऐसा ही मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

निरवशेषरूप से... (अर्थात्) कुछ बाकी रखे बिना, अर्थात् कुछ भी विकल्प की अपेक्षा रखे बिना। ऐई! आहाहा! व्यवहार की क्रिया की विधि, उसकी कोई भी अपेक्षा जिसे—परिणति को नहीं, हों! जयन्तीभाई! ऐसा मार्ग है। अरे! बेचारे को लूटते हैं। कुगुरु लूटते हैं, श्रीमद् ने कहा, नहीं? एक तो यह संसार में... लुटने में जाये, थोड़ा दो घड़ी का समय मिले, वहाँ कुगुरु लूट ले दो घड़ी को। हम कहते हैं ऐसा करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। आहाहा! एक बात कहीं जाती है, वह कहते हैं। भाई! तुम छह काय की दया पालता हूँ, यह तो बहुत दिन से कहते हो, व्रत पालना। परन्तु यह समकित का कुछ किया? रचना। समकित की कुछ रचना करना कि समकित कैसे हो, ऐसा लिखा है श्रीमद् ने। आहाहा! समझ में आया?

अरे! समकित उसे तो नहीं, परन्तु समकित कैसे होता है, इसकी भी उसे खबर नहीं और वह उपदेशक (बनकर बैठे)। यहाँ तो कहते हैं कि आहा! क्या परन्तु टीका

करते हैं! **निरवशेष**—कुछ बाकी रखे बिना। **सर्वथा अन्तर्मुख...** ऐसा। निरवशेष अर्थात् सर्वथा। बिल्कुल अन्तर्मुख परिणति। भगवान आत्मा पूरा अन्तर में है ध्रुव, इसलिए उसकी पर्याय भी सर्वथा अन्तर्मुख हुई है। बहिर्मुख की कोई भी बात उसमें नहीं रही। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! तेरी। पराश्रय व्यवहार की अपेक्षा जिसमें है नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, भीखाभाई! आहाहा! तेरा चैतन्य हीरा महा चैतन्यप्रभु, उसे पकड़ने के लिये सर्वथा अन्तर्मुख परिणति चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

बहिर्मुख की वृत्तियों का बिल्कुल परिहार कहा है न इसमें। '**रागादिपरिहारे**' अर्थात् विशेष डाला उसमें। विकल्प का—व्यवहार विकल्प का भी अभाव, परन्तु निरवशेषरूप से सर्वथा। भगवान नित्यानन्द प्रभु ध्रुववस्तु की वर्तमान पर्याय को अन्तर में अन्तर्मुखाकार अर्थात् बिल्कुल अन्तर्मुख परिणति, उसमें बहिर्मुख परिणति की बिल्कुल अपेक्षा और आश्रय और अवलम्बन नहीं। आहाहा! टीका, वह भी टीका की है न! कितनों को टीका सुहाती नहीं, लो। आहाहा! अमृत बहाया है। आहाहा! कहते हैं कि भगवान! उसे हम आत्मा के सम्बन्धवाली भक्ति कहते हैं। आत्मा का योग अर्थात् जुड़ान। आत्मा के साथ जुड़ान होना, उसका नाम योगभक्ति कहते हैं कि जो योगभक्ति सर्वथा अन्तर्मुखाकारवाली है। समझ में आया?

'निरवशेष' कहा है न, इसलिए 'सर्वथा' शब्द प्रयोग किया है। बाकी कोई कहे कि कथंचित् बाह्य व्यवहार और कथंचित् अन्तर्मुखाकार और कथंचित् व्यवहार-आकार दोनों अनेकान्त कहो तो पकड़ में आये। आहाहा! ऐ जयन्तीभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह तो भाग्यशाली को कान में पड़े, ऐसी बात है। इस बात की गन्ध ही कहीं नहीं। ... उल्टे... डालकर जिन्दगी का काल बर्बाद कर डालते हैं। ऐसा काल। जहाँ जाना है, वह कौन है और जाती है परिणति कैसी है? आहाहा! '**रागादीपरिहारे**' है न? इस 'परिहार' में से यह सब निकाला है। व्यवहार का बिल्कुल अंश छोड़कर अकेला अन्तर्मुखाकार गया है, ऐसे अन्दर में। समझ में आया? आहाहा! यह दीवाली के दिन हैं सब। दि जलाने के दिन, ऐसा। दिवाली अर्थात्? दिवाली अर्थात् दिन को जलाये ऐसे, अर्थात् तेरी निर्मल पर्याय उसे आत्मा की ओर मोड़, इसका नाम दिवाली है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कहीं कमाई नहीं हुई, ऐसा नहीं कहते? कुछ कमाई नहीं हुई, उसमें। दहाडो अर्थात् दिवस। दहाडो कहे, कुछ दहाडो नहीं मुड़ा। कमाई नहीं अर्थात्... परन्तु यह कुछ कमाई नहीं हुई। (अर्थात्) दिवस कुछ नहीं हुआ। उल्टे कान अनादि से दिवस को जलाया है। ...भाई! आहाहा! परन्तु अभी उसे खबर भी नहीं कि यह शुभ में किस प्रकार पड़े हैं उल्टे और सुलटे क्या है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! कहते हैं कि **सर्वथा...** भाई! कथंचित् लो न! भगवान का मार्ग अन्तर्मुख परिणति, वह भी साधन और बाह्य की परिणति, वह भी साधन।—ऐसा है ही नहीं। अन्तर्मुखाकार परिणति, वह साधन है और बहिर्मुख परिणति साधन नहीं, उसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! वीरजीभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है। ऐसी भाषा बहुत गूढ़ नहीं। भाव तो सीधे हैं, बिल्कुल सीधी-सट (बात) है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसी परमसमाधि द्वारा... ठीक! यह पर्याय है। भगवान आत्मा तो परम समाधिस्वरूप ही है। परम समाधि... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्त, पूर्ण अकषाय, पूर्ण समाधि आनन्दस्वरूप ही प्रभु ध्रुव आत्मा तो है। उसे **परमसमाधि द्वारा...** अब वह पर्याय है। समझ में आया? उसे **परम समाधि...** अर्थात् राग के विकल्प के सर्वथा अभाव द्वारा और समाधि की शान्ति की दशा द्वारा... **परम समाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार होने पर,...** परम समाधि द्वारा... 'समाधि' नहीं आता? लोगस्स में आता है। 'समाहिवरमुत्तं दिंतु...' परन्तु अर्थ का किसे भान हो? 'समाहिवरमुत्तं दिंतु...' आता है न। परन्तु कौनसी समाधि? यह समाधि। वह बाहर की लोग माने, वह समाधि कहाँ थी? समझ में आया?

'समाहिवरमुत्तं दिंतु..' नहीं आता? लोगस्स में आता है। अर्थ कहनेवाले को कुद खबर नहीं होती और सुननेवाले पहाड़े बोलते जायें। 'लोगस्स उज्जोयगरे...' ऐ चिमनभाई! 'धम्मतिथ्थयरे जिणे अरिहंते कित्तइसं...' पहाड़े बोले। लोगस्स गिना और हो गयी सामायिक। आहाहा! अरे! सामायिक की निर्मल पर्याय का कर्ता कौन, कैसा—इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? यह परम समाधि कहो या सामायिक कहो। सामायिक आ गयी पहले। वीतरागीदशा, जिसमें विकल्प की बिल्कुल अपेक्षा नहीं ऐसी शान्ति... शान्ति... शान्ति... परमशान्ति का प्रभु, उसे शान्ति द्वारा एकाग्र होकर

अथवा शान्ति द्वारा मोह-राग-द्वेष और परभाव का परिहार होता है। आहाहा! अर्थात् कि आत्मा का अवलम्बन लेकर जो दशा प्रगट हुई, वह परम समाधि है। यह उत्पाद हुआ। इस उत्पाद द्वारा, पूर्व के अज्ञान, राग-द्वेष के विकल्पादि पर्याय जो थी, उसका नाश हुआ। समझ में आया?

मोह (अर्थात्) पर में सावधानी का भाव। मिथ्यात्व, वह राग में सावधानी, उसका नाम मिथ्यात्व। स्वरूप में सावधान, उसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! यह विकल्प उठे चाहे तो भक्ति का या राग का दया-दान का, उसमें सावधानी, वह मिथ्यात्व है। एकाग्रता... आहाहा! मार्ग तो, जिसका फल सिद्ध, उसका मार्ग कैसा होगा? आहाहा! **समस्त...** क्या कहते हैं? **परम समाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि...** शुभ और अशुभ विकल्प सब। आहाहा! निर्विकल्प समाधि द्वारा **परभावों का परिहार होने पर,...** परिहार करना, ऐसा नहीं, परन्तु परिहार होने पर... (परिहार) होने पर (अर्थात्) अभाव होने पर स्वभाव होता है। भगवान आत्मा चिदानन्द ध्रुव की जहाँ दृष्टि की और जो परिणति उत्पन्न हुई, उसमें आत्मा को रोका अर्थात् राग का उत्पन्न होना रुक गया, (इसलिए) उसका परिहार हो गया, '**रागादीपरिहारे**' अर्थात्।

जो साधु... अर्थात् जो कोई धर्मात्मा, साधक... आत्मा को साधे वह साधु। व्यवहार और पुण्य और दया-दान और विकल्प को साधे, वह साधु नहीं। समझ में आया? अजब-गजब की बात है यह। दुनिया बेचारी कहीं पड़ी है। कहीं रंक होकर रुल जाते हैं। समझ में आया? 'रतन कुचल डाला श्मशान में..' हम जब दुकान में थे न, तब गायकवाड़ का लड़का फतेहकुमार मर गया न।....गुजर गया। पाटवी राजकुमार था न। उसका कुल है... छोटी उम्र में मर गया। वह लड़का वर्ष-दो वर्ष का था। फतेहकुमार पाटवी। सयाजीराव जीवित थे। ... पुस्तक प्रकाशित की। 'रतन कुचला श्मशान में...' हाय! ओय रे! रतन कुचल डाला। तीन करोड़ की आमदनी थी उसकी। (संवत्) १९६६-६७ की बात है। तीन करोड़ का तालुका। उसमें उसका पाटवी राज—युवराज फतेहकुमार गया। ऐसे मरशिया करे न सब। रोवे... रोने के। हाय! रतन कुचला गया।

बापू! वह रतन तो वहाँ धूल का है। ऐसा चैतन्यरत्न इसे पुण्य और पाप के राग

की मिठास में वेदकर रहना, वह रतन कुचला श्मशान में। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! व्रत, नियम, अपवास, पूजा और भक्ति—यह सब विकल्प है, उसमें रतन को कुचल डाला, भाई! आहाहा! समझ में आया? बादशाह, आहा! उसे तीन करोड़ की आमदनी थी। यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, यह तीन है न? अन्यत्र कहीं थे, वह पुस्तक आयी थी, पुस्तक वाँची थी। आहाहा! तेरा रत्न, प्रभु! चैतन्य-चमत्कार रत्न, जिसके स्वीकार बिना, राग और पुण्य के विकल्प के स्वीकार से तेरा रत्न का घात हो गया। तेरे आत्मा की शान्ति में चोट लगी। आहाहा! शान्ति के ऊपर चोट। उसे यहाँ कहते हैं कि ऐसे अशान्ति के भाव के परिहार द्वारा जो साधु... पाठ में है। अब इस लाईन का अर्थ जरा सूक्ष्म है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक - १८-१०-१९७१
गाथा-१३७, श्लोक-२२८, प्रवचन-१५३

यह नियमसार, परम-भक्ति अधिकार है। गाथा १३७। फिर से लेते हैं।

टीका : यह निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है। सच्ची (भक्ति अर्थात्) आत्मा में शुद्धस्वरूप, उसकी अन्तर की एकाग्रता—उसका जुड़ान, वह सच्ची भक्ति है, वह सच्चा मोक्ष का मार्ग है। **निरवशेषरूप से—** कुछ बाकी रखे बिना, **अन्तर्मुखाकार...** सूक्ष्म बात है जरा। जिसने कभी दिशा देखी नहीं अर्थात् कहाँ जाना और कैसे जाना, उसकी जिसे खबर नहीं, इसलिए उसे सूक्ष्म पड़ता है। सर्वथा प्रकार से... निरवशेषरूप से अर्थात् सर्वथा प्रकार से **अन्तर्मुखाकार...** आत्मा की धर्मदशा, वह त्रिकाली अन्तर्मुखस्वरूप भगवान को पकड़ने की अन्तर्मुख निर्विकल्प परिणति है। आहाहा! **ऐसी परम समाधि द्वारा...** निर्मल त्रिकाली शुद्धवस्तु का आश्रय करके जो परम शान्ति, परम सुख प्रगट हुआ, ऐसे परम सुख द्वारा... कि जिस परम सुख का अन्तर्मुख स्वरूप है, वह परम सुख धर्म की पर्याय में बहिर्मुख कुछ भी है नहीं। व्यवहार का बहिर्मुख विकल्पादि उसमें नहीं। आहाहा! गजब धर्म!

(-सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है...) इसका अर्थ कि भगवान आत्मा जो चैतन्य ध्रुव नित्यानन्दस्वरूप, उसके ओर की जो वीतरागी परिणति है, वह सर्वथा अन्तर्मुख की परिणति है। समझ में आया? **(ऐसी) परम समाधि द्वारा...** ऐसी पर्याय उत्पन्न होने पर, ऐसा कहते हैं। जो अनादि से राग और विकल्प की पर्याय उत्पन्न होती है, वह तो विकार, जहर और परलक्ष्यीभाव है। यहाँ तो चैतन्य भगवान नित्यानन्द प्रभु, उसे परम शान्ति... परम शान्ति... निर्विकल्प आनन्द—रागरहित आनन्द—रागरहित सुख, ऐसी अन्तर्मुख आकृति अर्थात् परिणाम, ऐसी समाधि द्वारा... ध्रुव तो ध्रुव है चीज़। ध्रुव तो नित्य ध्रुव है, परन्तु उसकी अन्तर्मुख-आकृतिरूप परम समाधि की शान्ति ऐसी पर्याय द्वारा... आहाहा! ऐसा कोई दवा में आता नहीं और कुछ सुनने में आवे नहीं... आहाहा!

भगवान आत्मा जो परलक्ष्य की पर्यायवाला... पर्यायवाला ज्ञात होता है, वास्तव में वह है नहीं। उसे स्वलक्ष्यी अन्तर्मुख आकृति अर्थात् परिणाम जिसमें बहिर्मुख के व्यवहार के विकल्प की कुछ भी अपेक्षा और आश्रय और अवलम्बन नहीं, ऐसी परम समाधि की उत्पत्ति द्वारा **समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार होने पर,...** (अर्थात्) विकार के भाव का उदय नहीं होने पर... यह परम समाधि की शान्ति द्वारा... यह मोक्षमार्ग। समझ में आया? ऐसी परम शान्ति द्वारा... विकल्परहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम, वह अत्यन्त अन्तर्मुख आकारवाली दशा है। आहाहा! उसके **द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार होने पर,...** अर्थात् कि दृष्टि द्रव्य के ऊपर पड़ने से जो दृष्टि में शान्ति आयी, उस शान्ति द्वारा अशान्ति के परिणाम परिहार होते हैं, अर्थात् कि उसे उत्पन्न नहीं होते। आहाहा! ऐसा गजब! ऐसा मार्ग है, भाई! यह बात यहाँ रखी।

अब, उस अन्तर्मुखाकार की परिणति जो समाधि... जो स्वभाव वस्तु अन्तःतत्त्व पूरा ध्रुव... ध्रुव... ध्रुवतत्त्व पूरा पूर्ण, उसे पकड़ने की अन्तर्मुख परिणति—दशा होने से बहिर्मुख की वृत्तियों का वहाँ उदय—उत्पन्न नहीं होता। ऐसा होने से **जो साधु...** (अर्थात्) स्वरूप का साधक जीव राग और विकल्प और निमित्त का साधनपना छोड़कर... आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द—पूर्णानन्द की पर्याय प्रगट करने का साधक जीव—**आसन्नभव्य जीव...** (अर्थात्) जिसे अल्प काल में अब मुक्ति है। आसन्न (अर्थात्) नजदीक है योग्यता उसकी सिद्ध होने की।

ऐसा भव्य जीव **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ...** जो परम समाधि कही थी, उसकी ही यह व्याख्या है। समझ में आया? वहाँ परम समाधि द्वारा मोहादि की उत्पत्ति होती नहीं, ऐसा कहा है। अब यहाँ, **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ...** आत्मा वहाँ जुड़ता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा उस विकल्प में जुड़ता था, उसे छोड़कर निर्विकल्प अन्तर आकार द्वारा—समाधि द्वारा जिसे मोहादि की उत्पत्ति हुई नहीं, ऐसे जीव को... आहाहा! **आसन्नभव्य जीव—निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप...** यह पर्याय। ऊपर परम समाधि कहा था। उसे ही यहाँ परम समाधि द्वारा अर्थात् आत्मा की अन्दर शुद्धता के उपयोग द्वारा...

शुद्ध उपयोग द्वारा अशुद्ध उपयोग का उत्पन्न होना नहीं, इतना कहा था। सूक्ष्म है, बहुत सूक्ष्म है यह। समझ में आया?

यह भगवान आत्मा अपने अन्त:तल को स्पर्शने को अन्तर्मुखाकृति से अन्तर स्पर्श किया, उस आकृति (रूप) परिणाम द्वारा अशुद्धता की उत्पत्ति का अभाव हुआ, वह परिणति **निज अखण्ड अद्वैत...** भगवान आत्मा के साथ एकत्व होने से जो परिणति प्रगट हुई, उस परिणति के साथ आत्मा को एकत्व है (अर्थात्) वहाँ रुकता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह सूक्ष्म है, भाई! यह दिवाली के माल-माल खाते हैं न लोग? यह माल है, अन्तर के अमृत का माल है। आहाहा! यह तो बहुत धीरज का काम है। यह कहीं व्रत और तप को करे, बहुत शास्त्र का जानपना करे तो यह बात समझ में आये ऐसी यह (बात) नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात् कि जिसे सम्यग्दर्शन और शुद्ध उपयोग द्वारा (अर्थात् कि) अन्तर्मुख आकृति द्वारा, जिसने बहिर्मुख की वृत्तियों का ह्रास किया है—नाश किया है। समझ में आया?

ऐसा जो साधक जीव (अर्थात्) सिद्ध—पूर्ण दशा को प्राप्ति की तालावेलीवाला जीव... सिद्ध को साध्य बनाकर... साध्य ऐसे तो द्रव्य साध्य है, परन्तु पर्याय में सिद्धपना, वह साध्य है, उसका जो साधकजीव, उसकी पर्याय में **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप...** ऐसी दशा प्रगट हुई है। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! भगवान परमानन्द का नाथ है न, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द ही छलाछल परिपूर्ण असंख्य प्रदेश में (भरा है), एक-एक प्रदेश में अनन्त आनन्द, ऐसा असंख्य प्रदेशी आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द है। जिसकी एक समय की साधकदशा के आनन्द की समक्ष इन्द्र के—इन्द्राणी के सुख भी, आहाहा! बिल्ली सड़ी हुई हो और उसमें आँगुली डाले और जैसे ग्लानि हो, वैसे ज्ञानी को परवस्तु से द्वेष अर्थात् उदास है। द्वेष नहीं, (परन्तु) उदास है। उसे सड़ा हुआ तिनका, सड़ी हुई बिल्ली जैसा लगता है। आहाहा!

घर में भी चूहा मरे तब गन्ध होती है न। खाल में मर गया हो और खबर न पड़े तो ऐसा का ऐसा दो-चार दिन रहकर गन्ध मारे। यह वास (दुर्गन्ध) कहाँ से आती है? खाल में गया हो और खाल हो छोटी और (चूहा) हो बड़ा। घुसा तो सही पश्चात् ऐसे

भी न निकल (सके) और ऐसे भी न निकल (सके)। ऐसा होता है न। मर जाये तो गन्ध मारे। एक बार गये थे। खबर है। तुम थे? करीयाण। तुम नहीं थे। धर्मशाला कारयाणी। हाँ, वह। हमारे पिता के नयी माँ वहाँ की थी। मेरे पिता की नयी माँ करीयाण की थी। कालुभा के ... किनारे। धर्मशाला में उतरे (वहाँ) खाल में चूहा गन्ध मारता था। दिखने में कुछ नहीं, परन्तु खाल में एक चूहा गन्ध मारता था। बहुत वर्ष हुए, हों! (संवत्) २००० के वर्ष, २३ वर्ष हुए। गन्ध कहाँ से आती है? कहीं दिखता नहीं। खाळ में देखे वहाँ... उसकी गन्ध जैसे पसन्द नहीं, उसी प्रकार धर्मी को परमानन्द की पर्याय के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन के सुख भी पसन्द नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा **निज अखण्ड...** स्वयं अखण्ड द्रव्य है, उसके आश्रय से हुई पर्याय भी निज अखण्ड है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसी धर्मकथा कब आवे? दिवाली के दिन हों, एक राजा था और फिर ऐसा हुआ और फिर ऐसा हुआ और ऐसा हुआ। पकड़ में आये तो सही। घर से न आये हों तो बात भी की जाये। भाई! तुम क्या सुनकर आये? यह तो कुछ नहीं, निज ऐसा... निज ऐसा करते थे। आहाहा! बापू! तेरे निजघर की बातें हैं। इस बात को इसने कभी रुचिपूर्वक सुना नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! चौरासी के दावानल के दुःख से पूरा संसार जल रहा है। उससे छूटने का उपाय यह एक है। समझ में आया?

वह कहते हैं न, पुनर्जन्म मानते नहीं। भाई! यह रास्ते में आज विचार आया था। बापू! पुनर्जन्म क्या, भव ही नहीं आत्मा में। फिर जन्मना कहाँ? आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। जन्मना... जन्म, वह वस्तु में ही नहीं। उसका जन्म तो, परम आनन्द की उत्पत्ति करे, वह उसका जन्म है। आहाहा! समझ में आया? जन्म कैसा? जन्म और मृत्यु आत्मा में कैसा? आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु के आश्रय से होती दशा, निज अखण्ड अद्वैत—अजोड़ दशा, उसके साथ व्यवहार-व्यवहार कुछ है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुनिराज ने भी गजब टीका की है! आहाहा! परमात्मा को नीचे उतारा है। आओ! आओ पर्याय में अब तू। समझ में आया? भाई! प्रभु! तू पूर्ण है न! उस पूर्ण

का जहाँ स्वीकार हुआ, वहाँ पर्याय में प्रभु पधारे। आहाहा! समझ में आया? प्रभु ध्रुव तो आता नहीं, परन्तु उसका भान हुआ तो पर्याय में प्रभु ज्ञात हुआ कि ओहोहो! यह वस्तु! समझ में आया? वह ध्रुव का ही अनुभव कहलाता है। है तो पर्याय का वेदन, कहीं ध्रुव का वेदन नहीं। परन्तु ध्रुव के लक्ष्य से जो पर्याय प्रगट हुई (उसे) 'ध्रुव का वेदन है' ऐसा कहा जाता है। वह राग का वेदन नहीं, व्यवहार के विकल्प का वेदन नहीं। इससे ऐसी गुलांट खायी है परिणति ने। ध्रुव पर नजर पड़ी, इसलिए ध्रुव को वेदे, ज्ञायक प्रगट हुआ—ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, उसे वेदे, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा जो **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप...** पर्याय... यह पर्याय की बात चलती है। मोक्षमार्ग परम समाधि है और निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप है। समझ में आया? पर्याय की बात है। यह तुमने सुनी नहीं। सुना नहीं? दो-तीन बार तो कहा। पर्याय है यह। 'निज अखण्ड अद्वैत परमानन्द' यह पर्याय है। दो-तीन बार कहा। तुम्हारा ध्यान प्रश्न में रहता है, ध्यान समझने में नहीं रहता। दो-तीन बार कहा कि जो परम समाधि है, वह यह है, यह है वह निश्चयमोक्षमार्ग है। ऐसा तो कितनी बार आया। समझ में आया? आहा! ऐसा जो जीव... कैसा जीव? जिसने अन्तर्मुख आकृति द्वारा—परिणति द्वारा जिसने मोहादि की उत्पत्ति को छोड़ दिया है। 'परिहार' है न? अर्थात् छूट गयी है। परिहार होने से... भगवान आत्मा अपने निज अखण्ड अद्वैत परमानन्द पर्याय के साथ **निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है,...** आहाहा! समझ में आया?

ऐसे जुड़ान से उत्पन्न हुई पर्याय, उसने विकार का परिहार किया, उस पर्याय में द्रव्य रहता है, ऐसा कहते हैं। आगे जाता नहीं, राग में बाहर जाता नहीं। वहाँ स्थिर हो गया है द्रव्य। है तो द्रव्य द्रव्यरूप से, परन्तु द्रव्य की पर्याय जहाँ ऐसे जाती थी, उस द्रव्य के आश्रय से पर्याय प्रगट हुई (तो) द्रव्य वहाँ स्थिर हो गया। कारणपरमात्मा को वहाँ स्थापित किया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब! नियमसार... क्या कुछ कहते हैं न? कि पका पकाया हलुवा। कोई कहता था, नहीं? पका पकाया हलुवा... सेठिया कहते थे। पकापकाया हलुवा। हाँ, निहालभाई में आता है। यह सच्ची बात। पका हुआ हलुवा—पर्याय। पकाना नहीं, पका हुआ है। बस! उसे खाना है।

मुमुक्षु : पकापकाया हलुवा दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हलुवा दिया है। आहाहा!

ऐसा **साधु...** अर्थात् स्वरूप का साधनेवाला भगवान आत्मा अपनी निज अद्वैत अखण्ड परमानन्दस्वरूप पर्याय (के साथ) कारणपरमात्मा को वहाँ जोड़ता है। आहाहा! द्रव्य पर्याय के साथ जुड़ता है। द्रव्य पर्याय के साथ जुड़ता है। उस पर्याय की द्रव्य के साथ एकता कही। पारस्परिक बात ली है। पश्चात् अन्तर्मुखाकार में उसकी पर्याय द्रव्य के साथ एकाकार हुई। उस पर्याय में द्रव्य आया है, ऐसा कहते हैं। राग में न रहकर, उदय में न रहकर... समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा! ऐसा तो कहीं सुनने में नहीं आया। जादवजीभाई! सेठाई की होगी कलकत्ता में कितनी! खोटा की सेठाई की है सब। यह वस्तु ही कहाँ? आहाहा! चैतन्य का अमृत का सागर भगवान जिसमें अनन्त आनन्द (है, वह) आनन्द पिया करे तो भी आनन्द कभी कम नहीं हो, ऐसा आनन्द का सागर, उसके आश्रय से होती परमानन्द दशा—वह अन्तर्मुखाकारवाली परिणति, उस परिणति में आत्मा को जोड़ता है, ऐसा कहते हैं। ठीक! समझ में आया?

यह तो धीरज का काम है भाई! यह उतावलिया का आम नहीं कि झट पक जाये। आहाहा! उतावल शब्द से आकुलता। पक जाये तो तुरन्त पक जाते हैं यहाँ। आकुलता और उद्वेग और विकल्प के जंजाल... आहाहा! उसमें हाथ आवे ऐसा नहीं अभी। जेठाभाई! दिक्कत बाहर का विवाद उठावे हों, प्रभु! तेरी प्रभुता को लांछन है भाई! आहाहा! बापू! तुझे राग और विकल्प से लाभ होता है, (ऐसा कहना) वह प्रभु निर्विकारी आनन्द का लाभ दुःख से हो (कहने के बराबर है)। विकल्प तो दुःख है। उसमें से दुःख कारण और आनन्द कार्य? सच्ची बात बहुत सच्ची। ऐसा भगवान आत्मा वस्तु ही ऐसी है। वह कहीं किसी ने की है? भगवान ने जानी, पूरी अनुभव की और वाणी में आयी है कि यह चीज़ है, भाई! बाल-गोपाल, शरीर चाहे जैसा हो, भगवान तो अन्दर परिपूर्ण भरपूर आनन्द से भरा पड़ा है। आहाहा! उसे बाहर रोककर रखने की आवश्यकता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अन्तर्मुख जो परिणति हुई, वह निर्विकल्प थी, वह परम

समाधि थी, निश्चयमोक्षमार्ग था, वह निज अखण्ड अद्वैत परमानन्द पर्याय थी। आहाहा! पर्यायवान ऐसा आत्मा को वहाँ जोड़ता है। जोड़ता है, (ऐसा कहा तो) द्रव्य को खबर है कि मैं यहाँ जुड़ता हूँ? क्या कहा? ध्रुव को? निज कारणपरमात्मा को अर्थात् ध्रुव पर्याय में आता है। ध्रुव को पर्याय के साथ जोड़ते हैं। परन्तु वह पर्याय स्वयं ही ध्रुव की ओर झुकी हुई, ऐसी पर्याय में 'ध्रुव यहाँ है' ऐसा पर्याय जानती है। अरे... अरे! समझ में आया? ऐसे जोड़ना और तोड़ना, फैलाना, वह पर्याय में है या ध्रुव में है? ध्रुव अपनी पर्याय को पर्याय में जोड़ता है अर्थात् ऐसा (कि) ध्रुव पर्याय में जुड़ता है... ध्रुव पर्याय में जुड़ता है। यह तो अगम-निगम की बातें है, भाई! समझ में आया?

यह पर्याय जो निर्मल शान्ति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, ऐसी अन्तर्मुख आकृति के परिणाम जो समाधि, जो मोक्ष का मार्ग, जो शुद्ध उपयोग, उसमें आत्मा को जोड़ता है। आहाहा! अर्थात् आत्मा वहाँ आगे रहा है, ऐसा कहते हैं। वह राग में जो रहा था, वहाँ नहीं, परन्तु अब आत्मा यहाँ रहा है, ऐसा। समझ में आया? आहा! ऐसी गजब बात! पहले अन्तर्मुख आकृति कही, और उस परिणति के साथ आत्मा को जोड़ना। पण्डितजी! **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप...** यह पर्याय, हों! निज अखण्ड अद्वैत परमानन्द-स्वरूप द्रव्य, वह यह (पर्याय) नहीं। निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप—ऐसा भगवान, उसके आश्रय से प्रगट हुई पर्याय, वह निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप है। समझ में आा? इसमें वाद-विवाद किसका? किसके साथ, भाई? उसमें हाँ-ना, नास्ति... आहाहा! महाराज! यह कर्म को भोगता नहीं, ऐसा माने। वह तो पुनर्जन्म भी मानते नहीं। परन्तु यहाँ तो, सुन न! कर्म भी नहीं, राग भी नहीं, भव का भाव नहीं, भव नहीं—ऐसा तत्त्व है, उस तत्त्व में भव का पुनर्जन्म है ही नहीं। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? पुनः-पुनः जन्मना हो तो आनन्द की परम अखण्ड अद्वैतदशा का पुनर्जन्म होता है। समझ में आया? आहाहा! है या नहीं उसमें? देखो न! आहाहा!

निज अखण्ड अद्वैत... अरे! इतना बड़ा तू, उसकी पर्याय इतनी बड़ी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब तेरी लक्ष्मी और धूल के ढ़ेर न, उत्साह कर-करके मर गया। दिवाली के... ऐसे पैसे हो जाओ... नहीं लिखते? शालिभद्र की ऋद्धि होओ, अभयकुमार की बुद्धि होओ। शालिभद्र की ऋद्धि होओ और अभयकुमार की बुद्धि

होओ। परन्तु क्या करना है तुझे ? बाहुबली का बल होओ। आहाहा! संसार में भटकने का फल होओ। आहाहा! क्या करता है ? कहाँ जाना चाहता है ? समझ में आया ? तेरी निर्मल पर्याय में रह, ऐसा उसे कहते हैं। कहाँ जाना चाहता है तू ? भाई! तू संसार में है ही नहीं। चार गति में तू है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ? पुस्तक है या नहीं... चन्दभाई ? यह तो अगम-निगम की बातें हैं।

निज कारणपरमात्मा को... वह भी 'निज अखण्ड पर्याय में...' निज कारणपरमात्मा को वहाँ रखता है, आगे जाने नहीं देता। आहाहा! समझ में आया ? मोक्ष के मार्ग में (निज) भगवान को स्थापित करता है। भगवान को मोक्षमार्ग में स्थापित करता है। समझ में आया ? **वह परम तपोधन ही...** वह परम तपरूपी जिसे धन—आनन्ददशारूपी धन जिसे प्रगट हुआ है। लो, यह धन। ऐ हसमुख! वहाँ उसके पैसे में फँसकर, फँसकर पूरा दिन ऐसे... हा-हो, हा-हो... कषाय की अग्नि सुलगती हो (और) कहे कि हमारा उत्साह है जहर पीने का। आहाहा! समझ में आया ? जिसकी होड़ करे, वह पाँच लाख पैदा करे वर्ष में तो हम दस लाख करेंगे, वह दस लाख करे तो हम बीस लाख करेंगे। जहर पीने की होड़ है। यह अमृत पीने की होड़ कर न एक बार। आहाहा! पोपटभाई! कहाँ महीने का ७० (रुपये) वेतन और कहाँ अभी की हालत—दशा ? मानो सुखी हो गये होंगे ? धूल में भी नहीं, सब दु:खों के सरदार हैं, सिंकते हैं अग्नि में।

शान्ति का सागर भगवान... लो, शान्तिसागरजी! इनका नाम शान्तिसागर है। दीक्षित होनेवाले थे, नग्न दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। ... सुना वहीं। ओय..! मुनिपना तो कुछ अलग है। मुण्डाते, दु:खी होते, नहीं ? माँ-बाप है, स्त्री है, पुत्र है, पैसा है। गृहस्थ है। वैराग्य हो गया तो नग्न मुनि (होना था)। विद्यानन्दजी के पास ? उनके पास दीक्षा लेनी थी। स्त्री है, पुत्र है, माँ-बाप है। धूल में भी नहीं। यहाँ तो एक आत्मा है। एक ओर कहना कि ऐसा-ऐसा है और एक ओर... वहाँ अकेला संयोग में है, ऐसा। स्वभाव में तो है नहीं। आहाहा! ऐसी परमानन्ददशा प्रगट हुई, उसे परम तपोधन कहते हैं। उस जीव को परम तपरूपी धन प्रगट हुआ है। आहाहा! निधान में से निकला है। समझ में आया ? आहाहा!

हीरा के ... है न, क्या कहलाता है वह? खान में हीरा... (खान) में से ऐसे लाख-लाख, दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख का एक-एक हीरा निकले, प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। ऐसे हीरे निकले। पन्ना, नहीं? पन्ना की खान थी वहाँ, अफ्रीका में पन्ना की खान निकली। कितने रुपये निकले। अरब... अरब होंगे, एक अरब। पन्ना की खान। इजारो है। इजारो कहे न? क्या कहे? ठेका। तुम्हारे वहाँ ठेका कहते हैं। ठेका लिया। उसमें से निकली फिर धूल। उसका ठेका लेना इस आत्मा का। आहाहा! अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति। जिसमें पुण्य का विकल्प, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसे भाव का भी जहाँ अवकाश नहीं। ऐसा भाव होना, ऐसा उसमें अवकाश नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह परम तपोधन ही... भाई! अनेकान्त करना न कि ऐसे भी होता है और ऐसे भी होता है। यह कहे, यह ही होता है, बस एक ही। सर्वोत्कृष्ट शुद्ध आनन्द का साधक जीव मोक्षमार्गी, वह तपोधन, वह एक ही **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** पहला 'अन्तर्मुखाकार' कहा था, दूसरे में 'निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप' कहा था, तीसरा यहाँ 'निश्चय शुद्धोपयोगस्वरूप भक्ति' कही। शुद्ध उपयोग, वह परम समाधि, शुद्ध उपयोग, वह ही अखण्ड अद्वैत परमानन्द दशा, वह शुद्ध उपयोग की भक्ति। यहाँ तो उसकी भक्ति कहनी है न? द्रव्य की नहीं। आहाहा! **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** वह शुद्ध निश्चय-सत्य उपयोग—अपने परिणाम शुद्ध... लो! मुनि को तो ऐसा शुद्धउपयोग की भक्तिवाला कहा। और वह कहे, शुद्ध-उपयोग यहाँ होता नहीं। भगवान! अरे! चौथे से होता है, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! इतना हल्का न मान! समझ में आया?

वह **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** लो। निश्चय उपयोग भक्तिवाला है। पुण्य-पाप का उपयोग अशुद्ध, वह तो संसार है। धर्मी जीव शुद्ध निश्चय उपयोग भक्तिवाला है। अरे! आचार्य देखो न! कहते हैं, **'इदरस्स य किह हवे जोगो'** पाठ है न! अरे! दूसरे को यह कहाँ से हो? अरे! ऐसा दूसरे को कहाँ से होगा? अरे! रंक के घर में ऐसे रत्न कहाँ से हों? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पुण्य के विकल्प

में धर्म माननेवाले ऐसे रंक के घर में ऐसे रत्न कहाँ से होंगे? कहते हैं। कहो, चिमनभाई! ऐसी बात है। भाई! बहुत कठिन, परन्तु बहुत फलदायक। आहाहा! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो...' ऐसा जिसका फल, उसके काल की दशा तो ऐसी ही हो न, भाई! एकान्त लगे तो यह सम्यक् एकान्त ही है। 'ही' शब्द प्रयोग किया है न? सम्यक् एकान्त ही है यह। समझ में आया?

ऐसे **तपोधन ही...** ऐसा ऐसे ही, दूसरे नहीं—इसका नाम अनेकान्त है। ऐसे अनेकान्त किया, देखो! ऐसा नहीं कि शुद्ध उपयोग भक्तिवाला, वह धर्मी और शुभ परिणामवाला भी धर्मी। अरे! कहा है न प्रवचनसार में? कि शुभोपयोगी भी साधु है और शुद्धोपयोगी भी साधु है। ऐसा आया है, लो। वह तो उसकी भूमिका में शुभ का विकल्प हो, तथापि वह निर्विकल्प (अतीन्द्रिय) आनन्द की दशासहित है। उसे (विकल्प के कारण से) शुभोपयोगी (कहा), है वह आस्रववाला—ऐसा कहा। आहाहा! और शुद्धोपयोगी वह निरास्रवी साधु है। आहाहा! समझ में आया? अरे! उसकी एक समय की दशा अलौकिक! एक समय में अनन्त केवलाान को दे, ऐसी वह दशा है। आहाहा!

ऐसा यह मार्ग... मार्ग किसे कहते हैं? पंथ। पंथ में जाने से पूरा हो जहाँ, उस पंथ का अन्त वहाँ है। मार्ग में जाने से जहाँ मार्ग का (लक्ष्य) गाँव आया, वहाँ अन्त आ गया। इसी प्रकार इस मार्ग में जाने से जहाँ पूर्ण दशा हुई, मार्ग का—पंथ का अन्त (आया)। पंथ का अन्त वहाँ पंथ का फल। समझ में आया? अरे! ऐसा धर्म और यह अकेले निश्चय... निश्चय... निश्चय... निश्चय का सिरफोड़ी हो, ऐसा कहना है यहाँ तो। भाई! तेरे सत्य को सिरफोड़ा में डाल? नहीं डाला जाता, बापू! आहाहा! ऐसा परम सत्य का ज्ञान और परम सत्य की श्रद्धा और परम सत्य की रमणता वह कुटारो (—मजदूरी) लगे, (तो) कुट गया भगवान! तू वहाँ। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें? अपूर्व है, परन्तु कैसे कहा जाता है, कौनसा ढंग है, कौनसी शैली है, किस प्रकार से है—यह समझने में आना चाहिए न! समझ में आया?

अरे! **दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे**—अर्थात्? अरे! विकल्प में, शुभरागादि में ठीक मानता हो, उसे यह **योगभक्ति किसप्रकार हो सकती है?** समझ में

आया? अस्ति-नास्ति कहा। वजुभाई! ऐसा वीतराग जैनमार्ग है। सभी जैन... जैन... करे। वे कहे, हम स्थानकवासी जैन, वे कहे हम मन्दिरमार्गी, वे (कहे) दिगम्बर। अरे भाई! जैन हुआ, वह तो जिन होनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! जैन, वह कोई सम्प्रदाय नहीं, उसका (-वस्तु का) स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? अरे! दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी... आहाहा! क्या कहते हैं? अरे! बाह्य के ज्ञान, बाह्य की श्रद्धा, बाह्य विकल्प का भाव—इनके फलरूप से यह सामग्रियाँ, उनमें कुछ भी मुझे ठीक है, ऐसे बाह्य प्रपंच में पड़े हुए को, अरेरे! यह आत्मा कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें? भाई को जरा बुखार है गुलाबचन्दजी को। यह तो... में वहाँ चलता है। कुछ हुआ है....

आहाहा! बहुत अलौकिक गाथा! एक-एक गाथा में, एक व्याख्यान में पूरा। ऐसा कोई परमात्मा की ओम ध्वनि में एक-एक समय में पूरा (आवे)। आहाहा! पूरा भगवान उसमें से पूरा ही आवे न! ऐसी बात साक्षात् सर्वज्ञ ने कही हुई (और) सर्वज्ञ के मुख से झेलकर अनुभव करके आयी हुई (बात है)। समझ में आया? दुनिया के साथ मिलान खाये—न खाये, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, दुनिया के साथ जोड़ना नहीं, भाई! ऐसे स्वरूप को दुनिया के साथ ऐसा मिलान नहीं खाता, इसलिए यह क्या? विरोध करे इसलिए... बापू! यह तो जगत में चलता है। ऐसे मार्ग की कोई निन्दा करे तो अभक्ति नहीं करना। आता है न पीछे? ऐसा मार्ग है, उसका कोई विरोध करे, निन्दा करे, भाई! इससे, सत्य तो ऐसा है, उसके प्रति भक्ति को छोड़ना नहीं। समझ में आया?

दुनिया विरोध में पड़े, निन्दा में पड़े। स्वभाव है उसका अनादि से। बापू! उसकी निन्दा और विरोध देखकर, 'ऐसा मार्ग है, यही मार्ग है, इसी मार्ग से मुक्ति मिलती है'—ऐसी भक्ति छोड़ना नहीं तू। समझ में आया? (बात) न बैठे तो ईर्ष्याभाव से कोई निन्दा करे, ... उसमें उसका अज्ञान का दोष है। अज्ञान का दोष है। वस्तु तो यह है। समझ में आया? यह अनेकान्त कहा। देखो! विशिष्टता तो देखो। ओहोहो! गाथा में कितनी बात डाली है! **'इदरस्स य कह हवे जोगो'** दूसरे को ऐसा उपयोग—शुद्धोपयोग(रूप) भक्ति कहाँ से होगी? आहाहा! समझ में आया? अर्थात् कि नहीं

होगी। इसे होगी, उसे नहीं होगी। यह अनेकान्त कहा। वे कहें कि व्यवहार से भी होता है, निश्चय से भी होता है, निमित्त से भी होता है, उपादान से भी होता है—इसका नाम अनेकान्त। अरे भगवान! भाई! तू भूल में पड़ा है, हों! भगवान को तूने भूल में डाला। यहाँ तो अभूल में हो, यह बात करनी है। आहाहा!

अरे! '**इदरस्स य कह हवे जोगो**' ऐसे स्थितिवन्त को ही ऐसी शुद्धोपयोग की भक्ति होती है। उसकी समझण में और उसकी श्रद्धा में यह बोल पक्का पकड़ना चाहिए पहला कि ऐसे मार्ग के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। दुनिया उलट जाये, देव उलट जाये, समझ में आया? तो भी मार्ग तो यह है, दूसरा है नहीं। संख्या थोड़ी हो या बहुत हो—उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। स्वीकार करनेवाले... कोई थोड़े स्वीकार करे, थोड़े उसमें हों। थोड़े या बहुत, एक ही हो, वह ऐसा तत्त्व है। आहाहा! अरे! **दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—**कितनी भाषा डाली है! पर्यायबुद्धिवाले को, रागबुद्धिवाले को, निमित्तबुद्धिवाले को और वीतराग ने कहे हुए तत्त्व के सिवाय अन्य तत्त्व की बुद्धिवाले को... समझ में आया? अरे! दूसरे को अर्थात् बाह्यप्रपंच में बाह्य का विस्तार... ओहोहो!

क्या है शब्द? '**बाह्यप्रपंचसुखस्य**' अनेक प्रकार का विस्तार बाह्य का (हो), कहते हैं। शुभभाव, पर्यायबुद्धि, अशुभभाव, शुभभाव के असंख्य प्रकार, बाहर की भक्ति, यात्रा—उसमें रुके हुए जीवों को यह कहाँ से हो? बाह्यप्रपंच में सुखी अर्थात् उसमें कुछ होगा, उससे कुछ होगा—ऐसा माननेवाले को यह कैसे होगा? जयसुखभाई! यह लॉजिक से—न्याय से तो बात चलती है। आहाहा! अरेरे! ऐसा मार्ग। उसके घर की पूँजी की खबर नहीं उसे। मेरे घर में पूँजी कितनी, उसकी खबर नहीं। धूल की पूँजी के अंक की खबर है। जहर के अंक। यह अमृत का सागर भगवान, जिसकी नजर करने से निधान प्रगट हों और आनन्द की लहर आवे, ऐसा जो भगवान, कहते हैं कि ऐसे शुद्धयोग भक्तिवाले को प्राप्त होता है, दूसरे को नहीं। आहाहा!

व्यवहार में मग्न है, अरे! यहाँ तो कहते हैं कि बाह्य शास्त्र का जानपना लाख-करोड़ का किया, उसमें मगन होकर वह सब प्रपंच में पड़े हैं। आहाहा! समझ में

आया ? **दूसरे को... 'इदरस्स'** बाह्यप्रपंच में सुखी अर्थात् ? सुख का स्वाद उसमें से कुछ होगा, उसमें से कुछ (होगा), परम्परा से कुछ होगा। अरे! ऐसे जीव को उसकी— शुद्धयोग की भक्ति कहाँ से होगी ? उसे, स्वरूप में जुड़ना और जुड़ने की भक्ति कहाँ से होगी ? समझ में आया ? आहाहा!

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—श्लोक है।

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते॥

श्लोकार्थः—आत्मप्रयत्नसापेक्ष विशिष्ट... खास **जो मनोगति** अर्थात् चैतन्य की परिणति। आहाहा! '**आत्मप्रयत्न**' है न ? शुभाशुभ का प्रयत्न नहीं, वह तो आत्मप्रयत्न। शुद्ध भगवान आत्मा का प्रयत्नसापेक्ष... उसके सहित के लक्ष्यवाला, दृष्टिवाला प्रयत्नसापेक्ष विशिष्ट... जो खास मनोगति अर्थात् शुद्ध परिणति। समझ में आया ? '**आत्मप्रयत्नसापेक्ष...** आत्मा का प्रयत्न न ? आत्मा तो आनन्द की... उसकी समझण में, लक्ष्य में लेकर अन्तर में उतरना, वह तो दुस्तर है। समझ में आया ? वह तो अलौकिक—लोकोत्तर... ऐसा **आत्मप्रयत्नसापेक्ष...** खास... **विशिष्ट** है न ? खास परिणति अर्थात् कि शुद्ध परिणति, ऐसा। ऐसे तो शुभ-अशुभ परिणाम की परिणति तो अनादि से चलती है। वह नहीं, वह तो जहर है, भाई! आहाहा!

दूसरे बहुत ऐसा कहे, यह सब मार्ग भले हो, परन्तु उसका कोई दूसरा उपाय है ? दूसरा साधन है ? श्रीमद् में भी एक पत्र ऐसा आता है, लो। अध्यात्म में साधन-बाधन को उड़ावे... तो साधन बिना करना कैसे ? एक आता है, पूरा एक पत्र आता है। ...अध्यात्मियों ने साधन को उड़ा दिया। ...ऐसा आता है। किस अपेक्षा से है ? समझ में आया ? ऐई! खबर है ? बड़ा पत्र है। है... आहाहा! यहाँ तो साधन भी आत्मा, साध्य भी आत्मा। समझ में आया ? विकल्प और देव-गुरु साधन नहीं। यह नय-निक्षेप और प्रमाण से (निर्णय) किया हुआ ज्ञान भी साधन नहीं। गजब बात है, बापू! आहाहा! समझ में आया ? नय, निक्षेप और प्रमाण उसे जाना हुआ ज्ञान, वह भी जहाँ साधन नहीं हो। आहाहा! उसे निमित्त से साधन तो (कार्य) हो, तब कहा जाये।

नय-निक्षेप, उसमें आता है न (समयसार की) १३वीं गाथा में? नय-निक्षेप, वह भी अभूतार्थ है। आहाहा! गजब बात है! बात की पद्धति भी, कहने की पद्धति कठिन है। उसके तत्त्व का लक्ष्य उसकी दृष्टि में आया नहीं। नय से—निश्चयनय से ऐसा है, व्यवहारनय से ऐसा है। निक्षेप से—द्रव्यनिक्षेप की योग्यता, भावनिक्षेप की प्रगटता, नामनिक्षेप की गुण.... संज्ञा, स्थापना—आकार इत्यादि चार निक्षेप का सच्चा ज्ञान किया। नय का निश्चय-व्यवहार का (ज्ञान और) प्रमाण—यह द्रव्य, वह ऐसा है और पर्याय ऐसे दो होकर प्रमाण। वह भी व्यवहार, परलक्ष्यी ज्ञान है। अन्तर साधन में काम करने में (काम का नहीं)। समझ में आया?

ऐसी मनोगति... है तो शुद्धपरिणति। **उसका ब्रह्म में संयोग...** ऐसा कहते हैं। देखो! परिणति में ब्रह्म को स्थापित करना, उसमें कहे परिणति को ऐसे ब्रह्म में संयोग—ऐसा कहा। शुद्धपरिणति का ब्रह्म में संयोग **होना (-आत्मप्रयत्न की अपेक्षावाली विशेष प्रकार की...)** ज्ञानपरिणति—**चित्तपरिणति का...** अर्थात् ज्ञानपरिणति **(आत्मा में लगना),...** इस निर्मलपरिणति का आत्मा में जुड़ना। समझ में आया? **उसे योग कहा जाता है।** लो, उसे योग, योग अर्थात् मोक्ष का मार्ग, योग अर्थात् जुड़ना। यह दूसरे योगी और योग कहते हैं, वे सब गप्प ही गप्प है। शान्तिभाई! गये कहाँ? यह योगसाधन करो, ऐसा करो, आसन लगाओ, ऐसा करो, ऊँचे-नीचे होओ। यह सब गप्प ही गप्प है। यह योग, आहाहा! जिसमें विकल्प की भी आवश्यकता नहीं, ऐसा शुद्धोपयोग का योग—आत्मा को जोड़ो, वह योग है। जैनदर्शन वीतरागमार्ग में वस्तु के स्वरूप में ऐसे को योग कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **उसे योग कहा जाता है।** अब, स्वयं मुनि कहते हैं।

आत्मानमात्मनात्मायं युनक्त्येव निरन्तरम्।
स योगभक्तियुक्तः स्यान्निश्चयेन मुनीश्वरः ॥२२८॥

श्लोकार्थः—जो यह आत्मा... पूर्ण आनन्दस्वरूप आत्मा, उस **आत्मा को...** ऐसे आत्मा को **आत्मा के साथ...** भाषा देखो! आत्मा अर्थात् शुद्ध परिणति के साथ। उसमें 'परिणति को ब्रह्म में जोड़कर' कहा। यहाँ आत्मा निरन्तर शुद्ध परिणति के साथ **निरंतर**

जोड़ता है... समझ में आया? तीन 'आत्मा' शब्द पड़े हैं। आत्मा—प्रत्यक्ष भगवान आत्मा वह अपने आत्मा के साथ अर्थात् कि समाधि के साथ—निज अखण्ड अद्वैत परमानन्द के साथ निरन्तर जोड़ता है। आहाहा! अपनी निर्मल परिणति के साथ आत्मा को जोड़ता है। आहाहा! **वह मुनीश्वर निश्चय से योगभक्तिवाला है।** वह धर्मात्मा सच्चे आत्मा के व्यापार की भक्तिवाला है। आत्मा के व्यापार की भक्तिवाला है। लो, यह व्यापारी ..... त्रिकाली भगवान आत्मा का योग अर्थात् व्यापार, उसकी भक्तिवाला वह यह है। उसे अल्प काल में मुक्ति होगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १५, मंगलवार, दिनांक - १९-१०-१९७१
गाथा-१३८, प्रवचन-१५४

यह नियमसार, परम-भक्ति अधिकार है। (गाथा) १३८। यह नियमसार है। नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। मोक्ष अर्थात् आत्मा का परम सुख, उसके पंथ में पड़ने का भाव, उसे यहाँ नियमसार कहते हैं। संसार में लोग प्रतिकूल चीज़ हो, तब ऐसा मानते हैं कि यह हमको प्रतिकूल है। परन्तु प्रतिकूल, आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव विकारी भाव, वही प्रतिकूल है। उसकी इसे खबर नहीं। बाहर का संयोग प्रतिकूल आवे इसलिए ऐसा लगे कि अरे! हम दुःखी हैं। बाहर का संयोग अनुकूल आवे, इसलिए ऐसा माने कल्पना से कि हम सुखी हैं। दोनों कल्पना जीव के स्वभाव से विरुद्ध—प्रतिकूल है। संयोग प्रतिकूल नहीं। उस संयोग के भाव से रहित आत्मा है और संयोग के लक्ष्य से होनेवाले विकल्प—प्रतिकूल पुण्य और पाप, उनसे भी रहित है। १३८ (गाथा) देखो!

सव्ववियप्पाभावे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो॥१३८॥

सब ही विकल्प अभाव में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३८॥

भक्ति का अधिकार है। भगवान देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह तो शुभभाव है। सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा भाव आवे, परन्तु अशुभ से बचने जितनी उसकी व्याख्या है। अर्थात् क्या? दृष्टि शुद्ध के ऊपर है, इसलिए उससे अशुभ टलता है। आत्मा की दृष्टि है शुद्ध चैतन्य की, जहाँ अशुभभाव हो, वहाँ स्व का आश्रय थोड़ा है, शुभभाव हो, तब स्व का आश्रय जरा अधिक है। उससे वह अशुभ से बचता है, इतना जितना वह भाव कहा जाता है। समझ में आया? बाकी यहाँ तो कहते हैं कि सर्व विकल्प का अभाव... मार्ग देखता है न मार्ग। अरे! यह दुःख के पंथ में पड़ा है। चौरासी के अवतार के कारण, वे सब दुःख के पंथ हैं। पुण्य-पाप के विकल्प, राग शुभ और अशुभ, वह सब दुःखरूप

है। वह स्वभाव से प्रतिकूल है। उसका अभाव... ऐसा कहा न!

टीका : यह भी पूर्व सूत्र की भाँति निश्चय-योगभक्ति का स्वरूप कहा है। निश्चय योगभक्ति अर्थात् कि आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्यघनस्वरूप है, ऐसा जो आत्मा, उसे पुण्य-पाप के विकल्प में न रखकर, उसे निर्मल परिणति में जोड़ना। परिणति निर्मल है, उसे आत्मा के साथ जोड़ना, वह तो ठीक है। परन्तु उसका अर्थ ही यह है कि आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्य ध्रुव... ध्रुव, उसे उसकी शुद्ध परिणति में जोड़ना। इसका नाम योग अर्थात् स्वरूप की शुद्ध उपयोग की भक्ति कहा जाता है। अरे, गजब! समझ में आया? यह मार्ग, भाई! अन्दर का अलग है। बाहर से प्राप्त हो, ऐसा नहीं। कहते हैं, **निश्चय-योगभक्ति का स्वरूप कहा है।** व्यवहार के विकल्प हों, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति तो व्यवहार पुण्य का कारण है। समकिती को, हों! समझ में आया? अज्ञानी को जहाँ दृष्टि राग के ऊपर है अथवा एक समय की पर्याय के ऊपर दृष्टि है, वह तो कहीं से बचा नहीं, पूरा-पूरा अज्ञान में पड़ा है। समझ में आया?

यह सूत्र कहा है इन्होंने। गाथा को सूत्र कहा है। **पूर्व सूत्र की भाँति...** तो यह भी सूत्र हुआ न! सूत्र, वीतराग की वाणी, सन्तों की वाणी—प्रत्येक गाथा सूत्र है। वीतरागी मुनि थे, वे सब—कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव वीतराग भगवन्त थे। उनकी वाणी को यहाँ सूत्र कहा जाता है। उस **पूर्व सूत्र की भाँति निश्चय-योग...** निर्मल आत्मा की विकल्प अर्थात् रागरहित की परिणति, जो सुखरूप दशा और पूर्ण सुख का जो कारण, साधन, निमित्त... समझ में आया? आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को वर्तमान शुद्ध परिणति में जोड़कर रखना, इसका नाम सच्ची योगभक्ति; आत्मा की भक्ति नहीं, परन्तु यह योगभक्ति। यह पर्याय की भक्ति उसे कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा ऐसी है कि पकड़ना कठिन पुराने लोगों को। जादवजीभाई! कहते हैं कि उसे सच्ची योगभक्ति कहा जाता है, उसका यहाँ स्वरूप है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में ऐसी सच्ची योगभक्ति का स्वरूप आया, ऐसा सन्त कह रहे हैं। कहते हैं कि तेरा आत्मा पुण्य-पाप के विकल्पों से रहित है, ऐसी रहितपने की दृष्टि करके जो निर्मल शुद्ध उपयोग अन्तर आकार समाधि अति निज अद्वैत, अखण्ड, परमानन्द पर्याय को भजना, उसका नाम योगभक्ति है। समझ में आया?

अब टीका की शुरुआत। **अति-अपूर्व निरुपराग रत्नत्रयात्मक,...** सम्यग्दर्शन में थोड़ी शुद्ध परिणति के साथ आत्मा जुड़ता है; श्रावक की शान्ति की विशेष दशा में आत्मा विशेष जुड़ता है; मुनि की शुद्ध परिणति में (इससे) विशेष जुड़ता है। समझ में आया? ऐसा समाधि अर्थात् मोक्ष का मार्ग; मोक्ष का मार्ग अर्थात् दु:ख से छूटने का और सुख की पूर्ण आत्मलब्धि—प्राप्ति का उपाय, वह अति अपूर्व है। कभी उसने किया नहीं। समझ में आया? **अति-अपूर्व निरुपराग...** दूसरा शब्द। यह मोक्षमार्ग की पर्याय के सब विशेषण हैं। अन्तर समाधि अर्थात् शान्ति। पुण्य-पाप के भाव, वे अशान्ति और असमाधि और दु:ख हैं। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव वह अशान्ति है, दु:ख है, तत्त्व के स्वभाव से विपरीत भाव है। उसका अभाव अर्थात् शुद्ध परिणति का सद्भाव, ऐसा लिया। समझ में आया? जो त्रिकाली भगवान के अवलम्बन से प्रगट हुई परिणति अर्थात् धर्म, अर्थात् पूर्ण सुख को प्राप्ति का पंथ, अन्तर्मुखाकार दशा ऐसी शान्ति और समाधि, वह पुण्य-पाप के रागरहित है, आहाहा! वह निरुपराग है—उसे राग है नहीं। आहाहा! भारी कठिन ऐसी बातें। इसे समझना (कठिन)।

आत्मा के शुद्ध परिणाम की भक्ति, वह भक्ति सच्ची है। उस भक्ति के जो परिणाम निरुपराग है। आहाहा! उसमें विकल्प का अंश नहीं, राग का अंश नहीं। समझ में आया? एक तो अति अपूर्व है। वह आत्मा की शुद्धदशा, वह आत्मलब्धि अर्थात् मुक्ति अर्थात् पूर्णानन्द का कारण अथवा निमित्त, पूर्ण आनन्द का जो निमित्त शुद्धपरिणति। मूल उपादान त्रिकाली। समझ में आया? ऐसी निरुपराग... 'नि' व्युत्सर्ग है। व्युत्सर्ग है। निरुपराग, जिसमें विकल्प की गन्ध नहीं। आहाहा! भगवान का नामस्मरण आदि भाव जो राग, उसका जिसमें भाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? निरुपराग रत्नत्रयस्वरूप... सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र (अर्थात्) पूर्ण आत्मा की प्रतीति, पूर्ण आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान और पूर्ण आत्मा में लीनता, ऐसी जो रत्नत्रयस्वरूप दशा। वह **निजचिद्विलासलक्षण...** आहाहा! वह निज... है न नीचे अर्थ, देखो!

परम समाधि अति-अपूर्व शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप है। धर्म की दशा, वह तो अति अपूर्व शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप है, उसे धर्म कहते हैं। ऐसा **परम समाधि का लक्षण निज चैतन्य का विलास है।** आहाहा! यह पर्याय की बात चलती है, हों! निज ज्ञानविलास-

लक्षण... ज्ञान का विलास—अन्तर में सम्यग्ज्ञान की मौज। आहाहा! परमसमाधि का लक्षण निज चैतन्य का विलास है। समाधि-समाधि करते हैं दूसरे बाबा न! वह नहीं। परमसमाधि का लक्षण तो निज चैतन्य का आनन्द का विलास हो, उसे योग और समाधि कहते हैं। समझ में आया? यह बाबा और योगी करते हैं, समाधि कराते हैं न, पन्द्रह दिन, महीना, दो महीना दबाकर रखे, ... निकले फिर महीने में। ओहो! समाधि ऐसी। धूल भी नहीं। अशान्ति और असमाधि थी।

समाधि तो उसे कहते हैं कि जिसमें सहज परम समाधि का निज चैतन्य का विलास जिसका लक्षण है। पुण्य-पाप का राग भी नहीं, शरीर की क्रिया भी नहीं। अरे! भारी कठिन ऐसा। परन्तु उसका कुछ पहला हल्का रास्ता होगा या नहीं? पहला अर्थात् यह। पहला भी यह, अन्तिम भी यह और मार्ग सब यह। अन्त यह का यह है। समझ में आया? कहते हैं कि **निजचिद्विलासलक्षण निर्विकल्प परमसमाधि...** आहाहा! '**सव्ववियप्पाभावे**' शब्द पड़ा है न पाठ में? '**सव्ववियप्पाभावे**' इसकी व्याख्या की। भारी कठिन! ...भाई! कठिन धर्म ऐसा! यह तो उसे उस प्रकार की मजा और छटा में अभी यह सुनना मिले नहीं। आहाहा! पाँच-पचास हजार, लाख-दो लाख की आमदनी, लड़के अच्छे, शरीर गोरा रूपवान। मर गया उसी और उसी में। यह मेरे, यह मेरे। जो चीज़ इसकी नहीं, उसे मेरा (मानना), 'मेरा है' में वह रह गया। समझ में आया? मेरा तो, चैतन्य शुद्ध आनन्दस्वभाव की परिणति वह उसकी है। समझ में आया? अरे! ऐसी बात कब थी? क्या कहते हैं यह पकड़ में आना (कठिन)। इसकी अपेक्षा तो भगवान की भक्ति करना, गुरु की भक्ति करना... यह भगवान तो ... कठिन है। आहाहा!

भाई! तू ही स्वयं भगवान है, तुझे तू दृष्टि में परमेश्वर स्थाप। मैं ही परमेश्वर हूँ। मेरी महत्ता के समक्ष जगत की महत्ता कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक समय की पर्याय की भी मेरी चीज़ के समक्ष महत्ता नहीं। परन्तु वह पर्याय प्रगटे कैसे? कि त्रिकाली वस्तु का अवलम्बन लेकर प्रगटे, उसे यहाँ निर्विकल्प समाधि, मोक्ष का मार्ग कहा है। आहाहा! गजब! भाई! तू ढल गया है पर्याय में, विकार में। यह पुण्य और पाप के विकल्प में होंश और उत्साह और उल्लास में चढ़ गया है। यह दुःख के समुद्र में उल्लसित है तू। आहाहा! सुख का सागर भगवान आत्मा, उसकी अन्तर में

उल्लसित वीर्य से और निर्मल रागरहित परिणति—दशा को यहाँ परम समाधि कहते हैं। परम समाधि कहो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो, मोक्ष का मार्ग कहो, शुद्धोपयोग भक्ति कहो। आहाहा! मूल बात रह गयी, ऊपर की डालियाँ तोड़ने लगे। पत्ते और डालियाँ, वे तो सीधे पल्लवित होंगे महीने में। इमली होती है न उसका मूल तो ऐसा का ऐसा सुरक्षित हो, पत्ते तोड़ रखे करोड़ों, परन्तु वह तो महीने में पल्लवित हो जायेंगे वापस। इसी प्रकार राग की मन्दता की प्रवृत्ति की क्रिया, उसमें माने बैठे कि हमने कुछ बहुत किया है। आहाहा! सब उल्टा है, भाई!

निजचिद्विलासलक्षण... उसका लक्षण यह है, कहते हैं। राग और व्यवहार उसका लक्षण नहीं है। समझ में आया? सुखी होने का पंथ, वह निज चिद्विलास है। दुःखी होने का पंथ यह पुण्य-पाप के विकल्प में ठीक है, ऐसा मानकर रमना, वह दुःख के पंथ में पड़ा है। आहाहा! परन्तु अज्ञानी बाहर प्रतिकूलता आवे, तब दुःखी है, ऐसा मानता है। रोग आवे, निर्धनता हो, हाय... हाय... क्योंकि संयोग के ऊपर दृष्टि है न! संयोग प्रतिकूल लगे तो दुःखी, परन्तु अन्दर विकार स्वयं दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह दिवाली की बात है। दि—दिवस अर्थात् स्वकाल को झुका अन्दर में और अन्दर में झुका तो उस परिणति में आत्मा स्थिर हुआ, ऐसा है। वह अनादि से राग में—दुःख में अटका था। वह निज चिद्विलास ऐसी आनन्द की दशा, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं, उसे परम समाधि कहते हैं, उसे उपयोग की भक्ति कहते हैं, निश्चय उपयोग की भक्ति कहते हैं। आहाहा! नये लोगों को जवान को तो ऐसा लगता है कि क्या बात (कहते) हैं। दुकान में धन्धा करता हो तो, भाई! धन्धा कम करना, यह करना, तो कुछ सूझ पड़े। धन्धा कौन करता है? सुन न! वह जड़ की क्रिया है। उस समय का तेरा राग, वह दुःखरूप दशा का व्यापार है। आहाहा!

कहते हैं कि **निजचिद्विलास...** अपना ज्ञानविलास, ऐसा कहते हैं, हों! अकेला शास्त्रज्ञान भी नहीं। आहाहा! निज चिद्-ज्ञानविलास लक्षण... निर्विकल्प जिसमें राग का अंश नहीं। अरे! समकित आठ वर्ष की बालिका हो, परन्तु अपनी निर्विकल्प समाधि में मौज होती है। समझ में आया? आहाहा! भले जघन्यरूप से हो, मुनि को उत्कृष्ट बहुत हो, परन्तु है तो निर्विकल्प शान्ति, उसका नाम धर्म और मुक्ति का पंथ

कहा जाता है। आहाहा! **परमसमाधि द्वारा...** वह पर्याय हुई। **समस्त मोहरागद्वेषादि विविध विकल्पों का अभाव होने पर,...** ऐसी पर्याय के उत्पाद से... ऐसा कहते हैं। समस्त मिथ्यात्व और विविध प्रकार के विकल्प शुभाशुभ—उसका उसे व्यय हो जाता है। समझ में आया? त्रिकाली भगवान आत्मा का आश्रय लेने से जो निर्मल वीतरागी शुद्ध शान्ति की पर्याय उत्पन्न हुई। उत्पन्न हुई, उसी काल में सर्व विकल्पों का व्यय होता है। समझ में आया?

उसका **अभाव होने पर...** उसका अभाव होने पर **परम समरसीभाव के साथ...** भाषा देखो! परम समाधि कहो, अन्तर्मुखाकार कहो... उसमें दूसरा लिया है। **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ...** लिया कल की गाथा में। **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप...** यह पर्याय की व्याख्या है। अपनी जो पर्याय है धर्म की अवस्था, वह निज, अखण्ड, अद्वैत, परमानन्दस्वरूप है। आहाहा! बलुभाई! यह कभी सुना भी नहीं होगा। उसमें मुम्बई, भारी धमाधम। दो दिन में तो कुछ अनजाने... आहाहा! धमाल... धमाल... उस शोरबकोर का काल वाँचा था न! यह देखो! शोरबकोर यह सब। उसमें हिम्मतभाई के मकान के ऊपर वह चलता है। ऐयरोप्लेन (एयरपोर्ट) नजदीक है न? हिम्मतभाई झोबालिया। दूध पीने गये थे न गुरुवार सवेरे। ऊपर ऊं... ऊं... करता हुआ.... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जो पुण्य-पाप के विकल्प का जो शोरगुल, वह दुःख है। वह तो संयोगी चीज़ है। समझ में आया? ऐसे शोरगुल बिना की चीज़ की दृष्टि करने से... आहाहा! **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप...** वहाँ ऐसा कहा था। यहाँ कहते हैं कि **परमसमरसीभाव...** सब वह की वह भाषा है। परम समरसी... पुण्य-पाप का भाव, वह विषमभाव है, दुःखभाव है। उससे रहित अन्तर्मुख दृष्टि करके जो पर्याय—परिणति उत्पन्न हुई, वह समरसीभाव है। समरसीभाव कहो, विकल्परहित भाव कहो, समाधि कहो, मोक्ष का मार्ग कहो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो। आहाहा! समझ में आया? इसके साथ... निर्विकल्प समाधि, वह समरसीभाव है, उसके साथ आत्मा को जोड़ो, ऐसा कहते हैं। परिणति को आत्मा के साथ जोड़ना, वह तो ठीक।

(समयसार) दूसरी गाथा में ऐसा आता है कि '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**'

जीव दर्शन-ज्ञान में स्थित है। यह स्थित है, वह स्वसमय है। ध्रुव को जोड़ा का अर्थ? जोड़ता है तो पर्याय, परन्तु ध्रुव के ऊपर दृष्टि है, इसलिए इस ओर पर्याय ढली है, ऐसा कहते हैं। ध्रुव की पर्याय इस ओर ढली है। ध्रुव तो ध्रुव है। ध्रुव को कहाँ परिणमना है, ढलना है कहाँ? परन्तु जो ध्रुव पर नजर होने से जो परिणति हुई, उसमें ध्रुव जुड़ गया है, जो पर्याय राग में जुड़ती थी, वह उसमें जुड़ी है। ध्रुव की पर्याय राग में जुड़ती थी, वह अराग में जुड़ गयी अर्थात् द्रव्य—कारणसमयसार ही उसमें जुड़ा है, ऐसा अभेद से कहा। देखो! शब्द यह है न! समरसीभाव के साथ... आहाहा!

निरवशेषरूप से अन्तर्मुख निज कारणसमयसारस्वरूप को... सदा जोड़ता ही है,... सदा जोड़ता ही है,... आहाहा! धर्मी का मार्ग तो अन्तर वीतरागी परिणति में सदा ही परिणम ही रहा है। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव तो ध्रुव है, परन्तु ध्रुव (की ओर) का झुकाव पर्याय का (होना चाहिए वह) ऐसे (बाह्य में) था, वह पर्याय का झुकाव निर्मल के ऊपर हुआ है। उस ध्रुव को ऐसे जोड़ा, यह कहा जाता है। ध्रुव तो ध्रुव है, परन्तु ध्रुव (की ओर) का झुकाव पर्याय का (होना चाहिए वह) ऐसा था विकार में, वह निर्विकार में आया। निज कारणसमयसार को निज परिणति में जोड़ता है। आहाहा! यह कल आया था या अन्यत्र आया था? कल यह आया था। **निज कारणपरमात्मा को...** ऐसा वहाँ कहा। निज कारणपरमात्मा को जोड़ना है। अरे भाषा! कारणपरमात्मा तो है वहाँ है, उसमें तो पर्याय भी नहीं, परिणमन भी नहीं। परन्तु उसका अर्थ कि त्रिकाली भगवान आत्मा को पकड़ने से उसका ज्ञान और श्रद्धा व्यापक होने से उस परिणति में ध्रुव है, वह ध्रुव राग में नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? अरे! ऐसी गाथा!

वीतराग का मार्ग कैसा है? यही मार्ग है, दूसरा मार्ग अन्यत्र कहीं होता नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा के सिवाय कहीं यह बात होती नहीं। क्योंकि द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों जहाँ प्रत्यक्ष हो गये हैं, उनकी यह व्याख्या है। द्रव्य-गुण तो कूटस्थ—ध्रुव है, परन्तु पर्याय में ऐसा जो पर्याय अटकती थी, वह पर्याय निर्मल होकर आत्मा वहाँ अटका। अटकी है तो पर्याय, परन्तु ध्रुव के लक्ष्य से हुई पर्याय (को कहा कि) 'वहाँ अटका है ध्रुव उसमें' ऐसा कहा जाता है। उसकी शैली ही ऐसी है। '**जीवो**' वहाँ भी आया न? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' जीव तो ध्रुव है। परन्तु ऐसे पर्याय में रागादि थे, उन्हें

छोड़कर निर्विकल्प परिणति के साथ **निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** लो, कारणसमयसार-स्वरूप भगवान आत्मा ध्रुव जो नित्य, वह तो पूरा-पूरा अन्तर्मुख है। वस्तु तो वह अन्तर्मुख है। समझ में आया? अरे! यह कहाँ?

यह आँखें-बाँखें—डेला मिट्टी के हैं, जड़ के हैं। वास्तव में तो पुण्य-पाप भी अचेतन हैं। वे कहीं चैतन्य की जाति (नहीं क्योंकि) चैतन्य ज्ञानानन्द का अंश उनमें नहीं। शुभभाव हो या अशुभ हो, वह अचेतन है। आहाहा! चैतन्य भगवान का निज चैतन्यविलास, वह चैतन्य है, ऐसा कहते हैं। वह राग है, वह चैतन्य नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होता है, पहला व्यवहार पश्चात् (निश्चय) होता है, ऐसा वस्तु में नहीं है, ऐसा कहते हैं। व्यवहारपक्षीवाले को तो, व्यवहार से (-व्यवहार का पक्ष पकड़कर) वह उड़ता है न वह पक्षी, उसे तो ऐसा कठिन लगे। अरे! उसमें एक पहलू पूरा उड़ जाता है। निश्चय और व्यवहार दोनों हों, उसमें व्यवहार उड़े, परन्तु वह व्यवहार उड़े, तब निश्चय होता है। समझ में आया? कुछ बाकी रखे बिना... भगवान आत्मा तो अन्तर्मुख है। पूरा-पूरा अन्तर्मुख वस्तु है। पर्याय, वह बहिर्मुख है वास्तव में तो। आहाहा! पर्याय को बहिर्तत्त्व कहा है। यह निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है उसके (ध्रुव के) सामने। तो विकल्प की बात तो क्या करना? समझ में आया?

ध्रुव की दृष्टि हुई, इसलिए मानो ऐसा जुड़ान हुआ। उसके आश्रय से प्रगट हुई, उसमें वास्तव में तो पर्याय का जुड़ान है, परन्तु उस ध्रुव को ऐसी परिणति के साथ जोड़ता है। वहाँ आगे उसकी पर्याय स्थित करता है, बाहर नहीं जाने देता। आहाहा! ओहोहो! पुण्य के विकल्प में नहीं जाने देता, इसलिए पूर्ण स्वरूप को उसमें स्थिर करता है, स्थिर है, स्थापित करता है, ऐसा कहने में आता है। यह तो वीतराग के वचन हैं। समझ में आया? आहाहा! जिसकी परिणति का फल सादि-अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसकी हद नहीं, ऐसे काल (के लिये) पूर्ण आनन्द और शान्ति प्राप्त हो और इस कषाय की अग्नि का दावानल बुझ जाये, वह मार्ग तो अलग है, भाई! समझ में आया? उसे इसे पहले लक्ष्य में लेना पड़ेगा। बाहर की अनुकूलता शरीर की, पैसे की, पुत्र की आदि 'वह अनुकूल है' यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। वास्तव में तो मोक्ष के मार्ग को अनुकूल उसकी शुद्ध परिणति है। समझ में आया?

पूरे आनन्द के भाव को... दूसरा क्या नाम आया? बीस विहारमान है न? उसका अर्थ किया है एक कच्छी ने... बहुत वर्ष पहले का प्राचीन है... प्राचीन है। इस ओर पृष्ठ पर लिखा है। मोक्ष का मार्ग, वह मोक्ष का निमित्त है। पर्याय है न? ध्रुव, वह मूल उपादानकारण है। देवसूरि... अर्थ उस कच्छी ने किये हैं। समझ में आया? पर्याय जो निर्मल शान्ति, अनाकुल आनन्द, उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहते हैं। कोई कहता है न कि चारित्र में बहुत कष्ट है, भाई! आहाहा! अरे, भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! चारित्र की श्रद्धा ही तुझे उल्टी है। समझ में आया? चारित्र तो रेत का ग्रास है। दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना, यह चारित्र ऐसा है। अरे, भगवान! यह व्याख्या चारित्र की नहीं, हों!

मुमुक्षु : उल्टी व्याख्या।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी व्याख्या? तुम वहाँ तो हाँ करते थे न? आहाहा!

यहाँ तो परमसमाधि जिसका लक्षण है, ऐसा मोक्षमार्ग... आहाहा! पण्डितजी! अरे, भाई! ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें जो करने का नहीं करे और कहीं का कहीं रास्ते चढ़ जायेगा, फिर हो गया, गुमा देगा। समझ में आया? जिसे लक्ष्य में भी नहीं कि मार्ग की पद्धति क्या है, वह कहाँ जाकर पटकेगा? आहाहा! कहते हैं कि पूर्ण अन्तर्मुख भगवान है। **निरवशेष** है न? ऐसा **निज कारणसमयसार...** देखो! निज—अपना कारणप्रभु त्रिकाली ध्रुव, निज परमात्मा कहो या निज कारण कहो, परमात्मस्वरूप समयसार निज प्रभु, निज आत्मा... आहाहा! उसे **जो अति-आसन्नभव्य जीव...** ओहो! जिसे अल्प काल में संसार का अन्त है। अति आसन्न—बहुत ही नजदीक। जिसे केवलज्ञान नजदीक है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे अल्पकाल में अनन्त-अनन्त आनन्द प्रगट होनेवाला है, अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन हो जानेवाला है। ऐसे **अति-आसन्नभव्य (भव्य) जीव...** भव्य जीव **सदा जोड़ता ही है,...** ऐसा शब्द है न? **'सदा युनक्त्येव' 'युनक्त्येव'** (अर्थात्) जोड़ता है। **'एव'** है न **'एव'** ? संस्कृत में है न? **'सदा युनक्त्येव'** आहाहा! अपना ऐसा कारण-समयसार प्रभु, उसे ऐसी परिणति के साथ जोड़ता है, अर्थात् कि उसकी परिणति निर्मल हुई है। राग की परिणति उसे रही नहीं। सम्यग्दर्शन होने से राग की परिणति धर्मी को

होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि भगवान द्रव्य और गुण दोनों शुद्ध हैं। और शुद्ध का जहाँ स्वीकार होकर परिणमन हुआ, वह तो शुद्ध ही होता है। अशुद्ध उसकी पर्याय में भी नहीं, यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है। अशुद्ध में रहा है या अशुद्ध परिणति उसे होती है—यह है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह दिवाली के... क्या कहलाता है? घुघरा और तुम्हारे कुछ कहते हैं न? फाफड़ा और घुघरा नहीं बनाते? दिवाली की बोणी कराओ, ऐसा कुछ कहते हैं। भाई... यह दिवाली की बोणी है। आहाहा!

अरे! तेरा शरीर और तेरी इज्जत और लक्ष्मी, वे सब अन्धकार है। वह सन्ध्या गयी और अन्धकार होगा। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसे अभी भास नहीं, परन्तु प्रतिकूल हो, तब भास होता है। आहाहा! अरे! अकेला... कुछ रहा नहीं, हम अकेले, ऐसा कहते हैं। आया था न कोई गढडावाला... ऐई जयन्तीभाई! वे गढडावाले, नहीं? कामदार के दामाद। क्या नाम? भावनगर। प्रभुदास... प्रभुदास। आहाहा! प्रभुभाई थे प्रभुदास। (संवत्) १९८१ में आये थे वहाँ। भावनगर कामदार के दामाद, लाल पगड़ी पहनते थे। भावनगरी। यह व्याख्यान चलता था। ८१ की बात है। उसमें वह कहे, महाराज! मैं अकेला गया था, हों! फिर स्त्री, पुत्र, परिवार, पैसा, सुपारी की दुकान थी सुपारी की, मुम्बई में। पैसे हुए। यह ४८ वर्ष में जैसा गया, वैसा अकेला वापस आया। दस लाख हुए, वे सब गये। यह पैसे भी गये, सुपारी का धन्धा भी गया। जैसा गया, वैसा आया। (संवत्) ८१ में बात हुई थी। जयन्तीभाई के याद न रहे... बहुत वर्ष हुए। १९ और २७ = ४६ वर्ष हुए। आहाहा!

यों भी अकेला ही जाता है न! कहाँ (कोई साथ आता है)? आहाहा! यहाँ से उठेगा, हो गया। आहाहा! उसके साथ उसके कर्म हैं। कर्म तो अपने कारण से जाते हैं, उसके कारण से नहीं। उसके कारण से, जड़ की पर्याय गति जड़ के कारण से करती है। इसके कारण से नहीं वहाँ भी। आहाहा! उसकी जो परिणति हो शुद्ध या अशुद्ध, वह साथ में होती है। आहाहा! प्रभु! तेरा साथ—साथी तो शुद्ध परिणति का चाहिए, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसे भगवान को अपनी शुद्धदशा में रखता है... उसका परिणमन—ध्रुव का परिणमन... ध्रुव तो ध्रुव है, परन्तु उसकी ओर का परिणमन, वह

ध्रुव का परिणमन कहा जाता है। आहाहा! ध्रुव तो कहाँ परिणमता है? ध्रुव का कहाँ अनुभव है? परन्तु वह राग का अनुभव था (वहाँ से छूटकर) ध्रुव की परिणति (हुई), वह ध्रुव का अनुभव कहा जाता है।

ऐसे **कारणसमयसारस्वरूप को जो अति-आसन्न भव्य जीव...** आहाहा! **सदा जोड़ता ही है,...** यहाँ तो 'सदा जोड़ता है' ऐसा नहीं, (परन्तु) **सदा जोड़ता ही है,...** आहाहा! यह थोड़ा परन्तु अमृत है यह, हों! मार्ग, सन्तों का मार्ग कहा, वह यह है। उसके और कुछ ढीलापन, पोचापन करने जायेगा, तो मार्ग नहीं रहेगा, बापू! आहाहा! समझ में आया? जो उसका नियम है, उसमें आड़ा-टेढ़ा-ढीलापन करने जायेगा (तो) नहीं बनेगा, भाई! आहाहा! भले दुनिया को न बैठे, समझ में आया? दुनिया इसके पक्ष में—इस बात में न आवे और शास्त्र के आधार से विरोध भी करे। हो, विरोध करे कि यह व्यवहार रहा, यह व्यवहार साधन कहा है, यह व्यवहार हेतु कहा है। कहो। उसे शास्त्र के अर्थ की खबर नहीं होती। पण्डितजी!

सदा जोड़ता ही है,... आहाहा! क्या कहते हैं? भारी गजब टीका है, हों! अर्थात् कि जिसकी परिणति निर्मल हो गयी ही है। अब निर्मल परिणति ही बहती है। आहाहा! उसे अशुद्धता और निमित्त उसमें कुछ छूते नहीं। समझ में आये उतना समझना। मार्ग तो यह है। अकेला निश्चय का और परमार्थ का लगे, परन्तु मार्ग तो निश्चय का यही सत्य है, बाकी सब अभूतार्थ—असत्य है। आहाहा! समझ में आया? अरे! अपने आनन्द को भूलकर कहीं न कहीं उल्लसित होकर, यह ठीक है, शरीर सुन्दर, इज्जत सुन्दर, स्त्री सुन्दर, पुत्र अच्छे, पैसे अच्छे, मकान... आहा... प्रभु! तू अच्छा नहीं न? यह अच्छे। भाई! इसमें तू नष्ट हो जाता है, भाई! तुझे खबर नहीं। इसमें तेरा खून होता है। समझ में आया? राग में जुड़कर ऐसा मानना कि मुझे ठीक है, यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु कारणप्रभु के स्वीकार का अनादर हो जाता है। यही हिंसा है। पर की हिंसा करे कौन और मारे कौन? समझ में आया? कहो, हसमुख! यह दुकान पर बैठे हो और ऐसी सब आमदनी दो-दो लाख, ढाई लाख की आमदनी, पाँच सौ-सात सौ रुपये प्रतिदिन की आमदनी, पागल हजारों आवे, पाँच-सात लाख की उगाही प्रतिदिन, पाँच-पाँच दस-दस हजार आते हों, अब कहीं मजा आवे या न आवे? कहीं जरा भी न आवे?

मुमुक्षु : प्रतिकूलता के समय.... अनुकूलता (में) तो मजा ही आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुकूलता किसे कहना? वह तो ज्ञेय है। उसकी तो बात हो गई। मुक्ति के लिये अनुकूलता आत्मा की शुद्ध परिणति, प्रतिकूलता मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव। शुद्ध परिणति, वह मुक्ति का अनुकूल निमित्त और अशुद्ध परिणति, वह अकेला दुःख का समुद्र। वह प्रतिकूल, संयोग प्रतिकूल नहीं है।

इसकी दृष्टि बाहर के ऊपर गयी है, बाहर के साधन व्यवस्थित हो न ऐसे। दो-पाँच हजार का वेतन हो और दो-पाँच-दस लाख की पूँजी हो, शरीर कहीं रूपवान सांढ़ जैसा हो। आहाहा! ऊँट-ऊँट जैसा... अरे भगवान! यह तो माँस-हड्डियाँ हैं प्रभु! तू उसमें नहीं और तुझमें वह नहीं। अरे! विकार तुझमें नहीं, अब उसकी (—शरीर की) बात क्या करना? समझ में आया? पुण्य और पाप भाव तुझमें नहीं। बापू! तू तो बड़ा है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर परमात्मा ने ऐसा कहा है। ऐसी बात सम्प्रदाय में सुनने को मिले नहीं, इसलिए यह सुनकर ऐसा हो जाता है कि अरेरे! यह क्या होगा? आहाहा! जेठाभाई! इन जेठाभाई ने बहुत मुंडाया था वहाँ पानी... गर्म पानी पीते और बहुत किया है, नहीं? पहले-वहले आये थे... तब भड़के थे व्याख्यान में, नहीं? यह महाराज बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। भरत को समकित बा तो ऐसा होता है और वैसा होता है। आहाहा! बापू! सत्य का रणकार कोई अलग प्रकार का है। समझ में आया?

उसे वास्तव में—उसे सही में **निश्चयोगभक्ति है...** ऐसे जीव को, जिसे शुभाशुभभाव से रहित शुद्धपरिणति है... विकल्प से रहित है न? निर्मल वीतराग परिणति का अवलम्बन भगवान (आत्मा है), वह भगवान शुद्धपरिणति में रहा, वह शुद्धपरिणति, वह सच्ची भक्ति है। उसे सच्ची भक्ति कहा जाता है। देखो न! पूरा भक्ति का अधिकार डाला है। वे लोग अटक गये हैं न कितने ही? बाहर की भक्ति से कल्याण हो जायेगा। लगाओ, धुन लगाओ... धुन लगाओ। धुन लगाओ तो कर्ता होगा राग का, राग में एकाकार होगा, वह तो मिथ्यात्वभाव है। भाई ने—निहालभाई ने लिखा है एकबार। भाई! देव-शास्त्र-गुरु मिलना, वह तो पुण्य का योग है। भाई! देव-गुरु-शास्त्र मिलना, वह तो पुण्य का योग है और उनकी भक्ति करना, वह शुभभाव है। परन्तु शुभभाव में धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है, वह पाप है। सुनने का मिला, वह पुण्य है, परन्तु सुनना

मिलने में जो शुभभाव होता है, वह पुण्य है (परन्तु) उसे धर्म मानना, वह मिथ्यात्वपाप है। वह पुण्य का योग मिला और ऐसा माना तो पाप हुआ। आहाहा! जयसुखभाई! ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा!

अरेरे! बाहर में खाना-पीना, मोटरें, मार डाले जगत को। आहाहा! ठाठ-बाठ और ओहोहो... भाई! तेरी शान्ति का घात हो जाता है। यह शान्ति जो अनन्त काल में नहीं (मिली)। कहा न पहला। **अति अपूर्व...** आहाहा! ऐसी जो पुण्य-पाप के राग बिना की शुद्धभाव की भक्ति, उसे सच्ची भक्ति कहा जाता है। आहाहा! आत्मा की भक्ति, ऐसा नहीं कहा यहाँ। उसकी परिणति की भक्ति। परिणति की भक्ति—पर्याय की भक्ति। आहाहा! समझ में आया? यह योगासन करो और ऐसा करो, ऐसा करो। बापू! यह सब मर जाने के रास्ते हैं। यह योगासन है। चैतन्यस्वभाव भगवान ने कहा, देखा, वैसा जानकर उसमें स्थिर होना, वह योगासन है। समझ में आया? गजब मार्ग! अरे! दिवाली में जरा थोड़ा-सा पुण्य कहे न (कि) पुण्य से ऐसा होगा, पुण्य से चक्रवर्ती हुआ जाता है, तीर्थंकर हुआ जाता है... आहाहा!

जिस भाव से तीर्थंकर (गोत्र) बँधे, उस भाववाले को उस भव में मोक्ष नहीं होगा, पंच कल्याणक की अपेक्षा से (बात है)। समझ में आया? महाविदेह की अपेक्षा से अलग बात है। महाविदेह में तो उस भव में बाँधकर उसी भव में (भी मोक्ष) जाते हैं। महाविदेह में कोई जीव, उस भव में तीर्थंकरगोत्र बाँधे और उसी भव में केवल(ज्ञान) लेकर मोक्ष जाये। अन्यत्र नहीं होता। परन्तु यहाँ तो अपने पाँच कल्याणकवाले लेना है न? जिस भव में बाँधा, उस भव में केवल(ज्ञान) नहीं ले सकते। इतनी पुरुषार्थ की कमी थी उस जाति की। समझ में आया? अटका क्यों यहाँ? आहाहा! कोई कहे, परन्तु तीर्थंकरप्रकृति बाँधी, इसलिए तीर्थंकर होना निश्चित हो गया। उसके कारण से निश्चित हुआ या अपने स्वभाव के कारण से निश्चित हुआ? विकार के परिणाम और उससे बन्ध हुआ—उससे निश्चित हुआ?

उसे वास्तव में निश्चय... अर्थात् सच्ची **योग...** अर्थात् स्वरूप की एकाग्रता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान को उसकी भक्ति कहा जाता है। आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! निश्चययोगभक्ति पर्याय है—अवस्था है। निर्मल का भजन बारम्बार हुआ करना (ऐसी)

परिणति की धारा, उसका नाम भक्ति। आहाहा! व्याख्या भक्ति की अलग है। समझ में आया? **दूसरों को नहीं।** पाठ है न? अरेरे! दूसरे को कैसे हो यह? देखो! है न? **'इदरस्स य कहि हवे जोगो'** इस अतिरिक्त की दूसरी पद्धति करे, उसे कहाँ से ऐसा योग होगा? ऐसी सच्ची योगभक्ति कहाँ से होगी? ऐसा आचार्य को जरा (विकल्प आया कि) अरे! उसे योगभक्ति होती है। दूसरों को—पर में लाभ माननेवाले, पुण्य से लाभ माननेवाले, पर्यायबुद्धि में अटके हुए को—यह भक्ति कहाँ से होगी? समझ में आया? ऐसा करके अनेकान्त किया है। इससे होती है और इससे होती है, यह अनेकान्त—ऐसा नहीं। इसी प्रकार से होती है और दूसरे प्रकार से नहीं होती, इसका नाम यहाँ अनेकान्त सिद्ध करते हैं।

देखो न! **जोड़ता है ही...** है न? श्रीमद् में तो ऐसा आता है कि मेरा महावीर 'ही' नहीं कहता कहीं। वह तो तत्त्व की स्याद्वाद शैली की अपेक्षा से (कहा है)। यह तो ऐसा ही है। समझ में आया? **है ही...** स्वभाव के आश्रय से होती निर्मल परिणति, वह ही, सदा जुड़ान आत्मा का वहाँ है। राग का जुड़ान नहीं, व्यवहार का जुड़ान (नहीं), व्यवहार को छूता भी नहीं ज्ञानी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो जगत पूरा यहाँ है, उससे क्या? ऐसा व्यवहार भी होता है। वह तो जगत में गया। उसकी पर्याय में वह छूता भी नहीं उसे। आहाहा! कहो, भीखाभाई! ऐसा मार्ग भारी कठिन लगे। चर्चा करूँ मैं समयसार में से चर्चा करूँ, लो, ठीक बापू! भाई!

समयसार में बारहवीं गाथा आवे न, सब घोड़ा हो जाये वहाँ। **'व्यवहारदेसिदापुण'** व्यवहार दिखाया है निचलीदशावाले को। अरे! ऐसा नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। इसका अर्थ ही ऐसा नहीं। निचलीदशावाले की परिणति तो ऐसी ही होती है, परन्तु वहाँ रागादि आवे उसे जाने, उसका नाम 'उपदेश कहा' ऐसा कहा जाता है। ऐसी बात है। ... बारहवीं गाथा। निचलेवाले को व्यवहार का उपदेश चाहिए, ऊपरवाले को निश्चय का। लो, ठीक! आहाहा! अरे, प्रभु! वहाँ उपदेश की बात ही नहीं। वहाँ तो 'जाना हुआ प्रयोजवान' है, (ऐसा कहा है)। लो, इसका श्लोक कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १, बुधवार, दिनांक - २०-१०-१९७१
श्लोक-२२९, गाथा-१३९, प्रवचन-१५५

यह नियमसार, परम-भक्ति अधिकार। परम-भक्ति कहो या निश्चय मोक्षमार्ग कहो, (जो) दुःख से छूटने का उपाय है। अनन्त काल से चौरासी के अवतार में आकुलता से दुःखी है यह। चारों गतियाँ दुःखरूप हैं। परद्रव्य के अनुसार होते भाव का चार गति फल है। मोक्ष-पूर्णानन्द की प्राप्ति जिस भाव से हो, उस भाव को यहाँ परम-भक्ति कहते हैं। पर्याय को, हों! पर्याय। श्लोक २२९ है।

भेदाभावे सतीयं स्याद्योग-भक्ति-रनुत्तमा।
तयात्मलब्धिरूपा सा मुक्तिर्भवति योगिनाम्॥२२९॥

योगी अर्थात् कि आत्मा के स्वभाव में जुड़ान करनेवाला, उसे योगी कहते हैं। सम्यग्दृष्टि भी योगी है। समझ में आया? जिसने राग और विकार का जुड़ान छोड़ दिया है और त्रिकाल भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति प्रभु में जुड़ान अर्थात् जो एकाग्र हुआ है, वह योगी कहलाता है। धर्मी भी योगी कहलाता है। कैसा योगी?

श्लोकार्थः—भेद का अभाव होने पर... पहले ऐसा सिद्ध करते हैं कि भगवान आत्मा अनन्त आनन्द आदि गुणसम्पन्न है, तथापि उसकी पर्याय में—अवस्था में विकल्प है, पुण्य-पाप के विकल्प हैं और एक समय की पर्याय (का लक्ष्य) है। उसका **अभाव होने पर...** वह विकल्प जो है या एक समय की पर्याय का लक्ष्य है—वह सब भेद का लक्ष्य है। उसका **अभाव होने पर...** भाषा समझाना किस प्रकार? ऐसे तो कहे कि अभेद की दृष्टि होने पर भेद का अभाव होता है। वस्तु की स्थिति तो ऐसी है। आहाहा!

देखो! यह सुप्रभात है। सच्चा सुप्रभात, उसकी यह व्याख्या है। सुप्रभात दो प्रकार से है। एक आत्मा त्रिकाली आनन्दस्वरूप का अनुभव होना (और) मिथ्यात्व का नाश होना और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होना, वह भी एक सुप्रभात है और उसके फलरूप से केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य प्रगट होना, वह

मूल सुप्रभात है। समझ में आया? सुप्रभात वर्ष लगा, वह लगा। सादि-अनन्त काल वह दशा रहे, उसे सुप्रभात कहते हैं। यह प्रभात तो उगता है और वापस शाम को अस्त होता है। आहाहा! (दोपहर में) सूर्य ऊपर जाता है, ऐसे फिर आड़ा रहे, ऐसे आड़ा जाये, शाम को ऐसे आड़ा जाये। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा... वह चंडिम का श्लोक है न। समयसार नाटक में तो उसमें से मिथ्यात्व के नाश की ही बात ली है। भाई ने—पण्डित जयचन्द्रजी ने केवलज्ञान लिया है। '**चित्पिण्डचण्डिम**' (समयसार कलश २६८)। केवलदर्शन प्रगट हो, पूर्ण दर्शन—केवलदर्शन, वह सुप्रभात है। केवलज्ञान चिद्-प्रकाश... एक समय में पूर्ण पर्याय की प्रगटता ज्ञान की, वह सुप्रभात, आनन्द (में) स्थित अनन्त आनन्द का प्रगट होना। किससे प्रगटे? योग से प्रगटे। वह यहाँ आयेगा यहाँ। समझ में आया? और अचल अर्चि वीर्य। अनन्त बल-वीर्य जो है, वह भी सुप्रभात के चार बोल में से एक बोल है। अनन्त चतुष्टय... पण्डितजी! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसी जो पर्याय में—अवस्था में प्रगट दशा होती है, वह अनन्तचतुष्टय प्रगट होता है, वह अन्दर पड़ा है। समझ में आया? यह द्रव्यस्वभाव में उसका शक्तिरूप तत्त्व पड़ा है।

सवेरे कहा था कि अरिहन्त स्वयं ही है। आहाहा! उसका स्वभाव जो अरिहन्त का एक समय की पर्याय का, ऐसे तो अनन्त-अनन्त स्वभाव अन्दर पड़े हैं। ऐसा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य जो प्रगटरूप हो, उस आनन्द के वेदनवाली सुप्रभातदशा है और त्रिकाल में पड़ा हुआ है, वह शक्तिरूप है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान वस्तु के अन्तर स्वभाव में त्रिकाल पड़े हैं। वह महासुप्रभात उगने का कारण है। कहो, समझ में आया? कहते हैं कि उसकी वर्तमान दशा में विकल्प है। आहाहा! आत्मा चैतन्यसूर्य है। आहाहा! भगवान आत्मा वस्तुरूप से चैतन्यसूर्य, आनन्द का कन्द, वीर्य का पिण्ड, दर्शन का अकेला रसकन्द है। ऐसा आतमा, उसकी वर्तमानदशा में तो विकल्प उठे, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

रागादि के भाव हैं, विशेष एक समय की अवस्था भी है। पर्याय-अवस्था है, जिसमें कार्य होता है, ऐसी दशा है। यदि वह दशा न हो तो कार्य होगा नहीं। ध्रुव तो

त्रिकाल है। आहाहा! वह अवस्था (में) त्रिकाली वस्तु भगवान अस्ति महाप्रभु चैतन्यसत्ता अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का पिण्ड प्रभु को प्रगट करने के लिये... वह तो है वह है, परन्तु उसे—ज्ञायक को प्रगट किया, ऐसा कहा जाता है। राग और पुण्य के विकल्पों की प्रतीति थी, तब प्रगट नहीं हुआ था, ऐसा कहा। समझ में आया? शुभ-अशुभराग और एक समय की पर्याय की रुचि और उतने में अस्तित्व माना था, वह ज्ञायकभाव वहाँ प्रगट नहीं हुआ था। वहाँ एक समय की दशा और विकल्प प्रगट हुए। समझ में आया?

कहते हैं कि **भेद का अभाव होने पर...** मूल तो 'विकल्प का अभाव होने पर' कहना है न। (गाथा १३८ के) पाठ में यह है न भाई! **'वियप्प'—विकल्प का अभाव होने पर...** समझ में आया? आहाहा! अरे! इसने कभी पंथ सुना नहीं, इसका सुख का रास्ता सुना नहीं। ऐसा का ऐसा दुःख में दौड़ रहा है। आहाहा! और होंश करके, स्वयं होंश करके बिच्छू पकड़कर कटवाता है अपने को। वह थे न एक मुनि। उनके शरीर की (सहनशक्ति) देखने के लिये... क्या नाम, भूल गये? देवराजजी। शरीर की (सहनशक्ति) देखने के लिये बिच्छू निकला तो उसे पैर छुआवे। देवराजजी थे। वे नहीं? आये थे, मेरे पास आये थे, वहाँ हीराभाई के मकान में। पंचाध्यायी दिया था। था होशियार दिमागवाला, परन्तु यह बात कहीं है नहीं। पकड़ने में मुश्किल पड़े। पंचाध्यायी, मैंने कहा, तर्क का विषय है। बुद्धिवाले पण्डितों को काम है इसमें तो। यहाँ आये तब ९२-९३ के बात है। ऐसा था कि बिच्छू निकले तो उसे पैर छुआवे। ऐसा कि काटता है, (तब) समभाव रख सकता हूँ या नहीं? वेदन कितना है?

उसी प्रकार यह देवराज, है तो आत्मा देवराज बड़ा। आहाहा! (देव अर्थात्) महा दिव्यशक्तिवाला, राज अर्थात् शोभित है, अपने आनन्द और ज्ञान से शोभित है, परन्तु वह पुण्य और पाप के विकल्प के बिच्छुओं को कटवाता है। समझ में आया? पुण्य और पाप की वृत्तियाँ दुःखरूप हैं... दुःखरूप हैं, दुःख का कारण है। उसका वह कारण और कार्य, ऐसा। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव वह स्वयं आकुलता और दुःख है और उसी और उसी को कारण और कार्य कहा जाता है। वह दुःख का कारण और दुःख का वह कार्य। यहाँ कहते हैं कि जिसे योगभक्ति करनी है, अर्थात् कि आत्मा की शान्ति जिसे प्रगट करनी है, वह **भेद का अभाव होने पर...** भेद का अभाव

करके... होने पर अर्थात् भेद का अभाव होने से, ऐसा। दृष्टि में अल्पज्ञता पर्याय और राग की सत्ता के स्वीकार में जो अज्ञानीरूप से दु:ख था, उसे अल्पज्ञपर्याय और विकल्प की दृष्टि छोड़कर... नास्ति से बात की है न! आहाहा!

पूरी दिशा बदलना, मार्ग बहुत कठिन भारी! दिशा बदले (तो) दशा बदले। जबतक उसे पुण्य-पाप के विकल्प और उसके फल और उसके बन्धन—वहाँ दृष्टि है, तबतक वह तो दु:खी है। परन्तु उसे खबर नहीं। उसकी दशा में दावानल सुलगता है। आहाहा! समझ में आया? उसकी दशा—पर्याय में कषाय का दावानल सुलगता है। परन्तु कहीं से दावानल लगता है? जिसे अपने रूप से माना, उसे दावानल कैसे लगे? और दावानल से रहित अपनेपने की जो आनन्द(रूप) वस्तु है, उसके भान बिना आनन्द के साथ दावानल को कैसे मिलान करे? समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु सत्ता तत्त्व है न, सत्त्व है न, अस्ति है न, सत्ता—अस्तिपने पदार्थ आत्मा है न! वह तो अनन्त गुण के अस्तिपने एकरूप उसका नाम आत्मा। परन्तु अनादि से अपना परमात्मा—अपना आत्मा, उसका लक्ष्य छोड़कर... लक्ष्य था और छोड़ा है—ऐसा कुछ नहीं। अनादि से उसे आत्मा वस्तु है, उसकी दृष्टि का अभाव है। दृष्टि के अभाव से भेद के भाव को, विकल्प को अपना मानता है। समझ में आया? परन्तु वह विकल्प के भाव और पर्यायरूपी भाव—भेद की दृष्टि छोड़ने से (अर्थात् कि) भेद का अभाव होने से... तब भेद है न? है, उसका अभाव है या न हो उसका अभाव (होता है)? समझ में आया? आहाहा!

भेद का अभाव होने पर... तब कोई ऐसा कहे कि यह तो भ्रम है। परन्तु भ्रम भी है या नहीं? यह भेद स्वयं भ्रम है। यदि न हो तो इसे आनन्द का अनुभव होना चाहिए। तो आनन्द के अनुभव की अस्ति—विद्यमानता नहीं, तो भेद के अनुभव की है। वह है, नहीं—ऐसा नहीं, दु:खरूप दशा है। समझ में आया? चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हो, चाहे तो राग, द्वेष, विषय, कषाय, भोग, कीर्ति के भाव हों—दोनों दु:खरूप दशा है। समझ में आया? वह यदि न हो तो, वस्तु तो आनन्दस्वरूप है तो उसे आनन्द आना चाहिए। आनन्द का तो अभाव है और दु:ख का सद्भाव है। पर्याय में दु:ख की

सत्ता—दु:ख की अस्ति है। आनन्द का अभाव है, इसलिए दु:ख की सत्ता है। आहाहा! बात न्याय से समझेंगे या नहीं?

अतीन्द्रिय आनन्द(स्वरूप) भगवान आत्मा वस्तु है, वह तो आनन्दमूर्ति है, उसमें दु:ख होगा? वस्तु में दु:ख होगा? वस्तु में विकार होगा? वस्तु विपरीत होगी? वस्तु विपरीत हो तो वस्तु(पना) छोड़कर विध्वंस हो जाये। समझ में आया? यह वस्तु भगवान आत्मा, जिसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द बसे हुए हैं, उसे वस्तु कहते हैं। ऐसी वस्तु के लक्ष्य और दृष्टि बिना अनादि काल से... आहाहा! शरीर, वाणी, पर जगत पूरा मेरा और मैं उसका—ऐसी भ्रमणा से इसने दु:ख के पर्वत पर सिर फोड़ा है। समझ में आया? आहाहा! अब आनन्द का पर्वत भगवान है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव ऐसा आत्मा वस्तु है।

कहते हैं कि जिसे **भेद का अभाव होने पर...** आहाहा! अस्ति सिद्ध की। विकल्प है, मैं पुण्य करता हूँ, पाप करता हूँ, शरीर मेरा, मैं इतना और इतना अंश—ऐसे सब भाव हैं। न हो तो उसके स्थान में उसके अभावस्वभावरूप आनन्द का वेदन चाहिए। वेदन, वह पर्याय का है, कहीं त्रिकाली का वेदन नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि **भेद का अभाव होने पर...** अभाव होने पर और अभाव करने पर... होने पर (अर्थात्) होकर, ऐसा। इस ओर (अभेद) होता है तो भेद का अभाव हो जाता है। ऐसा शब्द है। भेद का अभाव करने से... समझ में आया? समझ में आया? 'भेद का अभाव करने से' ऐसा शब्द नहीं लिया। भेद का अभाव होने से... आहाहा! ऐसे तो अनन्त पुरुषार्थ है वहाँ। समझ में आया? यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं वहाँ। आहाहा!

अरे! भगवान आत्मा जिसके घर में अतीन्द्रिय सुख का सागर स्वयं है। उसके सुख के स्वाद के समक्ष पूरी दुनिया सड़े हुए बिल्ली और कुत्ते जैसी लगे। यही (वस्तु) उसे अज्ञान में प्रीति का खेल हुआ है सब। यह अच्छा, यह अच्छा, शरीर अच्छा, स्त्री अच्छी, पुत्र अच्छा, पैसा अच्छा। आहाहा! यह सब अच्छे, परन्तु तू है या नहीं उसमें? तू अच्छा एक नहीं? एक अच्छा नहीं, दूसरे सब अच्छे। ज्ञानी को उन सब अच्छे के जो विकल्प हैं, उसका अभाव होता है। आहाहा! समझ में आया? नास्ति कहा न नास्ति?

भेद की नास्ति होने से—होने पर... यह कहीं कथा नहीं, वार्ता नहीं। यह तो आत्मा की भागवतकथा है। कथा सही, परन्तु आत्मा की भागवतकथा है, इसीलिए तो इसके एक-एक शब्द में रहस्य भरा है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! इसे जिन्दगी में कभी... यह मिला मनुष्य का भव... श्रीमद् ने कहा है न 'तो भी अरे भवचक्र का फेरा न एक कभी टला...' आहाहा! देखो न! करुणा से कहते हैं, हों! समझ में आया? 'तो भी अरे भवचक्र का फेरा न एक कभी टला...' एक चक्र टले तो सब टले। आहाहा! समझ में आया? चक्री फिरता है न मनुष्य ऐसे? वह एक बार ऐसे (उल्टा फिरे तो) स्थिर हो जाये। ऐसी चक्री करते-करते खड़ा रहने जाये तो पड़ जाये, खड़ा न रह सके। एक ऐसे गुलांट खा जाये। ऐसे फिरता हो और ऐसे एक गुलांट मारे (तो) खड़ा रह जाये। इसी प्रकार अनादि का पुण्य और पाप शरीर और विकल्प और पर्याय की दृष्टि के कारण चौरासी के चक्र में यह प्राणी चढ़ा है। आहाहा! यह घानी में पिलता है।

इसे एक बार कहते हैं कि अरे! ऐसा मनुष्यदेह मिला तुझे। भव का एक चक्र तो टाल प्रभु! गुलांट तो खा। आहाहा! भाई! तेरे मनुष्यदेह में करने का काल तो यह है। समझ में आया? परन्तु कठिन लगे न इसलिए फिर बेचारे को व्रत, तप, उपवास, पूजा, भक्ति और यात्रा में चढ़ा दिया। होता है, बीच में अशुभ से बचने को हो, परन्तु वह कहीं मूल चीज़ नहीं। वह तो भेद है। उसका तो अभाव करना है। आहाहा! समझ में आया? **भेद का अभाव होने पर...** पर्याय है, ऐसा सिद्ध किया, विकल्प है ऐसा सिद्ध किया, भेद है अभेद में, ऐसा सिद्ध किया। उसका **अभाव होने पर...** अर्थात् उसके ओर की दृष्टि छोड़ने से।

यह... प्रत्यक्षपना बताते हैं। **यह अनुत्तम...** ऐसी भक्ति... आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति प्रभु के आश्रय से जो होनेवाली निर्मलदशा, शुद्धदशा, पुण्य और पाप के रागरहित अर्थात् विकल्प बिना की निर्विकल्पदशा। आहाहा! **यह...** इससे प्रत्यक्ष है, ऐसा कहते हैं। जिसे मन और राग का सम्बन्ध नहीं, (क्योंकि) उसका तो अभाव किया है। समझ में आया? सम्बन्ध रहा तो एक ज्ञानानन्द के साथ। यह अनुत्तम

योगभक्ति वह है पर्याय। समझ में आया? सब शब्द इसमें प्रयोग किये हैं। वे योग, समाधि जितने लोगों ने नाम रखे हैं न, वे सब भाव में यहाँ प्रयोग किये हैं। योगी का योग, योगी की समाधि। परन्तु कौन सी समाधि? सुन न! आहाहा! भगवान आनन्द का धाम, उसमें अन्तर सन्मुख होना और उसकी शुद्ध परिणति निर्मल आनन्द की धारासहित दशा प्रगट होना, उसे यहाँ समाधि कहते हैं, उसे यहाँ योग कहते हैं, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं, उसे अन्तर्मुख आकृति की वीतरागी निर्विकल्पदशा कहते हैं, वह धर्म। समझ में आया? वीतरागमार्ग में यह धर्म है। अन्यत्र तो वह है नहीं। आहाहा!

अनुत्तम योगभक्ति... उसके जैसी कोई उत्तम नहीं। आहाहा! अर्थात् कि व्यवहार भक्ति आवे, वह कहीं उत्तम नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वीतरागता पूर्ण न हो तो बीच में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय, बहुमान, वाँचन, मनन, श्रवण, वह भाव आवे, समझ में आया? परन्तु वह कहीं उत्तम नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसके स्वयं के गुण की दशा कैसी होती है, और गुण कैसे होते हैं, (उसकी खबर नहीं)। गुण जब शुद्ध है, तब उसकी दशा शुद्ध होती है। समझ में आया? द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, ऐसे शुद्ध की परिणति—अवस्था भेद के भाव का लक्ष्य छोड़कर, भेद का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाली भगवान को परिणाम में जोड़ना। इसका अर्थ कि जो राग में है, उसे परिणाम में निर्मलदशा प्रगट करना। इसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र को माना, वह सम्यग्दर्शन। ऐसा व्यवहार कथन, श्रद्धा आदि तो अनन्त बार किये। समझ में आया?

'भवे भवे जिन पूजियो' ऐसा परमात्मप्रकाश में आता है। 'भवे भवे...' अनन्त भव में साक्षात् त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की भक्ति की, उनकी पूजा की, समवसरण में मणिरत्न के दीपक से आरती उतारी, परन्तु उसमें कुछ हुआ नहीं। समझ में आया? यह सब शुभभाव है। यह सर्वश्रेष्ठ—उत्तम दशा नहीं, यह तो हल्की दशा है। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भाई! क्या करे? लोगों को मिला नहीं न, इसलिए ऐसा लगे कि यह और ऐसा कहाँ से? कहाँ से नहीं, तुझमें से। तेरा स्वरूप ही यह है, भाई! समझ में आया? आहाहा! राजकुमार, जिनके घर में नीलमणि की टाईल्स नीचे, एक-एक नीलमणि की

टाईल्स की करोड़ों-अरबों की कीमत, ऐसे तो जिनके बँगले थे, अप्सरा जैसी जिन्हें रानियाँ थीं, उन्होंने यह आत्मा जहाँ देखा, जाना, भेद का अभाव करके जहाँ योगभक्ति हुई... आहाहा!

निर्मल... निर्मल दशा... निर्मलानन्द प्रभु को अवलम्बकर निर्मल दशा हुई, उसे योगभक्ति कहते हैं। समझ में आया? बाकी यह योगी योग करे और समाधि करे और ओम... ओम... ओम... और कुम्भक और रेचक—यह सब भटकने के रास्ते हैं। आहाहा! समझ में आया? **यह अनुत्तम योगभक्ति होती है;...** देखा! उसका (भेद का) अभाव होने से यह (भक्ति) होती है, ऐसा। यह अनुत्तम शान्ति की भक्ति, अकषाय परिणाम की भक्ति, अकषाय परिणाम का भजन, मोक्षमार्ग का भजन भेद का अभाव होने से होता है। बहुत कठिन काम! कहो, ...भाई! एक तो परम सत्य टंकोत्कीर्ण (बात) कान में पड़ना मुश्किल। पड़े तो उसे ऐसा लगे कि यह मार्ग, ऐसा मार्ग? यह तो नहीं हो सके ऐसा है, ऐसा कहे। हो सके—ऐसा है, उसकी यहाँ बात चलती है। क्या कहते हैं यह?

अभाव होने पर यह अनुत्तम योगभक्ति होती है;... होती है। समझ में आया? इसकी समझण में तो ले कि मार्ग तो यह है। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं। परन्तु इस जगत की हूंफ ऐसी और धर्म के नाम से क्रियाकाण्ड की हूंफ मार डालती है इसे। ऐसे व्रत पालन किये और ऐसे अपवास किये। मार डाले। और दुनिया महिमा करे। वे बेचारे सेठिया अपवास न कर सकते हों। आहाहा! धन्य... धन्य भाई! पर का मुंडना है न। वहाँ कहाँ इसे...? भाई! चढ़ा दे शूली पर। ऐसा कहे, आहाहा! बापू! अपने अपवास जैनधर्म के तो कठोर, चतुर्विध आहारत्याग, ओहोहो...! ऐसा और वैसा। कितनी महिमा करनी है तुझे? ऐई जादवजीभाई! ऐसा ही था। आहाहा! कठोर उपवास तो यह है कि जिसमें विकल्प का अभाव और निर्विकल्पदशा होना, उसका नाम कठोर उपवास है। जमुभाई! परन्तु तब सुना नहीं था। तब पहले सुना था हमने, कहा। कहो, समझ में आया?

अनुत्तम योगभक्ति होती है;... आहाहा! **उसके द्वारा...** लो, यह योगभक्ति, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। वह सुप्रभात की किरण उगी। आहाहा! समझ में आया? यह इसे वर्ष लगा। सिद्ध होने की दशा को अल्प काल—असंख्य समय है... असंख्य

समय ही होते हैं। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् चारित्र साथ में हो तो असंख्य समय में ही वह सिद्ध होता है। समझ में आया? आहाहा! यों भी सम्यक्त्व का उग्र आराधन हो तो भी असंख्य समय में ही केवलज्ञान पाता है। अरे! अनन्त काल जिसका भटकने में गया, उसे टालकर मुक्ति लेने में इतना काल नहीं चाहिए। उससे अनन्तवाँ भाग—असंख्य समय चाहिए।

कहते हैं कि ऐसे योगभक्ति से—**उसके द्वारा योगियों को...** वह व्यवहार का अभाव हुआ। व्यवहार से निश्चय हुआ, ऐसा नहीं कहा। **अभाव होने से...** आहाहा! मार्ग अलग है जरा। **उसके द्वारा...** अर्थात् कि व्यवहार के विकल्पों का अभाव होने पर (और) स्वभाव के किनारे जाने से, अन्तर में जाने से, गहरे-गहरे जाने से, जो पवित्र दशा—शुद्ध निर्मल परिणति—अवस्था होती है, वह मोक्ष का मार्ग, वह सुख का पंथ उसे प्रगट हुआ। अनादि मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान जो दुःख के पंथ में था, वह अब सुख के मार्ग में आया। मार्ग में आया न? पूरा होगा वहाँ फल आयेगा। परन्तु उसके द्वारा... समझ में आया?

ऐसे शुद्धोपयोग की परिणति द्वारा योगियों को अर्थात् कि धर्मी को अर्थात् कि आत्मा के स्वभाव का साधन करनेवाले को **आत्मलब्धिरूप ऐसी...** आहाहा! लो यह मुक्ति, लो यह सुप्रभात। आहाहा! सहज आ गया। समझ में आया? चैतन्य भगवान आत्मा का आश्रय लेकर, व्यवहार का अभाव होने से, जो निर्मल आनन्ददायक दशा प्रगट हुई, उसे योगभक्ति कहा, उसे धर्म कहा, उसे मोक्ष का मार्ग कहा। उसके द्वारा—ऐसे मार्ग द्वारा—ऐसी दशा द्वारा... यह समझ में आये ऐसी सादी भाषा में है। उसमें कहीं बहुत संस्कृत और व्याकरण बड़े पृष्ठ भरे हों तो समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं यह। समझ में आया? कल आया नहीं था सामान्य समकित? ज्ञान विशेष न हो, उसमें क्या है? बाहर का ज्ञान हो वह ज्ञान हो अन्दर का। अपना भगवान, उसे तो परीक्षा करके, निर्णय करके ध्येय कैसा हो? कि बनाया हो ज्ञेय। आहाहा! अरे! व्याख्या... यह सब उसमें आ गया।

उसका भगवान आत्मा—अपना स्वभाव, उसे स्पर्श किया, उसे तीन काल, तीन

लोक को जानने की पर्याय प्रगट होगी। उसे आत्मलब्धि कही, देखो! यह लब्धियाँ कहते हैं न कि लब्धि यह होती है, लब्धि यह होती है। वह लब्धि नहीं, यह लब्धि। कहते हैं न कि यह लब्धि प्रगट हुई, उससे यह होगा। हजारों लोगों के रूप कर सके, दो लड्डुओं में लाखों लोगों को जिमावे। उस धूल में क्या था? वह विक्रिया तो देव हो तो वह भी करे। समझ में आया? देव हो न अभव्य देव, बड़े बाईस-बाईस सागर के आयुष्यवाले, वे तो सब बता दे ऐसा। आहाहा! दो लड्डुओं में चक्रवर्ती की सेना को जिमा दे। देव है न। पुण्यप्रकृति है न। उसमें आत्मा कहाँ आया? वह लब्धि कहाँ आयी?

यह योगियों को... आहाहा! ऐसे आत्मा के स्वभाव की एकता द्वारा पूर्ण पर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य... लो, यह चतुष्टय आये, सुप्रभात। **आत्मलब्धिरूप...** ऐसी आत्मा की प्राप्तिरूपी ऐसी... लो, यह आत्मा की प्राप्ति हुई कहलाती है। द्रव्य से तो प्राप्ति थी द्रव्य की, परन्तु पर्याय में प्राप्ति पूरी हुई, तब आत्मलब्धि पूरी हो गयी। आहाहा! समझ में आया? इस प्रकार मुक्ति इसके द्वारा होती है, ऐसा कहते हैं। किसी के आशीर्वाद से, किसी की कृपा से होती है, ऐसा है नहीं। नवरंगभाई! यह कहा जाता है... कहो, समझ में आया? इसके द्वारा... **उसके द्वारा...** एक ही बात है। द्रव्य-वस्तु भगवान आत्मा, उसकी जो शुद्ध परिणति—शुद्धदशा, उसके द्वारा मुक्ति को पाता है। व्यवहार से नहीं, निमित्त से नहीं, पर की कृपा से नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अरे! इसे अपनी दया नहीं आयी। समझ में आया? अब मेरा क्या होगा? एक गाँव से दूसरे गाँव जाये तो थोड़ा पाथेय ले जाता है। खाने के समय क्या करना...?

मुमुक्षु : अब आवश्यकता नहीं। एयरोप्लेन में मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे कितने ही लोग होते हैं कि (बाहर का) खाते नहीं। यह रसोड़े की रसोई खाते नहीं, ऐसे लोग हैं न? यहाँ रसोड़ा, उसका भी नहीं खाते वे। वह मदनलालजी लो, पुष्प का बाप उदयपुरवाला। वह इस रसोड़े का नहीं खाता।... आता होगा? क्योंकि वहाँ रसोई बनावे हलवाई, वह कैसी हो, घी कैसा हो, कहाँ डाला हो, कहाँ जीवांत पड़ी हो? अन्धेरे में बनाया हो, उजाले की अपेक्षा ध्यान न रखा हो,

जीवांत भी हो गयी हो, सड़ गया हो कहीं। चींटी, मकोड़ा मर गया। बड़ा खाता हो पाँच सौ, हजार, दो हजार लोग जीमते हैं, वहाँ कौन ध्यान रखे? चावल में, यहाँ हमारे चावल में ईयळ निकले। लो, कहाँ ध्यान रखते हैं? रसोड़े में। लड़कियाँ आवे न करने, निकले अन्दर से... क्या कहलाती है चावल की? धनेरु। धनेरु (जीवन्त) निकला था एक बार।

अब यहाँ तो एक-दो व्यक्ति का हो (और) वहाँ हजार-दो हजार का हो। समझ में आया? ऐई, चन्दुभाई! आवे, तब बात आवे न सब। ...यह क्या? इतने चावल उन्हें बीनकर बनाया होगा या ऐसे का ऐसा? कहीं निकला नहीं था, नहीं? ईयल निकली थी, धनेरु निकला था। कीड़ी निकले, चावल में से निकले, दाल में से निकले। यह खुराक तो नहीं ली जा सकती। प्लेन में तो क्या हो? धूलधाणी, कुछ ठिकाना नहीं। वह कहे, वहाँ कुछ नहीं होता। मैं तो सामने बैठता हूँ न वहाँ? उसमें कुछ नहीं होता। आहाहा! अच्छे व्यक्ति का भोजन तो... यह तो अच्छे व्यक्ति का भोजन तो आनन्द का है, ऐसा कहते हैं। वह तो बाहर की बात पूरी। उड़कर घर में जाना हो केवलज्ञान में... आहाहा! समझ में आया?

उसे—ऐसे धर्मात्मा को ऐसे धर्म द्वारा... आहाहा! है न? उस द्वारा योगियों को, ऐसा। धर्मात्मा को यह धर्म की ऐसी पर्याय द्वारा आत्मलब्धिरूप पर्याय प्रगट होती है, उसे मुक्ति होती है। मार्ग आया, मार्ग का कर्ता आया, मार्ग का फल आया, व्यवहार का अभाव हुआ। बहुत स्पष्ट किया। कलश तो छोटा है। **ऐसी वह...** उसमें वापस ऐसा डाला भाई पण्डितजी ने। वह अर्थात् प्रसिद्ध ऐसा डाला है। है कुछ शब्द '**प्रसिद्ध**' का? '**सा**' '**सा मुक्ति**' प्रसिद्ध मुक्ति, ऐसा। '**तया**' है न?

मुमुक्षु : '**तयात्मलब्धिरूपा सा मुक्ति**'

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु 'वह' का अर्थ प्रसिद्ध क्यों किया, ऐसा कहता हूँ। वह मुक्ति, ऐसा। सिद्ध में ऐसा आता है। ऐसा आता है, सिद्ध की स्तुति में आता है। सिद्ध तो प्रसिद्ध है।

मुमुक्षु : प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्धसमूह....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। सिद्ध तो प्रसिद्ध है। ऐसी सिद्धदशा वह तो जगत में अनादि से प्रसिद्ध है, कहते हैं। वह कहीं अव्यक्त और अप्रसिद्ध नहीं। ऐसी आत्मा की मुक्ति प्रसिद्धि ऐसे प्राणी को होती है। व्यवहार के कर्ता और व्यवहार के आश्रयवाले को होती नहीं। आहाहा! निमित्त के अवलम्बनवाले को होती नहीं, ऐसा कहते हैं। तीर्थंकर स्वयं कहते हैं कि मेरे अवलम्बन से तेरी मुक्ति नहीं होगी। '**परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई**' (अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़, गाथा १६)। आहाहा! परद्रव्य के आश्रय से तो दुर्गति के परिणाम उत्पन्न होते हैं। दुर्गति अर्थात् मुक्ति के नहीं, ऐसा। चार गतियों को यहाँ दुर्गति कहा है। चन्दुभाई!

श्रीमद् में नहीं आया अपने? कल बताया नहीं धरमचन्दभाई ने? 'स्वद्रव्य की रक्षता शीघ्रता से करो, स्वद्रव्य की रक्षता शीघ्रता से करो, परद्रव्य की धारकता शीघ्रता से छोड़ो।' उसमें यह आया है। यह तो वह का वह है। लोगों को अर्थ करना नहीं आता न! 'स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्रता से होओ, स्वद्रव्य के व्यापक शीघ्रता से होओ।' स्वद्रव्य में व्यापक होओ, परद्रव्य को छोड़। तीर्थंकर स्वयं कहते हैं कि मुझे छोड़। आहाहा! मेरे सामने देखना छोड़। वस्तुस्थिति हो, ऐसा कहे या दूसरा कहे? आहाहा! परद्रव्य की ग्राहकता शीघ्रता से छोड़ (अर्थात्) परद्रव्य को पकड़ना छोड़ दे। स्वद्रव्य का आश्रय नहीं हो तब तक। समझ में आया?

'स्वद्रव्य के रक्षक, रमक शीघ्रता से होओ, स्वद्रव्य के ग्राहक शीघ्रता से होओ।' कल बताया था न पुस्तक में? सन्त की वाणी। स्वद्रव्य की रक्षता पर लक्ष्य दे। स्वद्रव्य की रक्षता... लो, यह नूतनवर्ष के दिन आया। समझ में आया? अहमदाबाद में आया था, पहले शुरु किया था तब। स्वद्रव्य की रक्षता पर लक्ष्य दे। मेरा रक्षण कैसे हो? यह मन्दिर का रक्षण कौन करे? भगवान कहाँ रक्षण करने आवे ऐसा है? वे तो स्थित हैं आनन्द में। आहाहा! परद्रव्य की धारकता, परद्रव्य की धारणा छोड़ शीघ्रता से। व्यवहार का भाव, परद्रव्य की रमणता... परद्रव्य की रमणता... परद्रव्य के लक्ष्य से होनेवाले विकल्प की रमणता शीघ्रता से छोड़। परद्रव्य की ग्राहकता शीघ्रता से छोड़। **वह (प्रसिद्ध) मुक्ति होती है।** लो, (गाथा) १३८ हुई। १३९।

विवरीयाभिणिवेसं परिचत्ता जोण्हकहियतच्चेसु।
जो जुजंदि अप्पाणं णिय-भावो सो हवे जोगो॥१३९॥

विपरीत आग्रह छोड़कर श्री जिन कथित जो तत्त्व हैं-
जोड़े वहाँ निज आतमा, निजभाव उसका योग है॥१३९॥

टीका : समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव... गण—मुनियों के नायक, केवली नहीं, तथापि समस्त गुण के धारक, ऐसा कहा है। समझ में आया? तीर्थंकर के वजीर—दीवान (ऐसे) गौतम गणधर आदि को यहाँ जिनमुनिनाथ कहा है। **समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव आदि जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए...** यह जिनमुनिनाथ—मुनि के नाथ... जिन स्वयं हैं ऐसे, देखो! **विपरीत अभिनिवेशरहित...** उल्टे अभिप्रायरहित, उल्टी श्रद्धारहित का मुनियों ने, गणधरों ने कहा हुआ भाव... आहाहा! यह अन्यत्र कहीं है नहीं। सर्वत्र एकान्त अज्ञान के गीत गाये हैं सब। समझ में आया? गणधर... **'जिनमुनिनाथकथित तत्त्वेषु'** ऐसा है न? **गणधरदेव द्वारा कहे हुए तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेशरहित...** ऐसा जो **आत्मभाव...** लो, यह पर्याय। योगभक्ति कहो, आत्मभाव कहो। यहाँ उसे आत्मभाव कहा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मभाव है और व्यवहारादि वह अनात्मभाव है। गजब बात है। समझ में आया? दिगम्बर सन्तों की कथनी एकदम स्पष्ट है, बीच में कहीं गड़बड़-बड़बड़ नहीं होती।

आत्मभाव... भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम, उसका भाव... वह पर्याय हुई। **वह ही निश्चय-परमयोग है, ऐसा कहा है।** वहाँ ऐसा नहीं कि यह परम धर्मयोगभाव है और दूसरा व्यवहार परमयोगभाव है। आत्मभाव... पुण्य-पाप के विकल्प, वे आत्मभाव नहीं। व्यवहार का जो भाव सेवित किया जाता है, वह आत्मभाव नहीं, वह तो अनात्मभाव है। आहाहा! समझ में आया? **वह ही निश्चय-परमयोग है,...** ऐसा उसमें कहा है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान के समीप जाकर... यह शास्त्र में (कहा कि) यह भगवान कहते हैं। गणधरों ने कहे हुए तत्त्व से विपरीत अभिप्राय का अभाव ऐसा जो आत्मभाव... विपरीत अभिप्राय का अभाव और अविपरीतभाव का सद्भाव, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई दशा, वह आत्मभाव वही, एक ही निश्चय-परमयोग है। सच्चे धर्म की दशा—अवस्था यह एक ही है। धर्म

की दो दशा नहीं। पुण्य भी एक धर्म है और यह भी एक धर्म है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए (-जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए) विपरीत पदार्थ में अभिनिवेश-दुराग्रह ही विपरीत अभिनिवेश है। स्पष्टीकरण किया है। वह 'विपरीत अभिनिवेश' (शब्द) था न! सर्वज्ञ परमात्मा के सन्तों ने कहे हुए तत्त्व के अतिरिक्त, अज्ञानी ने कहे हुए तत्त्व... समझ में आया? एक ही आत्मा है, सर्वव्यापक ही है, क्षणिक ही है, कूटस्थ ही है, अँगूठा जितना है—ऐसे बहुत प्रकार हैं न? आता है न? आहाहा! यह शास्त्र में आता है। समझ में आया? ऐसे-ऐसे बहुत प्रकार हैं। ऐसा कहनेवाले जगत में सब अज्ञानियों ने कल्पना से जगत को जोड़ दिया है। आहाहा!

परमात्मा के कहे हुए तत्त्वों के अतिरिक्त... सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें इस आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव स्थित है, उसकी शक्ति... प्रत्येक तत्त्व शक्तिवाला होता है। शक्ति बिना का तत्त्व नहीं हो सकता। तो यह आत्मा की शक्ति... भगवान आत्मा इस देह के रजकण से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प—राग से भी भिन्न और उसकी शक्ति से अभेद, उसकी सर्वज्ञशक्ति और आनन्द से अभेद—ऐसे आत्मा को जिसने जाना और सर्वज्ञपना प्रगट किया, उनके कहे हुए तत्त्व... सर्वज्ञ भगवान जिन्हें एक समय में—सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक जानने में आये, ऐसी जो शक्ति थी, उसे प्रगट किया। उन्होंने कहे हुए तत्त्व, उन्हें कहनेवाले सन्त, उनके तत्त्व की अन्दर श्रद्धा करना। तो उन्होंने कहा कि भगवान आत्मा पूर्णानन्द है। वह आत्मतत्त्व पूर्ण आनन्द है, उसमें पुण्य-पाप की वृत्ति उठती है, वह भी उसमें नहीं है।

कर्म और शरीरादि जड़, वह तो मिट्टी है। वह इसमें नहीं, वह तो मिट्टी, परवस्तु है। परन्तु उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध की वृत्तियाँ उठती हैं, वे क्षणिक, विकारी, उपाधि, मलिनभाव है। उसके बिना का जो भगवान आत्मा अन्दर, उसकी दृष्टि करना, उसकी पकड़ करना, उसकी सम्हाल करना, उसकी रक्षा करना, उसमें व्यापना—उसका नाम धर्म की दशा कहा जाता है। इसका नाम सुप्रभात, इसका नाम नया वर्ष लगा कहा जाता है। बाकी ऐसे तो अनन्त बार लगे और गये। दरबार! यह सुप्रभात कि जहाँ

अन्दर जगा भगवान चैतन्य चमत्कारी प्रभु आत्मा। राग और द्वेष के विकार की वृत्ति छोड़कर... सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है वह तो। सत्... सत्... सत्-शाश्वत् है, वह ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। उसकी अन्तर्दृष्टि पड़ने से, विकार की रुचि छोड़ने से, जो दशा प्रगट हो, उसे सम्यग्ज्ञान की किरण, उसे सुप्रभात कहते हैं। उसे यह वर्ष लगा। बाकी दूसरे को वर्ष लगा नहीं कभी। समझ में आया?

ऐसे भाव को अन्दर में से प्रगट करना—ऐसा आत्मभाव, वह धर्म है। यह तो मार डालेंगे यह बाहर की धूलधमाल। पाँच-दस लाख रुपये, कीर्ति-वीर्ति हो, वहाँ मर गया बेचारा। वह मंगल... विराजता है। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का धनी उसका अनादर, अपनी जाति का अनादर और कुजाति है—इसकी जाति नहीं, उसका आदर। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं कि कुजाति का आदर छोड़कर तेरी जाति का आदर कर। अन्दर चैतन्यानन्द आत्मतत्त्व भगवान की दृष्टि होने से अन्तर में जो निर्मलदशा होती है, उसे यहाँ सुप्रभात, उसे नूतन वर्ष, उसे धर्मदशा और उसके फल में मुक्ति होती है, (इसलिए) उसे मुक्ति का कारण कहा जाता है, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक - २१-१०-१९७१
गाथा-१३९-१४०, श्लोक-२३०, प्रवचन-१५६

यह नियमसार, परम-भक्ति अधिकार, १३९ गाथा है। फिर से टीका।

टीका : यहाँ, समस्त गुणों के धारण करनेवाले गणधरदेव... गणधर आदि मुनि समस्त गुण के धारक हैं। अल्प विकल्पादि हैं, उनकी यहाँ गिनती नहीं। ऐसे जिननाथ... **जिनमुनिनाथों द्वारा कहे हुए तत्त्वों में विपरीत अभिनिवेशरहित...** उल्टी मान्यता से रहित ऐसा जो **आत्मभाव...** अर्थात् आत्मा सन्मुख का वीतरागीभाव, **वह ही निश्चय-परमयोग है,...** वही वास्तव में परमयोग है, वह वास्तविक भक्ति है। **अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए...** (अर्थात्) जिन के अतिरिक्त अन्य ने कहे हुए... लो, यहाँ तो सब विपरीत आता है। उनसे कहे हुए सब विपरीत है, सब समान नहीं।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य के समय में थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य के समय में? यह अनादि-अनन्त चलता है। कुन्दकुन्दाचार्य के पहले ऐसा का ऐसा विपरीत मार्ग तो था ही। ऋषभदेव भगवान के समय में से उनके पौत्र मारीचि से चला है, विपरीत मार्ग तो चला ही है। एक जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ सकलजिन ने कहे तत्त्व, इसके अतिरिक्त जितने जगत के अन्दर कल्पित मार्ग हैं, वे विपरीत पदार्थ का आग्रह धरानेवाले हैं। उन विपरीत पदार्थों का आग्रह, वही विपरीत अभिनिवेश है, ऐसा।

अन्य समय के तीर्थनाथ द्वारा कहे हुए (-जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन के तीर्थ प्रवर्तक द्वारा कहे हुए)... यह पक्ष की वस्तु नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? तुम्हारे पक्ष से कहे हुए वे सच्चे और दूसरे ने कहे हुए खोटे। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के ज्ञान में तीन काल—तीन लोक एक समय में ज्ञात हुए और वाणी द्वारा पदार्थ का स्वरूप आया (और) ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ के अतिरिक्त अल्पज्ञों ने कल्पित कहे हुए, वे सब विपरीत पदार्थ है। उनकी श्रद्धा करना,

वह विपरीत है, ऐसा कहते हैं। एक ही आत्मा है, सर्वव्यापक है, सब अनादि से अत्यन्त शुद्ध ही आत्मा है, पर्याय अशुद्ध है तो वस्तु भी त्रिकाल अशुद्ध है—ऐसा जो पदार्थ का स्वरूप अज्ञानी ने कहा हुआ, उसका आग्रह, इसका नाम विपरीत अभिनिवेश है।

उसका परित्याग करके जैनों द्वारा कहे हुए तत्त्व... जैन अर्थात् गणधरदेव। क्योंकि उन्होंने शास्त्र रचे न! गणधरों ने शास्त्र रचे। सकलजिन तीर्थंकर तो कहनेवाले हैं, अर्थ को कहनेवाले। गणधरों ने उनके शास्त्र रचे। चार ज्ञान और चौदह पूर्व (धारी), उन्होंने कहे हुए तत्त्व निश्चय-व्यवहारनय से जाननेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। लो, जो कहे उसमें द्रव्य—वस्तु वह निश्चय, पर्याय, वह व्यवहार, भेद—ऐसा बराबर जाननेयोग्य है। समझ में आया? पर्याय रागादि है, वह तत्त्व जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य एक ओर फिर। परन्तु यहाँ निश्चय से और व्यवहार से दोनों प्रकार से प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप भगवान ने कहा, ऐसा गणधरों ने रचा। यहाँ गणधरों को जैन कहा गया है। ऐसे जैनों ने कहे हुए तत्त्व, निश्चय अर्थात् सत्यदृष्टि और व्यवहार अर्थात् उपचारिक, वह नय से जाननेयोग्य है। समझ में आया? यहाँ तो, आत्मा उसके द्रव्य-गुण-पर्याय, जड़ के द्रव्य-गुण-पर्याय भी जानना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जैनों द्वारा कहे हुए तत्त्व निश्चयव्यवहार (नय) से जाननेयोग्य हैं,... जैन किसे कहा जाता है, यह कहेंगे। **सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ... देहसहित होने पर भी तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है,...** सम्यग्दर्शन आदि में राग-द्वेष को जीता है, (परन्तु) सम्पूर्ण रीति से नहीं। इसे चौथे गुणस्थानवाले को भी जिन कहा जाता है। पाँचवें और छठवें को सबको जिन कहा जाता है। परन्तु यह तो **सकलजिन...** समस्त प्रकार के अज्ञान और राग-द्वेष जीते, इससे इन्हें सकलजिन कहा गया है। **ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ के...** व्यवहार भक्ति है न! **सकलजिन ऐसे भगवान तीर्थाधिनाथ...** तीर्थ के अधिनाथ हैं—नायक हैं। उनके **चरणकमल के उपजीवक...** यह गणधर आदि, गणधर आदि मुनि भगवान के चरणकमल के सेवक हैं। समझ में आया? अपने द्रव्य के सेवक हैं, वह तो निश्चय। स्वयं जिनस्वरूप हैं। उसमें अन्तर अनुभव, वह निश्चयभक्ति। यह व्यवहारभक्ति साथ में रखी है।

तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के... चरणकमल (के उपजीवक अर्थात्) कुछ

पैर दबाना नहीं। उन्होंने कहे हुए तत्त्व, उन्हें माननेवाले, वे गणधरादि मुनि सेवा करनेवाले हैं। उपजीवक (अर्थात्) भगवान की सेवा करनेवाले हैं, कहते हैं। सेवा करनेवाले कहो या सेवक कहो—यह तो वह का वह हुआ। सेवक... **सेवा के करनेवाले, सेवक।** गणधरादि भगवान के सेवक हैं। **आश्रित** है। लो, निश्चय से तो द्रव्याश्रित है, परन्तु भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकर देवाधिदेव के गणधर आदि सेवक हैं, आश्रित हैं—उनके आश्रय से हैं। व्यवहार है न? आहाहा! ... है न? उसमें आ नहीं गया पहले सोलहवें पृष्ठ पर? सोलह... सोलह। पृष्ठ सोलह। (गाथा ६ में उद्धरण विद्यानन्दस्वामी का श्लोक)।

इष्ट फल की सिद्धि का उपाय सुबोध है। है? इष्ट फल की सिद्धि का उपाय तो सम्यग्ज्ञान है। इष्ट फल अर्थात् मुक्ति, उसका उपाय सम्यग्ज्ञान है। देखो! यहाँ सुबोध को मुक्ति का कारण कहा। **सुबोध सुशास्त्र से होता है...** ऐसा सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से होता है। सबको '**सु**' '**सु**' शब्द है। उसको सु-बोध, सु-शास्त्र। **सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है...** सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव के मुखकमल से शास्त्र की उत्पत्ति होती है। **इसलिए उनके प्रसाद से...** देखो! **आप्तपुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है।** ऐसे जो आप्त अर्थात् हित के लिये माननेयोग्य ऐसे पुरुष बुधजनों द्वारा—ज्ञानियों द्वारा—तत्त्वज्ञानियों द्वारा—धर्मात्मा द्वारा पूजनेयोग्य है। समझ में आया?

मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से... लो, ठीक। सर्वज्ञदेव की कृपा अर्थात् सर्वज्ञदेव के ज्ञान में आया कि इस समय यह केवलज्ञान पायेगा, इस समय यह समकित पायेगा। ऐसा जो ज्ञान आया, वही उनकी कृपा है। आहाहा! समझ में आया? **सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूजनीय है।** आहाहा! समयसार (कलशटीका) में आया है न दूसरे (कलश) में। सर्वज्ञ की वाणी भी सर्वज्ञ को अनुसारिणी है, पूजनेयोग्य है। व्यवहार है न! जब तक केवलज्ञान न हो, तब तक ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। भले हेय है, परन्तु उपादेय द्रव्य का पूर्ण आश्रय, आदर न हो, तब तक ऐसा पराश्रय रहता है। स्व का पूर्ण आश्रय न हो, तब तक बीच में पर का आश्रय रहता है, ऐसा समझाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूजनीय है। क्योंकि... पाठ है, देखो! '**न हि कृतमुपकारं**

साधवो विस्मरन्ति' विद्यानन्दस्वामी ब्राह्मण थे। वे जब मुनि हुए—सन्त हुए, तब उन्होंने श्लोकवार्तिक रचा। यह श्लोकवार्तिक का श्लोक है। ब्राह्मण थे। ऐसे निकले थे और कहीं श्लोक बोला जाता था, इन्होंने सुना। ओहो! गये, श्रवण किया। ओहो! ऐसा तत्त्व सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं है नहीं। ऐसा प्रमोद आकर फिर आत्मज्ञान पाकर फिर मुनि हुए हैं। मुनि होने के पश्चात् यह श्लोकवार्तिक (रचा है)। तत्त्वार्थसूत्र की टीका पहली की है भाई ने... यह तत्त्वार्थराजवार्तिक और यह श्लोकवार्तिक। गृहस्थाश्रम में जोरदार बड़े ब्राह्मण पण्डित थे, हों! यह स्वयं तत्त्वार्थसूत्र की श्लोकवार्तिक टीका करते हुए कहते हैं कि ओहो! अरे! किये हुए उपकार को साधुपुरुष भूलते नहीं। एक ओर (कहे कि) कोई किसी का उपकार (करता) है नहीं। निश्चय स्वयं है, ऐसा है, उसमें कुछ (अन्तर नहीं)। परन्तु बीच में व्यवहार ऐसा होता है कि आहाहा! परमात्मा परमेश्वर हमारे अनुभव में, आनन्द में निमित्त हुए। समझ में आया? आहाहा! किये हुए उपकार को सन्तपुरुष, सज्जन पुरुष भूलते नहीं। देखो! यह व्यवहार की सिद्धि। समझ में आया? होता है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : एक ओर सिद्धि, एक ओर असिद्धि।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो नय है न। दो नय का विषय जहाँ तक प्रमादभूत न हो, वहाँ तक दो नय रहते हैं। पूर्ण केवल(ज्ञान) हुआ तो समाप्त हो गया, वहाँ प्रमाण हो जायेगा। वहाँ श्रुतज्ञान के भाग दो—यह और यह, इस ओर तथा इस ओर—ऐसा कुछ रहा नहीं। श्रुतज्ञान के भाग में स्व के आश्रय में जब आता है, उसे निश्चय कहते हैं। निश्चय पूरा न हो तब तक बीच में व्यवहारनय होता है। समझ में आया? परन्तु पहली वह बात स्वीकार कर पश्चात्। समझ में आया? मेरी प्राप्ति तो मुझसे है।

मुमुक्षु : गुरु के समझाने के पश्चात् समझ में आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले समझाने के बाद उनका उपकार कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! मार्ग वीतराग का स्याद्वाद मार्ग है न! किस अपेक्षा से यह कथन है, उसे ऐसा समझना। समझ में आया?

दीपचन्दजी तो कहते हैं, जहाँ व्यवहार का अधिकार लिया है कि बहुत यदि खींचने

जाओगे कि व्यवहार हेय है, अपूज्य है। तो तीन लोक के नाथ भी अपूज्य है, ऐसा हो जायेगा। बहुत खींचना नहीं, पद्धति अनुसार खींचना। भाई! यह आता है न दीपचन्दजी का। क्या कहलाता है? अध्यात्मपंचसंग्रह। उसमें आता है। दीपचन्दजी का स्वयं का।

मुमुक्षु : इसमें निर्णय क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय जैसा है वैसा करना। निर्णय क्या करना क्या? निश्चय तो है, ऐसा निर्णय करना और व्यवहार है, उसे जानना। निर्णय किया न! निर्णय किया तब जानना कहलाये न! कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अहो! **सकलजिन...** है न नीचे? **देहसहित होने पर भी तीर्थंकरदेव ने राग-द्वेष और अज्ञान को सम्पूर्णरूप से जीता है, इसलिए वे सकलजिन हैं।** ऐसे भगवान तीर्थनाथ के—**तीर्थाधिनाथ के चरणकमल के उपजीवक...** वे मुनिराज हैं, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। छठवें-सातवें में झूलते हुए यह कथन आया है टीका का। भावलिंगी सन्त हैं। आगे दो-तीन जगह कहा है कि **मेरे मुख से परमागम झरता है।** यह परमागम है।

मुमुक्षु : व्यवहार से परमागम?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से परमागम अर्थात् क्या? निश्चय परमागम तो आत्मा की ज्ञान की पर्याय, परन्तु जो यह परमागम सच्चा है, उसमें का परमागमशास्त्र है। कहो, समझ में आया? जैसे बारह अंग परमागम है, समयसार परमागम है, वैसे यह टीका भी परमागम है। समझ में आया?

अनादि के सन्त इस प्रकार से कहते आये हैं, उस वाणी को परमागम कहा जाता है। **उपजीव को...** (अर्थात्) **दास...** ऐसा कहा, देखा! वह तीर्थाधिनाथ—तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव के गणधर तो दास हैं। आहाहा! **वे जैन हैं...** वे जैन हैं, उसे जैन कहते हैं। समझ में आया? वह कहा था न कल, नहीं था? उस एक व्यक्ति ने कहा था, जन, जिन और जैन। यह एक ही है, यह वह बिन्दी का अन्तर है, बाकी सब समान हैं, ऐसा। ऐसा नहीं, भाई! आहाहा! बड़ा अन्तर है, परन्तु जगत को यह सब बहुत अच्छा लगता है। आहाहा! सब धर्म समान, सबका समन्वय करो, किसी का निषेध करने का अपने

को अधिकार नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु ऐसा भाव होता है तो वाणी द्वारा (निषेध) आये बिना रहता नहीं। ३६३ पाखण्ड, ऐसा भगवान कहे और ऐसा गणधर कहे। नहीं कहते? ३६३ पाखण्ड जगत में हैं। वे सब वीतरागमार्ग से विरुद्ध हैं। समझ में आया? ऐसे जो जैन... किसे जैन कहना? भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के चरणकमल के सेवक को जैन कहना—यह व्याख्या। समझ में आया? इसलिए उनके कहे हुए भावों को अनुभव करनेवाले। पूर्ण हुए नहीं। पूर्ण होने के पश्चात् उन्हें कुछ (है नहीं), वे तो सकलजिन हो गये। ऐसे तीर्थाधिनाथ के सेवक, उन्हें जैन कहते हैं। समझ में आया?

परमार्थ से... अब जैन किसे कहते हैं? इनके (—तीर्थाधिनाथ के) सेवक कहे, परन्तु वह व्यक्ति कौन? **परमार्थ से गणधरदेव आदि...** वह गणधरदेव, मुनि, सन्त, वे सब जैन हैं। सम्यग्दृष्टि, श्रावक समकिती, वे सब जैन हैं। समझ में आया? गणधरदेव तो उत्कृष्ट बात ली है, परन्तु यह सब सर्वज्ञदेव के सेवक हैं—सम्यग्दृष्टि, पाँचवें गुणस्थानवाले, छठवेंवाले मुनि, गणधर आदि से लेकर सब। **गणधरदेव आदि ऐसा उसका अर्थ है।** ऐसा उसका अर्थ है जैनों का। यह कहीं पक्ष की बात नहीं, यह तो स्वरूप ही ऐसा है। जो सकलजिन भगवान ने देखा और अपनी दशा पूर्ण प्रगट की, ऐसे तत्त्वों की बात भगवान ने कही। उसे गणधरों ने चारित्रसहित अनुभव की, समकिती ने सम्यग्दर्शनसहित, पाँचवें गुणस्थानवाले को समकित उपरान्त कोई शान्तिसहित जो तत्त्वों का स्वरूप का भान हुआ, उन सबको जैन कहा जाता है। समझ में आया?

ऐसे **उन्होंने कहे हुए जो समस्त जीवादि तत्त्व,...** इसका अर्थ हुआ कि गणधदेव इत्यादि मुनि भी कह सके, ऐसा आया न भाई इसमें? गणधर के अतिरिक्त मुनियों के कहे हुए तत्त्व वह जैनतत्त्व है। अरे! समकिती के कहे हुए तत्त्व, वह जैनतत्त्व है। समकित में कहाँ अन्तर था? सिद्ध के और चौथे गुणस्थानवाले तिर्यंच के समकित में कोई अन्तर नहीं। आहाहा! समझ में आया? स्थिरता में अन्तर होता है। अनुभव की दृष्टि में अन्तर नहीं होता। उन सबने कहे हुए **जो समस्त जीवादि तत्त्व,...** ओहोहो! यह बहुत गहरी चीज़ है। **उनमें जो परम जिनयोगीश्वर...** ऐसे तत्त्व में परम जिनयोगीश्वर (अर्थात्) मुनि को लिया यहाँ। परम जिनयोगीश्वर (अर्थात्) राग-अज्ञान काटकर स्वरूप

में योग—जुड़ान करनेवाले, उनके भी ईश्वर। **निज आत्मा को लगाता है,...** देखो! पर्याय को नहीं, निज आत्मा को।

पण्डितजी ने प्रश्न किया था। ध्रुव जोड़ता है... ? वह ध्रुव को जोड़ा कहलाये। जिसने अपनी वीतरागीपर्याय द्रव्य में स्थापित की, उसने आत्मा को पर्याय में जोड़ा, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? जिसने दशा बदला दी, दिशा पलटने पर... अन्तर्मुख दृष्टि होने पर बहिः—पर्यायतत्त्व की दशा बदल गयी। समझ में आया? ऐसे आत्मा को अपनी निर्मल पर्याय में जोड़ा है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह मार्ग तो निर्विकल्प मार्ग है, भाई! यह कहीं विकल्प के कोलाहल से प्राप्त हो, ऐसा मार्ग नहीं है। ऐसे **निज आत्मा को लगाता है,...** वापस देखो! ऐसा तो कहा कि भगवान के सेवक हैं, फलाना, ढींकणा, बहुत। परन्तु उसकी अपनी वीतरागी परिणति में आत्मा को जोड़ता है। जिसने अपनी निर्मल परिणति में आत्मा को समीप रखा है, रागादि था, वहाँ दूर रखा था, समझ में आया? दृष्टि से समीप कर दिया, उसे सच्ची भक्ति कहा जाता है।

उसका निजभाव ही परम जिनयोग है। लो, आहाहा! ऐसे धर्मात्मा का **निजभाव ही...** देखा! वापस और परमयोग तो यह ही है। निजभाव अर्थात् वीतरागी पर्याय, निर्दोष निर्विकल्पदशा, वही परमयोग है। वही परमभक्ति है, वही आत्मा का परम व्यापार है। लो, यह व्यापार। चन्दुभाई! आहाहा! कहो, समझ में आया? **निजभाव ही...** वापस ऐसा। अपनी आत्मशक्ति का तत्त्व, उसके सन्मुख की हुई दशा, बस वही निजयोग है। यह नियमसार है न! नियमसार का अर्थ मोक्ष का मार्ग। यह सब मोक्ष के मार्ग का वर्णन है। भक्ति कहो, प्रतिक्रमण कहो, प्रायश्चित्त कहो—यह सब मोक्ष के मार्ग को विविध प्रकार से बतलाया और जनाया है। शुद्धभाव त्रिकाली है, उसका अधिकार पहले आ गया है, परन्तु त्रिकाली शुद्धभाव के आश्रय से प्रगट हुई दशा को भक्ति और सच्चा योग कहा जाता है।

निजभाव ही.... दूसरा भाव होता है, ऐसा बतलाया। गणधर त्रिलोकनाथ के चरणसेवक... समझे न... ऐसा भाव होता है, ऐसा बतलाया। जाननेयोग्य है, ऐसा बतलाया। ऐई! है, ऐसा बतलाया।... की है न कुछ। बाकी तो अपना भगवान अपने में सावधान होकर

जो यह स्थिर हुआ, वह दशा, वही परमभक्ति और परमयोग है, उसे धर्म कहा जाता है। उसे धर्म कहा जाता है। आहा! गजब व्याख्या। एकान्त है, रे एकान्त है, ऐसा (लोग) कहते हैं। एकान्त ही है, सम्यक् एकान्त ही है, यह ऐसा ही है। ऐसा कहा न! देखो न! **निजभाव ही...** शब्द पड़ा है न! '**निजभाव एव**' संस्कृत में ऐसा है। '**निजभाव एव परमयोग इति**' आहाहा!

इस १३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

तत्त्वेषु जैन-मुनि-नाथ-मुखारविन्द-
व्यक्तेषु भव्य-जनता-भव-घातकेषु।
त्यक्त्वा दुराग्रह-ममुं जिनयोगि-नाथः,
साक्षाद्युनक्ति निजभावमयं स योगः ॥२३०॥

आहाहा! एक-एक श्लोक में और एक-एक कलश में (अमृत के) कलश भरकर रखे हैं पूरे। अमृत से भरपूर कलश हैं यह। यह तो शान्ति का काम है, बापू! समझ में आया? वाद-विवाद और यह और वह, भाई! यह वस्तु में कुछ है नहीं। इस रास्ते से (आत्मा) हाथ आवे, ऐसा नहीं।

श्लोकार्थः—इस दुराग्रह को... अज्ञानियों ने कहे हुए तत्त्वों में मान्यता को छोड़कर... आहाहा! **(-उपरोक्त विपरीत अभिनिवेश को) छोड़कर,...** यहाँ तो समकित की व्याख्या में 'तत्त्वार्थ अभिनिवेश' आता है न? उससे रहित। इसका अर्थ हुआ कि विपरीत अभिनिवेश कहनेवाले हैं, माननेवाले हैं। अकेला तत्त्व का माननेवाले हैं, ऐसा है जगत में? तत्त्वार्थ से विपरीत अभिनिवेश है, उसका त्याग है। भगवान ने कहे हुए से विपरीत तत्त्वों के कहनेवाले जगत में हैं। उनके (-भगवान के) तीर्थ के प्रवर्तक (कहते हैं कि) यह मार्ग है, बापू! आहाहा!

(-उपरोक्त विपरीत अभिनिवेश को) छोड़कर,... इससे उनके प्रति कहीं द्वेष नहीं है। समझ में आया? सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त विपरीत कहनेवालों के प्रति कहीं द्वेष नहीं है। उनके कहे हुए तत्त्व विरुद्ध हैं, इससे उनकी श्रद्धा छोड़ना, बस इतनी बात

है। समझ में आया? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के मुखारविन्द से निकली हुई... देखो, है न? **जैनमुनिनाथों के मुखारविन्द से प्रगट हुए,...** उसे यहाँ वापस जैन लिया। है न? वहाँ 'जैनो' कहा था न? वह जिन... आहाहा! गणधरदेवादि, मुनि आदि जैनमुनिनाथों के... यहाँ मुनि लिये हैं। **मुखारविन्द से प्रगट हुए,...** आहाहा! मुखरूपी कमल में से प्रगट हुए, लो। आत्मा में से प्रगट हुए नहीं (कहा)। वाणी तो वहाँ से आवे न? गणधरदेव आदि मुनि कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी इत्यादि-इत्यादि दिगम्बर मुनि। गणधर की श्रेणी में गिने जायें ऐसे मुनि हैं।

उनके **मुखारविन्द से प्रगट हुए, भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले...** यह जन आया। जन, जिन, जैन तीनों आये इसमें। वहाँ आया था, फलाने को जन कहना। वह का वह है। उसे 'जि' लगायें तो जिन होता है। 'जि' लगावे तो जिन होता है या वीतराग हो तो जिन होता है? जन तो सब हैं। उसे वीतरागता प्रगटी तो जिन कहलाये। उसे माननेवाले को जैन कहा जाता है। आहाहा! उसमें 'ई' और 'ऐ' इसका अन्तर कहाँ है? यह तो उसके भाव के अन्तर से (अलग) शब्द हैं सब। **मुखारविन्द से प्रगट हुए,...** गणधरदेव परमात्मा के वजीर, तीर्थंकर के दीवान आदि मुनियों के मुख से... मुख-अरविन्द (अर्थात्) मुखरूपी कमल। अरविन्द—कमल उसमें से वाणी निकली।

भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले तत्त्वों में... आहाहा! देखो! आया... यह तो भव्यजनों के भव का नाश करनेवाली वाणी है, ऐसा कहते हैं। वाणी में, भव का प्राप्त होना, वह वाणी में होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समयसार आदि सभी वाणी भव का अभाव करनेवाली वाणी है। निमित्त अपेक्षा से बात है न? समझ में आया? **भव्यजनों के भवों का नाश करनेवाले...** भव्य और भव। भव्य के भव को **नाश करनेवाले तत्त्वों में...** ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसका ज्ञान होने से उसमें सब तत्त्व आ जाते हैं। समझ में आया? **जो जिनयोगीनाथ—**जो कोई **(जैन मुनिवर) निज भाव को साक्षात् लगाता है,...** आहाहा! अपने आत्मा में लीन होता है, अपना भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसमें अन्तर्मुख लीन होता है। साक्षात् अर्थात् विकल्प से नहीं और धारणा से नहीं, ऐसा। समझ में आया?

निज भाव को साक्षात् लगाता है,... यहाँ तो निजभाव, यह पर्याय की बात है।

उसमें आत्मा को जोड़ता है, आत्मा को—वीतरागी पर्याय को उसमें जोड़ता है, अर्थात् कि वह पर्याय द्रव्य में एक होती है। समझ में आया? उसका जो निजभाव... ऐसे धर्मात्मा का निजभाव... वह निजभाव, इसका अर्थ—आत्मभाव कहो, निजभाव कहो, वह शुद्धभाव (कहो)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय, वह आत्मा में निजभाव है। **वह निजभाव, सो योग है।** उसे योग अर्थात् आत्मव्यापार कहा जाता है। समझ में आया? बाकी पर का व्यापार तो कोई कर नहीं सकता। पर में अन्दर अटककर राग-द्वेष हो, उसका व्यापार करे, वह अनाकुलता का व्यापार है। समझ में आया? यह आत्मव्यापार है।

वह निजभाव... उसे निजभाव कहा। पुण्य-पाप के विकल्प को निजभाव कहा नहीं। बहुत (गजब) टीका! परम-भक्ति ऐसे बोल ले लिये। लोग उस व्यवहार में अटके हों न, व्यवहार भक्ति, व्यवहार आवश्यक, व्यवहार सब ले लिया। **वह निजभाव, सो योग है।** भगवान आत्मा पूर्णस्वरूप की लक्ष्मी का भण्डार, उसके सन्मुख की दशा और पुण्य-पाप से विमुख होकर परिणमित अवस्था, उसे निजभाव और वह निज का व्यापार कहा जाता है। कि जो सिद्धदशा का कारण है, उसे निज व्यापार कहते हैं, जिस व्यापार में सिद्धपद फलता है। समझ में आया? यह व्यापार करके मिले, दो-पाँच, दस लाख, पचास लाख... अब अभी तो अरबों की बातें हो गयी है। दो व्यक्ति दशाश्रीमाली के (पास) अरबों रुपये (वाले) हैं, लो न! ओहोहो! पहले लोगों को लाख हो तो मानो ओहोहो... ऐसा कहा जाता था। लाख रुपये! आहा... यह तो लखपति है। यहाँ विधवा रांडीरांड को लखपति कितने ही कहते हैं। करोड़पति कितने। अरबपति भी सुने। दो तो सुने। समझ में आया? आहाहा!

परन्तु अब अरबोंपति न? (अर्थात्) जड़ का पति न? वह कहीं आत्मा का पति है नहीं। आहाहा! हमारी लक्ष्मी, हम लक्ष्मीवाले, वह तो जड़ हुआ। भैंस का मालिक पाडा होता है। भैंस का मालिक मनुष्य होगा? इसी प्रकार जड़ का धनी माने, वह जड़ होता है। आहाहा! बापू! तू आत्मा नहीं, हों! लक्ष्मी मेरी, पर मेरे, उस पर का स्वामी वह तो अजीव कहलाता है, वह जीव नहीं रहा। आहाहा! ऐई! लिखे होंगे न बहियों में नामा? शालीभद्र की ऋद्धि होओ, अभयकुमार की बुद्धि होओ, बाहुबली का बल होओ। क्या करना है परन्तु तुझे? आहाहा! आहा! दीन होकर चला... दिवाली के दिन

में मर जाते हैं कितने ही ? (मरे तो) दिवाली रोकती है ? वर्ष लगा, बहियाँ-पुस्तक... यहाँ सवेरे ऐसा करेंगे, चार बजे मर जाता है। आहाहा! मर जाये, हार्टफेल हो जाये। आहाहा! बापू! वह चीज़ कहाँ तेरी थी, वह तू संग में रहे ? तेरा तत्त्व तो असंग है। असंगतत्त्व में आवे, उसे संग-बंग है नहीं। आहाहा! जिसे स्त्री, कुटुम्ब, शरीर का तो संग है ही नहीं, परन्तु जिसे विकल्प का संग नहीं। ऐसे असंगतत्त्व का व्यापार अन्तर में (करे), उसे यहाँ सच्ची भक्ति कहते हैं। समझ में आया ?

ऐसी निश्चयभक्तिसहितवाले को त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी और तीर्थंकरदेव हितकारक है, इससे उसे (उनका) सेवक व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! अरे! उसके अपने स्वभाव की महत्ता क्या है, यह उसने सुनी नहीं। तीन लोक का नाथ भगवान परमानन्द की मूर्ति जिसमें से अनन्त-अनन्त आनन्द पीया करो तो भी कम न हो। सादि-अनन्त कम न हो। आहाहा! ऐसी खान—उसके स्वभाव की बात इसने सुनी नहीं, आवे सुनने तब (निषेध करता है कि) यह तो निश्चय है। अर्थात् यह तो सच्चा है, ऐसा। खोटा बताओ। ऐसा अर्थ हुआ न ?

यह वहाँ हुआ था (संवत्) १९९९ में। वे सेठ आये थे न, क्या कहलाये ? बैदनाथ। पैसा बहुत खर्चता थ। कलकत्तावाला बहुत पैसा खर्च करे पच्चीस-पच्चीस, पचास हजार। यहाँ ऐसे बड़ा गृहस्थ। ९९ में आया तब राजकोट... तब भाई थे, कैसे ? बावळराम। मुनीम थे न मुनीम, दिगम्बर के मुनीम। वे साथ में थे। व्याख्यान चलता था। बावळराम बुद्धिवाला था। अभी उनका दामाद है। फिर ऐसी तत्त्व की बात। सेठ! सुनो! सेठ कुछ जरा झोंका खाता होगा तो यह थोड़ा... सुनो सेठ! वह तो निश्चय की बात है। ठीक! जादवजीभाई! पहिचानते थे तुम ? बड़े गृहस्थ थे। पैसे बहुत निकालते थे।

एक बार अपने साथ आये थे नहीं कहीं ऐसे ? .... आये थे यहाँ। मिले थे बहुत बार। जमशेदपुर में रहते थे। राजकोट में मिले थे, मधुवन में मिले थे। मिले थे न! परन्तु यह पैसा खर्च करना, उसके आगे निश्चय बात। वह तो कहे, यह निश्चय की है। बावळभाई को बेचारे को ऐसा कि यह सुनो, यह सच्चा है। यह तो निश्चय की बात है, ऐसा कहकर... सत्य है, सत्य यह है, ऐसा जानना चाहिए न पहले। यह तेरे व्यवहार की

बातें सब, निश्चय हो, फिर उपचारिक कहने में आवे। आहाहा! वर बिना की बारात जोड़ दे अकेली।

कहते हैं कि यह निजभाव, वही सच्चा धर्म है। बाकी सब वीतराग की भक्ति, पूजा और यात्रा, व्रत (आदि) सब व्यवहार, यदि ऐसा (-निश्चय) होवे तो उसको व्यवहार कहा जाता है। व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ; अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ। होता अवश्य है, परन्तु है असत्यार्थ। सत्यार्थ तो यह चीज़ है। सत्स्वरूप में से आयी हुई दशा, वह सत् होती है। समझ में आया? विकल्प उठे, वह सत् में से कहाँ आवे? वह तो पर के लक्ष्य से नया खड़ा हुआ है। शुभराग भी पर के लक्ष्य से नया खड़ा होता है। वहाँ कहाँ अन्दर का था? ऐसी योग्यता हो, वह अलग बात है। समझ में आया? यहाँ तो अकेला स्वभाव चैतन्यसागर में से आयी हुई दशा, उसके जुड़ान में हुई दशा, वह ही निजभाव, वह योग है। लो, उसे आत्मव्यापार, उसे धर्म, उसे सामायिक, उसे प्रोषध, उसे प्रतिक्रमण, उसे प्रत्याख्यान, उसे आलोचना, उसे संवर, उसे निर्जरा कहा जाता है। बलुभाई! वहाँ ऐसा सुना नहीं था कुछ। आहाहा!

कलश हुआ यह २३०। १३९ गाथा हुई। अब १४०। यह अन्तिम है, भक्ति (अधिकार) की यह अन्तिम है। यहाँ सिद्ध करते हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कि ऐसी भक्ति करके अनन्त तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। यह कहीं नया मार्ग नहीं है। आहाहा!

उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं।
णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धरु जोगवरभत्तिं ॥१४०॥

आदेश करते हैं। इसलिए '**धरु जोगवरभत्तिं**' (कहा)। आहाहा!

वृषभदि जिनवर भक्ति उत्तम इस तरह कर योग की।
(निर्वृति सुख पाया अतः कर भक्ति उत्तम योग की ॥१४०॥)

टीकाः—यह भक्ति अधिकार के उपसंहार का कथन है। भक्ति-अधिकार की अन्तिम गाथा है। **इस भारतवर्ष में...** ऐसा। यहाँ की बात है न! स्वयं यहाँ के हैं न कुन्दकुन्दाचार्य। बाकी तो सब हो गये ऐरावत में, महाविदेह में। यह तो कहते हैं कि इस

भरतक्षेत्र में... भरत, यह क्षेत्र हुआ। **पहले श्री नाभिपुत्र से लेकर... 'उसहादि'** शब्द है न? **नाभिपुत्र से लेकर...** ऐसा लिया। ऋषभनाथ भगवान ऐसा नहीं **'उसहादिजिणवरिंदा'** है न? वृषभादि जिनवर। लिया 'नाभिपुत्र से लेकर।' ऐसे कुल से पहिचान करायी है। समझ में आया? **श्री वर्द्धमान तक के चौबीस तीर्थंकर...** ऋषभदेव भगवान नाभिपुत्र—नाभिराजा के पुत्र और वहाँ से लेकर वर्धमान तीर्थंकर... यह भरत के लिये चौबीस तीर्थंकर।

परमदेव... गणधर को देव कहा जाता है, देवलोक के देव कहलाते हैं। यह तो परमदेव, जिन्हें परम दिव्यशक्ति प्रगट हो गयी है, उन्हें देव कहा जाता है और उन्हें परमदेव कहा जाता है। जिसे जलहल ज्योति चैतन्यसूर्य पर्याय में पूर्ण लब्धि प्राप्त हो गयी है, ऐसे परमदेव... दो विशेषण (१) तीर्थंकर (अर्थात्) तीर्थ को करनेवाले, (२) ऐसे परमदेव सर्वज्ञ वीतराग। एक समय में जिसे तीन काल जानने में वर्ते, वह वीतराग है। सब जानने पर भी विकल्प है नहीं। ऐसे **सर्वज्ञवीतराग, त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले...** तीन लोक में जिनकी कीर्ति पसरी है। कोई उनके विरोध के करनेवाले को गिना नहीं यहाँ। उनका विरोध करनेवाले हो न कि यह खोटा है... यह खोटा है। लोग बातें करे न? उसमें आता है। नहीं आया था? महावीर के समय में कितने, ४०० पाखण्ड साथ के साथ विरोध करनेवाले थे। ऐसा आया है, सन्मति (सन्देश) में डाला है। कितने कुछ कहते थे। ४००.....

मुमुक्षु : भरतक्षेत्र से अधिक.... ३६३ पाखण्डी....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए पाखण्डी अधिक, ऐसा नहीं, संख्या से लोग, ऐसा। लोग। यह और जाति, मान्यता की जाति। यह तो लोगों की संख्या। ऐसा आया था। जहाँ-जहाँ मार्ग में विचरते, पीछे के पीछे ४०० पाखण्डी जाते। नहीं जाये, परन्तु थे तो सही न? आहाहा! परन्तु उसे नहीं गिना यहाँ।

यहाँ तो **त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले...** तीन लोक में महा इन्द्र आदि बड़े महापुरुष जिन्हें मानते हैं, ऐसी कीर्ति हो जाये। उसकी गिनती है, साधारण की गिनती नहीं। त्रिलोकवर्ती कीर्ति... तीन लोक में वर्तनेवाली कीर्ति जिनकी, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

महादेवाधिदेव... देखो न! विशेषण कितने दिये! ऋषभदेव से लेकर महावीरपर्यन्त **महादेवाधिदेव...** अकेले देवाधिदेव नहीं, **महादेवाधिदेव...**

परमेश्वर... यह शब्द प्रयोग किया है... परमेश्वर (पना) जिन्हें प्रगट हुआ है। साक्षात् परमेश्वर। शक्ति से तो परमेश्वर थे। वस्तु से तो सब परमेश्वर हैं, (परन्तु) पर्याय में परमेश्वर हुए। ऐसे **परमेश्वर—सब,...** ठीक! **यथोक्त प्रकार से...** यथा उक्त—ऊपर कहा तद्नुसार (अर्थात्) यथा-उक्त। **निज आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली...** लो। आहाहा! यह तो वह की वह बात है। पर्याय को आत्मा के साथ जोड़ो कहो या (द्रव्य को) ऐसे जोड़ो। आत्मा को पर्याय के साथ जोड़ो या पर्याय को (आत्मा के साथ जोड़ो)—यह सब एक की एक बात है। समझ में आया? **निज आत्मा के साथ सम्बन्ध रखनेवाली शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,...** लो। अपनी निर्मलदशा आदि की भक्ति करके... निश्चय योग की भक्ति, हों! वापस ली परिणति। आहाहा! और निर्वाण को प्राप्त हुए। विशेष कहा जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ३, शुक्रवार, दिनांक - २२-१०-१९७१
गाथा-१४०, श्लोक-२३१-२३४, प्रवचन-१५७

यह नियमसार है, परम-भक्ति अधिकार। परम-भक्ति का अर्थ सच्ची-निश्चय-वास्तविक भक्ति कि जिसे मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। उसका यह अधिकार पूर्ण होता है, अन्तिम गाथा है। फिर से टीका लेते हैं, लो! कहते हैं कि यह परमभक्ति अर्थात् कि आत्मा पूर्णानन्द और अनन्त ज्ञान के स्वभाव से भरपूर पदार्थ है, उसमें अन्तर में एकाग्रता—सहजस्वभाव सन्मुख की एकाग्रता, उसका नाम यहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहते हैं, उसे यहाँ परम-भक्ति कहते हैं। भगवान देव-गुरु-शास्त्र तीर्थंकर आदि की भक्ति, वह तो व्यवहारभक्ति है, पुण्यभाव है। पाप से बचने के लिये ऐसा एक शुभभाव होता है, परन्तु वह सच्ची भक्ति नहीं है। आहाहा! वह पुण्यरूपभाव है।

सच्ची भक्ति परमेश्वर उसे कहते हैं कि पूर्ण आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से (भरपूर) अनन्त-अनन्त स्वभाव और शक्ति का पिण्ड आत्मा, उसकी एक समय की जो पर्याय—अवस्था, उसके अतिरिक्त जो पूरा पूर्ण तत्त्व, ऐसे तत्त्व में जुड़ान करके एकाग्र होना। राग और पुण्य में एकाग्रता जो अनादि की है, वह संसार, दुःख दावानल है। उसे बुझाने को भगवान आत्मा शान्तरस का फब्बारा है। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त शान्त—अकषाय—वीतरागीभाव से भरपूर फब्बारा है। उसमें एकाग्र होना, चैतन्य के पूर्ण आनन्द में एकाग्र होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और उसका नाम सच्ची भक्ति कहा जाता है। ऐसी बात है। वीतराग का मार्ग अपूर्व और अलौकिक है। लोग बाहर से मानकर बैठे हैं, उन्हें जैनदर्शन की चीज़ की खबर नहीं है। यहाँ कहते हैं कि ऐसी भक्ति, यह चौबीसी के चौबीस तीर्थंकर भी यह भक्ति करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

इस भारतवर्ष में... (अर्थात्) इस भरतक्षेत्र में... वर्तमान में कुन्दकुन्दाचार्य इस भरतक्षेत्र में हो गये न। इससे इस भरत के चौबीस तीर्थंकरों को याद किया है। जिसमें

हमारा जन्म है, इस भरतक्षेत्र में, ऐसा। इस भरतक्षेत्र में चौबीस तीर्थंकर इस चौबीसी के हुए। **नाभिपुत्र से लेकर श्री वर्द्धमान तक के...** वृषभनाथ—नाभिपुत्र प्रभु से लेकर अजितनाथ, सम्भवनाथ से (लेकर) यह महावीर भगवान **चौबीस तीर्थंकरों...** तक के... चौबीस तीर्थंकर **परमदेव...** परम दिव्यशक्ति के स्वामी ऐसे परमदेव परमात्मा, **सर्वज्ञवीतराग...** जिन्हें तीन काल का ज्ञान और वीतरागदशा प्रगट हुई थी। **त्रिलोकवर्ती कीर्तिवाले...** तीन लोक में जिनकी कीर्ति व्याप्त है। इन्द्र, नरेन्द्र, सुरेन्द्र भी जिनकी कीर्ति गाते हैं अर्थात् तीन लोक में जिनकी कीर्ति है।

ऐसे परमात्मा **महादेवाधिदेव... महादेवाधिदेव परमेश्वर...** वे सब परमेश्वर **यथोक्त प्रकार से...** यह जो कहा जाता है, वह भक्ति भगवान ने की थी और ऐसी भक्ति करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! यथोक्त (प्रकार से) **निज आत्मा के साथ...** देखो! भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु निज स्वरूप से भरपूर... स्वरूप से भरपूर—स्वभाव से भरपूर... अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, अनन्त प्रभुता—ऐसी शक्ति का सागर भगवान के साथ **सम्बन्ध रखनेवाली...** देखो! राग का सम्बन्ध तो निमित्त के ऊपर जाता है, शुभराग या अशुभराग का सम्बन्ध पर के ऊपर जाता है। यहाँ तो शुद्ध परिणति के सिवाय सम्बन्ध रखनेवाला आत्मा, ऐसा कहा है। समझ में आया?

अथवा वह शुद्ध (अर्थात्) पुण्य-पाप के विकल्प—रागरहित शुद्ध परिणति को आत्मा के साथ जोड़ा कि आत्मा शुद्ध परिणति के साथ जोड़ा—सब एक ही है। आहाहा! मार्ग, सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने कहा, वह मार्ग पूरी दुनिया से अलग प्रकार का है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है नहीं। परन्तु मार्ग अपूर्व और अलौकिक है। बाहर की यह दया-दान-व्रत-पूजा-भक्ति, वह सब भाव पुण्यभाव है, शुभभाव है। क्योंकि वह सब परलक्ष्यी भाव है। इससे उसे संयोगीभाव कहा जाता है। वह वास्तविक धर्म और वास्तविक संवर-निर्जरा नहीं है। समझ में आया?

यह सब तीर्थंकरों ने भी निज आत्मा के साथ—परमानन्दस्वरूप प्रभु अन्तर्मुख आत्मा के साथ **सम्बन्ध रखनेवाली शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति करके,...** पण्डितजी! यह किया है, लो। भगवान ने कही, वाणी करके तीर्थ प्रवर्तन किया—ऐसा

नहीं। वह तो सहज बाहर का निमित्त है, उन्होंने तो यह किया था। समझ में आया? वे कहते हैं न कि यह बहुत यज्ञ (होते) थे, उन यज्ञ में हिंसा होती थी, उसे भगवान ने निवारण किया। यह बात कहीं इस वस्तु में नहीं है। समझ में आया? उन्होंने तो अपना आत्मा आनन्दकन्द प्रभु सिद्ध समान जो स्वरूप अपना 'सिद्ध समान सदा पद मेरो..' आता है न 'चेतन' में? (समयसार नाटक, मंगलाचरण, पद ११)

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ॥
ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै घटवास बसेरौ॥

बनारसीदास। चेतनरूप (अर्थात्) आत्मा तो ज्ञान का समुद्र है। आहाहा! अनूप— उसकी कोई उपमा नहीं। अरूप है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो..' मेरा स्वरूप तो सिद्ध जैसा त्रिकाल अन्दर पड़ा है, परन्तु अनादि से राग की विकल्पदशा से घिरा हुआ मोह महातम... वहाँ सावधानी करने से... अज्ञान, मोह-मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ। परन्तु अब मेरा स्वरूप चिदानन्द है उसे मैंने सम्हाला, मेरा स्वभाव तो शुद्ध आनन्द और ज्ञान है, उसे मैंने सम्हाला, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। 'ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहुं गुण नाटक आगम केरो, जासु प्रसाद सधै शिवमार्ग...' भगवान आत्मा नित्य ध्रुवधाम में अन्तर एकाग्र होने से जो निश्चयभक्ति प्रगट हुई, वह मुक्ति का कारण है। उससे इस शरीर में बसना मिट जाता है। 'वेगे मिटे भववास बसेरो...' यह शरीर मिट्टी—धूल, पिण्ड—जड़ का पिण्ड है यह तो। उसमें भगवान अमृत का सागर रुका हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

सड़े हुए गधे के चमड़े में जैसे मैसूर... मैसूर कहते हैं? मैसूर... मैसूर। मैसूर (पाक) लपेटे अन्दर, उसी प्रकार इस चमड़ी में भगवान (आत्मा) अन्दर लिपटा हुआ (भिन्न) पड़ा है। यह (शरीर) तो हड्डियाँ, चमड़ी, माँस है। अन्दर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। कहो, भीखाभाई! आहाहा! कहते हैं कि मेरा आत्मा शुद्ध आनन्दघन, उसकी भक्ति—अपने (आत्मा की) अनन्त तीर्थंकरों ने की। जिसे

भक्ति करनेयोग्य तुम मानते हो, उन तीर्थंकरों ने ऐसी भक्ति की, तब मुक्ति को पाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **शुद्धनिश्चययोग की उत्तम भक्ति...** भाषा है न? आहाहा! शुद्ध निश्चययोग अर्थात् अन्दर वीतरागी परिणति—पर्याय। त्रिकाली भगवान आत्मा को स्पर्श करने से, उसे अनुभव करने से, उसे अनुसरकर वीतरागीदशा निर्मल निर्विकल्पता प्रगट हो, उसे शुद्ध निश्चययोग, उसे शुद्ध निश्चयव्यापार, उसे सच्ची भक्ति कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि तुम भी तुम्हारे आत्मा की भक्ति करना, तब मुक्ति होगी। हमारी भक्ति करोगे तब तक तुमको पुण्यभाव है। पवित्रता प्रगट करने में हम कारण नहीं। आहाहा! धर्मरूपी पवित्र परिणति—दशा प्रगट करने में हम तुझे कारण नहीं। तेरा आत्मा कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! चौरासी लाख के अवतार में भ्रमणा के कारण भ्रमा, चौरासी के भवसागर में डूबा। भाई! कहते हैं कि उसे उभरने का अवसर भगवान निर्मलानन्द प्रभु की शुद्ध एकाग्रता—स्व में एकाग्रता, ऐसा जो शुद्ध निश्चयव्यापार, ऐसा शुद्ध निश्चययोग... यह योगी-योगी कहते हैं न अन्य के बाबा-फाबा को। वह योग नहीं। वह सब मुफ्त के भ्रमणा में पड़े हैं। यह योग। जो अनादि से शुभ-अशुभ के राग के योग में जुड़ान करके, मिथ्यात्व सेवन कर मर गया है, अपना जीवन बरबाद—खो बैठा है। आहाहा! समझ में आया?

राग की एकता मानकर, पुण्य के विकल्प के साथ एकता मानकर मिथ्यात्व होता है, मिथ्यात्व होता है, वह तो मुर्दा है, कहते हैं। आहाहा! चैतन्य की जलहल ज्योति भगवान का उसने अनादर किया। अपना निजस्वरूप परमात्मस्वरूप का अनादर करके वह पुण्य-पाप के विकल्प—राग जो पामर, रंक, दुःख, जहर, उसके साथ एकता करके जीव को गँवाया। उस जीव को हाथ में लेने की कला... भगवान पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु है, है, अनादि का है, उसमें जुड़ान करना और जो शुद्धदशा प्रगट हो, शुभ-अशुभ नहीं, ऐसी दशा को जीव का जीवन कहा जाता है। वह जीव जीवन से जिया। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे निश्चययोग की **उत्तम भक्ति करके, परमनिर्वाणवधू के अति पुष्ट स्तन के गाढ़ आलिंगन से सर्व आत्मप्रदेश में...** कहते हैं कि निर्वाण अर्थात् मुक्ति, उसकी जो

परिणति, उसकी जो पुष्टि, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता ऐसी जो पर्याय में पुष्टि हुई, उसका उसने अनुभव किया उसका आलिंगन किया। आहाहा! समझ में आया? ऐसी परमभक्ति से (अर्थात्) **गाढ़ आलिंगन से...** अर्थात्? शुद्धचैतन्य के सागर को उछाला और अन्दर की निर्मल परिणति प्रगट (की), जिसने मोक्ष का मार्ग प्रगट किया, उसके फलरूप से—उसके कार्यरूप से मुक्तिरूपी अवस्था की पुष्टि अनन्त आनन्द आदि हुई, उसे उसने अनुभव किया, आहाहा! उसके अवयव पुष्ट हुए, ऐसा कहते हैं। जैसे स्त्री के शरीर के अवयव पुष्ट कहलाते हैं, उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के भण्डार को जिसने खोला—एकाग्र होकर खोला, खोलने से उसकी मुक्ति की दशा हुई, वह पुष्ट दशा हुई। पुष्ट... पुष्ट... पूरी पुष्ट। समझ में आया? आहाहा!

जिसने आत्मा के अन्तर के अनुभव की भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त की, ऐसे चौबीस तीर्थंकर **सर्व आत्मप्रदेश में...** आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं। जैसे यह परमाणु है एक-एक रजकण—पॉइन्ट, वह एक-एक प्रदेशी है। आत्मा असंख्य प्रदेशी है। एक परमाणु जितनी जगह रोके, उतनी जगह को प्रदेश कहते हैं। ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी है। उन असंख्य प्रदेश में अनन्त आनन्द आदि बिछे पड़े हैं। आहाहा! उसकी जिसने भक्ति की, निर्विकल्प अनुभव किया... आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् स्वरूप के अनुभव की प्रतीति की, स्वरूप का ज्ञान किया, स्वरूप में रमा, उसे असंख्य प्रदेशी अनन्त आनन्द प्रगट हो गया। आहाहा! समझ में आया? जैसे खेत फसल से शोभता है न? क्या कहलाता है यह? मोल... मोल। आहाहा! इसी प्रकार असंख्य प्रदेश से आनन्द का वान आनन्द से भरपूर भरा था। उसके अन्दर में एकाग्र होने से उसके फलरूप से असंख्य प्रदेश में पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता ऐसी दशा को वे परमात्मा प्राप्त हुए। आहाहा!

अत्यन्त-आनन्दरूपी परमसुधारस के पूर... आहाहा! मुनियों ने भी... दिगम्बर मुनि टीका करते हुए उछल जाते हैं! शब्द हाथ आते नहीं कि क्या कहना! आहाहा! बापू! तू विकल्प—राग से अतीत—भिन्न प्रभु है। तेरी प्रभुता वाणी में क्या आवे? आहाहा!

तूने पामररूप से माना है, पामर है नहीं; प्रभु है यह तो। यह परिपूर्ण प्रभु न हो तो केवलज्ञान होगा कहाँ से? केवलज्ञान और परमात्म(पना) कहाँ से होगा? कहीं बाहर से आवे ऐसा है? आहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके अन्दर जिसने नजर डाली, अन्दर एकाग्र हुआ, वह शुभ-अशुभ विकल्प रहित... आहाहा! वह जीव असंख्य प्रदेश में—पूरे असंख्य क्षेत्र में **अत्यन्त आनन्दरूपी...** आहाहा! अनन्त आनन्द... अत्यन्त—जिसका अन्त नहीं, ऐसा अनन्त आनन्द जिसकी दशा में ऐसी निश्चय परम-भक्ति करने से प्रगट होता है। अरे! ऐसा कठिन मार्ग, भाई!

अत्यन्त-आनन्दरूपी परमसुधारस के पूर... परम अमृतरस का पूर... आहाहा! नदी में पूर आवे न पानी; उसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का पूर बहता है। सिद्धपद में तो अति आनन्द का असंख्य प्रदेश में पूर बहता है। आहाहा! समझ में आया? बाहर में कहीं आनन्द है नहीं। धूल में भी नहीं कहीं। मुफ्त का मूर्खाई करके (मानता है कि) उस पैसे में सुख है और स्त्री में सुख है, भोग में सुख है और इज्जत में सुख है, बड़ा बँगला—लाख-दो लाख का मकान, झूले में झूलने से सुख (माने), मूर्ख है। वहाँ सुख कैसा? उसमें सुख माननेवाले आत्मा के सुख के अनादर करनेवाले मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जिसे आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ में कहीं वीर्य स्थिर होकर ठीक माना जाता है, वह सब मिथ्यात्वभाव है। उस भाव को छेदने के लिये, भगवान आनन्द से भरपूर सुखस्वरूप की एकाग्रता होने से वह छिद जाता है और उसके छिदने से पूर्ण आनन्द का—अत्यन्त सुधारस का पूर... आहाहा! उसकी प्राप्ति होती है। ऐसे **पूर से परितृप्त हुए;...** सिद्ध भगवान चौबीस तीर्थंकर ऐसी भक्ति करके परितृप्त (हुए)। फिर से इसकी कोई आवश्यकता नहीं। यहाँ तो चाहे जितने भोग भोगे अनन्त काल से। देव में असंख्य वर्ष रहा एक-एक अवतार में, हों! ऐसे तो अनन्त अवतार किये। वहाँ भी सन्तोष, तृप्ति हुई नहीं। धूल में कहाँ (तृप्ति) थी वहाँ? आहाहा! **परितृप्त हुए;...** ऐसी भाषा ली है, देखो! आहाहा! क्यों?

अब शिक्षा देते हैं। **इसलिए स्फुटित-भव्यत्वगुणवाले हे महाजनों!** आहाहा! हे आत्माओं! ऐसा कहते हैं। हे महाजन प्रभु! आहाहा! देह की हड्डियों में विराजता,

(उससे) भिन्न और पुण्य-पाप के राग-विकल्प से भी भिन्न ऐसा हे महाजन! लो, यह महाजन आये। वे नहीं कहते कि यह महाजन है? यह महाजन है। भव्यत्वगुणवाले हे महाजनो! अर्थात् क्या कहते हैं? भव्यता परिपाक होने की योग्यतावाले हे महाजन!... प्रगटी प्रगट होकर, ऐसा। **स्फुटित-भव्यत्वगुण...** भव्यत्वगुण पक गया, मोक्ष होने के योग्य हो गया, ऐसे हे महाजन! आहाहा! **तुम निज आत्मा को...** सब छोड़कर एक बात तुझे करनी है, कहते हैं। तेरा भगवान अन्दर आनन्द में केलि करनेवाला प्रभु है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया है। आहाहा! वह पुण्य-पाप के स्वाद लेने का अनादर करनेवाला है। कहो, समझ में आया इसमें?

लो, यह दिवाली के दिन जरा लड्डू खाकर पटाखे फोड़े (और कहे) मजा किया। धूल में भी नहीं। जहर का प्याला पीता है। समझ में आया? राग... राग... बहियाँ लिखे और फिर फोड़े पटाखे, बस अब वर्ष पूरा अच्छा हो जायेगा। कौन सा वर्ष? जड़ का? क्या धूल हो अच्छा? किसी को अच्छा होता नहीं बाहर में। पैसा-बैसा धूल मिले, इसलिए अच्छा हो गया? आहाहा! पाँच-पच्चीस लाख, करोड़ धूल, वह तो कंकड़ है जगत की चीज़। उसमें इसे कहाँ मिलती है? इसके नजदीक आवे तब मानता है कि मिली। वह तो इसे ममता मिली। उसमें कहाँ अच्छा मिला इसे? आहाहा! यह आत्मा, कहते हैं कि हे भव्यजीवो! मुनिराज दिगम्बर सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव, कुन्दकुन्दाचार्य (के शास्त्र) की टीका करनेवाले कहते हैं, हे महाजनो! आहाहा! सामूहिक आमन्त्रण है।

तुम निज आत्मा को... यह कहते हैं कि मुझे भी नहीं, भगवान को (भी) नहीं, तेरे आत्मा को। आहाहा! भाई! तुझमें क्या कमी है? तुझमें कहाँ पूर्णता नहीं पड़ी कि तू बाहर लेना चाहता है? समझ में आया? मार्ग ऐसा कठिन है और मार्ग ऐसा सीधा और समीप है। परन्तु सुनने को मिले नहीं, अभ्यास न हो, बाहर की सिरपच्ची का अभ्यास। आहाहा! यह कहते हैं, निज आत्मा भगवान, उसे **परम वीतराग सुख की देनेवाली...** आहाहा! ऊपर बात की थी न सब, अत्यन्त आनन्द और शुद्ध परिपूर्ण तृप्त हुए। ऐसे **परम वीतराग सुख की देनेवाली ऐसी वह योगभक्ति करो।** आत्मा की एकाग्रता करो। आहाहा! स्वस्वरूप में स्थिर होओ, स्वस्वरूप में दृष्टि करके स्थिर होओ, यही निजभक्ति है, आत्मा को परम वीतरागसुख की देनेवाली यह भक्ति है। भगवान आदि की बाहर की

भक्ति तो पुण्यबन्ध का कारण है। स्वर्गादि दे, उसमें कुछ आत्मा को मिले नहीं। समझ में आया? स्वर्गादि मिले वह चीज़ कहाँ आत्मा की थी? आहाहा!

ऐसी वह योगभक्ति करो। लो, आदेश करते हैं। समझ में आया? पाठ में है न। **'तम्हा धरु जोगवरभत्तिं'** त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के शासन में लाख बात की बात, अनन्त बात की बात (यह है) कि अन्दर भगवान आत्मा पूर्णानन्द है, उसका ध्यान धरो। समझ में आया? उसके बिना मुक्ति और उसके बिना धर्म है नहीं। आहाहा!

अब इस परमभक्ति अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव सात श्लोक कहते हैं:—लो, २३१ कलश।

नाभेयादिजिनेश्वरान् गुणगुरून् त्रैलोक्यपुण्योत्करान्,
श्रीदेवेन्द्रकिरीटकोटिविलसन्माणिक्यमालार्चितान्।
पौलोमीप्रभृति-प्रसिद्धदिविजाधीशाङ्गना-संहतेः
शक्रेणोद्भवभोगहासविमलान् श्रीकीर्तिनाथान् स्तुवे ॥२३१॥

'पौलोमी' यह शब्द पूछा था न भाई ने। (अर्थात्) शचि इन्द्राणी। **'शक्रेणोद्भव'** वह शक्र तो मूल में पाठ है। मुनिराज आत्मज्ञानी ध्यानी हैं, आत्मा के महा आनन्द में लहर करते हैं, वे कहते हैं कि मैं पहले तीर्थंकर को वन्दन करता हूँ। समझ में आया? जिन्होंने सच्चा मार्ग प्ररूपित किया और उस मार्ग से हमको आत्मा का लाभ हुआ, इसलिए हम पहले भगवान की स्तुति करते हैं। कैसे हैं परमात्मा?

श्लोकार्थः—गुण में जो बड़े हैं,... लो। गुण में बड़े। ऐसे शरीर बड़ा था और आयुष्य लम्बा था—ऐसा नहीं, (परन्तु) गुण में। गुण अर्थात् पर्याय, आत्मा की पर्याय। गुण तो सबको अनादि के बड़े हैं। द्रव्य और गुण तो स्वयं शक्तिरूप से बड़े अनादि के सबके पास हैं, परन्तु उसमें से—बड़े में से पर्याय बड़ी निकाली। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त पुरुषार्थ, स्वच्छता इत्यादि अनन्त गुण में—पर्याय में जो बड़े हैं। हम साधक हैं, (हमारे से) सिद्ध, अरिहन्त, तीर्थंकर पर्याय में बड़े हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक बात यह गुण की ली।

जो त्रिलोक के पुण्य की राशि हैं (अर्थात् जिनमें मानों कि तीन लोक के पुण्य

एकत्रित हुए हैं),... तीर्थंकर अर्थात् वाणी अतिशय, शरीर अतिशय सब ही। बहुत पुण्य, पूरा पुण्य भगवान को होता है। इसलिए कहते हैं कि **जिनमें मानों कि तीन लोक के पुण्य... तीन लोक के पुण्य एकत्रित हुए हैं...** शरीर भी ऐसा कि अच्छे में अच्छे रजकणों का परिणमन वह भगवान के पास है। परम औदारिकशरीर, वाणी—दिव्यध्वनि, मेघ गरजे वैसे बिना इच्छा के आवाज गरजे, वह भी एक पुण्य है। जैसे तीन लोक के पुण्य इकट्ठे हुए... पहले गुण की बात की, उसके साथ पुण्य की बात की। दो बात है भगवान के पास। समझ में आया? **देवेन्द्रों के मुकुट की किनारी पर प्रकाशमान माणिकपंक्ति से जो पूजित हैं...** यह भी पुण्य कहा। कहते हैं, जब इन्द्र भगवान को पूजते हैं, तब उनके मुकुट में माणेक की पंक्ति होती है, उसकी किरणें भगवान के ऊपर पड़ती हैं, उन किरणों द्वारा मानो भगवान को पूजता हो।

जिनके चरणारविन्द में देवेन्द्रों के मुकुट झुकते हैं... ऐसा। आहाहा! **(जिनके आगे)...** यह शचि कही भाई! वह **'पौलोमी'** (अर्थात्) इन्द्राणी। लो, आ गया। **शचि आदि प्रसिद्ध इन्द्राणियों...** शकेन्द्र जो पहले देवलोक का इन्द्र, उसकी शचि अर्थात् रानी आदि इन्द्राणियों के **साथ में...** सभी इन्द्राणियों को साथ में लेकर शकेन्द्र इन्द्र... **शकेन्द्र द्वारा किये जानेवाले...** आहाहा! तीर्थंकर को केवलज्ञान आदि पूर्णता तो हुई, परन्तु पुण्यप्रकृति (भी) तीर्थंकर की पूर्ण है। इससे कहते हैं, शकेन्द्र द्वारा किये जानेवाला वह **नृत्य...** नृत्य... इन्द्राणियों के साथ इन्द्र भी नृत्य करते हैं भगवान के पास। आहाहा! भक्त है न! शुभभाव आता है। उसके द्वारा किये जानेवाला **नृत्य**—नाचना। **गान** करे—गाये, **तथा आनन्द से जो सुशोभित हैं,...** उसके कारण भगवान शोभते हैं, ऐसा कहते हैं। एक तो अपने अन्तर केवलज्ञानादि आनन्द से शोभते हैं, बाहर पुण्यप्रकृति से शोभते हैं, ऐसा। ऐसे इन्द्र बड़े अर्धलोक के स्वामी इन्द्राणी को साथ लेकर नाचे, गायन करे, वे आनन्द से शोभते हैं।

और श्री तथा कीर्ति के जो स्वामी हैं,... श्री अर्थात् शोभा। जितनी जगत की सुन्दरता और शोभा, भव्यता, वह सब भगवान के शरीर में और भगवान के पास बाहर में होती है। अन्दर में तो पूर्णता होती ही है। आहाहा! **और श्री तथा कीर्ति के जो स्वामी हैं,...** अपने गुणादि समस्त भव्यता, ऐसा लिया। **उन श्री नाभिपुत्रादि जिनेश्वरों का मैं**

स्तवन करता हूँ। मुनिराज ने तो सात श्लोक में पहली यह बात ली है। है बात परमभक्ति की, परन्तु पहली यह बात व्यवहार-भक्ति का श्लोक किया। ऐसे भगवान नाभिपुत्र आदि जिनेश्वर को मैं स्तवन करता हूँ। दूसरा श्लोक।

वृषभादिवीरपश्चिमजिनपतयोऽप्येवमुक्तमार्गेण।
कृत्वा तु योगभक्तिं निर्वाणवधूटिकासुखं यान्ति॥२३२॥

गाथा की बात ली है। **वृषभ से लेकर श्री वीर तक के जिनपति...** गणधर, वे जिन, उनके पति। **भी यथोक्त...** ऐसे भगवान ने जो कहा, ऐसा मार्ग, उसमें योगभक्ति (अर्थात्) पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, ऐसा आत्मा का स्वभाव, उसमें जुड़ान किया, दशा को जोड़ी। निर्मलदशा को वहाँ स्वभाव के साथ जोड़ा, इसका नाम धर्म, इसका नाम मोक्ष का मार्ग। आहाहा! इसका नाम योगभक्ति। अन्तर के आत्मा के व्यापार की दशा को यहाँ योगभक्ति कहा जाता है, कि जिसमें दया, दान और व्रत के विकल्प का भी अभाव है। आहाहा! यह वस्तु की दृष्टि की खबर नहीं होती, मार्ग की खबर नहीं होती और धर्म करते हैं। उसका जीवन जाता है, तत्त्व की मूल वस्तु की दृष्टि बिना जीवन निष्फल है। यह वस्तु के भानवाली दृष्टि, उसकी भक्ति (अर्थात्) स्वयं—अपने परमात्मस्वरूप की भक्ति का वह जीवन सफल है। समझ में आया?

बाहर से कोई ऐसा मानकर बैठे हों न, अपने देव और गुरु की भक्ति करो, कल्याण हो जायेगा। भविष्य में होगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न! वह तो पुण्य है, राग है। राग से सुख—मुक्ति कहाँ से होती थी? समझ में आया? परमात्मा तो यहाँ ऐसा फरमाते हैं। तू तेरी भक्ति कर। आहाहा! और उस भक्ति बिना तेरी मुक्ति कभी (होगी नहीं)। ऐसे तीर्थंकर भी अपने त्रिकाल स्वभाव में जुड़कर... वास्तव में तो राग से एकता तोड़कर एक समय की पर्याय में एकताबुद्धि (थी), उसे तोड़कर, समझ में आया? ऐसे जुड़ान हो गया। ध्रुव अविनाशी भगवान आत्मा की एकाग्रता, उसमें लीनता, उसका नाम योगभक्ति है।

ऐसी **योगभक्ति करके निर्वाणवधू के सुख को प्राप्त हुए हैं।** लो, मुक्तिरूपी परिणति को प्राप्त हुए। तीर्थंकर भी ऐसा करके प्राप्त हुए, कहते हैं। तू और दूसरे प्रकार

से करे और तुझे मुक्ति हो, ऐसा नहीं है। गजब काम परन्तु! निश्चय... निश्चय... अब कुछ व्यवहार होगा या नहीं? कहा न, यह व्यवहारभक्ति होती है, परन्तु वह विकल्प है, वह राग है, वह पुण्य है, पाप से बचने के लिये भाव (आवे), बस, इतनी उसकी मर्यादा है। समझ में आया? उसकी मर्यादा धर्म में—मुक्ति के मार्ग में डाल दे, वह नहीं चलता वीतरागमार्ग में। वीतरागमार्ग में तो वीतरागपरिणति से मुक्तिमार्ग में आवे। राग की परिणति वीतरागमार्ग में—मुक्तिमार्ग में आवे नहीं। अब मुनिराज स्वयं की बात करते हैं। पहली भक्ति की, दूसरे में गाथा का अर्थ भरा। तीसरे में (कहते हैं कि) स्वयं—मैं यह भक्ति (करता) हूँ। (कलश) २३३।

अपुनर्भवसुखसिद्ध्यै कुर्वेऽहं शुद्धयोगवरभक्तिम्।
सन्सारघोरभीत्या सर्वे कुर्वन्तु जन्तवो नित्यम्॥२३३॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—अपुनर्भवसुख की (मुक्ति सुख की)...** देनेवाली... अपुनर्भव—**(मुक्ति सुख की) सिद्धि के हेतु...** मेरी परम निर्वाणदशा मुक्ति के लिये—उसे प्रगट करने के लिये **शुद्ध योग की उत्तम भक्ति करता हूँ;...** देखो! यह मुनि। इसका नाम मुनि। शुद्ध योग—शुद्ध परिणति—वीतरागदशा। पंच महाव्रत के विकल्प भी राग हैं। उनसे रहति शुद्ध आत्मा की परिणति वीतरागदशा, ऐसे **योग की उत्तम भक्ति करता हूँ;...** ऐसा कहते हैं। आहाहा! अपुनर्भव अर्थात् मुक्ति, उसके सुख की सिद्धि के लिये... भवरहित दशा, वह मुक्ति, उसके सुख की प्राप्ति के लिये... मैं तो शुद्धयोग (अर्थात्) निर्मलानन्द आत्मा की एकाग्रता, वह शुद्ध उपयोग—शुद्धयोग—शुद्ध परिणति—शुद्ध अवस्था—शुद्धदशा, यह भक्ति करता हूँ। गजब काम! व्यवहार के रसिया को तो यह भारी लगे। वह तो कहे, अरर! यह तो सब (लोप होता है)। बापू! परन्तु व्यवहार, वह परलक्ष्यी भाव है। स्वलक्ष्यी भाव आये बिना मुक्ति होती नहीं। धर्म होता नहीं, फिर प्रश्न कहाँ? मुक्ति तो बाद में रही। समझ में आया?

मुनि स्वयं कहते हैं कि ओहो! इस भरतक्षेत्र के चौबीस तीर्थंकरों ने आत्मा के आनन्द की भक्ति में एकाग्र होकर मुक्ति को प्राप्त किया। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मुनि कहते हैं—सब एक ही है न। आहाहा! स्वयं कहा न अन्दर। **'एवं काऊण जोगवरभत्तिं'** तो **'तम्हा धरु जोगवरभत्तिं' इसलिए योग की उत्तम भक्ति को तू धारण**

कर। (गाथा के) पाठ में है। यह भगवान का आदेश है, यह भगवान का हुकम है। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव, जिनके चरणकमल सौ इन्द्र पूजे, उनका हुकम यह है। अरे, प्रभु! तुझमें पूर्ण आनन्द और ज्ञान भरा है, उसके सन्मुख की एकाग्रता कर, वह भक्ति कर। आहाहा!

यह छोड़कर दूसरा कर, उसमें कहीं मुक्ति-बुक्ति हो, ऐसा नहीं है, धर्म हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। **संसार की घोर भीति से...** आहा! अरे, जीवों! चौरासी लाख के अवतार का डर करो। आहाहा! जन्मना और मरना, कीड़ा, कौआ, कुत्ता, नारकी, मनुष्य, ढोर और देव—सब दु:ख के भव हैं। आहाहा! घोर संसार है। चार गति में अवतरित होना, वह घोर संसार है। उससे जिसे भय हो। अरे! अब यह नहीं... यह नहीं। भवभय के भीरु—घोर संसार से भय प्राप्त। जिसे चार गति के दु:ख से भय है। स्वर्ग का भव भी दु:ख का है। धूल भी वहाँ सुख नहीं। समझ में आया? यह सब सेठिया करोड़पति और अरबोंपति बेचारे दु:खी हैं। समझ में आया? राग और द्वेष की आकुलता में... रहे हैं, पड़े हैं, दु:खी हैं, आहाहा! दुनिया मूर्ख ऐसे पैसेवाले को, देव को सुखी कहती है। समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि देव हो या धूल—अरबोंपति सेठिया हो, उसका जिसे यह 'मेरे हैं' ऐसा भाव है, वही उसे महादु:ख है। बहुत दु:खी है बेचारा, कहते हैं। आहाहा! सब कपड़े-गहने पहने हों लाख-दो लाख के, जमाये हों इस शरीर के ऊपर। यहाँ लटकते कान का कुण्डल यहाँ यह और यह। धूल का शृंगार है। आहाहा! अरे! यदि तुझे दु:ख का भय हो... आहाहा! जिसे यह पैसेवाले सेठिया और स्वर्गवाले सुखी दिखते हैं, उसे भवभय कहाँ से होगा? उसे तो वह प्रिय है। चन्दुभाई! आहाहा! यह रुपये के ढ़ेर होते हों, दो-दो लाख की आमदनी वर्ष में, महीने में, अरे! एक-एक दिन की पाँच-पाँच लाख की आमदनी हो। देखो! है न अभी बनिये। एक-एक दिन की पाँच-पाँच लाख। धूल है। क्या है परन्तु उसमें? श्मशान की राख है। वे बेचारे दु:खी हैं, कहते हैं। भव के भय का दु:ख यदि तुझे लगा हो तो वहाँ से अब हट जा। आहाहा!

संसार की घोर भीति से... आहाहा! कठोर भय कर कठोर। अरर! एक अवतार धारण करना महादुःख है। निर्वाणवधू के सुख को प्राप्त हुए हैं। लो। **सर्व जीव नित्य वह उत्तम भक्ति करो।** यह सामूहिक सब बातें हैं, लो! है न 'सर्व जीव' है न? ओहोहो! **'सर्वे कुर्वन्तु जन्तवो नित्यम्'** हे भगवान आत्माओ! आहाहा! ऐसा, करो प्रभु! तुझे यह करनेयोग्य है, नाथ! दूसरा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! होली तो जगत की अनन्त बार (की) राग-द्वेष की, हों! बाकी पर का कुछ किया नहीं। व्यापार-धन्धा, फलाना, ...—ऐसा कुछ किया नहीं। चन्दुभाई! धन्धा किया है? बिल्कुल नहीं। जड़ को कौन करे? उसमें बैठा राग और द्वेष और अज्ञान के भाव को करे। आहाहा! और मूर्ख मानता है कि कुछ कमाने का धन्धा करूँ। नुकसान जाये उसमें। आहाहा! कमाई देखे जहाँ दो लाख-पाँच लाख की महीने में, अन्धा (मानो कि) हम सुखी हैं। धूल भी सुख नहीं, सुन न! वह तो राग और द्वेष के परिणाम तो महादुःख के भयंकर घोर श्मशान के पाप हैं सब। आहाहा! **वह उत्तम भक्ति करो।** ऊपर कही ऐसी (भक्ति)—आत्मा के साथ अन्तर जुड़ान (करो)। पुण्य-पाप के विकल्प तो पर के साथ जुड़ान है, वह तो दुःखरूप दशा है। यह भारी कठिन बात है, हों! आहाहा! अब, ऐसा वस्तु का स्वरूप पहले गुरुगम से प्राप्त कर, कहते हैं।

राग-द्वेष-परम्परा-परिणतं चेतो विहायाधुना,
शुद्धध्यानसमाहितेन मनसानन्दात्मतत्त्वस्थितः।
धर्मं निर्मलशर्मकारिणमहं लब्ध्वा गुरोः सन्निधौ,
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि॥२३४॥

'अधुना'—अभी। कहाँ आया **'अधुना'**? **अब...** आहाहा! (अर्थात्) **मैं, अब। अब...** है न?

ओहोहो! कितना डालते हैं! **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** अर्थात् ऐसा कहते हैं कि गुरु यह बात तुझे कहेंगे कि तू तेरे आत्मा में जुड़ान कर। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,** आहाहा! उन्होंने ऐसा सुनाया गुरु ने, ज्ञानी ने, धर्मात्मा ने कि भाई!

तेरा भगवान तेरे पास पूरा तू समीप है। उसकी अन्दर नजर कर, उसमें एकाग्र हो। वह सच्ची भक्ति और मुक्ति का कारण है। वह गुरु के पास यह सीखा। आहाहा!

ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है... आहाहा! देखो! उन्होंने ऐसा बताया था कि यह तेरा भगवान अन्दर चैतन्यचमत्कार प्रभु, उसका अनुभव कर। उसके सम्मुख देख, हमारे सामने देखना छोड़ दे। आहाहा! ऐसा उन्होंने कहा था। तब इसे निर्मल सुखकारी धर्म प्राप्त हुआ। **ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है...** देखो! आहाहा! अपने आनन्द की महिमा जहाँ ज्ञान में आयी, उस द्वारा रागादि परवस्तु की महिमा छूट गयी। पर की महिमा कुछ 'यह आह्लादित है, उल्लसित है, ठीक है' ऐसा जो मिथ्यामोह, वह ज्ञान द्वारा नाश हो गया। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ जहाँ ज्ञान में ज्ञात हुआ, उस ज्ञान द्वारा समस्त मोह नष्ट हो गया। **ऐसा मैं...** विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ६, सोमवार, दिनांक - २५-१०-१९७१
श्लोक-२३४-२३७, प्रवचन-१५८

यह नियमसार सिद्धान्त है, परम-भक्ति अधिकार। परम-भक्ति कहो या नियमसार कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। ऐसे ही अधिकार सब इसमें लिये हैं २३४। यह तो बोला गया है, फिर से।

राग-द्वेष-परम्परा-परिणतं चेतो विहायाधुना,
शुद्धध्यानसमाहितेन मनसानन्दात्मतत्त्वस्थितः।
धर्मं निर्मलशर्मकारिणमहं लब्ध्वा गुरोः सन्निधौ,
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीने परब्रह्मणि॥२३४॥

मक्खन है अकेला। **श्लोकार्थः—गुरु के सान्निध्य में निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** यह पहली लाईन। धर्मात्मा गुरु की देशनालब्धि इसे मिलना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अज्ञानी का उपदेश निमित्त नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। **गुरु के सान्निध्य में...** जो धर्मात्मा, आत्मज्ञानी, मुनि-सन्त आदि के समीप में... ऐसा कहकर यह कहते हैं कि खास समझने के लिये, सुनने के लिये आया है। गुरु उसे कहने गये नहीं। **गुरु के सान्निध्य में...** ऐसा आया न? अब गुरु ने क्या कहा कि जो इसने प्राप्त किया? इसने जो प्राप्त किया, वह गुरु ने कहा था। **निर्मल सुखकारी धर्म को प्राप्त करके,...** यह शब्द है। निर्मल सुखकारी अर्थात् कि आत्मा को आनन्द देनेवाला, ऐसा निर्मल धर्म—निर्विकल्प वीतरागी परिणति। यह भक्ति। आत्मा अखण्ड आनन्द, अखण्ड ज्ञान, पूर्ण शुद्ध पवित्र का धाम...

इसमें शुरुआत इस प्रकार से हुई है कि जिसे जन्म-मरण के दुःख लगे हों, भव से भय लगा हो, उसे गुरु के समीप जाना चाहिए, ऐसा कहते हैं। और वह गुरु के पास क्या समझा? **निर्मल सुखकारी धर्म...** गुरु ने यह कहा, ऐसा वह पाया। उन्होंने कहा कि भाई! यह आत्मा शुद्ध आनन्दधाम भगवान है। इसके सन्मुख की निर्विकल्प—रागरहित

शुद्ध परिणति—अवस्था, वह धर्म है, वह आत्मा की भक्ति है। उसे ही धर्म कहा। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त हो, ऐसा धर्म। उसे **प्राप्त करके...** जो, बहुत किया। निर्मल सुखकारी धर्म अर्थात् आत्मा के सन्मुख होकर शुद्ध वीतरागी निर्दोष, निर्विकल्प, आनन्ददायक, निर्विकल्प शुद्धपरिणति, उसे यहाँ परम-भक्ति कहा जाता है, उसे धर्म कहते हैं।

ऐसे **धर्म को प्राप्त करके...** पहले प्राप्त नहीं था। पहले तो राग और द्वेष को प्राप्त था। इसलिए ऐसे निर्मल सुख का देनेवाला वर्तमान आनन्ददायक और भविष्य में भी आनन्ददायक (हो), उसका नाम धर्म कहते हैं। धर्म ऐसा नहीं होता कि वर्तमान दुःखरूप लगे और उसका फल सुखरूप हो। कष्ट सहन करना पड़े न पहले? कायक्लेश और... नहीं आता? आहाहा! वह तो वर्तमान में भी आनन्द और भविष्य में भी आनन्द, उसे यहाँ धर्म कहते हैं। भगवान आत्मा... गुरु ने यह कहा (और यह) शास्त्र का सार है। देखो! समझ में आया? यह तो बारह अंग शास्त्र का सार (ऐसा) जो धर्म सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने कहा, वह धर्म गुरु ने इसे कहा। धर्म, वह तेरी चीज़ है। तुझमें वस्तु है आनन्द, ज्ञान, शान्ति, उसके सन्मुख की एकता कर, वह धर्म है। पहले समझना कठिन। उसका लक्ष्य खींचा पहले गुरु ने, लक्ष्य खींचा कि यह धर्म है। समझ में आया?

ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है... स्पष्टीकरण किया। निर्मल सुखकारी धर्म अर्थात् क्या? क्या वह पाया? वह पाया ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान, सम्यग्ज्ञान—स्वसन्मुख का ज्ञान, सम्यग्दर्शन—स्वस्वरूप की दृष्टि और उसमें लीनता—यह तीनों ही ज्ञान है। तीनों में राग और विकल्प है नहीं। आहाहा! उस **ज्ञान द्वारा जिसने...** भाषा देखो! अपना आनन्दस्वभाव, वह ज्ञान में है। आनन्दस्वभाव कहीं राग में नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, उसके सन्मुख का ज्ञान और आनन्द प्राप्त करके, उस द्वारा प्राप्त किया यह भाव, उस **द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा नष्ट की है...** मोह की महिमा नाश हो गयी है। रागादि के परिणाम की महिमा उसे है नहीं। समझ में आया? गजब धर्म! पोपटभाई! ऐसा धर्म। अनादि-अनन्त त्रिकाल धर्म तो यह है। **ज्ञान द्वारा जिसने...** अर्थात् कि आत्मा के स्वभाव के भान द्वारा आत्मा का ज्ञान किया, आत्मा की श्रद्धा की, आत्मा की स्थिरता की—इन तीनों को ज्ञान कहा जाता है, (क्योंकि) इसमें राग नहीं है इसलिए।

ज्ञान द्वारा जिसने समस्त मोह की महिमा... व्यवहार का विकल्प, उसकी भी महिमा जिसे छूट गयी है। भक्ति (अधिकार) है न! यह तीर्थंकर के प्रति भक्ति के भाव का मोह छूट गया है, ऐसा कहते हैं, महिमा छूट गयी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपना आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप की जिसने भक्ति की है, उसकी जिसने भक्ति की है, उसने पर के प्रति मोह नष्ट किया है। **ऐसा मैं...** दो बातें कीं। प्राप्त किया और वह नष्ट किया। उत्पाद किया और दूसरा व्यय किया, ऐसा हुआ न? आत्मा की शुद्ध निर्विकल्प धर्म की परिणति प्राप्त की और मोह के प्रति मोह, मोह के प्रति महिमा, मोह के प्रति महिमा (का) व्यय किया, आहाहा! समझ में आया? यहाँ व्यवहार की महिमा का नाश किया, ऐसा कहते हैं। आवे भले अन्दर। यहाँ तो व्यवहार को याद ही नहीं किया। कहो, पण्डितजी! व्यवहार कहाँ गया?

मुमुक्षु : व्यवहार, व्यवहार में गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप अकेला अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर तत्त्व ही है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्पर्श होने से, स्व-सन्मुखता होने से, उसकी महिमा आने से, उसे निर्मल आनन्द की प्राप्ति होती है। उस द्वारा जिसने विकल्पादि शुभराग हो, उसकी भी महिमा जिसने नष्ट की है। **ऐसा मैं...** मुनि स्वयं अपनी बात करते हैं। लो, यह मुनिपना कहो, धर्म कहो या परम भक्ति कहो—वह सब यह है। आहाहा! पहला तत्त्व तो ग्राह्य होने में मुश्किल पड़े लोगों को। यह सब कहाँ गया तब यह? पोपटभाई! यह सब मेहनत करके यह मशीन लेकर आये, ... लाये... ऐ वजुभाई! कितनी मेहनत करते हैं पोपटभाई। आहाहा! कहते हैं कि हो, परन्तु उसकी महिमा उड़ गयी है अब। **ऐसा मैं...** अभी तक तो पुण्य और पाप के विकल्प की परम्परा द्वारा मेरा चित्त परिणत था। समझ में आया? चाहे तो शुभराग या अशुभराग... दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो सब शुभराग है। ऐसे राग द्वारा परिणत चित्तवाला पहले पर्याय में था।

अब राग-द्वेष की परम्परारूप से परिणत चित्त को छोड़कर,... आहाहा! जिसमें राग का कण भी खड़ा हो, ऐसे चित्त को मैं छोड़ देता हूँ अर्थात् उसकी ज्ञान की अवस्था

में हो, उसे मैं छोड़ देता हूँ। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम परमभक्ति, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र—जन्म उद्धारक आचरण। बाकी तो यह जन्म-मरण करके कचूमर निकलता है। आहाहा! कहते हैं कि अनादि का राग और द्वेष, पुण्य और पाप ऐसे भाव से चेतन रंगा हुआ था, उसे मैंने छोड़ दिया है। आहाहा! **शुद्धध्यान द्वारा...** पहले कहा था 'ज्ञान द्वारा', यहाँ 'शुद्धध्यान द्वारा' (अर्थात्) आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान की अन्तर एकाग्रता द्वारा... चाहे तो आठ वर्ष की बालिका हो, परन्तु सम्यग्दृष्टि के यह लक्षण और यह स्वरूप होता है। समझ में आया? शुद्ध ध्यान अर्थात्? ध्यान को भी वापस विशेष डाला। ध्यान तो करता है आर्त और रौद्रध्यान। यह तो शुद्धध्यान... अत्यन्त पवित्र भगवान आत्मा की एकाग्रता का ध्यान, उस पवित्र ध्यान द्वारा... जिसके ध्यान में ध्येय भगवान आत्मा है, जिसकी वर्तमान ध्यान की दशा में ध्येय ध्रुव भगवान है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध ध्यान द्वारा समाहित (-एकाग्र, शान्त) किये हुए मन से... आहाहा! गजब श्लोक। ऐसा धर्म वीतराग का होगा? ... व्रत पालना, पूजा करना, यात्रा करना, दया पालना, उपवास करना—ऐसा तो इसमें कुछ आया नहीं। वह तो सब विकल्प की, राग की मन्दता की बातें हैं। वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! डॉक्टर! ऐसा मार्ग है। अनन्त तीर्थंकर... यह गुरु का सानिध्य कहा न? अनन्त तीर्थंकर यही कहते आये हैं, कहते हैं। अनन्त सन्तों ने यह कहा है। इससे विरुद्ध कहे, वह जैनदर्शन नहीं। समझ में आया? **शुद्ध ध्यान द्वारा एकाग्र, शान्त किये हुए मन से...** मन तो ... परिणति है न निर्मल। आनन्दस्वरूप तत्त्व में... और वापस कैसा है भगवान आत्मा? वह तो आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम। आहाहा! जिसमें—आत्मतत्त्व में आनन्द से रेलमछेल भरा हुआ तत्त्व है। आहाहा! अभी समझ में—लक्ष्य में तो बात ले कि मार्ग यह है। समझ में आया?

आनन्दात्मक तत्त्व में स्थित रहता हुआ,... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृतस्वरूप आनन्दस्वरूप है, उसमें मैं स्वयं स्थित रहता हुआ... मैं उसमें स्थिर रहता हुआ, **परमब्रह्म में लीन होता हूँ।** परमब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा में लीन होता हूँ। 'लीन होता हूँ' यह शुद्ध ध्यान कहो या एकाग्रता कहो, निर्मल सुखकारी धर्म कहो—यह सब विशेषण उसके हैं। आहाहा! समझ में आया? **परमब्रह्म में लीन होता हूँ।** भाई! यह

लिखते हैं, तब कहाँ लीन होता हूँ? यह तो विकल्प है। लीन ही होता हूँ, लीन ही हूँ। (विकल्प) होवे तो वह मुझे नहीं। समझ में आया? परमात्मा में... परमब्रह्म अर्थात् परम-आत्मा। यहाँ अब लेंगे। आनन्दस्वरूप तत्त्व कहा, परमब्रह्म कहा, व्यवहार का मोह छोड़ा कहा, परम्परा से चित्त को राग की धारा में परिणमता था उसे छोड़ा कहा— बहुत कहा, हों! सब ही कहा। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की कथनी अपूर्व है! अपनी नहीं .... लगावे वहाँ तो। एक-एक श्लोक में...

भाई! तू आनन्द से पूरा है न प्रभु! तुझे तो आनन्दात्मक तत्त्व ऐसा कहकर बतलाया यहाँ। तू आनन्द से भरपूर तत्त्व है। अतीन्द्रिय आनन्द जो सिद्ध को है, ऐसे ही आनन्द से भरपूर तत्त्व तेरा है। आहाहा! उसे यह चित्त की परिणति अनादि से राग में— शुभरागादि में जुड़ी हुई है, (उसे) छोड़ दे, यहाँ जोड़। वहाँ तोड़ और यहाँ जोड़। आहाहा! अति संक्षिप्त। स्व में वस, पर से खस, अति संक्षिप्त। शान्तिभाई!

एक थे आदिसागर। ... परन्तु यहाँ का वाँचन करे। यहाँ की पुस्तकें बहुत मँगाते थे। क्षुल्लक थे। वे गाँव में कहे ऐसा संक्षिप्त। यहाँ की पुस्तकों का गुजरात में बहुत प्रचार किया हुआ। आदिसागर क्षुल्लक है। गुजर गये। स्व में वस, पर से खस, यह अति संक्षिप्त। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में बस, राग की धारा पर है, उससे हट, यह बारह अंग में अति संक्षेप में यह कहना है। स्वरूपचन्दजी! कहो, समझ में आया? आहाहा! अरेरे! ऐसा आत्मा! इतना कहता हूँ, तथापि इतना काल भटका? भाई! उसे हाथ नहीं आया। उसे सुनने को नहीं मिला। सुनने को मिला हो तो स्वसन्मुख की दृष्टि नहीं की। यहाँ तो ऐसा ही जीव लिया है कि जिसने गुरु के पास सुना और पावे। यही यहाँ तो लिया है। समझ में आया? लो, यह श्लोक पूरा हुआ। अब, २३५।

निर्वृत्तेन्द्रियलौल्यानां तत्त्वलोलुपचेतसाम्।
सुन्दरानन्दनिष्यन्दं जायते तत्त्वमुत्तमम्॥२३५॥

यह '**जो इंदिये जिणित्ता**' (जैसी बात) है। दूसरी-दूसरी खबर हो न। वस्तु को ख्याल में रखने के लिये... **श्लोकार्थः—इन्द्रियलोलुपता जिनको निवृत्त हुई है...** आहाहा! धर्म करनेवाले प्राणी को पाँच इन्द्रियाँ, उनके विषयों आदि से लोलुपता निवृत्त हुई है। आहाहा! शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। शब्द में तो फिर भगवान की वाणी

भी आ गयी, हों! सब चिल्लाहट मचाये। इन्द्रिय लोलुपता है वह। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय, जड़-इन्द्रिय और भावेन्द्रिय—जो खण्ड-खण्ड इन्द्रिय एक-एक विषय का कार्य करे—उसकी भी लोलुपता छोड़कर... और वह इन्द्रिय के विषय, वे भी इन्द्रिय ही है, उसकी भी लोलुपता छोड़कर... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि लाओ न, इतना सुन लूँ, यह लोलुपता है। उसे छोड़कर... ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! आँख से, कान से जो कुछ (ज्ञान) होता है, उसके ओर की लोलुपता छोड़कर... ओहो! भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय है। सम्यग्दर्शन का विषय अतीन्द्रिय आत्मा है, सम्यग्दर्शन का ध्येय अतीन्द्रिय भगवान आत्मा है, परमब्रह्मस्वरूप परमात्मा स्वयं है। आहाहा! गजब! इन्द्रिय लोलुपता... बन्द कराना है पहले सब पूरा? हाँ, बाहर से सब बन्द कर दे, कहते हैं। पोपटभाई! गजब बात ऐसी।

और तत्त्वलोलुप जिनका चित्त है,... अस्ति-नास्ति की। आहाहा! दो भाग। एक तो तत्त्व भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा, एक ओर पाँच इन्द्रिय और उसके विषय। वह सब लोलुपता इन्द्रिय की छोड़कर, **तत्त्वलोलुप (तत्त्व प्राप्ति के लिए अत्यन्त उत्सुक)...** जो आत्मा को अन्तर अनुभव करने के लिये अन्तर... अन्तर... अति उत्सुक है। आहाहा! बहिर्मुख की लोलुपता छोड़कर, अन्तर्मुख की उत्सुकतावाला **जिसका चित्त है...** आहाहा! दुनिया के हाथ बाहर के भटकते रहे सब। भगवान का अन्तर मार्ग कैसा है, वह इसे सुनने को मिला नहीं। भक्ति करो भगवान की, यात्रा करो बारह महीने कार्तिक पूर्णिमा की, शत्रुंजय की और सम्मेदशिखर की, जाओ। कहते हैं, सुन न! वह तो राग है। अशुभ से बचने के लिये ऐसा काल होता है तो आवे। वह कहीं धर्म नहीं। समझ में आया? श्रीमद् कहते हैं न कि दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। देखो न! एक-एक लाईन कैसी है! समझ में आया?

परमब्रह्म भगवान आत्मा अन्दर है। परमब्रह्म अर्थात् आनन्द, ब्रह्म अर्थात् आनन्द। परमब्रह्म अतीन्द्रिय आनन्द की मूल चीज़ वह है। उसका लोलुपी—अन्तर्मुख होने का उत्सुक, उत्साहित... परसन्मुख की उत्साह वृत्ति को छोड़कर, अन्तर के उल्लसित वीर्यवाला, ऐसा जिसका चित्त है। आहाहा! इसमें अकेला मक्खन है, वार्ता और कथा नहीं। इतना वाँचने के पश्चात् यह होगा, यह बात यहाँ नहीं करना है। आहाहा! यह तो

यहाँ परमब्रह्म भगवान पूर्णानन्द प्रभु की ओर का चित्त जिसका उल्लसित, वीर्य उल्लसित है, उत्सुक है (और) इस ओर की चित्त की परिणति जिसने छोड़ दी है। आहाहा! पहले से धर्म ऐसा होगा?

ऐसे जीव को... इस ओर की इन्द्रिय की लोलुपता का अभाव किया है (और) अतीन्द्रिय आत्मतत्त्व के प्रति जिसे चित्त उल्लसित हुआ है। ऐसे जीव को **उन्हें सुन्दर-आनन्द झरता...** जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द टपकता है, ऐसा आत्मा। स्वयं सुन्दर आनन्दस्वरूप आत्मा, परन्तु उसमें एकाग्र होने से सुन्दर आनन्द झरता है। जैसे पर्वत में से पानी झरे... अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान स्वयं परमब्रह्मस्वरूप स्वयं... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि उसका जिसने आदर किया, वह तत्त्व ही ऐसा है कि (उसे) सुन्दर आनन्द झरे। समझ में आया? आहाहा! कहो, हसमुखभाई! वहाँ तो पैसे के कारण यह सुनने का मिले नहीं। यह पैसा दस लाख पैदा किया और पाँच लाख पैदा किया, फलाना किया, ढींकणा किया। नुकसान किया है सब।

तब कहे, यह पूरी बात डाल क्यों नहीं देते? और ऐसा कहे। परन्तु डालना और... आहाहा! डालने या रखने की बात ही कहाँ है? उसमें चीज़ थी ही कहाँ कि डाल दे? और रखी कहाँ है कि रख दे? माना है कि यह मुझमें है। इतनी मान्यता है, वह मान्यता छोड़ने की है। आहाहा! ऐसा मार्ग गजब, भाई! यह सब इतने सब मार्ग कितने वर्षों से चलते जाते हैं? यह अपवास करना, दस करना, आठ करना, नकोरडा—निर्जल करना, ऐसा करना और... यह सब इसमें कुछ आया नहीं। भगवान! यह सब आया तेरा नाथ। यह तत्त्व ही ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं कि जिसने तत्त्व को उसकी ओर झुकाया है, वह तत्त्व सुन्दर-आनन्द झरता तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? सुन्दर-आनन्द झरे, निर्विकल्परस झरता है, कहते हैं। भगवान निर्विकल्प चैतन्यमूर्ति है, उसकी एकाग्रता से उसमें आनन्दरस झरे, ऐसा ही वह तत्त्व है। आहाहा! वह उत्तम तत्त्व प्रगट होता है। जिसका चित्त अन्तर उल्लसित है, बाहर से लोलुपता गई है, उसे आनन्द झरता उत्तम तत्त्व उसे प्राप्त होता है। उसे तत्त्व प्रगटे, सिद्धपद की पर्याय प्रगट होती है अथवा मोक्ष का मार्ग उसे प्रगट होता है। आहाहा! अकेला मक्खन भरा है इसमें। पामर होकर पड़ा है और पामर के जैसी

बातें बतावे कि अपवास करो, निर्जरा होगी। काल जायेगा तेरा, सुन न! निर्जरा कहाँ से होती थी? जब तक आत्मा आनन्द झरता उसे अनुभव में न आवे, तब तक कर्म झरे कहाँ से?

यह निर्जरा के ऊपर आया सब, लो। अपवास... करे तो... जेठाभाई को बहुत खबर होगी। अठ्ठम के ऊपर एक पोषो करे, पोषो क्या, पोरसी, तो पच्चीस अपवास का लाभ। ऐसा बोलते वहाँ। गाड़ी भरी हो भूसा का-पुले का, उसमें एक पूणा रखो तो भी बहुत कहलाये, इसी प्रकार अठ्ठम करे न एक... वह सब बातें करते हों। शान्तिभाई! आहाहा! एक अठ्ठम के ऊपर एक पोरसी चढ़ावे न तो पच्चीस अपवास का लाभ। पच्चीस अपवास का लाभ न? धर्म का नहीं न? यह तो सब लंघन है। आहाहा! समझ में आया? लो, तुमने किया था न। कितने किये थे, आठ? दस ... अटक गये। आहाहा! ... कितने ... किये? सुन्दर ऐसे आत्मा को... जिसने यह (बाहर) के ओर की दिशा बन्द की है और अन्तर दिशा जिसने खोली है... शान्तिभाई! आहाहा! उसे अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र झरता है। उसकी दशा में अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, उसे आत्मा की परम-भक्ति कहते हैं, उसे धर्म कहते हैं, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं, उसे समकित-ज्ञान और चारित्र कहते हैं। आहाहा! २३६ (कलश)।

अत्यपूर्वनिजात्मोत्थभावनाजातशर्मणे।
यतन्ते यतयो ये ते जीवन्मुक्ता हि नापरे॥२३६॥

शान्तिभाई! ऐसे को यति कहते हैं, बाकी दूसरे यति नहीं, ऐसा आवे लो। भाग्यशाली है कि रह गये। आहाहा! दिगम्बर मुनि होनेवाले थे। गृहस्थ हैं। शान्तिसागर नाम है। गृहस्थ व्यक्ति है, स्त्री है, पुत्र है, पिता है, दिल्ली... दिल्ली। दिगम्बर साधु होनेवाले थे—नग्न मुनि। स्त्री ने आज्ञा दे दी, जाओ। अब यह किसी का कुछ मानेगा नहीं। उसमें यह साहित्य मिला। ओय...! ... बहुत भोला जीव, वैरागी। दिगम्बर मुनि हो जाओ। दिगम्बर मुनि कहना किसे? यह कहते हैं यहाँ, देखो! आहाहा!

श्लोकार्थः—अति अपूर्व निजात्मजनित भावना से उत्पन्न होनेवाले सुख के लिए जो यति यत्न करते हैं, वे वास्तव में जीवन्मुक्त होते हैं,... आहाहा! **दूसरे नहीं।** अस्ति-नास्ति की है दो शब्दों में। अब उसका विस्तार। **अति अपूर्व निजात्मजनित**

भावना... अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी अति अपूर्व—पूर्व में नहीं की हुई... पूर्व में की हुई तो सब दया-दान-व्रतादि राग की भावना थी। इससे **अति अपूर्व निजात्मजनित...** भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, उससे जनित—आत्मस्वभाव से उत्पन्न होती भावना अर्थात् एकाग्रता। आहाहा! उससे उत्पन्न होते सुख के लिये—आनन्द के लिये... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव के लिये जो यति अन्तर में स्वरूप में यत्न करते हैं, उसे यति कहते हैं, मुनि कहते हैं। बाकी सब मुनि नहीं। ऐसा आया, देखो! है? आहाहा! स्वयं मुनि है ... करनेवाला। आहाहा!

अति अपूर्व... वापस दो शब्द। अकेला अपूर्व नहीं। आहाहा! मुनिपना.... दशा है न। **अति अपूर्व निजात्मजनित...** भगवान चैतन्य प्रभु अखण्ड आनन्द का भण्डार, उसमें जिसने वीणा बजायी... समझ में आया? अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप के साथ एकाग्रता, उससे उत्पन्न हुई एकाग्रता—भावना, उससे उत्पन्न होता सुख... उसमें आनन्द उत्पन्न होता है। उसके लिये जो यति... यति अर्थात् जति, ऐसा नहीं, हों! स्वरूप में यत्न करे वे यति; बाकी सब... आहाहा! मुनि ने भी काम किया है न! आहाहा! साधु उसे कहते हैं कि **अति अपूर्व निजात्मजनित...** आत्मा से, परन्तु राग से—विकल्प से नहीं। उसकी भावना से उत्पन्न होता आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द के लिये जो सन्त यत्न... यति अन्तर आनन्द में यत्न करते हैं, अन्तर आनन्द में डुबकी मारते हैं... आहाहा!

वे वास्तव में... वही वास्तव में जीवन्मुक्त होते हैं। उसे जीवन्मुक्त दशा कहते हैं या जीवन्मुक्त होते हैं। ऐसे मुनि केवलज्ञान को पाते हैं। आहाहा! गजब बात! **वे वास्तव में...** आयुष्य देह का होने पर भी अन्तर में मुक्त होते हैं। यद्यपि समकिती भी राग और शरीर से मुक्त ही है। सम्यग्दृष्टि आत्मा के अन्तर स्वभाव को जिसने पकड़ा, वह विभाव और शरीरादि से तो मुक्त ही है। गृहस्थाश्रम में... यह सब छोड़ दिये हैं उसने। आहाहा! वे वास्तव में देह की स्थिति—आयुष्य आदि होने पर भी, अन्तर आनन्दस्वरूप की यत्ना से जिसने आनन्द के लिये पुरुषार्थ किया है, वे जीतेजी—शरीर का आयुष्य—होने पर भी मुक्त है। कहो, चन्दुभाई! लो, यह साधुपना। आहाहा! यह तो नाम भी सुना न हो और हो गये साधु। आहाहा!

मुनि, स्वयं मुनि—साधु हैं। जो आत्मा के आनन्द की भावना से सुख के लिये अन्दर में यत्न करते हैं, उन्हें साधु कहते हैं। यहाँ ऐसा नहीं कहा कि पंच महाव्रत पाले और २८ मूलगुण पाले, (वह साधु)। चन्दुभाई! ऐसा कहा? व्यवहार की तो बात याद की नहीं इसमें। आहाहा! धर्म का मार्ग अलग है, भाई! कहते हैं कि ऐसे वास्तव में जीतेजी मुक्त है। शरीर से आयुष्य होने पर भी... शरीर को आयुष्य है न, आत्मा को कहाँ है? अन्दर में चैतन्यगोला, शान्ति का सागर झूला उछलता है, कहते हैं। **दूसरों को नहीं...** हों! ऐसा कहते हैं। अनेकान्त किया। दूसरे साधु नहीं और दूसरे जीवन्मुक्त होते नहीं। आहाहा! अन्तिम कलश २३७। यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! बहुत ऐसा कहीं (कठिन नहीं)। समझ में आये ऐसा है न? लो, हसमुखभाई प्रसन्न हैं। ऐसा आता है। बहुत सादा है। माल भले ऊँचा हो, परन्तु भाषा बहुत सादी है। आहाहा!

लक्ष्य को वहाँ जोड़ अन्दर, कहते हैं। तेरा लक्ष्य राग और बाहर में गया है सब, वह तो बहिरात्मबुद्धि से गया है। अन्तरात्मबुद्धि से तो अन्दर लक्ष्य जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग होगा? यह वीतराग केवली जिनेश्वर ने कहा होगा? शान्तिभाई! अभी तो कहते हैं कि यह नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, यह करना, वह करना, आठम पालना, चौदश-आठम पालना, छह परबी पालना। ऐई! दूज-पंचम-अष्टम-ग्यारस-चौदस-पूर्णिमा और अमावस्या। यह तो कहे, पूरा आत्मा पालना। ले न! तेरा कहाँ पालना-फलाना का रहा? आहाहा! मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! अन्य मार्ग को जैनमार्ग मानकर बैठे हैं। है अन्य मार्ग, परन्तु यह जैनमार्ग है—ऐसा मानकर बैठे हैं। आहाहा! **दूसरे को नहीं...** हों, कहते हैं। आहाहा! यह पामरों की हैसियत नहीं है यहाँ, ऐसा कहते हैं। भगवान अन्तर्मुख तत्त्व है, उसमें अन्तर्मुख झुके हुए यति ही जीवन्मुक्त होते हैं। बहिर्मुख झुके हुए वे साधु नहीं और उनकी दिगम्बर दशा भी नहीं। आहाहा! कहो, स्वरूपचन्दजी! ऐसा स्वरूप है। २३७ (कलश)।

अद्वन्द्व-निष्ठ-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
सम्भावयामि तदहं पुन-रेक-मेकम्।
किं तैश्च मे फलमिहान्यपदार्थसार्थैः,
मुक्तिस्पृहस्य भवशर्मणि निःस्पृहस्य॥२३७॥

यह सब संगमरमर में उत्कीर्ण होनेवाले हैं, हों! हसमुखभाई ने मेहनत की है न। उसमें यह उत्कीर्ण होनेवाले हैं। हसमुखभाई ने बहुत मेहनत की है। तुम्हारा नहीं, हसमुखभाई का। तुम तो ऊपर से बातें करते। उत्साह में वे थे। बराबर हुआ... बराबर हुआ। आहाहा! यह मशीन आनेवाली है न वहाँ से। भाई लेने गये थे हसमुखभाई। यह परमागम में पौने चार लाख अक्षर उत्कीर्ण होनेवाले हैं। चढ़ गयी मशीन। आहाहा!

अद्वन्द्व-निष्ठ-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
सम्भावयामि तदहं पुन-रेक-मेकम्।
किं तैश्च मे फलमिहान्यपदार्थसार्थैः,
मुक्तिस्पृहस्य भवशर्मणि निःस्पृहस्य॥२३७॥

अरे, भगवान आत्मा! परमात्मतत्त्व प्रभु स्वयं है। आहाहा! अरिहन्त आदि परमात्मा, वे तो उनके। यह आत्मा स्वयं अपना परमात्मा है। आहाहा! **श्लोकार्थः— जो परमात्मतत्त्व द्वंद्व में स्थित नहीं है...** कहते हैं, व्यवहार विकल्प में वह है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, कहते हैं कि उस राग में आत्मा नहीं। उस राग में आत्मा रहा नहीं, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! लोगों को कठिन लगे। व्यवहार के प्रमुख... यह बात है। मार्ग तो यह है, बापू! उद्धार का रास्ता तो यह है। जन्म-मरण के दुःख... आहाहा!

यह कंचनबहिन की चिल्लाहट सुनकर तो भागे। दोनों खड़े थे, मैं भी बैठा जरा। चिल्लाहट करे ओ... माँ! फिर तो माफी माँगी, हों! ... कृपा करके... मुझसे चिल्लाहट हो गयी, माफ करना। .... कोई कहने आया था। बहिन को... बहिनें खड़ी थी, मैं बैठा था।

मुमुक्षु : गुरुदेव की उपस्थिति में....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। चिल्लाहट मचाये ओ... माँ! ऐसी कठोर पीड़ा थी। मानो लोहे के कीले। केन्सर। नेमिदासभाई की बहू कंचन। आहाहा! बँगला बड़े ढाई-ढाई लाख के। अभी का एक-डेढ़ लाख का। तीन बँगले हैं। बँगले, वह कोई मदद नहीं करता हो? यह चिल्लाहट दुःख में... आहाहा!

पीड़ा तो, राग में एकता है, उसकी है। शरीर की पीड़ा नहीं। शरीर तो जड़ है। उसकी पीड़ा यहाँ आत्मा को क्या होगी ? आहाहा! जिसने आत्मा को अपने में न झुकाकर, जिसने विकार में झुकाया, वह संसार और पीड़ा और यह क्या ... ? जिसने आत्मा को स्वभाव में झुकाया, उसे आनन्द और शान्ति की जीवन्मुक्तदशा। आहाहा! उसने जीना जाना। समझ में आया ? आहाहा! **जो परमात्मतत्त्व द्वंद्व में स्थित नहीं है...** परमात्मतत्त्व व्यवहार में रहा नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार से तुझे आत्मा मिले, व्यवहार करो, व्यवहार करो, उससे तुम्हें आत्मा मिलेगा, निश्चय मिलेगा। स्वरूपचन्दजी! आहाहा! भारी संक्षिप्त शब्दों में भी बहुत कहा है, हों! प्रभु है, आत्मतत्त्व किसे कहते हैं ? पुण्य-पाप राग वह तो आस्रवतत्त्व है। शरीर, वाणी, कर्म अजीवतत्त्व है। भगवान परमात्मतत्त्व है। वह परमात्मतत्त्व अपने तत्त्व में रहा हुआ है। व्यवहार के विकल्प में वह परमात्मतत्त्व द्वंद्व में रहा हुआ नहीं। आहाहा! राग और द्वेष, पुण्य और पाप के जोड़े में अकेला भगवान रहा नहीं, वह तो अद्वैत है। आहाहा! गजब बात!

रहा नहीं इतनी बात की, यह तो नास्ति से की। है कैसा ? वह तो **अनघ** है—अघ रहित **निर्दोष, मलरहित...** है। निर्मल... निर्मल... निर्मल... अरबों रुपये का हीरा चमकता-चमकता हो रूपी, यह (आत्मा) अरूपी चमकता हीरा अन्दर है। आहाहा! **निर्दोष, मलरहित...** है। आहाहा! और '**पुनरेकमेकम्**' इसका अर्थ करते हैं। '**पुनरेकम्**' केवल एक हूँ। **केवल एक की मैं... केवल एक की मैं पुनः-पुनः सम्भावना (सम्यक् भावना) करता हूँ।** आहाहा! व्यवहार के विकल्प की भावना करता हूँ, रखता हूँ, वह मैं नहीं। मनसुखभाई! **उस केवल एक की मैं...** मेरा प्रभु निर्दोष स्वभाव का भण्डार, उस एक की मैं एकाग्रता करता हूँ। उसमें ही मैं भावना को एकाग्र करता हूँ। व्यवहार की एकाग्रता मैं करता नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग! **केवल एक की मैं पुनः-पुनः...** आहाहा! उसमें लिया था, राग-द्वेष परभावरूप से परिणत... बारम्बार अनादि का ऐसा था। अब 'बारम्बार' यहाँ है। **मैं पुनः-पुनः...** मेरा नाथ परमात्मा स्वयं, उसकी मैं एकाग्रता करता हूँ। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ७, मंगलवार, दिनांक - २६-१०-१९७१
श्लोक-२३७, गाथा-१४१, प्रवचन-१५९

यह परम-भक्ति अधिकार, अन्तिम कलश है। वाँचा गया है, फिर से। २३७ कलश। नियमसार (अर्थात्) निश्चय से कर्तव्य—करनेयोग्य ऐसी परिणति। शुद्ध परिणति अथवा शुद्ध वीतराग पर्याय, वह निश्चय से करनेयोग्य है। यह कहते हैं,

श्लोकार्थः—जो परमात्मतत्त्व... यह आत्मतत्त्व कहो या परमात्मतत्त्व अपना। परम-स्वरूप ऐसा आत्मतत्त्व त्रिकाली **वह द्वंद्व में स्थित नहीं है...** वह पुण्य-पाप के भाव में या भेद में रहा हुआ नहीं। परमात्मस्वरूप अपना नित्य ध्रुव अनादि-अनन्त ऐसा जो आत्मा, वह परमात्मतत्त्व **(राग-द्वेषादि) द्वंद्व में...** नहीं। और **अनघ (निर्दोष, मलरहित)...** है। निर्मल, चैतन्यहीरा अत्यन्त निर्मल है। वस्तु—अपनी त्रिकाली चीज़ निर्मल है। **उस केवल एक की मैं पुनः-पुनः सम्भावना करता हूँ।** मेरा हित तो यह है। मेरा केवल एक ऐसा जो आत्मा, उसकी एक की ही बारम्बार (सम्भावना करता हूँ अर्थात्) उसमें एकाग्र होता हूँ। आहाहा! यहाँ तक तो आया था।

मुक्ति की स्पृहावाले... मैं तो मुक्ति का—परमानन्द (रूप) पूर्ण दशा का अभिलाषी हूँ। मुझे कोई दूसरी चीज़ चाहिए नहीं। यह धर्मी की बात है। **मुक्ति की स्पृहावाले...** मेरा परमानन्दस्वभाव मुक्तपने को पावे—परमानन्ददशा प्रगट हो, ऐसी स्पृहावाला मैं हूँ, ऐसा धर्मी कहता है। यह तो मुनि हैं। समझ में आया? **भवसुख के प्रति निःस्पृह...** भव में कहीं सुख है नहीं। स्वर्ग और नर्क के सुख के प्रति निस्पृह हूँ (अर्थात्) स्पृहा है नहीं। देखो! यह धर्मी। उसका परम आवश्यक कर्तव्य। **मुक्ति की स्पृहावाले...** ऐसे भव के सुख के प्रति मुझे निस्पृहता है। सुख है कहाँ? भव में कहीं सुख नहीं है। इस लोक में ऐसा मैं आत्मा, द्वन्द्व रहित निर्मल ऐसे एक आत्मा की भावना अर्थात् अन्तर में—वस्तुस्वभाव में मैं एकाग्र होता हूँ, इसका नाम परम-आवश्यक कर्तव्य है, धर्मी का यह कर्तव्य है।

अरे! **इस लोक में उन अन्य पदार्थ समूहों से क्या फल है?** मुझे मेरे अतिरिक्त अन्य पदार्थ... शरीर, वाणी, मन, देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, नात-जात और सगे—ये सब अन्य पदार्थ हैं। ऐसे अन्य पदार्थों का समूह, (अर्थात् मेरे) एक के अतिरिक्त अन्य पदार्थ। '**सार्थे**' है न? '**सार्थे**' अर्थात् अन्य पदार्थों का समूह, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? परपदार्थ के साथ मुझे क्या सम्बन्ध है? उससे क्या फल है? आहाहा! कहो, समझ में आया? मेरे पदार्थ के साथ मुझे सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं। इसका नाम धर्म। मैं एक परमात्मतत्त्व हूँ, वही मैं हूँ। उसमें एकाग्र होना, वह मेरा कर्तव्य है, वह मेरा फर्ज है। इसके अतिरिक्त भव के सुख से निस्पृहवाले ऐसे मुझे और मुक्ति की स्पृहावाले... दो हुआ न? मुक्ति की स्पृहा और भवसुख की निस्पृहा। आहाहा!

अरे! **इस लोक में उन...** वे अर्थात् मेरे अतिरिक्त समस्त—शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव, गुरु और शास्त्र। अरे! मेरे पदार्थ को दूसरे पदार्थ के साथ (सम्बन्ध) क्या है? क्योंकि मुझसे जो पर है, वह पर में पररूप से... पररूप से रहे हुए हैं। मुझे उनके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! मुझे तो मेरा स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द में एकाग्र होना, वह मेरा कर्तव्य है। धर्मी ऐसा जानता है, लो। हसमुखभाई! आहाहा! समझ में आया इसमें? कहते हैं, इसमें मुझे और पर को क्या सम्बन्ध है? यह मकान और स्वाध्यायमन्दिर और मन्दिर, लो। उन अन्य पदार्थों के साथ क्या फल है? उसका सम्बन्ध करेगा, वहाँ तो विकार और दुःखरूप परिणाम होंगे। आहाहा! ऐसा (व्यवहार से) आवश्यक है, परन्तु ऐसे अनावश्यकभाव है। दुःखमय होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! कहीं सुख नहीं। शरीर में नहीं, स्त्री में नहीं, परिवार में नहीं, पैसे में नहीं। वह तो पर है।

यहाँ तो कहते हैं कि देव, गुरु और शास्त्र, सम्मेदशिखर और शत्रुंजय, तीन लोक के नाथ का समवसरण और तीर्थंकर... आहाहा! ऐसे उन बाह्यपदार्थों के समूह के साथ मुझे क्या फल है? कहो, भीखाभाई! ऐसा है यह। आहाहा! मेरे स्वभाव के साथ सम्बन्ध, उसका फल मुक्ति है। परपदार्थ के साथ सम्बन्ध में क्या फल है? दुःखरूप है। आहाहा! उसके ऊपर लक्ष्य जाता है, वह राग है और राग है, वह दुःख है। देखो न!

यहाँ तो एक चोट और दो टुकड़े। उसमें दो टुकड़े ही हो न... आहाहा! जिसे धर्म करना है, जन्म-मरण के दुःख से मुक्त होना है, ऐसे जीव की बात है। बाकी चार गति में भटके भटका-भटक... हैरान... हैरान... दुःखी है। मैं एक पदार्थ हूँ या नहीं? मैं एक आत्मा हूँ और हूँ तो मेरा... मेरा स्वभाव... स्वभाव है या नहीं? स्वभावरहित पदार्थ होगा?

मैं एक अविनाशी आत्मा हूँ। तो मेरा स्वभाव त्रिकाल आनन्द, ज्ञान, दर्शन का परमात्मतत्त्व (है, वह तो) कहा न स्वभाव? ऐसे स्वभाव के साथ मुझे सम्बन्ध है। वह पर्याय का सम्बन्ध वहाँ है, ऐसा कहते हैं। द्रव्य और गुण अविनाशी त्रिकाल हूँ, ऐसे मेरे तत्त्व के साथ मुझे सम्बन्ध है। उसके साथ मैं एकाग्र होने से मेरा परम-आवश्यक— जरूरियात मेरी पूरी पड़े तो वहाँ पूरी पड़ती है। आहाहा! कहो, हसमुखभाई! यह कमाने का... कमाने का, कहते हैं, मेरी आवश्यकता पूरी पड़ती नहीं। यों ही दुःखी हैरान होता है, ऐसा कहते हैं। आवश्यकता इतनी है। है न? ऐ मनसुख! आहाहा! एक-एक कलश में... आहाहा!

मुझे तो मेरे शुद्ध चैतन्यस्वभाव... मैं हूँ न! सत्ता है न! अस्तिवाला मैं हूँ न! अस्तिवाला मैं, ऐसा अस्तिवाला मेरा ज्ञान, आनन्द आदि त्रिकाल स्वभाव है। उसमें मैं एकाग्र होऊँ, यह मेरी भक्ति है। आहाहा! उसे परमभक्ति कहते हैं। अरे! परपदार्थ के ढ़ेर पड़े हैं... '**सार्थे**' कहा न? आहाहा! मुझे उनके साथ क्या सम्बन्ध है? पर से निस्पृह, मुक्ति की स्पृहावाला मैं हूँ। '**अन्यपदार्थसार्थे**' 'वे' कहाँ से निकाला? '**तैश्च**' आहाहा! एक और एक=दो दूसरे। मेरा स्वरूप सच्चिदानन्दस्वभाव मेरा है। मेरा आनन्द मुझमें है। उस आनन्द के साथ एकाग्र होना, वह परमभक्ति है। मुझे परपदार्थ के साथ क्या लेना-देना है? उसमें फल क्या है? तुझे सुख की स्पृहा है, मुक्ति की स्पृहा है। तो परपदार्थ के साथ तुझे यह स्पृहा कहाँ फलती है? आहाहा! ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! आहाहा! गजब भाई यह बात।

यह तो समकिती से लेकर सबकी बात है। धर्म, जो सुखी होने के पंथ में पड़ा हो... दुःख के पंथ में तो अनादि से यह है ही। चाहे तो सेठाई हो, देव हो, वे सब बेचारे दुःखी हैं। पोपटभाई! आहाहा! परपदार्थ के साथ सम्बन्ध रखकर आवश्यकता मेरी पूरी

पड़ती है, (ऐसा माननेवाला) दुःखी है। भ्रमणा, अज्ञान में दुःखी है। कैसे होगा इसमें? यह सब पैसे-बैसे कमावे, लाख-दो लाख कमाता हो तो सुखी लगता है न? ऐई, महेन्द्रभाई! क्या है यह? आहाहा! अरे, प्रभु! यहाँ तो कहते हैं कि सुन तो सही नाथ! तेरा रक्षण करने के लिये तुझे समय कहाँ है? तू किसका करने जाता है और किससे तेरा फल सिद्ध होगा? तुझे फल तो मुक्ति की स्पृहा ही है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात की है।

'किं तैश्च मे फलमिहान्यपदार्थसार्थैः' आहाहा! मेरे भगवान के अतिरिक्त मुझे दूसरे पदार्थ के साथ क्या फल है? क्या उसमें से तेरे दरेडो निकालना है? मुक्ति की दशा उसमें से आयेगी नहीं। उससे विरुद्ध आयेगी, उसका काम क्या है तुझे? आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? लड़कों के साथ क्या काम है? ऐसा कहते हैं। गुरु को कहते हैं कि शिष्य के साथ तुझे क्या काम है? शिष्य को कहते हैं कि तुझे गुरु से क्या काम है? ऐसा कहते हैं। क्योंकि भिन्न-भिन्न पदार्थ अपनी दशारूप से हो रहे हैं, उसमें तुझे पर के साथ क्या काम है? आहाहा! इस शरीर के साथ क्या काम है? ऐसा कहते हैं। शरीर अच्छा रहे या खराब रहे, वह कहीं तेरी आवश्यकतावाली चीज़ नहीं। आहाहा! वह तो उसके कारण से जैसे रहनेवाला हो, वैसे रहता है। आहाहा! इस एक-एक कलश में मुनिराज ने बहुत अकेला दोहन किया है, हों! यह परम-भक्ति अधिकार यहाँ पूरा हुआ।

यहाँ तो भक्ति है या नहीं? कि परद्रव्य के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है भक्ति करके? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! यह भाव आवे शुभ, परन्तु उसका फल कहीं मुक्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! आहाहा! अरे! इसकी जाति को जाना नहीं। उसमें क्या-क्या पड़ा है? कैसा निधान है आत्मा? त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने खजाना खोला, उस खजाने में क्या-क्या है? तेरा खजाना तेरे पास है। खबर नहीं होती। झांवा डाले यहाँ से और यहाँ से। अरे! वे पदार्थ... वे अर्थात् मानो दूर, ऐसा। भाई! वे अर्थात् दूर। उनके साथ तुझे क्या काम है? आहाहा! उसमें से तुझे क्या फल है? भगवान! तुझे फल क्या है? तुझे तो मुक्ति की स्पृहा है। यहाँ कहाँ... ?

आहाहा! गजब बात सन्तों की कथनी समेटकर बात इतनी रखे! आहाहा! वनवासी-जंगलवासी हैं न! वन में सिंह की भाँति दहाड़ मारकर अन्दर में स्थित हैं। आहाहा! वीर्य को स्फुरणा से एकदम अन्दर में उतारते हैं। अरेरे! तुझे क्या काम है? भाई! यह वे रहे सब पदार्थ। तेरे अतिरिक्त कर्म, शरीर, वाणी हो, उसके घर में—जगत जगत में है। जगत के साथ तुझे क्या काम है? इसी प्रकार समकिती अपने में एकाग्र होने से ऐसी भावना करता है। कहो, कान्तिभाई! यह तो बैठे ऐसा है। इसमें कोई ऐसी संस्कृत या व्याकरण (नहीं)। आहाहा! यह भगवान स्वयं ही ऐसा है, सरल है, सीधा है, आहाहा! यह भक्ति अधिकार पूरा हुआ, परम-भक्ति। वह व्यवहार भक्ति देव-गुरु-शास्त्र की।

अन्त में तो यह कहा कि भाई! उन परपदार्थ के साथ... तेरा फल उसमें तो है नहीं। तुझे सुख चाहिए है या नहीं? पूर्ण सुख की स्पृहावाला है न? धर्मी वही होता है कि जिसे पूर्ण आनन्द की अभिलाषा होती है। उस पूर्णानन्द की अभिलाषावाला, उसे परपदार्थ के साथ पूर्णानन्द कैसे फले? आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात! चन्दुभाई! आहाहा! परम सत्य ही यह है। उसमें एकड़ा से लेकर चाहे जो गिने, अन्दर समझनेवाला हो वह इस प्रकार से ही समझ सकता है। दूसरी कोई चीज़ है ही नहीं वहाँ। कल तो कहा नहीं था? 'मैं' के अतिरिक्त दूसरी चीज़ ही नहीं न वहाँ! आहाहा! मेरे अतिरिक्त... दूसरी चीज़ें मेरी अपेक्षा से तो है ही नहीं। आहाहा! अरे! मेरी अपेक्षा से तो मेरी जो पर्याय कहलाती है, वह भी कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? ....निर्णय करे पर्याय...

मुमुक्षु : निषेध करती है अपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध करती है। आहाहा! गजब बात है, पदार्थ के कथन की जिनेश्वर की शैली! अमृत उतारा है नीचे। आहाहा!

भाई! मैं तो आत्मा हूँ, हों! आत्मा मैं हूँ और वह त्रिकाली रहनेवाला हूँ। ऐसे भगवान के साथ मुझे सम्बन्ध है। सम्बन्ध करती है पर्याय। आहाहा! मुझे उसके साथ सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध होता है (अर्थात्) पर्याय ऐसे झुकी हुई, वह ऐसे झुकती है, उसका दूसरा कथन करना क्या? ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुझे तो मेरे तत्त्व के साथ

सम्बन्ध है, जो मैं अविनाशी त्रिकाल हूँ। आहाहा! देखो! इसका नाम धर्मबुद्धि, इसका नाम सुख के पंथ में पड़े हुए सुखी जीव। जैसे पक्षी उड़कर आकाश में जाये, उसी प्रकार ऐसे सुखी जीव सुख की एकाग्रता की भावनावाले उड़ते-उड़ते मुक्ति में जाये। समझ में आया?

यह सब (अज्ञानी) दु:ख के रास्ते में हैं। आहाहा! अरे! वे पदार्थ... वे गिने (अर्थात्) कहीं आगे... आगे। यहाँ तो कहते हैं कि आगम और मूर्ति दोनों आधार, भविजन को आधार।

मुमुक्षु : आत्मा का आधार छोड़ दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ दिया? आहाहा! श्वेताम्बर में यह बहुत बोलते हैं। ... भविजन को आधार, आगम और मूर्ति। यहाँ कहते हैं कि आत्मा को आधार आत्मा। परद्रव्य के साथ मुझे क्या फल है? मुझे फल तो आनन्द चाहिए है। वह फल वहाँ तो है ही नहीं, उसके आधार से—उसके आश्रय से। आहाहा! सन्तों की बातें—मोक्ष की बातें सब। नियमसार है न! मोक्षमार्ग कहो। फिर इसके अन्तर्भेद के नाम अलग-अलग है। परम-भक्ति, यह अधिकार पूरा हुआ। दसवाँ पूरा हुआ। ग्यारहवाँ (निश्चय परमावश्यक अधिकार)।

-११-
निश्चय-परमावश्यक अधिकार

निश्चय-परमावश्यक अधिकार (अर्थात्) वास्तव में आत्मा को परम आवश्यकतावाला कार्य, उसका यह अधिकार। निश्चय-परम आवश्यक का करना, उसका यह अधिकार है। आहा! १४१ (गाथा)।

जो ण हवदि अण्णवसो तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।
कम्मविणासणजोगो णिव्वुदिमग्गो त्ति पिज्जुत्तो ॥१४१॥

गजब बात है। आहाहा!

नहिं अन्यवश जो जीव आवश्यक करम होता उसे।
यह कर्म-नाशक योग ही निर्वाणमार्ग प्रसिद्ध रे ॥१४१॥

टीका:—अब व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष... है न पहला? आहाहा! यह व्यवहार सामायिक, चौबीस तीर्थंकर की स्तुति, गुरुवन्दन, सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान—यह सब छह आवश्यक, यह पुण्य के परिणाम हैं। समझ में आया? सामायिक, चौबीसंथो, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान—जो छह आवश्यक कहते हैं, वह सब रागभाव है। आहाहा! व्यवहार छह आवश्यक से प्रतिपक्ष—विरुद्ध **शुद्धनिश्चय-आवश्यक का अधिकार कहा जाता है।** व्यवहार से निश्चय विरुद्ध है, ऐसा कहते हैं। कहो!

मुमुक्षु : कितने प्रतिशत?

पूज्य गुरुदेवश्री : शत-प्रतिशत। अकेला व्यवहार सामायिक, विकल्प, प्रतिक्रमण, भगवान की स्तुति, देव-गुरु वन्दन, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग, यह करना, ऐसा जो विकल्प है, वह तो राग है। वह तो पुण्यराग है, वह बन्धन का कारण है। बन्धन के लिये सफल है। आहाहा!

यहाँ तो पहले उपोद्घात बाँधते (हैं, जो) लोगों को गले उतरना (कठिन)। पण्डितों को भी कठिन पड़ता है यह टीका। व्यवहार आवश्यक की क्रिया, उससे

विरुद्ध, यह निश्चयधर्म है। व्यवहार के आचरण की क्रिया से निश्चय—सत्य आचरण अत्यन्त विरुद्ध है। समझ में आया? आत्मा के आश्रय से, भगवान आत्मा वस्तु अस्ति—सत्ता, उसके अवलम्बन से जो सामायिक आदि आवश्यक होते हैं, निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान परिणति होती है, वह सच्चा—निश्चय आवश्यक है। उससे विरुद्ध व्यवहार के छह आवश्यक, उनसे विरुद्ध यह निश्चय (आवश्यक)। व्यवहार से निश्चय विरुद्ध है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। उसके बदले कहे कि व्यवहार करने से निश्चय होगा। आहाहा!

ऐसे लेख आते हैं बहुत जगह कि व्यवहार साधन है, कारण है। वह तो ज्ञान कराया, भाई! जिसे साधन कहते हैं, वही बाधक है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ अखण्डानन्द प्रभु आत्मा स्वयं, जिसमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी परमेश्वर की सम्पदावाला प्रभु है। उसके सन्मुख की अन्तर की एक क्रिया, वह निश्चय आवश्यक है, वह धर्म की सच्ची क्रिया है। उससे विरुद्ध छह आवश्यक देव-गुरु-शास्त्र को स्मरण करना, व्यवहार सामायिक करना इत्यादि, व्यवहार आवश्यक, वह पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

व्यापार और धन्धे के भाव, नौकरी के भाव किये हों... सुमनभाई का आया। वह तो पाप का कारण है। कहो, समझ में आया? परन्तु यहाँ तो छह आवश्यक व्यवहार से जो कहे, वे भी पुण्यबन्धन का ही कारण है। आत्मा के अबन्धस्वभाव का बिल्कुल कारण नहीं। आहाहा! दिशा बदलना, वह बड़ी बात है। ऐसी जो है अनादि की परपदार्थ के प्रति अवलम्बनवाली वृत्तियाँ, वे बन्धन का कारण हैं, दु:खरूप है। छह व्यवहार आवश्यक दु:खरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उन **व्यवहार छह आवश्यकों से...** आवश्यक तो कहा आरोप से, व्यवहार से। निश्चय आवश्यक, स्व के आश्रय में जाना, वह उसका निश्चय आवश्यक कर्म अर्थात् कार्य है। उससे विरुद्ध यह व्यवहार बन्ध का कारण है। आहाहा! गजब जिनदेव वीतराग परमात्मा तीर्थंकर की उपशमरस की झरती वाणी! आहाहा! भाई! तेरा आत्मस्वभाव तो अकषायरस के आनन्द से भरपूर है। भाई! तू सुख से खाली नहीं। आहाहा! कैसे बैठे? बाहर में गोते मारता है, यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा।

यहाँ तो, छह आवश्यक में बाह्य दृष्टि है, कहते हैं। बहिर्मुख परिणाम है, ऐसा

कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उन बहिर्मुख परिणामों से अन्तर्मुख परिणाम भिन्न जाति के हैं। आहाहा! उनके लक्ष्य के दौर में तो यह बात ले, लक्ष्य को तो वहाँ लगा। आहाहा! इसका लक्ष्य गया है अन्यत्र। समझ में आया? **अब व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष...** बिल्कुल विरुद्ध, वह तो शत्रु है, कहते हैं। व्यवहार का शत्रु निश्चय। ऐसा आया या नहीं इसमें? तब वह अशुद्ध है। व्यवहार छह आवश्यक, वह अशुद्ध विकल्प है, राग है, पुण्य है। तब उससे विरुद्ध **शुद्धनिश्चय का...** भगवान आत्मा अपने सुखसागर से भरपूर प्रभु के अन्तर सन्मुख में एकाग्रता की क्रिया, वह निश्चय-आवश्यक क्रिया है। यह **अधिकार कहा जाता है।** ऐसा करना हो, तब फिर यह टाईल्स का कब करना? कौन करे? वह तो पुद्‌गल का जिस समय में जहाँ होने का पुद्‌गल से कार्य वहाँ होता है, आत्मा को क्या सम्बन्ध है? आहाहा!

अब इसका अन्वयार्थ लेते हैं। **अन्वयार्थ:—जो अन्यवश नहीं है (अर्थात् जो जीव अन्य के वश नहीं है)...** भगवान आत्मा राग के वश नहीं, पुण्य के वश नहीं। आहाहा! **उसे आवश्यक कर्म कहते हैं...** उसे आवश्यक—जरूरियातवाला कार्य कहते हैं। आहाहा! **(उस जीव को आवश्यक कर्म है, ऐसा परम योगीश्वर कहते हैं)।** तीर्थंकर, केवली, मुनि ऐसा फरमाते हैं कि जिसमें शुभ और अशुभराग का परवशपना नहीं और आत्मा आनन्दमूर्ति को स्व-वश जो परिणाम हैं, उन परिणाम को धर्मी का आवश्यकतावाला कार्य है, ऐसा वीतराग फरमाते हैं। आहाहा! समझ में आया? **कर्म का विनाश करनेवाला योग...** है वह तो, कहते हैं। आहाहा! निश्चय-आवश्यक भगवान आत्मा महासत्ता चैतन्य महाप्रभु की अन्तर की एकाग्रता, वह कर्म का विनाश करनेवाला योग है। वह कर्म जो कार्य है, उसे योग कहा। आहाहा! उसने जुड़ान किया अपने स्वरूप के साथ, वह योग। बात पहली तो पकड़ना कठिन। क्या कहते हैं परन्तु यह? ऐसा धर्म किस प्रकार का यह? यह जैनधर्म होगा ऐसा? शान्तिभाई! अपने तो भाई यह कन्दमूल नहीं खाना, भक्ति-पूजा करना, हमेशा सामायिक, प्रोषध, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, यह करना, यह करना—ऐसा तो सब इसमें कुछ आया नहीं। कहते हैं, परन्तु परपदार्थ के साथ तुझे क्या काम है? यह तो आया। आहाहा!

वह रहे जगत के वे, ऐसे। आगे बताना हो न आगे। यह तो कहे, अरे! मोक्षपंथ

के साथ क्या काम है? समवसरण में विराजमान तीर्थंकर के साथ भी तुझे क्या काम है? क्योंकि उसमें से तुझे क्या फल है? तुझे फल तो चाहिये है आनन्द। उसके फल में—आश्रय में आनन्द तो आवे नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म। उन सबको लगे, ऐसा जैनधर्म होगा? अपने शास्त्र में ऐसा नहीं। किसी शास्त्र में होगा। इसलिए अब... ऐसा करने लगे। यह बात बाहर आने लगी। सच्ची बात यह है। तब वे सामने वाड़ावाले के—सम्प्रदायवाले के शास्त्र में यह है नहीं। वह अपने शास्त्र की बात नहीं। परन्तु यह सच्ची बात दो और दो = चार जैसी है। यह नहीं तो तेरे शास्त्र सच्चे नहीं। अपने शास्त्र में दूसरी बात है। आहाहा!

यह कर्म के विनाश का योग है। आहाहा! परमानन्द प्रभु की अन्तर में... अन्तर में गहरे-गहरे जो तत्त्व है, उसमें जाना और उसकी एकाग्रता की वीतरागी क्रिया, उसे यहाँ आवश्यकरूपी कार्य और उसे योग कहते हैं। यह योगी का योग। धर्मी योगी है। उन बाबा-बाबा को कहते हैं, ऐसा नहीं, हों! आहाहा! **वह निर्वाण का मार्ग है ऐसा...** भगवान ने **कहा है,...** लो। आहाहा!

टीका : यहाँ (इस गाथा में) निरन्तर स्ववश को निश्चय-आवश्यक-कर्म है,... आहाहा! निरन्तर—सदा (अर्थात्) एक समय का भी अन्तर पड़े बिना, त्रिकाली भगवान के ऊपर जहाँ अन्तर्दृष्टि है, धर्मी की दृष्टि द्रव्य के ऊपर है—वस्तु के ऊपर है, निरन्तर है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि और किसी समय दो बार सामायिक करना सवेरे और शाम। वह तो व्यवहार विकल्प की बात है। यह तो निरन्तर सामायिक जिसे है... आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द की सन्मुखता में जो दृष्टि है, वह सदा—निरन्तर ही है। आहाहा! **निरन्तर स्ववश को...** निरन्तर भगवान आत्मा के वश हुआ (और) पुण्य और पाप के राग से रहित हुआ। आहाहा! समकिती भी-जघन्य श्रेणी का धर्मी, वह भी दृष्टि की अपेक्षा से पुण्य और पाप के वश तो नहीं। समझ में आया? वह स्ववश है, भगवान आनन्दस्वरूप के वश है वह तो।

निश्चय-परम-आवश्यक कर्म है,... उसे निरन्तर स्व के आश्रित परिणति बहा करती है। आहाहा! समझ में आया? सम्यक् आत्मा का भान, पूर्ण स्वरूप आत्मा का ज्ञान और उसका भान, उसमें जो प्रतीति, वह तो निरन्तर है, कहते हैं। इस अपेक्षा से तो

निरन्तर समकिती भी स्ववश ही है। आहाहा! परन्तु यहाँ जरा अस्थिरता के शुभभाव होने से, उन्हें भी छोड़कर स्व के वश होता है, शुद्धोपयोग, ऐसा कहना है। समझ में आया? निरन्तर अर्थात् सदा, स्ववश को... स्वयं आत्मा ज्ञानस्वरूप है, चैतन्य आनन्द है, ऐसा जिसे अन्तर भान होकर, उसके आधीन रहा है, उसे—स्ववश को निरन्तर—कायमी आवश्यकतावाला धर्म का कार्य सदा ही हुआ करता है। आहाहा! अरे! यह बातें मिलना मुश्किल है। यह मार्ग है। लोगों को ऐसा लगता है कि यह सब व्यवहार उत्थापित हो जाता है। तुझे तो व्यवहार है ही कहाँ सम्यक्त्व बिना? यह तो सम्यक्—भान होने के पश्चात् भी जो राग होता है, उसे भी दृष्टि की अपेक्षा से तो ज्ञानी वश है ही नहीं। यहाँ तो, अस्थिरता की अपेक्षा से भी उसके वश नहीं (ऐसा कहना है)। मुनि की बात लेनी है न! आहाहा!

जिसे आत्मा के आनन्द के घोलन... घोलन शब्द से विकल्प, चिन्तवन, ऐसा नहीं। आत्मा आनन्दमय है, ऐसा अन्दर घोलन हुआ करता है। ऐसी स्थिरतावाले को निरन्तर सच्चे आवश्यक हैं। उसे, खाते समय (खाता हुआ) ऐसा दिखाई दे, उस समय आवश्यक है, ऐसा कहते हैं। सोते समय उसे आवश्यक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बोलते समय आवश्यक है, ऐसा कहते हैं। बोलते समय अर्थात् बोलने के काल में, ऐसा कहा न? बोलता है ही कहाँ आत्मा? आहाहा! वह तो वाणी है यह तो। मार्ग—पंथ न्यारा है भगवान का। दुनिया को बाहर का मिला है न, उसे अभी ऐसा सुनते हुए... यह ऊपर की श्रेणी की बात है, एम.ए. की बात है—ऐसा करके निकाल देता है। बापू! पहले नम्बर की ही यही बात है, यह ऐकड़ा की बात है अभी। आहाहा! **ऐसा** यहाँ **कहा है...** इस गाथा में। निरन्तर आत्मा को... आत्मा किसे कहते हैं? पुण्य-पाप, वह आत्मा है? आत्मा के जो वश है... आत्मा तो आनन्द की, ज्ञान की मूर्ति, वह आत्मा है, उसके वश है, उसे सच्चे आवश्यक साधन हैं, उसे सच्चा आवश्यक कार्य है, ऐसा कहते हैं।

विधि अनुसार... लो, यह आयी विधि। तुम्हारे आवे न विधि और अविधि? बहुत आता है श्वेताम्बर में। विधि से काम करना। जिस विधि से तू कहता है, वही अविधि है। अविधि... आता है न? यह भी डाला है कहीं हरिभाई ने। हरिलाल भायाणी (ने)। यह संक्षिप्त में कहीं है सही। मार्ग ... विधि-अविधि। हरिलाल भायाणी। होगा

कहीं। ... कुन्दकुन्दाचार्य का.... विधि से अविधि हुआ हो तो ऐसा, फलाना, ऐसा... यहाँ तो कहते हैं... हाँ, विधि ऐसी, इसलिए यह जरा... यह विधि दूसरी। वह बराबर तिलक करके... आहाहा! मार्ग बहुत कठिन पड़े। ऊँचे जाकर बैठे हो न, उसे ऐसा कहे कि तुम अभी तो नीचे हो। सातवीं कक्षा की परीक्षा दी हो .... करके... सेठिया का पुत्र हो, खेल में बिताया हो, फेल हो... पास करके चढ़ावे। सच्चा आवे कोई डिपो से परीक्षा लेने। यह चौथी कक्षा का उत्तर तुझे आता नहीं, बैठाया किसने तुझे सातवीं में? आहाहा! ऊँचे चढ़कर बैठे और हम साधु, हम आचार्य, हम उपाध्याय और हम यह। अब तुझे अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, यह खबर नहीं और यह ऊँचे कहाँ से चढ़ गया? किसने चढ़ावा किया?

विधि अनुसार परमजिनमार्ग के आचरण में कुशल... देखो! क्या कहना चाहते हैं? यह परम जिनमार्ग जो है वीतरागमार्ग, उसका जो आचरण, वह उसकी विधि। निश्चय उसकी विधि, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहार आवश्यक का विकल्प, वह विधि नहीं। आहाहा! उसे विधि का आरोप व्यवहार से दिया जाता है, परन्तु अनारोप विधि हो तो। समझ में आया? आहाहा! विधि अनुसार भगवान ने जो कहा, त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमजिन प्रभु का जो मार्ग, उसमें वीतरागी परिणति—स्व के आश्रय से होनेवाली विधि, उसके अनुसार मार्ग के आचरण में, निश्चय स्वभाव के आचरण में कुशल ऐसा जो जीव... आहाहा! गजब बात, भाई!

परमजिनमार्ग के आचरण में... वह यह आचरण हों, वस्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप, उसमें अन्तर एकाग्रता, उसका जो विधि अनुसार आचरण, उसकी गुणस्थान की भूमिकाप्रमाण उसकी विधि—उसकी रीति, उस प्रमाण स्वभाव-सन्मुख का, स्वसन्मुख का आचरण, उसमें कुशल... आहाहा! गजब बात! स्व में कैसे जाना, उसमें वह कुशल है।

विधि अनुसार... आहाहा! नियमसार तो नियमसार है न! आहाहा! **परमजिनमार्ग...** लो, यह परमजिनमार्ग। वीतराग परमेश्वर का कहा हुआ परमजिनमार्ग अर्थात् आत्मा के आश्रय से होनेवाली छह आवश्यक से विरुद्ध की क्रिया... व्यवहार छह आवश्यक के विकल्प से विरुद्ध की क्रिया है, वह विधि। आहाहा! समझ में आया? उस अनुसार...

विधि के लेख लिखे टले नहीं, कहते हैं न ? वह इस विधि का करनेवाला भगवान स्वयं ही परमात्मस्वरूप, उसकी सन्मुख की विधि की क्रिया, ऐसा भगवान, उसे अनुसरकर होनेवाली विधि... आहाहा! समझ में आया ? परममार्ग के **आचरण में कुशल ऐसा जो जीव...** आहाहा! **सदैव अन्तर्मुखता के कारण...** धर्मी की दृष्टि तो निरन्तर अन्तर्मुख है। आहाहा! बहिर्मुख बोलता, हिलता, खाता-पीता दिखाई दे, तथापि वह दृष्टि तो अन्तर्मुख ही है। आहाहा! **सदैव अन्तर्मुखता के कारण...** सच्चा धर्मात्मा... 'सदा' पहला आया था न ? सदा— निरन्तर। यहाँ सदा कहा। उपोद्घात बाँधा है। '**निरन्तर स्ववश को-आवश्यक**' ऐसा कहा है।

सदैव अन्तर्मुखता के कारण... पूरा भगवान पूर्ण प्रभु, उसकी—अन्त:तत्त्व की—अन्तर्मुख दृष्टि। आहाहा! यह किस प्रकार होगा ? भाई! ऐसा अपने जैनधर्म में तो सुना नहीं था। ऐई जादवजीभाई! यह तो लड़के सामायिक कर डाले तीन-तीन, आठ-आठ, दस-दस। हमारे और तीस-तीस होती थी वहाँ, मासखमण सामायिक का। आहाहा! प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। सामायिक की, ओहोहो! अब दो कुछ बक्षीस। यह फल कहाँ था वहाँ ? आहाहा! भगवान अपने स्वभाव के लक्ष्य में चढ़ा, ऐसी जो अन्तर्मुख होने की क्रिया, उसके कारण वह **अन्यवश नहीं....** उसके कारण वह पर के वश नहीं। आहाहा! धर्मी तो पुण्य के विकल्प के वश नहीं। आहाहा! व्यवहार के छह आवश्यकों का भाव राग—विकल्प है, उसके वश नहीं। मार्ग, वह भी वह मार्ग है न! आहाहा! तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वर जिस पंथ में गये, वह पंथ यह है। समझ में आया ?

अन्यवश नहीं.... जो जीव अन्तर्मुख है, जिसके परिणाम अन्तर्मुख हैं (अर्थात्) परिणामी त्रिकाली भगवान के सन्मुख है... अरे, अरे! त्रिकाली क्या और अन्तर्मुख क्या यह सब ? अनजाने को अटपटा जैसा लगे। आहाहा! बापू! भाई! तेरे सुख का, धर्म का पंथ निराला है। **वह अन्यवश नहीं...** इतने से नहीं रखा अब। **परन्तु साक्षात् स्ववश है, ऐसा अर्थ है...** आहाहा! यह अनेकान्त है। व्यवहार से भी करे, निश्चय से भी करे, ऐसा अनेकान्त—ऐसा नहीं यह। आहाहा! व्यवहार से करे, वहाँ पूरा हो गया, दृष्टि विपरीत हो गयी। परन्तु धर्मात्मा अन्तर स्वभाव के सन्मुख हुआ, उसे परवशपना नहीं, परन्तु साक्षात् स्ववशपना है। भगवान आत्मा के आधीन, उसके परिणाम वर्तते हैं। आहाहा! उसे आवश्यक कर्म कहा जाता है। उसे योग और मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)